

Hindi / English / Gujarati

श्री नरसिंह पुराण



॥ श्रीहरि: ॥

श्रीनरसिंहपुराणकी विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१-प्रयागमें ऋषियोंका समागम; सूतजीके प्रति भरद्वाजजीका प्रश्न; सूतजीद्वारा कथारम्भ और सृष्टिक्रमका वर्णन.....	७	११-मार्कण्डेयजीद्वारा शोषशायी भगवान्‌का स्तवन	४२		
२-ब्रह्मा आदिकी आयु और कालका स्वरूप.....	१२	१२-यम और यमीका संवाद	४८		
३-ब्रह्मजीद्वारा लोकरचना और नी प्रकारकी सृष्टियोंका निरूपण	१४	१३-पतिव्रताकी शक्ति; उसके साथ एक ब्रह्मचारीका संवाद; माताकी रक्षा परम धर्म है, इसका उपदेश	५१		
४-अनुसारके स्थान	१७	१४-तीर्थसेवन और आशधनसे भगवान्‌की प्रसन्नता; 'अनाश्रमी' रहनेसे दोष तथा आश्रमधर्मके पालनसे भगवत्प्राप्तिका कथन	५६		
५-रुद्र आदि सर्गों और अनुसर्गोंका वर्णन, दक्ष प्रजापतिकी कन्याओंकी संतानिका विस्तार	१८	१५-संसारवृक्षका वर्णन तथा इसे नष्ट करनेवाले ज्ञानकी महिमा	५८		
६-अगस्त्य तथा वसिष्ठजीके मित्रावरुणके पुत्ररूपमें उत्पन्न होनेका प्रसङ्ग	२३	१६-भगवान् विष्णुके ध्यानसे मोक्षकी प्राप्तिका प्रतिपादन	५९		
७-मार्कण्डेयजीके द्वारा तपस्यापूर्वक श्रीहरिकी आराधना; 'मृत्युञ्जय-स्तोत्र' का पाठ और मृत्युपर विजय प्राप्त करना	२७	१७-अष्टाक्षरमन्त्र और उसका माहात्म्य .	६३		
८-मृत्यु और दूर्तोंको समझाते हुए यमका उन्हें वैष्णवोंके पास जानेसे रोकना; उनके मुँहसे श्रीहरिके नामकी महिमा सुनकर नरकस्थ जीवोंका भगवान्‌को नमस्कार करके श्रीविष्णुके धारमें जाना.....	३३	१८-भगवान् सूर्यद्वारा संज्ञाके गर्भसे मनु यम और यमीको, छायाके गर्भसे मनु शनैश्चर एवं तपतीकी उत्पत्ति तथा अश्वरूपधारिणी संज्ञासे अधिनीकुमारोंका प्रादुर्भाव	६६		
९-यमाष्टक—यमराजका अपने दूतके प्रति उपदेश	३६	१९-विश्वकर्माद्वारा १०८ नामोंसे भगवान् सूर्यका स्तवन	६८		
१०-मार्कण्डेयका विवाह कर, वेदशिरोंको उत्पन्न करके प्रयागमें अक्षयबट्टके नीचे तप एवं भगवान्‌की स्तुति करना; फिर आकाशवाणीके अनुसार स्तुति करनेपर भगवान्‌का उन्हें आशीर्वाद एवं वरदान देना तथा मार्कण्डेयजीका क्षीरसागरमें जाकर मुनः उनका दर्शन करना.....	३८	२०-मारुतोंकी उत्पत्ति	७२		
		२१-सूर्यवंशका वर्णन	७३		
		२२-चन्द्रवंशका वर्णन	७४		
		२३-चौदह मन्वन्तरोंका वर्णन	७६		
		२४-सूर्यवंश—राजा इक्ष्वाकुका भगवत्प्रेम; उनका भगवदर्शनके हेतु तपस्याके लिये प्रस्थान	७९		
		२५-इक्ष्वाकुकी तपस्या और ब्रह्मजीद्वारा विष्णुप्रतिमाकी प्राप्ति	८२		
		२६-इक्ष्वाकुकी संतानिका वर्णन	८९		

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
२७-चन्द्रवंशका वर्णन.....		११	४६-परशुरामावतारकी कथा		१६८
२८-शान्तनुका चरित्र		१३	४७-श्रीरामावतारकी कथा—श्रीरामके जन्मसे		
२९-शान्तनुकी संततिका वर्णन		१६	लेकर विवाहतके चरित्र		१७१
३०-भूगोल तथा स्वर्गलोकका वर्णन....		१८	४८-श्रीराम-चनवास; राजा दशरथका निधन		
३१-ध्रुव-चरित्र तथा ग्रह, नक्षत्र एवं पातालका संक्षिप्त वर्णन.....		१०३	तथा वनमें राम-भरतकी भेट		१८३
३२-सहस्रानीक-चरित्र; श्रीनृसिंह-पूजनका माहात्म्य		११५	४९-श्रीरामका जयन्तको दण्ड देना; शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण और अगस्त्यसे मिलना;		
३३-भगवान्‌के मन्दिरमें झाड़ देने और उसको लौपनेका महान्‌फल—राजा जयध्वजकी कथा		११६	शूर्पणखाका अनादर; सीताहरण; जटायुवध और शबरीको दर्शन देना ..		१९६
३४-भगवान्‌ विष्णुके पूजनका फल		१२३	५०-सुग्रीवसे मैत्री; वालिवध; सुग्रीवका प्रमाद और उसकी भत्सना; सीताकी खोज और हनुमान्‌का लङ्घागमन.....		२०७
३५-लक्ष्मोम और कोटिहोमकी विधि तथा फल		१२७	५१-हनुमान्‌जीका समुद्र पार करके लङ्घामें जाना, सीतासे भेट और लङ्घाका दहन करके श्रीरामको समाचार देना		
३६-अवतार-कथाका उपक्रम		१२९	५२-श्रीराम आदिका समुद्रतटपर जाना; विभीषणकी शरणागति और उन्हें लङ्घाके राज्यकी प्राप्ति; समुद्रका श्रीरामको मार्ग देना; पुलहारा समुद्र पार करके बानरसेनासहित श्रीरामका सुवेल पर्वतपर पड़ाव डालना; अङ्गदका प्रभाव; लक्ष्मणकी प्रेरणासे श्रीरामका अङ्गदकी प्रशंसा करना; अङ्गदके बीरोचित उदार और दौत्यकर्म; बानर बीरोहारा राक्षसोंका संहार; रावणका श्रीरामके हारा युद्धमें पराजित होना; कुम्भकर्णका वध; अतिकाय आदि राक्षस बीरोंका मारा जाना; मेघनादका पराक्रम और वध; रावणकी शक्तिसे मूर्च्छित लक्ष्मणका हनुमान्‌जीके हारा पुनर्जीवन; राम-रावण-युद्ध; रावण-वध; देवताओंहारा श्रीरामकी स्तुति; सीताके साथ अयोध्यामें आनेपर श्रीरामका राज्याभिषेक और अन्तमें पुरवासियोंसहित उनका परमधाम गमन		२१९
३७-मत्स्यावतार तथा मधु-कैटभ-वध ...		१३०			
३८-कूर्मावतार; समुद्रमन्थन और मोहिनी-अवतार.....		१३३			
३९-बाराह-अवतार; हिरण्याक्ष-वध		१३७			
४०-नृसिंहावतार; हिरण्यकशिपुकी वरदान-प्राप्ति और उससे सताये हुए देवोंहारा भगवान्‌की स्तुति.....		१३८			
४१-प्रह्लादकी उत्पत्ति और उनकी हरिभक्तिसे हिरण्यकशिपुकी उद्विग्नता.....		१४३			
४२-प्रह्लादपर हिरण्यकशिपुका कोप और प्रह्लादका वध करनेके लिये उसके हारा किये गये अनेक प्रयत्न		१४८			
४३-प्रह्लादजीका दैत्यपुत्रोंको उपदेश देना; हिरण्यकशिपुकी आज्ञासे प्रह्लादका समुद्रमें डाला जाना तथा वहीं उन्हें भगवान्‌का प्रत्यक्ष दर्शन होना		१५२			
४४-नृसिंहका प्रादुर्भाव और हिरण्यकशिपुका वध		१६०			
४५-वामन-अवतारकी कथा.....		१६४			२२४

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
५३-बलराम-श्रीकृष्ण-अवतारके चरित्र ...		२३४	स्थान		२६८
५४-कलिक-चरित्र और कलि-धर्म		२४१	६३-अष्टाक्षर-मन्त्रके प्रभावसे इन्द्रका स्त्रीयोनिसे उद्धार		२७०
५५-शुक्राचार्यको भगवान्की स्तुतिसे पुनः नेत्रकी प्राप्ति		२४५	६४-भगवद्गजनकी शेषता और भक्त पुण्डरीकका उपास्त्यान		२८२
५६-विष्णुमूर्तिके स्थापनकी विधि		२४७	६५-भगवत्सम्बन्धी तीर्थ और उन तीर्थोंसे सम्बन्ध रखनेवाले भगवान्के नाम... .		२९२
५७-भक्तके लक्षण; हारीत-स्मृतिका आरम्भ; आहारधर्मका वर्णन		२५२	६६-अन्यान्य तीर्थों तथा सहाद्रि और आमलक ग्रामके तीर्थोंका माहात्म्य .		२९४
५८-क्षत्रियादि वर्णोंके धर्म और आहार्चर्य तथा गृहस्थाश्रमके धर्मोंका वर्णन ...		२५४	६७-मानस-तीर्थ, ऋत तथा इस पुराणका माहात्म्य		२९८
५९-वानप्रस्थ-धर्म		२६४	६८-नरसिंहपुराणके पठन और श्रवणका फल		३०१
६०-यति-धर्म		२६५			
६१-योगसार		२६६			
६२-श्रीविष्णु-पूजनके वैदिक मन्त्र और					

ॐ नमो भगवते श्रीनृसिंहाय नमः

श्रीनरसिंहपुराण

पहला अध्याय

प्रथागमें ऋषियोंका समागम; सूतजीके प्रति भरद्वाजजीका प्रश्न;
सूतजीद्वारा कथारम्भ और सृष्टिक्रमका वर्णन

॥ श्रीलक्ष्मीनृसिंहाय नमः ॥ श्रीवेदव्यासाय नमः ॥
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १

तस्माटककेशान्तञ्चलत्पावकलोचनं ।
वत्राधिकनखस्पर्शं दिव्यसिंहं नमोऽस्तु ते ॥ २

पान्तु यो नरसिंहस्य नखलाङ्गुलकोटयः ।
हिरण्यकशिपोर्वक्षःक्षेत्रासृक्कर्दमारुणाः ॥ ३

हिमबद्वासिनः सर्वे मुनयो वेदपारगाः ।
त्रिकालज्ञा महात्मानो नैमित्यारण्यवासिनः ॥ ४

ये अर्बुदारण्यनिरताः पुष्करारण्यवासिनः ।
महेन्द्राद्विरता ये च ये च विन्ध्यनिवासिनः ॥ ५

धर्मारण्यरता ये च दण्डकारण्यवासिनः ।
श्रीशैलनिरता ये च कुरुक्षेत्रनिवासिनः ॥ ६

कौमारपर्वते ये च ये च पम्पानिवासिनः ।
एते चान्ये च बहवः सशिष्या मुनयोऽमलाः ॥ ७

माघमासे प्रथागं तु स्नातुं तीर्थी समागताः ।
तत्र स्नात्वा यथान्यायं कृत्वा कर्म जपादिकम् ॥ ८

अन्तर्यामी भगवान् नारायण (श्रीकृष्ण) उनके सखा नरशेष्ठ नर (अर्जुन) तथा इनकी लीला प्रकट करनेवाली सरस्वती देवीको नमस्कार करनेके पक्षात् 'जय' (इतिहास-पुराण)-का याठ करे ॥ १ ॥

दिव्य सिंह ! तपाये हुए मुबर्णके समान पीले केशोंके भीतर प्रञ्चलित अग्निकी भाँति आपके नेत्र देदीप्यमान हो रहे हैं तथा आपके नखोंका स्पर्श बज्रसे भी अधिक कठोर है, इस प्रकार अमित प्रभावशाली आप परमेश्वरको मेरा नमस्कार है। भगवान् नृसिंहके नखरूपी हलके अग्रभाग, जो हिरण्यकशिपु नामक दैत्यके वक्षःस्थलरूपी खेतकी रकमयी कीचड़के लगनेसे लाल हो गये हैं, आप लोगोंकी रक्षा करें ॥ २-३ ॥

एक समय हिमालयकी घाटियोंमें रहनेवाले, वेदोंके पारगामी एवं त्रिकालवेता समस्त महात्मा मुनिगण नैमित्यारण्य, अर्बुदारण्य और पुष्करारण्यके निवासी मुनि, महेन्द्र पर्वत और विन्ध्यगिरिके निवासी ऋषि, धर्मारण्य, दण्डकारण्य, श्रीशैल और कुरुक्षेत्रमें वास करनेवाले मुनि तथा कुमार पर्वत एवं पम्पासरके निवासी ऋषि-ये तथा अन्य भी बहुत-से शुद्ध इदयवाले महर्षिगण अपने शिष्योंके साथ माघके महीनेमें स्नान करनेके लिये प्रथाग-तीर्थमें आये ॥ ४-७ ॥

बहाँपर यथोचित रीतिसे स्नान और जप आदि करके

नत्वा तु पाधवं देवं कृत्वा च पितृतर्पणम्।
द्वाष्टा तत्र भरद्वाजं पुण्यतीर्थनिवासिनम्॥ ९
तं पूजयित्वा विधिवत्तेनैव च सुपूजिताः।
आसनेषु विचित्रेषु वृष्णादिषु यथाक्रमम्॥ १०
भरद्वाजेन दत्तेषु आसीनास्ते तपोधनाः।
कृष्णाश्रिताः कथाः सर्वे परस्परमधान्नुवन्॥ ११
कथान्तेषु ततस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम्।
आजगाम महातेजास्तत्र सूतो महामतिः॥ १२
व्यासशिष्यः पुराणज्ञो लोमहर्षणसंज्ञकः।
तान् प्रणाप्य यथान्यायं स च तैश्चापि पूजितः॥ १३
उपविष्टो यथायोग्यं भरद्वाजमतेन सः।
व्यासशिष्यं सुखासीनं ततस्ते लोमहर्षणम्।
स प्रच्छ भरद्वाजो मुनीनामग्रतस्तदा॥ १४

भरद्वाज उवाच

शौनकस्य महासत्रे बाराहाख्या तु संहिता।
त्वत्तः श्रुता पुरा सूत एतैरस्माभिरेव च॥ १५
साप्ततं नारसिंहाख्यां त्वत्तः पौराणसंहिताम्।
श्रोतुमिच्छाम्यहं सूत श्रोतुकामा इमे स्थिताः॥ १६
अतस्त्वां परिपृच्छामि प्रश्नमेतं महामुने।
ऋषीणामग्रतः सूत प्रातहृषां महात्मनाम्॥ १७
कुत एतत् समुत्पन्नं केन वा परिपाल्यते।
कस्मिन् वा लयमध्येति जगदेतच्चराचरम्॥ १८
किं प्रमाणं च वै भूमेर्नुसिंहः केन तुष्यति।
कर्मणा तु महाभाग तम्ये द्वूहि महामते॥ १९
कथं च सृष्टेरादिः स्यादवसानं कथं भवेत्।
कथं युगस्य गणना किं वा स्यात्तु चतुर्युगम्॥ २०
को वा विशेषस्तेष्वत्र का वावस्था कली युगे।
कथमाराध्यते देवो नरसिंहोऽप्यमानुषेः॥ २१
क्षेत्राणि कानि पुण्यानि के च पुण्याः शिलोच्चवाः।
नद्यश्च काः पराः पुण्या नृणां पापहराः शुभाः॥ २२

उन्होंने भगवान् वेणीमाधवको नमस्कार किया; फिर पितरोंका तर्पण करके उस पावन तीर्थके निवासी भरद्वाज मुनिका दर्शन किया। वहाँ उन ऋषियोंने भरद्वाजजीका भलीभौति पूजन किया और स्वयं भी भरद्वाजजीके द्वारा पूजित हुए। तत्पश्चात् वे सभी तपोधन भरद्वाज मुनिके दिये हुए वृषी* आदि विचित्र आसनोंपर विराजमान हुए और परस्पर भगवान् श्रीकृष्णसे सम्बन्ध रखनेवाली कथाएँ कहने लगे। उन शुद्ध अन्तःकरणवाले मुनियोंकी कथा हो ही रही थी कि व्यासजीके शिष्य लोमहर्षण नामक सूतजी वहाँ आ पहुँचे। वे अत्यन्त तेजस्वी, परम बुद्धिमान् और पुराणोंके विद्वान् थे। सूतजीने वहाँ बैठे हुए सभी ऋषियोंको यथोचित विधिसे प्रणाम किया और स्वयं भी उनके द्वारा सम्मानित हुए। फिर भरद्वाजजीकी अनुमतिसे वे यथायोग्य आसनपर बैठे। इस प्रकार जब वे सुखपूर्वक विराजमान हुए, तब उस समय उन व्यासशिष्य लोमहर्षणजीसे भरद्वाजजीने सभी मुनियोंके समक्ष यह प्रश्न किया॥ ८—१४॥

भरद्वाजजी बोले—सूतजी! पूर्वकालमें शौनकजीके महान् यज्ञमें हम सभी लोगोंने आपसे 'बाराह-संहिता' सुनी थी। अब हम 'नरसिंहपुराण' की संहिता सुनना चाहते हैं तथा ये ऋषि लोग भी उसे ही सुननेके लिये यहाँ उपस्थित हैं। अतः महामुने सूतजी! आज प्रातःकाल इन महात्मा मुनियोंके समक्ष हम आपसे ये प्रश्न पूछते हैं—'यह चराचर जगत् कहाँसे उत्पन्न हुआ है? कौन इसको रक्षा करता है? अथवा किसमें इसका लय होता है? महाभाग! इस भूमिका प्रमाण क्या है तथा महामते! भगवान् नृसिंह किस कर्मसे संतुष्ट होते हैं—यह हमें बताइये। सृष्टिका आरम्भ कैसे हुआ? उसका अवसान (अन्त) किस प्रकार होता है? युगोंकी गणना कैसे होती है? चतुर्युगका स्वरूप क्या है? उन चारों युगोंमें क्या अन्तर होता है? कलियुगमें लोगोंकी क्या अवस्था होती है? तथा देवतालोग भगवान् नरसिंहकी किस प्रकार आराधना करते हैं? पुण्यक्षेत्र कौन-कौन हैं? पावन पर्वत कौन-से हैं? और मनुष्योंके पापोंको हर लेनेवाली परम पावन एवं उत्तम नदियाँ कौन-कौन-सी हैं?

* चतुरप्रश्नण पुरुषके लिये कुशका बना हुआ एक विशेष प्रकारका आसन।

देवादीनां कथं सृष्टिर्मोर्मन्वन्तरस्य तु।
तथा विद्याधरादीनां सृष्टिरादौ कथं भवेत्॥ २३
यज्ञानः के च राजानः के च सिद्धिं परां गताः।
एतत्सर्वं महाभाग कथयस्व यथाक्रमम्॥ २४

सूत उकाच

व्यासप्रसादाज्ञानामि पुराणानि तपोधनाः।
तं प्रणम्य प्रवक्ष्यामि पुराणं नारसिंहकम्॥ २५
पाराशर्यं परमपुरुषं विशुद्देवैकयोनिं
विद्यावनं विपुलमतिदं वेदवेदाङ्गवेद्यम्।
शशुच्छान्तं शमितविषयं शुद्धतेजो विशालं
वेदव्यासं विगतशमलं सर्वदाहुं नमामि॥ २६

नमो भगवते तस्मै व्यासायामिततेजसे।
यस्य प्रसादाद्वक्ष्यामि वासुदेवकथामिमाम्॥ २७
सुनिर्णीतो महान् प्रश्नस्त्वया यः परिकीर्तिः।
विष्णुप्रसादेन विना वक्तुं केनापि शक्यते॥ २८
तथापि नरसिंहस्य प्रसादादेव तेऽधुना।
प्रवक्ष्यामि महापुण्यं भारद्वाज शृणुच्च मे॥ २९
शृणवन्तु मुनयः सर्वे सशिष्यास्त्वत्र ये स्थिताः।
पुराणं नरसिंहस्य प्रवक्ष्यामि यथातथा॥ ३०

नारायणादिदं सर्वं समुत्पन्नं चराचरम्।
तेनैव पाल्यते सर्वं नरसिंहादिमूर्तिभिः॥ ३१
तथैव लीयते चान्ते हरौ ज्योतिःस्वरूपिणि।
यथैव देवः सृजति तथा वक्ष्यामि तच्छृणु॥ ३२
पुराणानां हि सर्वेषामर्यं साधारणः स्मृतः।
श्लोको यस्तं मुने श्रुत्वा निःशेषं त्वं ततः शृणु॥ ३३
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥ ३४
आदिसर्गोऽनुसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव वक्ष्याम्यनुसमाप्तः॥ ३५

देवताओंकी सृष्टि कैसे हुई? मनु, मन्वन्तर एवं विद्याधर आदिको सृष्टि किस प्रकार होती है? कौन-कौन राजा यज्ञ करनेवाले हुए हैं और किस-किसने परम उत्तम सिद्धि प्राप्त की है?' महाभाग! ये सारी बातें आप क्रमशः बताइये॥ १५—२४॥

सूतजी बोले—तपोधनो! मैं जिन गुरुदेव व्यासजीके प्रसादसे पुराणोंका ज्ञान प्राप्त कर सका हूँ, उनकी भक्तिपूर्वक वन्दना करके आपलोगोंसे नरसिंहपुराणकी कथा कहना आरम्भ करता हूँ। जो समस्त देवताओंके एकमात्र कारण और वेदों तथा उनके छहों अङ्गोंद्वारा जाननेयोग्य परम पुरुष विष्णुके स्वरूप हैं; जो विद्यावान्, विमल बुद्धिदाता, नित्य शान्त, विषयकामनाशून्य और पापरहित हैं, उन विशुद्ध तेजोमय महात्मा पराशरनन्दन वेदव्यासजीको मैं सदा प्रणाम करता हूँ। उन अमित तेजस्वी भगवान् व्यासजीको नमस्कार है, जिनकी कृपासे मैं भगवान् वासुदेवकी इस कथाको कह सकूँगा। मुनिगण! आपलोगोंने भलीभांति विचार करके मुझसे जो महान् प्रश्न पूछे हैं, उनका उत्तर भगवान् विष्णुकी कृपा हुए बिना कौन बतला सकता है? तथापि भरहाजजी! भगवान् नरसिंहकी कृपाके बलसे ही आपके प्रश्नोंके उत्तरमें अत्यन्त पवित्र नरसिंहपुराणकी कथा आरम्भ करता हूँ। आप ध्यानसे सुनें। अपने शिष्योंके साथ जो-जो मुनि यहाँ उपस्थित हैं, वे सब तोग भी सावधान होकर सुनें। मैं सभीको यथावत् रूपसे नरसिंहपुराणकी कथा सुनाता हूँ॥ २५—३०॥

यह समस्त चराचर जगत् भगवान् नारायणसे ही उत्पन्न हुआ और वे ही नरसिंहादि रूपोंसे सबका पालन करते हैं। इसी प्रकार अन्तमें यह जगत् उन्हीं ज्योतिःस्वरूप भगवान् विष्णुमें लीन हो जाता है। भगवान् जिस प्रकार सृष्टि करते हैं, उसे मैं बतलाता हूँ, आप सुनें। सृष्टिकी कथा पुराणोंमें ही विस्तारके साथ वर्णित है, अतः पुराणोंका लक्षण बतानेके लिये यह एक श्लोक साधारणतया सभी पुराणोंमें कहा गया है। मुने! इस श्लोकको पहले सुनकर फिर सारी बातें सुनियेगा। यह श्लोक इस प्रकार है—सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—इन्हीं पांच लक्षणोंसे युक्त 'पुराण' होता है। आदिसर्ग, अनुसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—इन सबका मैं क्रमशः संक्षिप्तरूपसे वर्णन करता हूँ॥ ३१—३५॥

आदिसर्गो महांस्तावत् कथयिष्यामि वै द्विजाः ।
यस्मादादारभ्य देवानां राज्ञां चरितमेव च ॥ ३६
ज्ञायते सरहस्यं च परमात्मा सनातनः ।
प्राक्मृष्टे प्रलयादूर्ध्वं नासीत् किंचिद्द्विजोत्तम ॥ ३७
ब्रह्मसंज्ञमभूदेकं ज्योतिष्मत्सर्वकारणम् ।
नित्यं निरञ्जनं शान्तं निर्गुणं नित्यनिर्मलम् ॥ ३८
आनन्दसागरं स्वच्छं यं काङ्क्षन्ति मुमुक्षवः ।
सर्वज्ञं ज्ञानरूपत्वादनन्तमजमव्ययम् ॥ ३९
सर्गकाले तु सम्प्राप्ते ज्ञात्वाऽसौ ज्ञातुनायकः ।
अन्तर्लीनं विकारं च तत्त्वष्टुमुपचक्रमे ॥ ४०
तस्मात् प्रधानमुद्भूतं ततश्चापि महानभूत् ।
सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्च त्रिधा महान् ॥ ४१
वैकारिकसैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः ।
त्रिविधोऽयमहंकारो महत्तत्त्वादजायत ॥ ४२
यथा प्रधानं हि महान् महता स तथाऽऽवृतः ।
भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दतन्मात्रकं ततः ॥ ४३
ससर्ज शब्दतन्मात्रादाकाशं शब्दलक्षणम् ।
शब्दमात्रं तथाऽऽकाशं भूतादिः स समावृणोत् ॥ ४४
आकाशस्तु विकुर्वाणः स्पर्शमात्रं ससर्ज ह ।
बलवानभवद्वायुस्तस्य स्पर्शो गुणो मतः ॥ ४५
आकाशं शब्दतन्मात्रं स्पर्शमात्रं तथाऽऽवृणोत् ।
ततो वायुर्विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज ह ॥ ४६
ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्वूपगुणमुच्यते ।
स्पर्शमात्रं तु वै वायू रूपमात्रं समावृणोत् ॥ ४७
ज्योतिश्चापि विकुर्वाणं रसमात्रं ससर्ज ह ।
सम्भवन्ति ततोऽप्यांसि रसाधारणि तानि तु ॥ ४८

द्विजगण ! आदिसर्ग महान् है, अतः पहले मैं उसीका वर्णन करता हूँ। वहाँसे सृष्टिका वर्णन आरम्भ करनेपर देवताओं और राजाओंके चरित्रोंका तथा सनातन परमात्माके तत्त्वका भी रहस्यसहित ज्ञान हो जाता है। द्विजोत्तम ! सृष्टिके पहले महाप्रलय होनेके बाद (परब्रह्मके सिवा) कुछ भी शेष नहीं था। उस समय एकमात्र 'ब्रह्म' नामक तत्त्व ही विद्यमान था, जो परम प्रकाशमय और सबका कारण है। वह नित्य, निरञ्जन, शान्त, निर्गुण एवं सदा ही दीपरहित है। मुमुक्षु पुरुष विशुद्ध आनन्द-महासागर परमेश्वरकी अभिलाषा किया करते हैं। वह ज्ञानस्वरूप होनेके कारण सर्वज्ञ, अनन्त, अजन्मा और अव्यय (अविकारी) है। सृष्टि-रचनाका समय आनेपर उसी ज्ञानीश्वर परब्रह्मने जगत्को अपनेमें लौंग जानकर पुनः उसकी सृष्टि आरम्भ की ॥ ३६—४८ ॥

उस ब्रह्मसे प्रधान (मूलप्रकृति)-का आविर्भाव हुआ। प्रधानसे महत्तत्त्व प्रकट हुआ। सात्त्विक, राजस और तामस-भेदसे महत्तत्त्व तीन प्रकारका है। महत्तत्त्वसे वैकारिक (सात्त्विक), तैजस (राजस) और भूतादिरूप (तामस) — इन तीन भेदोंसे युक्त अहंकार उत्पन्न हुआ। जिस प्रकार प्रधानसे महत्तत्त्व आवृत है, उसी प्रकार महत्तत्त्वसे अहंकार भी व्याप्त है। तदनन्तर 'भूतादि' नामक तामस अहंकारने विकृत होकर शब्दतन्मात्राकी सृष्टि की और उससे 'शब्द' गुणवाला आकाश उत्पन्न हुआ। तब उस भूतादिने शब्द गुणवाले आकाशको आवृत किया। आकाशने भी विकृत होकर स्पर्शतन्मात्राकी सृष्टि की। उससे बलवान् वायुको उत्पत्ति हुई। वायुका गुण स्पर्श माना गया है। फिर शब्द गुणवाले आकाशने 'स्पर्श' गुणवाले वायुको आवृत किया। तत्पश्चात् वायुने विकृत होकर रूपतन्मात्राकी सृष्टि की। उससे ज्योतिर्मय अग्निका प्रादुर्भाव हुआ। ज्योतिका गुण 'रूप' कहा गया है। फिर स्पर्शतन्मात्रारूप वायुने रूपतन्मात्रावाले तेजको आवृत किया। तब तेजने विकृत होकर रस-तन्मात्राको सृष्टि की। उससे रस गुणवाला जल प्रकट

रसमात्राणि चाम्भांसि रूपमात्रं समावृणोत् ।
विकुर्वाणानि चाम्भांसि गन्धमात्रं ससर्जिरे ॥ ४९

तस्माजाता मही चेयं सर्वभूतगुणाधिका ।
संघातो जायते तस्मात्तस्य गन्धगुणो मतः ॥ ५०

तस्मिस्तस्मिस्तु तन्मात्रा तेन तन्मात्रता स्मृता ।
तन्मात्राणयविशेषाणि विशेषाः क्रमशोपराः ॥ ५१

भूततन्मात्रसर्गोऽवमहंकारात् तामसात् ।
कीर्तितस्ते समासेन भरद्वाज मया तव ॥ ५२

तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवा वैकारिका दश ।
एकादशं मनश्चात्र कीर्तिं तत्र चिन्तकैः ॥ ५३

बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चात्र पञ्च कर्मन्द्रियाणि च ।
तानि ब्रह्म्याभि तेषां च कर्माणि कुलपावन ॥ ५४

श्रवणे च दृशी जिह्वा नासिका त्वक् च पञ्चमी ।
शब्दादिज्ञानसिद्ध्यर्थं बुद्धियुक्तानि पञ्च वै ॥ ५५

पायूपस्थे हस्तपादौ वाग् भरद्वाज पञ्चमी ।
विसर्गानन्दशिल्पी च गत्युक्ती कर्मं तत्स्मृतम् ॥ ५६

आकाशवायुतेजांसि सलिलं पृथिवी तथा ।
शब्दादिभिर्गुणविप्र संयुक्तान्युत्तरोत्तरैः ॥ ५७

नानावीर्याः पृथग्भूतास्ततस्ते संहतिं विना ।
नाशकनुवन् प्रजां स्त्राषुमसमागम्य कृतज्ञाशः ॥ ५८

समेत्यान्योन्यसंयोगं परस्परसमाश्रयात् ।
एकसंघातलक्ष्याश्च सम्प्राप्यैक्यमशेषतः ॥ ५९

पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च प्रधानानुग्रहेण च ।
महदाद्या विशेषान्तास्त्वपद्मुत्पादयन्ति ते ॥ ६०

हुआ । रूप गुणवाले तेजने रस गुणवाले जलको आवृत किया । तब जलने विकारको प्राप्त होकर गन्ध-तन्मात्राकी सृष्टि की । उससे यह पृथिवी उत्पन्न हुई जो आकाशादि सभी भूतोंसे गुणोंसे युक्त होनेके कारण उनसे अधिक गुणवाली है । गन्धतन्मात्रारूप पार्थिवतत्वसे ही स्थूल पिण्डकी उत्पत्ति होती है । पृथिवीका गुण 'गन्ध' है । उन-उन आकाशादि भूतोंमें तन्मात्राएँ हैं अर्थात् केवल उनके गुण शब्द आदि ही हैं । इसलिये वे तन्मात्रा (गुण) रूप ही कहे गये हैं । तन्मात्राएँ अविशेष कही गयी हैं; क्योंकि उनमें 'अमुक तन्मात्रा आकाशकी है और अमुक वायुकी' इसका ज्ञान करनेवाला कोई विशेष भेद (अन्तर) नहीं होता । किंतु उन तन्मात्राओंसे प्रकट हुए आकाशादि भूत क्रमशः विशेष (भेद)-युक्त होते हैं । इसलिये उनको 'विशेष' संज्ञा है । भरद्वाजजी ! तामस अहंकारसे होनेवाली यह पञ्चभूतों और तन्मात्राओंकी सृष्टि मैंने आपसे धोड़ेमें कह दी ॥ ४१—५२ ॥

सृष्टि-तत्त्वपर विचार करनेवाले विद्वानोंने इन्द्रियोंको तैजस अहंकारसे उत्पन्न बतलाया है और उनके अभिमानी दस देवताओं तथा ग्यारहवें मनको वैकारिक अहंकारसे उत्पन्न कहा है । कुलको पवित्र करनेवाले भरद्वाजजी ! इन इन्द्रियोंमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं । अब मैं उन सम्पूर्ण इन्द्रियों तथा उनके कर्मोंका वर्णन कर रहा हूँ । कान, नेत्र, जिह्वा, नाक और पाँचवीं त्वचा—ये पाँच 'ज्ञानेन्द्रियाँ' कही गयी हैं, जो शब्द आदि विषयोंका ज्ञान करनेके लिये हैं । तथा पायु (गुदा), उपस्थ (लिङ्ग), हाथ, पाँच और चाकू-इन्द्रिय—ये 'कर्मेन्द्रियाँ' कहलाती हैं । विसर्ग (मल-त्याग), आनन्द (मैथुनजनित सुख), शिल्प (हाथकी कला), गमन और बोलना—ये ही क्रमशः इन कर्मेन्द्रियोंके पाँच कर्म कहे गये हैं ॥ ५३—५६ ॥

विप्र ! आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी—ये पाँच भूत क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन गुणोंसे उत्तरोत्तर युक्त हैं, अर्थात् आकाशमें एकमात्र शब्द गुण है, वायुमें शब्द और स्पर्श दो गुण हैं, तेजमें शब्द, स्पर्श और रूप तीन गुण हैं, इसी प्रकार जलमें चार और पृथिवीमें पाँच गुण हैं । ये पञ्चभूत अलग-अलग भिन्न-भिन्न प्रकारकी शक्तियोंसे युक्त हैं । अतः परस्पर पूर्णतया मिले विना ये सृष्टि-रचना नहीं कर सके । तब एक ही संघातको उत्पन्न करना जिनका लक्ष्य है, उन महत्त्वसे लेकर पञ्चभूतपर्यन्त सभी विकारोंने पुरुषसे अधिष्ठित होनेके कारण परस्पर मिलकर

तत्क्रमेण विवृद्धं तु जलबुद्बुदवत् स्थितम्।
भूतेभ्योऽण्डं महाबुद्धे ब्रह्मतदुदकेशायम्॥ ६१

प्राकृतं ब्रह्मस्वरूपस्य विष्णोः स्थानमनुजमम्।
तत्राव्यक्तस्वरूपोऽसौ विष्णुर्विश्वेश्वरः प्रभुः॥ ६२

ब्रह्मस्वरूपमास्थाय स्वयमेव व्यवस्थितः।
मेरुरुल्चमभूतस्य जरायुश्च महीधराः।
गर्भोदकं समुद्राश्च तस्याभूवन् महात्मनः॥ ६३

अद्विदीपसमुद्राश्च सञ्ज्ञोतिलोकसंग्रहः।
तस्मिन्नण्डेऽभवत्सर्वे सदेवासुरमानुषम्॥ ६४

रजोगुणयुतो देवः स्वयमेव हरिः परः।
ब्रह्मस्वरूपं समास्थाय जगत्सृष्टी प्रवर्तते॥ ६५

सृष्टे च पात्यनुयुगं यावत्कल्पविकल्पना।
नरसिंहादिरूपेण रुद्ररूपेण संहरेत्॥ ६६

ब्रह्मेण	रूपेण	सृजत्यनन्तो
जगत्समस्तं		परिपातुमिच्छन्।
रामादिरूपं	स तु गृह्य पाति	
भूत्वाद्य रुद्रः	प्रकरोति नाशम्॥ ६७	

इति श्रीनरसिंहपुराणे 'सर्गानिरूपणं' नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'सर्गका निरूपण' विषयका पहला अध्याय पूरा हुआ॥ १ ॥

एक-दूसरेका आश्रय ले, सर्वधा एकरूपताको प्राप्त हो, प्रधानतत्त्वके अनुग्रहसे एक अण्डकी उत्पत्ति की। वह अण्ड क्रमशः बढ़ा होकर जलके ऊपर बुलबुलेके समान स्थित हुआ। महाबुद्धे! समस्त भूतोंसे प्रकट हो जलपर स्थित हुआ। वह महान् प्राकृत अण्ड ब्रह्मा (हिरण्यगर्भ)-रूप भगवान् विष्णुका अत्यन्त उत्तम आधार हुआ। उसमें वे अव्यक्तस्वरूप जगादीश्वर भगवान् विष्णु स्वयं ही हिरण्यगर्भरूपसे विश्वजमान हुए। उस समय सुमेरु पर्वत उन महात्मा भगवान् हिरण्यगर्भका उल्ब (गर्भको हँकनेवाली शिल्पी) था। अन्यान्य पर्वत जरायुज (गर्भशिल्प) थे और समुद्र ही गर्भशिल्पके जल थे॥ ५७—६३॥

पर्वत, द्वीप, समुद्र और ग्रह-ताराओंसहित समस्त लोक तथा देवता, असुर और मनुष्यादि प्राणी सभी उस अण्डसे ही प्रकट हुए हैं। परमेश्वर भगवान् विष्णु स्वयं ही रजोगुणसे युक्त ब्रह्माका स्वरूप धारणकर संसारकी सृष्टिमें प्रवृत्त होते हैं। जबतक कल्पकी सृष्टि रहती है, तबतक वे ही नरसिंहादिरूपसे प्रत्येक युगमें अपने रचे हुए इस जगत्की रक्षा करते हैं और कल्पानामें रुद्ररूपसे इसका संहार कर लेते हैं। भगवान् अनन्त स्वयं ही ब्रह्मस्वरूपसे सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करते हैं, फिर इसके पालनकी इच्छासे रामादि अवतार धारणकर इसकी रक्षा करते हैं और अनन्तमें रुद्ररूप होकर समस्त जगत्का नाश कर देते हैं॥ ६४—६७॥

दूसरा अध्याय

ब्रह्मा आदिकी आयु और कालका स्वरूप

सूत उवाच

ब्रह्मा भूत्वा जगत्सृष्टी नरसिंहः प्रवर्तते।
यथा ते कथयिष्यामि भरद्वाज निबोध मे॥ १

नारायणाख्यो भगवान् ब्रह्मलोकपितामहः।
उत्पन्नः प्रोच्यते विद्वन् नित्योऽसावुपचारतः॥ २

निजेन तस्य मानेन आयुर्बर्षशतं स्मृतम्।
तत्पराख्यं तदर्थं च परार्थमभिधीयते॥ ३

सूतजी कहते हैं— भरद्वाज! भगवान् नरसिंह जिस प्रकार ब्रह्मा होकर जगत्की सृष्टिके कार्यमें प्रवृत्त होते हैं, उसका मैं आपसे वर्णन करता हूँ, सुनिये। विद्वन् 'नारायण' नामसे प्रसिद्ध लोकपितामह भगवान् ब्रह्मा नित्य—सनातन पुरुष हैं, तथापि वे 'उत्पन्न हुए हैं'—ऐसा उपचारसे कहा जाता है। उनके अपने परिमाणसे उनकी आयु सौ वर्षकी बतायी जाती है। उस सौ वर्षका नाम 'पर' है। उसका आधा 'परार्थ' कहलाता है। निष्पाप

कालस्वरूपं विष्णोश्च यन्मयोक्तं तवानघ ।
तेन तस्य निबोध त्वं परिमाणोपपादनम् ॥ ४
अन्येषां चैव भूतानां चरणामचराश्च ये ।
भूभूभृत्सागरादीनामशेषाणां च सत्तम् ॥ ५
संख्याज्ञानं च ते वच्चिम मनुष्याणां निबोध मे ।
अष्टादश निमेषास्तु काष्ठेका परिकीर्तिता ॥ ६
काष्ठास्त्रिंशत्कला ज्ञेया कलास्त्रिंशन्मुहूर्तकम् ।
त्रिंशत्संख्यैरहोरात्रं मुहूर्तमानुषं स्मृतम् ॥ ७
अहोरात्राणि तावन्ति मासपक्षद्वयात्मकः ।
तैः पद्मभिरयनं मासैर्द्वैऽयने दक्षिणोत्तरे ॥ ८
अयनं दक्षिणं रात्रिर्द्वानामुत्तरं दिनम् ।
अयनद्वितयं वर्षं मत्यानामिह कीर्तितम् ॥ ९
नृणां मासः पितृणां तु अहोरात्रमुदाहृतम् ।
बस्वादीनामहोरात्रं मानुषो वत्सरः स्मृतः ॥ १०
दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु युगं त्रेतादिसंज्ञितम् ।
चतुर्युगं द्वादशभिस्तद्विभागं निबोध मे ॥ ११
चत्वारि त्रीणि ह्यैकं कृतादिषु यथाक्रमम् ।
दिव्याद्वानां सहस्राणि युगोऽव्याहुः पुराविदः ॥ १२
तत्प्रमाणैः शतैः संध्या पूर्वा तत्र विधीयते ।
संध्यांशकक्ष ततुल्यो युगस्यानन्तरो हि सः ॥ १३
संध्यासंध्यांशयोर्मध्ये यः कालो वर्तते द्विज ।
युगाख्यः स तु विज्ञेयः कृतत्रेतादिसंज्ञकः ॥ १४
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चेति चतुर्युगम् ।
प्रौच्यते तत्सहस्रं तु ब्रह्मणो दिवसं द्विज ॥ १५
ब्रह्मणो दिवसे ब्रह्मन् मनवस्तु चतुर्दशा ।
भवन्ति परिमाणं च तेषां कालकृतं शृणु ॥ १६
सप्तर्षयस्तु शक्रोऽथ मनुस्तसूनवोऽपि ये ।
एककालं हि सृज्यन्ते संहित्यन्ते च पूर्ववत् ॥ १७
चतुर्युगानां संख्या च साधिका ह्येकसप्ततिः ।
मन्वन्तरं मनोः कालः शक्रादीनामपि द्विज ॥ १८

महर्षे ! साधुशिरोमणे ! मैंने तुमसे भगवान् विष्णुके जिस कालस्वरूपका वर्णन किया था, उसीके द्वाया उस ब्रह्माकी तथा दूसरे भी जो पृथ्वी, पर्वत और समुद्र आदि पदार्थ एवं चराचर जीव हैं, उनकी आयुका परिमाण नियत किया जाता है। अब मैं आपसे मनुष्योंको 'काल-गणना' का ज्ञान बता रहा हूँ, सुनिये ॥ ८—९ ॥

अठारह निमेषोंको एक 'काष्ठा' कही गयी है, तीस काष्ठाओंको एक 'कला' समझनी चाहिये तथा तीस कलाओंका एक 'मुहूर्त' होता है। तीस मुहूर्तोंका एक मानव 'दिन-रात' माना गया है। उतने ही (तीस ही) दिन-रात मिलकर एक 'मास' होता है। इसमें दो यक्ष होते हैं। छः महीनोंका एक 'अयन' होता है। अयन दो हैं—'दक्षिणायन' और 'उत्तरायण'। दक्षिणायन देवताओंको रात्रि है और उत्तरायण दिन। दो अयन मिलकर मनुष्योंका एक 'वर्ष' कहा गया है। मनुष्योंका एक मास पितरोंका एक दिन-रात बताया गया है और मनुष्योंका एक वर्ष बसु आदि देवताओंका एक दिन-रात कहा गया है। देवताओंके बारह हजार वर्षोंका त्रेता आदि नामक चतुर्युग होता है। उसका विभाग आपलोग मुझसे समझ लें ॥ ६—११ ॥

पुराण-तत्त्ववेत्ताओंने कृत आदि युगोंका परिमाण क्रमशः चार, तीन, दो और एक हजार दिव्य वर्ष बतलाया है। ब्रह्मन् ! प्रत्येक युगके पूर्व उतने ही सौ वर्षोंकी 'संध्या' कही गयी है और युगके पीछे उतने ही परिमाणवाले 'संध्यांश' होते हैं। विष्र ! संध्या और संध्यांशके थीचका जो काल है, उसे सत्ययुग और त्रेता आदि नामोंसे प्रसिद्ध युग समझना चाहिये। 'सत्ययुग', 'त्रेता', 'द्वापर' और 'कलि'—ये चार युग मिलकर 'चतुर्युग' कहलाते हैं। द्विज ! एक हजार चतुर्युग मिलकर 'ब्रह्माका एक दिन' होता है। ब्रह्मन् ! ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु होते हैं। उनका कालकृत परिमाण सुनिये। सप्तर्षि, इन्द्र, मनु और मनु-पुत्र—ये पूर्व कल्पानुसार एक ही समय उत्पन्न किये जाते हैं तथा इनका संहार भी एक ही साथ होता है। ब्रह्मन् ! इकहत्तर चतुर्युगसे कुछ अधिक काल एक 'मन्वन्तर' कहलाता है। यही मनु तथा इन्द्रादि देवोंका

अष्टौ शतसहस्राणि दिव्यया संख्यया स्मृतः ।
द्विपञ्चाशतथान्यानि सहस्राण्यधिकानि तु ॥ १९
त्रिशत्कोट्यस्तु सम्पूर्णाः संख्याताः संख्यया द्विज ।
सप्तशत्कोट्यस्तु नियुतानि महामुने ॥ २०
विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयमधिकं विना ।
मन्वन्तरस्य संख्येयं मानुषैर्वर्त्तमैर्द्विज ॥ २१
चतुर्दशगुणो ह्येष कालो ब्राह्मणः स्मृतम् ।
विश्वस्यादौ सुमनसा सुष्टु देवांस्तथा पितृन् ॥ २२
गच्छवान् राक्षसान् यक्षान् पिशाचान् गृह्णकांस्तथा ।
ऋषीन् विद्याधरांश्चैव मनुव्यांश्च पशुस्तथा ॥ २३
पक्षिणः स्थावरांश्चैव पिपीलिकभुजंगमान् ।
चातुर्वर्णं तथा सुष्टु नियुन्याध्वरकर्मणि ॥ २४
पुनर्दिनान्ते त्रैलोक्यमुपसंहृत्य स प्रभुः ।
शोते चानन्तशायने तावनीं रात्रिमव्ययः ॥ २५
तस्यान्ते भून्महान्कल्पो ब्राह्म इत्यभिविश्रुतः ।
यस्मिन् मत्स्यावतारो भून्मथनं च महोदधेः ॥ २६
तद्वद्वाहकल्पश्च तृतीयः परिकल्पितः ।
यत्र विष्णुः स्वयं प्रीत्या वाराहं वपुराश्रितः ।
उद्धर्तुं वसुधां देवीं स्तूयमानो महर्षिभिः ॥ २७
सुष्टु जगद्व्योमचराप्रमेयः
प्रजाश्च सुष्टु सकलास्तथेशः ।
नैमित्तिकाख्ये प्रलये सप्तस्तं
संहृत्य शोते हरिरादिदेवः ॥ २८

इति श्रीनरसिंहपुराणे सर्वचनायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'सृष्टिरचनाविषयक' दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

काल है। इस प्रकार दिव्य वर्ष-गणनाके अनुसार यह मन्वन्तर आठ लाख वावन हजार वर्षोंका समय कहा गया है। महामुने! द्विजवर! मानवीय वर्ष-गणनाके अनुसार पूरे तीस करोड़ सरसठ लाख वीस हजार वर्षोंका काल एक मन्वन्तरका परिमाण है, इससे अधिक नहीं ॥ १२—२१ ॥

इस कालका चौदह गुना ब्रह्माका एक दिन होता है। ब्रह्माजीने विश्व-सृष्टिके आदिकालमें प्रसन्न मनसे देवताओं तथा पितरोंकी सृष्टि करके गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, पिशाच, गृह्णक, ऋषि, विद्याधर, मनुष्य, पशु, पक्षी, स्थावर (वृक्ष, पर्वत आदि), पिपीलिका (चीटी) और सौंपोंकी रचना की है। फिर चारों वर्षोंकी सृष्टि करके वे उन्हें यज्ञकर्ममें नियुक्त करते हैं। तत्पश्चात् दिन बीतनेपर वे अविनाशी प्रभु त्रिभुवनका उपसंहार करके दिनके ही बराबर परिमाणबाली रात्रिमें शोषनागकी शव्यापर सोते हैं। उस रात्रिके बीतनेपर 'ब्राह्म' नामक विष्ण्यात महाकल्प हुआ, जिसमें भगवान्का मत्स्यावतार और समुद्र-मन्थन हुआ। इस ब्राह्म-कल्पके ही समान तीसरा 'वाराह-कल्प' हुआ, जिसमें कि भगवती वसुंधरा (पृथ्वी)-का उद्धार करनेके लिये साक्षात् भगवान् विष्णुने प्रसन्नतापूर्वक वाराहरूप धारण किया। उस समय महर्षिगण उनकी स्तुति करते थे। स्थलचर और आकाशचारी जीवोंके ह्वाग जिनकी इयताको जान लेना नितान्त असम्भव है, वे आदिदेव भगवान् विष्णु समस्त प्रजाओंकी सृष्टि कर 'नैमित्तिक प्रलय' में सबका संहार करके शयन करते हैं ॥ २२—२८ ॥

तीसरा अध्याय

ब्रह्माजीद्वारा लोकरचना और नी प्रकारकी सृष्टियोंका निरूपण

सूत उवाच

तत्र सुप्तस्य देवस्य नाभीं पचामभून्महत् ।
तस्मिन् पचो महाभाग वेदवेदाङ्गपारगः ॥ १
ब्रह्मोत्पत्रः स तेनोक्तः प्रजां सृज महामते ।
एवमुक्त्वा तिरोभावं गतो नारायणः प्रभुः ॥ २

सूतजी बोले—महाभाग! नैमित्तिक प्रलयकालमें सोये हुए भगवान् नारायणकी नाभिमें एक महान् कमल उत्पन्न हुआ। उसीसे वेद-वेदाङ्गोंके पारगामी ब्रह्माजीका प्रादुर्भाव हुआ। तब उनसे भगवान् नारायणने कहा— 'महामते! तुम प्रजाकी सृष्टि करो' और यह कहकर वे

तथेत्युक्त्वा स तं देवं विष्णुं ब्रह्माथं चिन्तयन्।
आस्ते किंचिजगद्गीजं नाथ्यगच्छत किंचन॥ ३

तावत्तस्य महान् रोषो ब्रह्मणोऽभूम्भात्मनः।
ततो बालः समुत्प्रस्तास्याङ्के रोषसम्भवः॥ ४

स रुदन्वारितस्तेन ब्रह्मणा व्यक्तपूर्तिना।
नाम मे देहि चेत्युक्तस्तस्य रुद्रेत्यसौ ददी॥ ५

तेनासौ विसृजस्वेति प्रोक्तो लोकमिमं पुनः।
अशक्तस्तत्र सलिले प्रमज्ज तपसाऽऽहतः॥ ६

तस्मिन् सलिलमये तु पुनरन्यं प्रजापतिः।
ब्रह्मा समर्ज भूतेशो दक्षिणाङ्कुष्ठोऽपरम्॥ ७

दक्षं वामे ततोऽङ्कुष्ठे तस्य पत्नी व्यजायत।
स तस्यां जनयामास मनुं स्वायम्भुवं प्रभुः॥ ८

तस्मात् सम्भाविता सृष्टिः प्रजानां ब्रह्मणा तदा।
इत्येवं कथिता सृष्टिर्मया ते मुनिसत्तम।
सुजतो जगतीं तस्य किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ९

भरद्वाज उवाच

संक्षेपेण तदाऽऽख्यातं त्वया मे लोमहर्षण।
विस्तरेण पुनर्द्वृहि आदिसर्गं महामते॥ १०

सूत उवाच

तथैव कल्पावसाने निशासुसोत्थितः प्रभुः।
सत्त्वोद्विकस्तदा ब्रह्मा शून्यं लोकमवैक्षत॥ ११

नारायणः परोऽचिन्त्यः पूर्वेषामपि पूर्वजः।
ब्रह्मस्वरूपी भगवाननादिः सर्वसम्भवः॥ १२

इमं चोदाहरन्त्यत्र इलोकं नारायणं प्रति।
ब्रह्मस्वरूपिणं देवं जगतः प्रभवात्पक्षम्॥ १३

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो द्यै नरसूनवः।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥ १४

अन्तर्धान हो गये। उन भगवान् विष्णुसे 'तथास्तु' कहकर ब्रह्माजी सोचने लगे—'क्या जगत्की सुषिष्ठिका कोई बीज है?' परंतु बहुत सोचनेपर भी उन्हें किसी बीजका पता न लगा। तब महात्मा ब्रह्माजीको महान् रोष हुआ। रोष होते ही उनकी गोदमें एक बालक प्रकट हो गया, जो उनके रोषसे ही प्रादुर्भूत हुआ था। उस बालकको रोते देख स्थूल शरीरधारी ब्रह्माजीने उसे रोनेसे मना किया। फिर उसके यह कहनेपर कि 'मेरा नाम रुद्र दीजिये', उन्होंने उसका 'रुद्र' नाम रख दिया ॥ १—५ ॥

इसके बाद ब्रह्माजीने उससे कहा कि 'तुम इस लोककी सृष्टि करो'—यह कहनेपर उस कार्यमें असमर्थ होनेके कारण वह सादर तपस्याके लिये जलमें निमग्न हो गया। उसके जलमें निमग्न हो जानेपर भूतनाथ प्रजापति ब्रह्माजीने फिर अपने दाहिने औंगूठेसे 'दक्ष' नामक एक दूसरे पुत्रको उत्पन्न किया, तत्पश्चात् वाये औंगूठेसे उसकी पत्नी प्रकट हुई। प्रभु दक्षने उस स्त्रीसे स्वायम्भुव मनुको जन्म दिया। तब ब्रह्माजीने उसी मनुसे प्रजाओंकी सृष्टि बढ़ायी। मुनिवर! बसुधाकी सृष्टि करनेवाले उस विधाताकी सृष्टि-रचनाका यह क्रम मैंने आपसे वर्णन किया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं? ॥ ६—९ ॥

भरद्वाजजी बोले—लोमहर्षणजी! आपने यह सब चृत्तान्त मुझसे पहले संक्षेपसे कहा है। महामते! अब आप विस्तारके साथ आदिसर्गका वर्णन कीजिये ॥ १० ॥

सूतजी बोले—पिछले कल्पका अन्त होनेपर रात्रिमें सोकर उठनेके बाद सत्त्वगुणके उद्रेकसे युक्त (नारायणस्वरूप) भगवान् ब्रह्माजीने उस समय सम्पूर्ण लोकको शून्यमय देखा। वे ब्रह्मस्वरूपी भगवान् नारायण सबसे परे हैं, अचिन्त्य हैं, पूर्वजोंके भी पूर्वज हैं, अनादि हैं और सबकी उत्पत्तिके कारण हैं। इस जगत्की उत्पत्तिके कारणभूत उन ब्रह्मस्वरूप नारायणदेवके विषयमें पुराणवेत्ता विद्वान् यह इलोक कहते हैं—“जल भगवान् नर—पुरुषोत्तमसे उत्पन्न है, इसलिये 'नार' कहलाता है। नार (जल) ही उनका प्रथम अयन (आदि शयन-स्थान) है, इसलिये वे भगवान् 'नारायण' कहे जाते हैं।”

सुष्टि चिन्तयतस्तस्य कल्पादिषु यथा पुरा ।
अबुद्धिपूर्वकं तस्य प्रादुर्भूतं तमस्तदा ॥ १५

तमो मोहो महामोहस्तामिस्त्रो हृन्यसंज्ञितः ।
अविद्या पञ्चपर्वेषा प्रादुर्भूता महात्मनः ॥ १६

पञ्चधार्थिष्ठितः सर्गो ध्यायतोऽप्रतिबोधवान् ।
बहिरन्तोऽप्रकाशश्च संवृतात्मा नगात्मकः ।
मुख्यसर्गः स विज्ञेयः सर्गसिद्धिविचक्षणैः ॥ १७

यत्पुनर्ध्यायतस्तस्य ब्रह्मणः समपद्यत ।
तिर्यक्स्त्रोतस्ततस्तस्मात् तिर्यग्योनिस्ततः स्मृतः ॥ १८

पश्चादयस्ते विख्याता उत्पथग्राहिणश्च ये ।
तमप्यसाधकं मत्वा तिर्यग्योनिं चतुर्मुखः ॥ १९

ऊर्ध्वस्त्रोतास्तृतीयस्तु सात्त्विकः समवर्तत ।
तदा तुष्टोऽन्यसर्गं च चिन्तयामास वै प्रभुः ॥ २०

ततश्चिन्तयतस्तस्य सर्गवृद्धिं प्रजापतेः ।
अर्वाक्स्त्रोताः समुत्पन्ना मनुष्याः साधका मताः ॥ २१

ते च प्रकाशबहुलास्तमोयुक्ता रजोऽधिकाः ।
तस्माते दुःखबहुला भूयो भूयश्च कारिणः ॥ २२

एते ते कथिताः सर्ग ब्रह्मो मुनिसत्तम ।
प्रथमो महतः सर्गस्तन्मात्राणां द्वितीयकः ॥ २३

वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः ।
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ॥ २४

तिर्यक्स्त्रोताश्च यः प्रोक्तस्तिर्यग्योनिः स उच्यते ।
ततोऽर्वाक्स्त्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ॥ २५

ततोऽर्वाक्स्त्रोतसां सर्गः सप्तमो मानुषः स्मृतः ।
अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विको य उदाहृतः ॥ २६

इस प्रकार कल्पके आदिमें पूर्ववत् सृष्टिका चिन्तन करते समय ब्रह्माजीके बिना जाने ही असावधानता हो जानेके कारण तमोगुणों सृष्टिका प्रादुर्भाव हुआ ॥ ११—१५ ॥

उस समय उन महात्मासे तम (अज्ञान), मोह, महामोह (भोगेच्छा), तामिल (क्रोध) और अन्धतामिल (अभिनिवेश) नामक पञ्चपर्वा (पाँच प्रकारकी) अविद्या उत्पन्न हुई । फिर सृष्टिके लिये ध्यान करते हुए ब्रह्माजीसे वृक्ष, गुलम, लता, चीरधू एवं तुणरूप पाँच प्रकारका स्थावरात्मक सर्ग हुआ, जो बाहर-भीतरसे प्रकाशरहित, अविद्यासे आवृत एवं ज्ञानशून्य था । सर्गसिद्धिके ज्ञाता विद्वान् इसे 'मुख्य सर्ग' समझें, (क्योंकि अचल वस्तुओंको मुख्य कहा गया है ।) फिर सृष्टिके लिये ध्यान करनेपर उन ब्रह्माजीसे तिर्यक्स्त्रोत नामक सृष्टि हुई । तिर्यक्स्त्रोतके कारण उसकी 'तिर्यक्' संज्ञा है । उससे उत्पन्न हुआ सर्ग 'तिर्यग्योनि' कहा जाता है । वे विख्यात पशु आदि जो कुमारासे चलनेवाले हैं, तिर्यग्योनि कहलाते हैं । चतुर्मुख ब्रह्माजीने उस तिर्यक्स्त्रोता सर्गको पुरुषार्थका असाधक मानकर जब पुनः सृष्टिके लिये चिन्तन किया, तब उनसे तृतीय 'ऊर्ध्वस्त्रोता' नामक सर्ग हुआ । यह सत्त्वगुणसे युक्त था (यही 'देवसर्ग' है) । तब भगवान् ने प्रसन्न होकर पुनः अन्य सृष्टिके लिये चिन्तन किया । तदनन्तर सर्गकी वृद्धिके विषयमें चिन्तन करते हुए उन प्रजापतिसे 'अर्वाक्स्त्रोता' नामक सर्गकी उत्पत्ति हुई । इसीके अन्तर्गत मनुष्य हैं, जो पुरुषार्थके साधक माने गये हैं । इनमें प्रकाश (सत्त्वगुण), और रज—इन दो गुणोंकी अधिकता है और तमोगुण भी है । इसलिये ये अधिकतर दुःखी और अत्यधिक क्रियाशील होते हैं ॥ १६—२२ ॥

मुनिश्रेष्ठ ! इन बहुत-से सर्गोंका मैंने आपसे वर्णन किया है । इनमें 'महतत्व' को पहला सर्ग कहा गया है । दूसरा सर्ग 'तन्मात्राओं' का है । तीसरा वैकारिक सर्ग है, जो 'ऐन्द्रिय' (इन्द्रियसम्बन्धी) कहलाता है । चौथा 'मुख्य' सर्ग है । स्थावर (वृक्ष, तुण, लता आदि) ही 'मुख्य' कहे गये हैं । तिर्यक्स्त्रोता नामक जो पाँचवाँ सर्ग कहा गया है, वह 'तिर्यग्योनि' कहलाता है । इसके बाद छठा 'ऊर्ध्वस्त्रोताओं' का सर्ग है । उसे 'देवसर्ग' कहा जाता है । फिर सातवाँ अर्वाक्स्त्रोताओंका सर्ग है, उसे 'मानवसर्ग' कहते हैं । आठवाँ 'अनुग्रह-सर्ग' है, जिसे 'सात्त्विक'

नवमो रुद्रसर्गस्तु नव सर्गः प्रजापतेः।
पञ्चीते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्ते त्रयः स्मृताः।
प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः॥ २७

प्राकृता वैकृतश्चैव जगतो मूलहेतवः।
सूजतो ब्रह्मणः सुष्ठिष्ठुत्पन्ना ये पथेरिताः॥ २८

तं तं विकारं च परं परेशो
मायामधिष्ठाय सूजत्यनन्तः।
अव्यक्तरूपी परमात्मसंज्ञः
सम्प्रेर्यमाणो निखिलात्मवेद्यः॥ २९

इति श्रीनरसिंहपुराणे सुष्ठिरचनाप्रकारेनाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'सुष्ठिरचनाका प्रकार' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥ ३॥

कहा गया है। नवों 'रुद्रसर्ग' है—ये ही नौ सर्ग प्रजापतिसे उत्पन्न हुए हैं। इनमें पहलेके तीन 'प्राकृत सर्ग' कहे गये हैं। उसके बादवाले पाँच 'वैकृत सर्ग' हैं और नवों जो 'कौमार सर्ग' है, वह प्राकृत और वैकृत भी है। इस प्रकार सृष्टि-रचनामें प्रबृत्त हुए ब्रह्माजीसे उत्पन्न हुए जो जगत्की उत्पत्तिके मूलकारण प्राकृत और वैकृत सर्ग हैं, उनका मैने वर्णन किया। सबके आत्मरूपसे जाननेयोग्य अव्यक्तस्वरूप परमात्मा परमेश्वर भगवान् अनन्तदेव अपनी मायाका आश्रय लेकर प्रेरित होते हुए-से उन-उन विकारोंकी सृष्टि करते हैं॥ २३—२९॥

चौथा अध्याय

अनुसर्गके स्त्रष्टा

भरहाज उवाच

नवधा सुष्ठिरुत्पन्ना ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
कथं सा ववृथे सूत एतत्कथय मेऽधुना॥ १

सूत उवाच

प्रथमं ब्रह्मणा सृष्टा मरीच्यादय एव च।
मरीचिरत्रिश्च तथा अङ्गिराः पुलहः क्रतुः॥ २
पुलस्त्यश्च महातेजाः प्रचेता भृगुरेव च।
नारदो दशमश्चैव वसिष्ठश्च महामतिः॥ ३
सनकादयो निवृत्ताख्ये ते च धर्मे नियोजिताः।
प्रवृत्ताख्ये मरीच्याद्या मुक्त्वैकं नारदं मुनिम्॥ ४
योऽसौ प्रजापतिस्त्वन्यो दक्षनामाङ्गसम्भवः।
तस्य दौहित्रवंशेन जगदेतच्चराचरम्॥ ५
देवाश्च दानवाश्चैव गन्धवौरगपक्षिणः।
सर्वे दक्षस्य कन्यासु जाताः परमधार्मिकाः॥ ६
चतुर्विंधानि भूतानि हुचराणि चराणि च।
वृद्धिंगतानि तान्येवमनुसर्गोद्भवानि तु॥ ७
अनुसर्गस्य कर्तारो मरीच्याद्या महर्षयः।
वसिष्ठान्ता महाभाग ब्रह्मणो मानसोद्भवाः॥ ८

भरहाजजी बोले—सूतजी ! अव्यक्त जन्मा ब्रह्माजीसे जो नौ प्रकारकी सृष्टि हुई, उसका विस्तार किस प्रकार हुआ ? यही इस समय आप हमें बतलाइये॥ १॥

सूतजी बोले—ब्रह्माजीने पहले जिन मरीचि आदि ऋषियोंको उत्पन्न किया, उनके नाम इस प्रकार हैं—मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, महातेजस्वी पुलस्त्य, प्रचेता, भृगु, नारद और दसवें महाबुद्धिमान् वसिष्ठ हैं। सनक आदि ऋषि निवृत्तिधर्ममें तत्पर हुए और एकमात्र नारद मुनिको छोड़कर शेष सभी मरीचि आदि मुनि प्रवृत्तिधर्ममें नियुक्त हुए॥ २—४॥

ब्रह्माजीके दाये अङ्गसे उत्पन्न जो 'दक्ष' नामक दूसरे प्रजापति कहे गये हैं, उनके दौहित्रोंके वंशसे यह चराचर जगत् व्याप्त है। देव, दानव, गन्धव, उरा (सर्प) और पक्षी—ये सभी, जो सब-के-सब बड़े धर्मात्मा थे, दक्षकी कन्याओंसे उत्पन्न हुए। चार प्रकारके चराचर प्राणी अनुसर्गमें उत्पन्न होकर वृद्धिको प्राप्त हुए। महाभाग ! पूर्वोक्त मरीचिसे लेकर वसिष्ठतक सभी श्रीब्रह्माजीकी मानस संलान हैं। ये सब अनुसार्गके स्त्रष्टा हैं।

सर्गे तु भूतानि धियश्च खानि
ख्यातानि सर्वं सृजते महात्मा ।
स एव पश्चाच्चतुरास्यरूपी
मुनिस्वरूपी च सृजत्यनन्तः ॥ ९ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें जीवा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

रुद्र आदि सर्गों और अनुसर्गोंका वर्णन; दक्ष प्रजापतिकी कन्याओंकी संततिका विस्तार

भरहाज उकाच

रुद्रसर्ग तु मे चूहि विस्तरेण महामते ।
पुनः सर्वे मरीच्याद्याः ससृजुस्ते कथं पुनः ॥ १ ॥
मित्रावरुणपुत्रत्वं वसिष्ठस्य कथं भवेत् ।
ब्रह्मणो मनसः पूर्वमुत्पन्नस्य महामते ॥ २ ॥

गुरु उकाच

रुद्रसृष्टिं प्रवक्ष्यामि तत्सर्गाश्चैव सत्तम ।
प्रतिसर्ग मुनीनां तु विस्तराद्विदतः शृणु ॥ ३ ॥
कल्पादावात्मनस्तुल्यं सुतं प्रव्यायतस्ततः ।
ग्रादुरासीत् प्रभोरङ्गे कुमारो नीललोहितः ॥ ४ ॥
अर्धनारीनरवपुः प्रचण्डोऽतिशारीरवान् ।
तेजसा भासयन् सर्वा दिशश्च प्रदिशश्च सः ॥ ५ ॥
तं दृष्ट्वा तेजसा दीप्तं प्रत्युवाच प्रजापतिः ।
विभजात्मानमद्य त्वं मम वाक्यान्महामते ॥ ६ ॥
इत्युक्तो ब्रह्मणा विप्र रुद्रस्तेन प्रतापवान् ।
स्त्रीभावं पुरुषत्वं च पृथक् पृथगथाकरोत् ॥ ७ ॥
विभेद पुरुषत्वं च दशाधा चैकधा च सः ।
तेषां नामानि वक्ष्यामि शृणु मे द्विजसत्तम ॥ ८ ॥
अजैकपादहिर्बुद्ध्यः कपाली रुद्र एव च ।
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः ॥ ९ ॥
वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपदी रैवतस्तथा ।
एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रभुवनेश्वरा: ॥ १० ॥

सर्ग अर्थात् आदिसृष्टिमें महात्मा भगवान् नारायण पाँच महाभूत, बुद्धि तथा पूर्वोक्त इन्द्रियवर्ग—इन सबको उत्पन्न करते हैं। इसके पश्चात् (अनुसर्गकालमें) वे अनन्तदेव स्वयं ही चतुर्मुख ब्रह्मा और मरीचि आदि मुनियोंके रूपसे प्रकट हो जगत्की सृष्टि करते हैं ॥ ५—९ ॥

श्रीभरहाजजी बोले—महामते! अब मुझसे 'रुद्रसर्ग' का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये तथा यह भी बताइये कि मरीचि आदि ऋषियोंने पहले किस प्रकार सृष्टि की? महाबुद्धिमान् सृत! बसिष्ठजी तो पहले ब्रह्माजीके मनसे उत्पन्न हुए थे; फिर वे मित्रावरुणके पुत्र कैसे हो गये? ॥ १-२ ॥

सृतजी बोले—साधुशिरोमणे! आपके प्रश्नानुसार मैं अब रुद्र-सृष्टिका तथा उसमें होनेवाले सर्गोंका वर्णन करौंगा, साथ ही मुनियोंहारा सम्मादित प्रतिसर्ग (अनुसर्ग)-को भी मैं विस्तारके साथ बताऊँगा; आपलोग ध्यानसे सुनें। कल्पके आदिमें प्रभु ब्रह्माजी अपने ही समान शक्तिशाली पुत्र होनेका चिन्तन कर रहे थे। उस समय उनकी गोदमें एक नीललोहित वर्णका बालक प्रकट हुआ। उसका आधा शरीर स्त्रीका और आधा पुरुषका था। वह प्रचण्ड एवं विशालकाय था और अपने तेजसे दिशाओं तथा अवान्तर दिशाओंको प्रकाशित कर रहा था। उसे तेजसे देदीप्यमान देख प्रजापतिने कहा—'महामते! इस समय मेरे कहनेसे तुम अपने शरीरके दो भाग कर लो।' विप्र! ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर प्रतापी रुद्रने अपने स्त्रीरूप और पुरुषरूपको अलग-अलग कर लिया। द्विजश्रेष्ठ! फिर पुरुषरूपको उन्होंने ग्यारह स्वरूपोंमें विभक्त किया; मैं उन सबके नाम बतलाता हूँ सुनें। अजैकपात्, अहिर्बुद्ध्य, कपाली, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपदी और 'रैवत—ये 'ग्यारह रुद्र' कहे गये हैं, जो तीनों

स्त्रीत्वं चैव तथा रुद्रो विभेद दशाधीकधा ।
उमैव बहुरूपेण पल्ली सैव व्यवस्थिता ॥ ११
तपः कृत्वा जले घोरमुत्तीर्णः स यदा पुरा ।
तदा स सृष्टवान् देवो रुद्रस्तत्र प्रतापवान् ॥ १२
तपोबलेन विप्रेन्द्र भूतानि विविधानि च ।
पिशाचान् राक्षसांश्चैव सिंहोष्ठमकराननान् ॥ १३
वेतालप्रमुखान् भूतानन्यांश्चैव सहस्रशः ।
विनायकानामुग्राणां त्रिंशत्कोट्यर्थमेव च ॥ १४
अन्यकार्यं समुद्दिश्य सृष्टवान् स्कन्दमेव च ।
एवं प्रकारो रुद्रोऽसौ मया ते कीर्तिः प्रभुः ॥ १५
अनुसर्गं मरीच्यादेः कथयामि निबोध मे ।
देवादिस्थावरान्ताश्च प्रजाः सृष्टाः स्वयम्भुवा ॥ १६
यदास्य च प्रजाः सर्वाः न व्यवर्धन्त धीमतः ।
तदा मानसपुत्रान् स सदृशानात्मनोऽसृजत् ॥ १७
मरीचिमत्त्रज्ञिरसं पुलस्त्वं पुलहं क्रतुम् ।
प्रचेतसं चसिष्टं च भृगुं चैव महामतिम् ॥ १८
नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ।
अग्निश्च पितरश्चैव ब्रह्मपुत्रौ तु मानसौ ॥ १९
सृष्टिकाले महाभागो ब्रह्मन् स्वायम्भुवोद्भतौ ।
शतरूपां च सृष्टा तु कन्यां स मनवे ददी ॥ २०
तस्माच्च पुरुषाश्चैवी शतरूपा व्यजायत ।
प्रियवतोत्तानपादी प्रसूतिं चैव कन्यकाम् ॥ २१
ददी प्रसूतिं दक्षाय मनुः स्वायम्भुवः सुताम् ।
प्रसूत्यां च तदा दक्षशतुर्विंशतिकं तथा ॥ २२
सप्तर्ज कन्यकास्तासां शृणु नामानि मे ऽधुना ।
श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिमेधा तथा क्रिया ॥ २३
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः सिद्धिः कीर्तिस्वयोदशी ।
अपत्यार्थं प्रज्ञाह धर्मो दाक्षायणीः प्रभुः ॥ २४
श्रद्धादीनां तु पल्लीनां जाताः कामादयः सुताः ।
धर्मस्य पुत्रपौत्राद्यर्धर्मवंशो विवर्धितः ॥ २५

भुवनोंके स्वामी हैं। पुरुषकी भाँति स्त्रीरूपके भी रुद्रने ग्याह विभाग किये। भगवती उमा ही अनेक रूप धारण कर इन सबकी पली हैं ॥ ३—११ ॥

विप्रेन्द्र! पूर्वकालमें प्रतापी रुद्रदेव जलमें घोर तपस्या करके जब बाहर निकले, तब अपने तपोबलसे उन्होंने वहाँ नाना प्रकारके भूतोंकी सृष्टि की। सिंह, कैट और मगरके समान मुँहवाले पिशाचों, राक्षसों तथा वेताल आदि अन्य सहस्रों भूतोंको उत्पन्न किया। साड़े तीस करोड़ उग्र स्वभाववाले विनायकगणोंकी सृष्टि की तथा दूसरे कार्यके उद्देश्यसे स्कन्दको उत्पन्न किया। इस प्रकार भगवान् रुद्र तथा उनके सर्गका मैने आपसे वर्णन किया ॥ १२—१५ ॥

अब मरीचि आदि ऋषियोंके अनुसर्गका वर्णन करता हूँ, आप सुनें। स्वयम्भू ब्रह्माजीने देवताओंसे लेकर स्थावरोंतक सारी प्रजाओंकी सृष्टि की। किंतु इन बुद्धिमान् ब्रह्माजीकी ये सब प्रजाएँ जब बुद्धिकी प्राप्त नहीं हुईं, तब इन्होंने अपने ही समान मानस-पुत्रोंकी सृष्टि की। मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, बसिष्ठ और महाबुद्धिमान् भृगुको उत्पन्न किया। ये लोग पुराणमें नी ब्रह्मा निश्चित किये गये हैं। ब्रह्मन्! अग्नि और पितर भी ब्रह्माके ही मानस-पुत्र हैं। इन दोनों महाभागोंको सृष्टिकालमें स्वयम्भू ब्रह्माजीने उत्पन्न किया। फिर उन्होंने 'शतरूपा' नामक कन्याकी सृष्टि करके उसे मनुको दे दिया ॥ १६—२० ॥

उन स्वयम्भुव मनुसे देवी शतरूपाने 'प्रियद्रष्ट' और 'उत्तानपाद' नामक दो पुत्र उत्पन्न किये और 'प्रसूति' नामवाली एक कन्याको जन्म दिया। स्वायम्भुव मनुने अपनी कन्या प्रसूति दक्षको व्याह दी। दक्षने प्रसूतिसे चौबीस कन्याएँ उत्पन्न कीं। अब मुझसे उन कन्याओंके नाम सुनें—श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि और तेरहवीं कीर्ति थीं। भगवान् धर्मने संतानोत्पत्तिके लिये इन तेरह कन्याओंका पाणिग्रहण किया। धर्मकी इन श्रद्धा आदि पवित्रोंके गर्भसे काम आदि पुत्र उत्पन्न हुए। अपने पुत्र और पीत्र आदिसे धर्मका वंश खूब बढ़ा ॥ २१—२५ ॥

तात्प्रयः शिष्टा यवीयस्यस्तासां नामानि कीर्तये ।
 सम्भूतिश्चानसूया च स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा ॥ २६
 संनतिश्चाथ सत्या च ऊर्जा ख्यातिर्द्विजोत्तम ।
 तद्वत्पुत्रौ महाभागौ मातरिश्चाथ सत्यवान् ॥ २७
 स्वाहाथ दशमी ज्ञेया स्वधा चैकादशी स्मृता ।
 एताश्च दत्ता दक्षेण ऋषीणां भावितात्मनाम् ॥ २८
 मरीच्यादीनां तु ये पुत्रास्तानहं कथयामि ते ।
 पत्नी मरीचेः सम्भूतिर्ज्ञे सा कश्यपं मुनिम् ॥ २९
 स्मृतिश्चाङ्गिरसः पत्नी प्रसूता कन्यकास्तथा ।
 सिनीबाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा ॥ ३०
 अनसूया तथा चात्रेच्चज्ञे पुत्रानकल्पधान् ।
 सोमं दुर्वासिसं चैव दत्तात्रेयं च योगिनम् ॥ ३१
 योऽसावग्रेरभीमानी ब्रह्मणस्तनयोऽग्रजः ।
 तस्मात् स्वाहा सुतांल्लभे त्रीनुदारीजसो द्विज ॥ ३२
 पावकं पवमानं च शुचिं चापि जलाशिनम् ।
 तेषां तु संततावन्ये चत्वारिंशत्य षड् च ॥ ३३
 कथ्यन्ते ब्रह्मयश्चेते पिता पुत्रत्रयं च यत् ।
 एवमेकोनपञ्चाशद्वृह्यः परिकीर्तिताः ॥ ३४
 पितरो ब्रह्मणा सृष्टा व्याख्याता ये मया तव ।
 तेभ्यः स्वधा सुते जडे मेनां चै धारिणीं तथा ॥ ३५
 प्रजाः सृजेति व्यादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा ।
 यथा सप्तर्ज भूतानि तथा मे शृणु सत्तम् ॥ ३६
 मनसैव हि भूतानि पूर्वं दक्षोऽसृजन्मुनिः ।
 देवानृषीश्च गन्धर्वानिसुरान् पञ्चगांस्तथा ॥ ३७
 यदास्य मनसा जाता नाभ्यवर्धन्त ते द्विज ।
 तदा संचिन्त्य स मुनिः सृष्टिहेतोः प्रजापतिः ॥ ३८
 पैथुनैव धर्मेण सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
 असिक्नीमुद्वहन् कन्यां वीरणस्य प्रजापतेः ॥ ३९

द्विजश्रेष्ठ ! श्रद्धा आदिसे छोटी अवस्थाबाली जो उनकी शेष बहनें थीं, उनके नाम बता रहा है—सम्भूति, अनसूया, स्मृति, प्रीति, क्षमा, संनति, सत्या, ऊर्जा, ख्याति, दसवीं स्वाहा और ग्यारहवीं स्वधा है। दक्षके 'मातरिश्च' और 'सत्यवान्' नामक दो महाभाग पुत्र भी हुए। उपर्युक्त ग्यारह कन्याओंको दक्षने पुण्यात्मा ऋषियोंको दिया ॥ २६—२८ ॥

मरीचि आदि मुनियोंके जो पुत्र हुए, उन्हें मैं आपसे बतलाता हूँ। मरीचिकी पत्नी सम्भूति थी। उसने कश्यप मुनिको जन्म दिया। अङ्गिराकी भार्या स्मृति थी। उसने सिनीबाली, कुहू, राका और अनुमति—इन चार कन्याओंको उत्पन्न किया। इसी प्रकार अत्रि मुनिकी पत्नी अनसूयाने सोम, दुर्वासा और योगी दत्तात्रेय—इन तीन पापरहित पुत्रोंको जन्म दिया। द्विज ! ब्रह्माजीका ज्येष्ठ पुत्र, जो अग्निका अभिमानी देवता है, उससे उसकी पत्नी स्वाहाने पावक, पवमान और जलका भक्षण करनेवाले शुचि—इन अत्मना तेजस्वी पुत्रोंको उत्पन्न किया। इन तीनोंके (प्रत्येकके पंद्रह-पंद्रहके क्रमसे) अन्य पैतालीस अग्निस्वरूप संताने हुईं। पिता अग्नि, उसके तीनों पुत्र तथा उनके भी ये पूर्वोक्त पैतालीस पुत्र सब मिलकर 'अग्नि' ही कहलाते हैं। इस प्रकार उनचास अग्नि कहे गये हैं। ब्रह्माजीके द्वारा रचे गये जिन पितरोंका मैने आपके समक्ष वर्णन किया था, उनसे उनकी पत्नी स्वधाने मेना और धारिणी—इन दो कन्याओंको जन्म दिया ॥ २९—३५ ॥

साधुशिरोमणे ! पूर्वकालमें स्वयम्भू ब्रह्माजीके द्वारा 'तुम प्रजाकी सृष्टि करो' यह आज्ञा पाकर दक्षने जिस प्रकार सम्पूर्ण भूतोंकी सृष्टि की थी, उसे सुनिये। विप्रवर। दक्षमुनिने पहले देवता, ऋषि, गन्धर्व, असुर और सर्प—इन सभी भूतोंको मनसे ही उत्पन्न किया। परंतु जब मनसे उत्पन्न किये हुए ये देवादि सर्ग वृद्धिको प्राप्त नहीं हुए, तब उन दक्ष प्रजापति ऋषिने सृष्टिके लिये पूर्णतः विचार करके मैथुनधर्मके द्वारा ही नाना प्रकारकी सृष्टि रचनेकी इच्छा मनमें लिये वीरण प्रजापतिकी कन्या असिक्नीके साथ विवाह किया।

यष्टि दक्षोऽसुजत् कन्या वीरण्यामिति नःश्रुतम्।
ददी स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ॥ ४०
सप्तविंशति सोमाय चतुर्खोऽरिष्टेभिन्ने।
द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा ॥ ४१
द्वे कृशाश्चाय विदुये तदपत्यानि मे शृणु।
विश्वेदेवांस्तु विश्वा या साध्या साध्यानसूयत ॥ ४२
मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवः स्मृताः।
भानोस्तु भानवो देवा मुहूर्तायां मुहूर्तजाः ॥ ४३
लम्बायांश्चैव घोषाख्यो नागवीथिश्च जामिजा।
पृथिवीविषयं सर्वमरुत्वत्यामजायत ॥ ४४
संकल्पायाश्च संकल्पः पुत्रो जन्मे महामते।
ये त्वनेकवसुप्राणा देवा ज्योतिःपुरोगमाः ॥ ४५
वसवोऽश्चौ समाख्यातास्तेषां नामानि मे शृणु।
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धर्मश्चैवानिलोऽनलः ॥ ४६
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽश्चौ प्रकीर्तिताः।
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४७
साध्याश्च बहवः प्रोक्तास्तात्पुत्राश्च सहस्रशः।
कश्यपस्य तु भार्या यास्तासां नामानि मे शृणु।
अदितिर्दितिर्दनुश्चैव अरिष्टा सुरसा खसा ॥ ४८
सुरभिर्विनता चैव ताम्ना क्रोधवशा इरा।
कद्मुनिश्च धर्मज्ञ तदपत्यानि मे शृणु ॥ ४९

* पौत्रवें अध्यायके इलोक वाईसमें यह चर्चा आयी है कि स्वायम्भुव मनुने प्रजापतिको अपनी पुत्री प्रसूति व्याह दी थी। उसके गर्भसे दक्षने चौबीस कन्याएँ उत्पन्न की, जिनमेंसे तेरह कन्याओंका विवाह उन्होंने पर्वके साथ कर दिया था। फिर इसी अध्यायके उनालीस-चालीस इलोकोंमें यह बात आती है कि दक्षने वीरण प्रजापतिकी पुत्री असिक्कीके साथ विवाह किया, जिसके गर्भसे उन्होंने साठ कन्याएँ उत्पन्न की, जिनमेंसे दसख्ता विवाह उन्होंने पर्वके साथ किया था। एक ही दक्षके विषयमें ये दो प्रकारकी चर्चें आपाततः संदेह उत्पन्न करती हैं। विष्णुपुराणमें भी यह प्रसंग आया है। अध्याय सातके उल्लीससे चौबीसवें इलोकतक तथा अध्याय पंद्रहके उक्त दोनों प्रसङ्गोंका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। एक सी तीनवें इलोकमें उन प्रसंगोंके पर्वालीचनसे यह प्रतीत होता है कि उक्त दोनों दक्ष दो व्यक्ति थे और दोनों दो कालमें उत्पन्न हुए थे। पहले दक्ष व्रहाजीके मानस-पुत्र थे और दूसरे प्रचेताओंके पुत्र। इतनेपर भी यैत्रेयजीने यह प्रश्न उठाया है कि 'श्रहाजीके पुत्र दक्ष प्रचेताओंके पुत्र कैसे हो गये?' वहाँ पराश्रारजीने यह समाधान किया है कि 'युगे युगे भवन्त्येते दक्षाद्य मुनिसत्तम्।' इस प्रकार युगभेदसे दोनों प्रसंगोंकी संगति बैठायी गयी है। वहाँ समाधान यहाँ भी समझ लेना चाहिये।

+ यहाँ 'अहन्यती' की जगह 'मरुत्वलो' पाठ भी मिलता है, परंतु वह असंगत है। 'मरुत्वत्यां मरुत्वन्तः' कहकर मरुत्वतीकी संतानिका वर्णन आ चुका है। अतः यहाँ 'अहन्यती' पाठ ही ठीक है; अन्यत्र धर्मकी नवी पत्नीका नाम नहीं मिलेगा। विष्णुपुराण १५। १०९वें इलोकमें भी 'अहन्यत्याम्' ही पाठ है।

हमने सुना है कि दक्ष प्रजापतिने वीरण-कन्या असिक्कीके गर्भसे साठ कन्याएँ उत्पन्न की। उनमेंसे दस कन्याएँ उन्होंने धर्मको और तेरह कश्यप मुनिको व्याह दीं*। फिर सत्ताईस कन्याएँ चद्रमाको, चार अणिनेमिको, दो बहुपुत्रको, दो अङ्गिराको और दो कन्याएँ विद्वान् कृशाश्चको समर्पित कर दीं। अब इन सबकी संतानोंका वर्णन सुनिये ॥ ३६—४१ ॥

जो विश्वा नामकी कन्या थी, उसने विश्वेदेवोंको और साध्याने साध्योंको जन्म दिया। मरुत्वतीके मरुत्वान् (वायु), वसुके वसुगण, धानुके धानुदेवता और मुहूर्तके मुहूर्तपिमानी देवगण हुए। लम्बासे धोष नामक पुत्र हुआ, जामिसे नागवीथि नामवाली कन्या हुई और अहन्यतीसे। पृथिवीके समस्त प्राणी उत्पन्न हुए। महाबुद्धे! संकल्पा नामक कन्यासे संकल्पका जन्म हुआ, अनेक प्रकारके वसु (तेज अथवा धन) ही जिनके प्राण हैं, ऐसे जो आठ ज्योतिर्मय वसु देवता कहे गये हैं, उनके नाम सुनिये—आप, ध्रुव, सोम, धर्म, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास—ये 'आठ वसु' कहलाते हैं। इनके पुत्रों और पौत्रोंकी संख्या सौकड़ों और हजारोंतक पहुँच गयी है ॥ ४२—४७ ॥

इसी प्रकार साध्यगणोंकी भी संख्या बहुत है और उनके भी हजारों पुत्र हैं। जो (दक्ष-कन्याएँ) कश्यप मुनिकी पत्नियाँ हुईं, उनके नाम सुनिये—वे अदिति, दिति, दनु अरिष्टा, सुरसा, खसा, सुरभि, विनता, ताम्ना, क्रोधवशा, इरा, कदू और मुनि थीं। धर्मज्ञ! अब आप मुझसे उनकी संतानोंका विवरण सुनिये।

अदित्यां कश्यपाजाताः पुत्रा द्वादशा शोभनाः ।
 तानहं नामतो चक्ष्ये शृणुच्च गदतो मम ॥ ५०
 भगोऽशुश्रार्यमा चैव मित्रोऽथ चक्षणस्तथा ।
 सविता चैव धाता च विवस्वांश्च महामते ॥ ५१
 त्वष्टा पूषा तथा चेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते ।
 दित्याः पुत्रद्वयं जने कश्यपादिति नः श्रुतम् ॥ ५२
 हिरण्याक्षो महाकायो बाराहेण तु यो हतः ।
 हिरण्यकशिपुश्चैव नरसिंहेन यो हतः ॥ ५३
 अन्ये च बहवो दैत्या दनुपुत्राश्च दानवाः ।
 अरिष्टायां तु गन्धर्वां जज्ञिरे कश्यपात्तथा ॥ ५४
 सुरसायामथोत्यन्ना विद्याधरगणा बहु ।
 गा वै स जनयामास सुरभ्यां कश्यपो मुनिः ॥ ५५
 विनतायां तु द्वौ पुत्रौ प्रख्यातौ गरुडारुणौ ।
 गरुडो देवदेवस्य विष्णोरभिततेजसः ॥ ५६
 वाहनत्वमियात्मीत्या अरुणः सूर्यसारथिः ।
 ताप्तायां कश्यपाजाताः षट्पुत्रास्ताङ्गिबोध मे ॥ ५७
 अश्वा उष्टा गर्दभाश्च हस्तिनो गवया मृगाः ।
 क्रोधायां जज्ञिरे तदृष्टे भूम्यां दुष्टजातयः ॥ ५८
 इता वृक्षलतावल्लीशणजातीश्च जज्ञिरे ।
 खसा तु यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा ॥ ५९
 कद्रुपुत्रा महानागा दंदशूका विषोल्लिणाः ।
 सप्तविंशतियाः प्रोक्ताः सोमपत्न्योऽथ सुद्रताः ॥ ६०
 तासां पुत्रा महासत्त्वा बुधाद्यास्त्वभवन् द्विज ।
 अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडशा ॥ ६१
 बहुपुत्रस्य विदुषश्रुतस्त्रो विद्युतः स्मृताः ।
 प्रत्यङ्गिरस्तुताः श्रेष्ठा ऋष्यश्चर्षिसत्कृताः ॥ ६२
 कृशाश्वस्य तु देवर्णेदेवाश्च ऋषयः सुताः ।
 एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि ॥ ६३
 एते कश्यपदायादाः कीर्तिताः स्थाणुजंगमाः ।
 स्थिती स्थितस्य देवस्य नरसिंहस्य धर्मतः ॥ ६४
 एता विभूतयो विप्र मया ते परिकीर्तिताः ।
 कथिता दक्षकन्यानां मया ते उपत्यसंततिः ॥ ६५
 अद्वावान् संस्मरेदेतां स सुसंतानवान् भवेत् ॥ ६६

महामते ! अदितिके कश्यपजीसे बारह सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुए । उनके नाम बता रहा हैं, सुनिये—महामते ! भग, अंशु, अर्यमा, मित्र, बरुण, सविता, धाता, विवस्वान्, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और बारहवें विष्णु कहे जाते हैं । दितिके कश्यपजीसे दो पुत्र हुए थे, ऐसा हमने सुना है । पहला महाकाय हिरण्यक्ष हुआ, जिसे भगवान् बाराहने मारा और दूसरा हिरण्यकशिपु हुआ, जो नृसिंहजीके द्वारा मारा गया । इनके अतिरिक्त अन्य भी बहुत-से देवता दितिसे उत्पन्न हुए । दनुके पुत्र दानव हुए और अरिष्टके कश्यपजीसे गन्धर्वगण उत्पन्न हुए । सुरसासे अनेक विद्याधरगण हुए और सुरभिसे कश्यप मुनिने गौओंको जन्म दिया ॥ ४८—५५ ॥

विनताके 'गरुड' और 'अरुण' नामक दो विख्यात पुत्र हुए । गरुडजी प्रेमवश अमित-तेजस्वी देवदेव भगवान् विष्णुके बाहन हो गये और अरुण सूर्यके सारथि बने । ताप्ताके कश्यपजीसे छः पुत्र हुए, उन्हें आप मुझसे सुनिये—घोड़ा, ऊँट, गदहा, हाथी, गवय और मृग । पृथ्वीपर जितने दुष्ट जीव हैं, वे क्रोधासे उत्पन्न हुए हैं । इराने चृक्ष, लता, घल्ली और 'सन' जातिके तृणवर्गको जन्म दिया । खसाने यक्ष और राक्षसों तथा मुनिने अप्सराओंको प्रकट किया । कदूके पुत्र प्रचण्ड विषवाले 'दंदशूक' नामक महासर्प हुए । विप्रबर ! चन्द्रमाकी सुन्दर व्रतवाली जिन सताईंसे स्त्रियोंकी चर्चा की गयी है, उनसे बुध आदि महान् पराक्रमी पुत्र हुए । अरिष्टनेमिकी स्त्रियोंके गर्भसे सोलह संतानें हुईं ॥ ५६—६१ ॥

विद्वान् बहुपुत्रकी संतानें कपिला, अतिलोहिता, पीता और सिता—इन चार वर्णोवाली चार विजलियाँ कही गयी हैं । प्रत्यङ्गिराके पुत्रगण ऋषियोंद्वारा सम्मानित उत्तम ऋषि हुए । देवर्णि कृशाश्चके पुत्र देवर्णि ही हुए । ये एक-एक हजार युग (अर्थात् एक कल्प)-के बीतनेपर पुनः-पुनः उत्पन्न होते रहते हैं । इस प्रकार कश्यपके बंशमें उत्पन्न हुए चर-अचर प्राणियोंका वर्णन किया गया । विप्रबर ! धर्मपूर्वक पालनकर्ममें लगे हुए भगवान् नरसिंहकी इन विभूतियोंका यहाँ मैंने आपके समक्ष वर्णन किया है । साथ ही दक्षकन्याओंकी बंश-परम्परा भी बतलायी है । जो श्रद्धापूर्वक इन सबका स्मरण करता है, वह सुन्दर संतानसे

सर्गानुसर्गी कथितीं मया ते
समासतः सृष्टिविवृद्धिहेतोः ।
पठन्ति ये विष्णुपराः सदा नरा
इदं द्विजास्ते विमला भवन्ति ॥ ६७ ।

इति श्रीनरसिंहपुराणे सृष्टिकथने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणके सृष्टिवर्णनमें पाँचवीं अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

छठा अध्याय

अगस्त्य तथा वसिष्ठजीके मित्रावरुणके पुत्ररूपमें उत्पन्न होनेका प्रसङ्ग

सूत उक्तव्

सृष्टिस्ते कथिता विष्णोर्मयास्य जगतो द्विज ।
देवदानवयक्षाद्या यथोत्पन्ना महात्मनः ॥ १ ॥
यमुद्दिश्य त्वया पृष्ठः पुराहमृषिसंनिधौ ।
मित्रावरुणपुत्रत्वं वसिष्ठस्य कथं त्विति ॥ २ ॥
तदिदं कथयिष्यामि पुण्याख्यानं पुरातनम् ।
शृणुष्वैकाग्रमनसा भरद्वाज विशेषतः ॥ ३ ॥
सर्वधर्मार्थतत्त्वज्ञः सर्ववेदविदां वरः ।
पारगः सर्वविद्यानां दक्षो नाम प्रजापतिः ॥ ४ ॥
तेन दत्ताः शुभाः कन्याः सर्वाः कमललोचनाः ।
सर्वलक्षणसम्पूर्णाः कश्यपाय ब्रयोदशा ॥ ५ ॥
तासां नामानि वक्ष्यामि निबोधत ममाधुना ।
अदितिर्दितिर्दनुः काला मुहूर्ता सिंहिका मुनिः ॥ ६ ॥
इरा क्रोधा च सुरभिर्विनता सुरसा खसा ।
कहूश्च सरमा चैव या तु देवशुनी स्मृता ॥ ७ ॥
दक्षस्यैता दुहितरस्ताः प्रादात् कश्यपाय सः ।
तासां ज्येष्ठा वरिष्ठा च अदितिर्नामतो द्विज ॥ ८ ॥
अदितिः सुषुवे पुत्रान् द्वादशाग्निसमप्रभान् ।
तेषां नामानि वक्ष्यामि शृणुष्व गदतो मम ॥ ९ ॥

युक्त होता है। द्वादशन्! सृष्टि-विस्तारके लिये द्वादशा तथा अन्य प्रजापतियोंद्वारा जो सर्ग और अनुसर्ग सम्पादित हुए, उन सबको मैंने संक्षेपसे आपको बता दिया। जो द्विजाति मानव भगवान् विष्णुमें मन लगाकर इन प्रसङ्गोंको सदा पढ़ेंगे वे निर्मल ही जायेंगे ॥ ६२—६७ ॥

सूतजी बोले—द्वादशन्! परमात्मा भगवान् विष्णुसे जिस प्रकार देव, दानव और यक्ष आदि उत्पन्न हुए, वह जगत्की सृष्टिका बृत्तान्त मैंने आपसे कह दिया। अब ऋषियोंके निकट जिस उद्देश्यको लेकर पहले आपने मुझसे प्रश्न किया था कि 'वसिष्ठजी मित्रावरुणके पुत्र कैसे हो गये?' उसी पुरातन पवित्र कथाको कहूँगा। भरद्वाजजी! आप एकाग्रचित्त हो, विशेष सावधानीके साथ उसे सुनिये ॥ १—३ ॥

सम्पूर्ण धर्म और अर्थोंके तत्त्वको जाननेवाले, समस्त वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ तथा समग्र विद्याओंके पारदर्शी 'दक्ष' नामक प्रजापतिने अपनी तेरह सुन्दरी कन्याओंको, जो सभी कमलके समान नेत्रोंवाली और समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थीं, कश्यप मुनिको दिया था। उनके नाम बतलाता हैं, आप लोग इस समय मुझसे उनके नाम जान लें—अदिति, दिति, दनु, काला, मुहूर्ता, सिंहिका, मुनि, इरा, क्रोधा, सुरभि, विनता, सुरसा, खसा, कहू और सरमा, जो देवताओंकी कुतिया कही गयी हैं—ये सभी दक्ष-प्रजापतिकी कन्याएँ हैं*। इनको दक्षने कश्यपजीको समर्पित किया था। विप्रबर! अदिति नामकी जो कन्या थी, वही इन सबमें श्रेष्ठ और बड़ी थी ॥ ४—८ ॥

अदितिने बारह पुत्रोंको उत्पन्न किया, जो अग्निके समान कानितमान् एवं तेजस्वी थे। उन सबके नाम बतला रहा हैं, आप मुझसे उन्हें सुनें।

* अध्याय पाँचवें ४८—४९ श्लोकोंमें कश्यपजी के नाम आये हैं। यहाँ पंद्रह नाम आये हैं; इनमें 'मुहूर्ता' और 'सरमा'—ये दो नाम अधिक हैं। 'मुहूर्ता' तो धर्मकी पत्नी थी। 'सरमा' कश्यपकी पत्नी होनेपर भी दक्षकन्या नहीं थी। इसके अतिरिक्त अरिष्ठा एवं ताम्राके स्थानपर यहाँ काला और सिंहिका नाम आये हैं। ये नाम अन्यत्र पुराणोंमें भी आये हैं।

† यद्यपि पाँचवें अध्यायके ५१—५२ श्लोकोंमें अदितिकी सन्तानोंका वर्णन आ गया है; अतः यहाँ इस प्रसङ्गकी पुनर्लक्षित जान पड़ती है; तथापि इसका समाधान यह है कि वहाँ सृष्टिवर्णनके प्रसङ्गमें वह यात कही गयी है और यहाँ 'वसिष्ठ तथा अगस्त्यजीकी मित्रावरुणके पुत्ररूपमें पुनरुत्पत्ति किये हुई?' इस प्रश्नके समाधानके प्रसङ्गमें मित्र और वरुण देवताका परिचय देना आवश्यक हुआ। वे दोनों बारह अदितियोंमें परिगणित हैं; अतः अदितिके उन बारहों पुत्रोंका पुनः वर्णन प्रसंगवशात् आ गया है; अतः पुनर्लक्षि-दोष नहीं मानना चाहिये।

यैरिदं वासरं नक्तं वर्तते क्रमशः सदा ।
भगोऽशुस्त्वर्यमा चैव मित्रोऽथ वरुणस्तथा ॥ १०

सविता चैव धाता च विवस्वांशु महामते ।
त्वष्टा पूषा तथैवेन्द्रो विष्णुद्वादशमः स्मृतः ॥ ११

एते च द्वादशादित्यास्तपने वर्षयन्ति च ।
तस्याशु मध्यमः पुत्रो वरुणो नाम नामतः ॥ १२

लोकपाल इति ख्यातो वारुण्यां दिशि शाव्यते ।
पश्चिमस्य समुद्रस्य प्रतीच्यां दिशि राजते ॥ १३

जातस्तपमयः श्रीमानास्ते नाम शिलोच्चयः ।
सर्वरत्नमयैः शृङ्गधर्तुप्रस्त्रवणान्वितैः ॥ १४

संयुक्तो भाति शैलेशो नानारत्नमयः शुभः ।
महादरीगुहाभिक्षु सिंहशार्दूलनादितः ॥ १५

नानाविविक्तभूमीषु सिद्धगन्धर्वसेवितः ।
यस्मिन् गते दिनकरे तमसाऽपूर्यते जगत् ॥ १६

तस्य शृङ्गे महादिव्या जाम्बूनदमयी शुभा ।
रम्या मणिमयैः स्तम्भैर्विहिता विशुकर्मणा ॥ १७

पुरी विश्वावती नाम समृद्धा भोगसाधनैः ।
तस्यां वरुण आदित्यो दीप्यमानः स्वतेजसा ॥ १८

पाति सर्वानिमौल्नोक्तान् नियुक्तो छ्रह्यणा स्वयम् ।
उपास्यमानो गन्धर्वैस्तथैवाप्सरसां गणैः ॥ १९

दिव्यगन्धानुलिपाङ्गो दिव्याभरणभूषितः ।
कदाचिद्गुणो यातो मित्रेण सहितो वनम् ॥ २०

कुरुक्षेत्रे शुभे रम्ये सदा ब्रह्मर्हिंसेविते ।
नानापुष्पफलोपेते नानातीर्थसमाकुले ॥ २१

आश्रमा यत्र दृश्यन्ते मुनीनामूर्धरितसाम् ।
तस्मिस्तीर्थे समाश्रित्य बहुपुष्पफलोदके ॥ २२

चीरकृच्छाजिनधरी चरन्ती तप उत्तमम् ।
तत्रैकस्मिन् वनोद्देशो विमलोदो हृदः शुभः ॥ २३

उन्होंके द्वारा सर्वदा क्रमशः दिन और रात होते रहते हैं । भग, अंशु, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धरता, विवस्वान्, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और बारहवें विष्णु हैं । ये बारह आदित्य तपते और वर्षा करते हैं ॥ २—११५ ॥

अदितिके मध्यम पुत्र वरुण 'लोकपाल' कहे गये हैं; इनकी स्थिति वरुण-दिशा (पश्चिम)-में बतलायी जाती है । ये पश्चिम दिशामें पश्चिम समुद्रके तटपर सुशोभित होते हैं । वहाँ एक सुन्दर सुवर्णमय पर्वत है । उसके शिखर सब रत्नमय हैं । उनपर नाना प्रकारकी धातुएँ और इरने हैं । इनसे युक्त और नाना प्रकारके रत्नोंसे परिपूर्ण वह सुन्दर पर्वत बड़ी शोभा पाता है । उसमें बड़े-बड़े दर्ते और गुहाएँ हैं, जहाँ वाष और सिंह दहाड़ते रहते हैं । वहाँके अनेकानेक एकान्त स्थलोंपर सिंह और गन्धर्व बास करते हैं । जब सूर्य वहाँ पहुँचते हैं, तब समस्त संसार अन्धकारसे पूर्ण हो जाता है । उसी पर्वतके शिखरपर विश्वकर्माकी बनायी हुई एक 'विश्वावती' नामकी शोभनपुरी है, जो बड़ी, दिव्य तथा सुवर्णसे बनी हुई है और उसमें मणियोंके खंभे लगे हैं । इस प्रकार वह पुरी रमणीय एवं सम्पूर्ण भोग-साधनोंसे सम्पन्न है । उसीमें अपने तेजसे प्रकाशित होते हुए 'वरुण' नामक आदित्य ब्रह्माजीकी प्रेरणासे इन सम्पूर्ण लोकोंका पालन करते हैं । वहाँ उनकी सेवामें गन्धर्व और अप्सराएँ रहा करती हैं ॥ १२—१९ ॥

एक दिन वरुण अपने अङ्गोंमें दिव्य चन्दनका अनुलेप लगाये, दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हो 'मित्र' के साथ बनको गये । छ्रह्यर्हिंगण सदा जिसका सेवन करते हैं, जो नाना प्रकारके फल और फूलोंसे युक्त तथा अनेक तीर्थोंसे व्याप है; जहाँ ऊर्ध्वरता मुनियोंके आश्रम दृष्टिगोचर होते हैं तथा जो प्रचुर फल-फूल और जलसे पूर्ण है, उस सुन्दर सुरम्य कुरुक्षेत्र तीर्थमें पहुँचकर वे दोनों देवता चौर और कृष्णमृगचर्म धारण करके तपस्या करने लगे । वहाँपर बनके एक भागमें निर्मल जलसे भरा हुआ एक सुन्दर सरोवर है,

बहुगुल्मलताकीणों नानापक्षिनिधेवितः ।
नानातरुवनच्छद्ग्रो नलिन्या चोपशोभितः ॥ २४

पौण्ड्रीक इति ख्यातो मीनकच्छुपसेवितः ।
ततस्तु मित्रावरुणी भातरी वनचारिणी ।
तं तु देशं गती देवी विचरन्ती यदुच्छया ॥ २५

ताभ्यां तत्र तदा दृष्टा उर्वशी तु वराप्सरा ।
स्नायन्ती सहितान्याभिः सखीभिः सा वरानना ।
गायन्ती च हसन्ती च विश्वस्ता निर्जने वने ॥ २६

गौरी कमलगार्भाभा स्निग्धकृष्णशिरोरुहा ।
पश्यपत्रविशालाक्षी रक्तोष्टी मृदुभाषिणी ॥ २७

शङ्कुकुन्देन्दुधवलैर्दनौरविरलैः समैः ।
सुधृः सुनासा सुमुखी सुललाटा मनस्त्वनी ॥ २८

सिंहवत् सूक्ष्ममध्याङ्गी पीनोरुजघनस्तनी ।
मधुरालापवतुरा सुमध्या चारुहासिनी ॥ २९

रक्तोत्पलकरा तन्वी सुपदी विनयान्विता ।
पूर्णचन्द्रनिभा बाला मत्तद्विरदगामिनी ॥ ३०

दृष्ट्वा तस्यास्तु तदूपं ती देवी विस्मयं गती ।
तस्या हास्येन लास्येन स्मितेन ललितेन च ॥ ३१

मृदुना वायुना चैव शीतानिलसुगन्धिना ।
मत्तभ्रमरमीतेन पुंस्कोकिलरुतेन च ॥ ३२

सुस्वरेण हि गीतेन उर्वश्या मधुरेण च ।
ईक्षितो च कटाक्षेण स्कन्दतुस्तावुभावपि ।
निमे: शापादथोत्कम्य स्वदेहान्मनिसत्तम ॥ ३३

वसिष्ठ मित्रावरुणात्मजोऽसी-
त्यथोचुरागत्य हि विश्वदेवाः ।
रेतस्त्रिभागं कमलैऽचरत्तद्
वसिष्ठ एवं तु पितामहोत्तेः ॥ ३४

* एक बार राजा निमिने यज्ञ करनेकी इच्छासे अपने पुरोहित वसिष्ठजीसे परामर्श किया। वसिष्ठजीने कहा—‘मैं देवलोकमें एक यज्ञ आरम्भ करा चुका हूँ। उसके समाप्त होनेतक आप अपना यज्ञ रोके रहें। वहाँसे आकर हम आपका यज्ञ आरम्भ करायेंगे।’ निमिने उनकी प्रतीक्षा नहीं की। वसिष्ठजीने लौटनेपर यज्ञ होता देख राजा को शाप दिया कि ‘तुम विदेह हो जाओ।’ तब राजा भी शाप दिया कि ‘आपका भी यह शरीर न रहे।’

जो बहुत-सी झाँड़ियों और बेलोंसे आवृत है; अनेकानेक पक्षी उसका सेवन करते हैं। वह भाँति-भाँतिके वृक्षसमूहोंसे आच्छान्त्र और कमलोंसे सुशोभित है। उस सरोवरकी ‘पौण्ड्रीक’ नामसे प्रसिद्धि है। उसमें बहुत-सी मछलियाँ और कछुए निवास करते हैं। तप आरम्भ करनेके पश्चात् वे दोनों भाई—मित्र और वरुणदेवता एक दिन वनमें विचरण करते और स्वेच्छानुसार घूमते हुए उस सरोवरकी ओर गये। २०—२५॥

वहाँ उन दोनोंने उस समय श्रेष्ठ एवं सुन्दरी अप्सरा उर्वशीको देखा, जो अपनी अन्य सहेलियोंके साथ स्नान कर रही थी। वह सुमुखी अप्सरा उस निर्जन वनमें विश्वस्त होकर हैसती और गती थी। उसका वर्ण नोरा था। कमलके भीतरी भागके समान उसकी कान्ति थी। उसकी अलंकै काली-काली और चिकनी थीं, औंखें कमल-दलके समान बड़ी-बड़ी थीं, होठ लाल थे, उसका भाषण बहुत ही मधुर था। उसके हाँत शङ्कु, कुन्द और चन्द्रमाके समान श्वेत, परस्यर मिले हुए और वरावर थे। उस मनस्त्वनीकी भौंहें, नासिका, मुख और ललाट—सभी सुन्दर थे। कटिभाग सिंहके कटिप्रदेशकी भाँति पतला था। उरोज, ऊरु और जघन—ये पोटे और घने थे। वह मधुर भाषण करनेमें चतुर थी। उसका मध्यभाग सुन्दर और मुस्कान मनोहर थी। दोनों हाथ लाल कमलके समान सुन्दर एवं कोमल थे। शरीर पतला और पैर सुन्दर थे। वह आला बड़ी ही विनीता थी। उसका मुख पूर्णचन्द्रके समान आङ्गोदजनक और गति मत्त गजराजके समान मन्द थी। उर्वशीके उस दिव्य रूपको देखकर वे दोनों देवता विस्मयमें पड़ गये। उसके लास्य (नृत्य), हास्य, ललितभाव-प्रिंगित मन्द मुस्कान और मधुर सुरीले गानसे तथा शीतल-मन्द-सुगन्धित मलयानिलके स्पर्शसे एवं मतवाले भौंरोंके संगीत और कोकिलोंके कलरवसे उन दोनोंका मन और भी मुग्ध हो गया। साथ ही उर्वशीकी तिरछी चित्तवनके शिकार होकर वे दोनों ही वहाँ स्खलित हो गये (उनके बीर्यका पतन हो गया)। मनिसत्तम! इसके बाद निमिके शापवश* वसिष्ठजीका जीवात्मा अपने शरीरसे पृथक् होकर (मित्रावरुणके बीर्यमें आविष्ट हुआ)॥ २६—३३॥

* वसिष्ठ! तुम मित्रावरुणके पुत्र होओगे—इस प्रकार विश्वेदेवोने (निमिके शुक्रमें) आकर कहा था तथा ब्रह्मजीका भी यही कथन था; अतएव मित्रावरुणके तीन स्थानोंपर

त्रिधा समभवद्रेतः कमलेऽथ स्थले जले।
अरविन्दे वसिष्ठस्तु जातः स मुनिसत्तमः।
स्थले त्वगस्त्यः साम्भूतो जले मत्स्यो महाद्युतिः ॥ ३५

स तत्र जातो मतिमान् वसिष्ठः
कुम्भे त्वगस्त्यः सलिलेऽथ मत्स्यः।
स्थानत्रये तत्पतितं समानं
मित्रस्य यस्माद्गुणस्य रेतः ॥ ३६

एतस्मिन्ब्रेव काले तु गता सा उर्वशी दिवम्।
उपेत्य तानुषीन् देवौ गतौ भूयः स्वमाश्रमम्।
यमावपि तु तप्येते पुनरुग्मं परं तपः ॥ ३७

तपसा प्राप्नुकामी तौ परं ज्योतिः सनातनम्।
तपस्यन्तौ सुरशेष्ठौ ब्रह्माऽऽगत्येदभग्नवीत् ॥ ३८

मित्रावरुणकौ देवौ पुत्रवन्तौ महाद्युती।
सिद्धिर्भविष्यति यथा युवयोर्वैष्णवी पुनः ॥ ३९

स्वाधिकारेण स्थीयेतामधुना लोकसाक्षिकौ।
इत्युक्त्वान्तर्देवे ब्रह्मा तौ स्थितौ स्वाधिकारकौ ॥ ४०

एवं ते कथितं विष्र वसिष्ठस्य महात्मनः।
मित्रावरुणपुत्रत्वमगस्त्यस्य च धीमतः ॥ ४१

इदं पुंसीयमाख्यानं वारुणं पापनाशनम्।
पुत्रकामास्तु ये केचिच्छृणवन्तीदं शुचिव्रताः।
अचिरादेव पुत्रांस्ते लभन्ते नात्र संशयः ॥ ४२

यश्चैतत्पठते नित्यं हृव्यकव्ये द्विजोत्तमः।
देवाश्च पितरस्तस्य तृप्ता यान्ति परं सुखम् ॥ ४३

यश्चैतच्छृणुयान्नित्यं प्रातरुत्थाय मानवः।
नन्दते स सुखं भूमी विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ४४

इत्येतदाख्यानमिदं मयेरितं
पुरातनं वेदविदैरुदीरितम्।
पठिष्यते यस्तु शृणोति सर्वदा
स याति शुद्धो हरिलोकमञ्जसा ॥ ४५

गिरे हुए वीर्यमेंसे जो भाग कमलपर गिरा था, उसीसे वसिष्ठजी हुए। उन दोनों देवताओंका वीर्य तीन भागोंमें विभक्त होकर कमल, जल और स्थलपर (घड़ेमें) गिरा। कमलपर गिरे हुए वीर्यसे मुनिवर वसिष्ठ उत्पन्न हुए, स्थलपर गिरे हुए रेतस्से अगस्त्य और जलमें गिरे हुए शुक्रसे अत्यन्त कान्तिमान् मत्स्यकी उत्पत्ति हुई। इस तरह उस कमलपर बुद्धिमान् वसिष्ठ, कुम्भमें अगस्त्य और जलमें मत्स्यका आविर्भाव हुआ; वर्णोंकी मित्रावरुणका वीर्य तीनों स्थानोंपर वरावर गिरा था। इसी समय उर्वशी स्वर्गलोकमें चली गयी। वसिष्ठ और अगस्त्य—इन दोनों ऋषियोंको साथ लेकर वे दोनों देवता पुनः अपने आश्रममें लौट आये और पुनः उन दोनोंने अत्यन्त उग्र तप आरम्भ किया ॥ ३४—३७ ॥

तपस्याके द्वारा सनातन परम ज्योति (ब्रह्माधाम)-को प्राप्त करनेकी इच्छावाले उन दोनों तपस्यी देवेशरोंसे ब्रह्माजीने आकर यह कहा—‘महान् कान्तिमान् और पुत्रवान् मित्र तथा वरुण देवताओं। तुम दोनोंको पुनः वैष्णवी सिद्धि प्राप्त होगी। इस समय संसारके साक्षीरूपसे तुम लोग अपने अधिकारपर स्थित हो जाओ।’ यों कहकर ब्रह्माजी अन्तर्भीन हो गये और वे दोनों देवता अपने अधिकृत पदपर स्थित हुए ॥ ३८—४० ॥

ब्राह्मण ! इस प्रकार महात्मा वसिष्ठजी और बुद्धिमान् अगस्त्यजी जिस तरह मित्रावरुणके पुत्र हुए थे, वह सब प्रसङ्ग मैंने आपसे कह दिया। यह वरुणदेवता-सम्बन्धी पुंसवनाख्यान पाप नष्ट करनेवाला है। जो लोग पुत्रकी कामनासे शुद्ध ज्ञतका आचरण करते हुए इसका श्रवण करते हैं, वे शोष्ण ही अनेक पुत्र प्राप्त करते हैं—इसमें संदेह नहीं है। जो उत्तम ब्राह्मण हृव्य (देववाग) और कव्य (पितृवाग)-में इसका पाठ करता है, उसके देवता तथा पितर तृप्त होकर अत्यन्त सुख प्राप्त करते हैं। जो मनुष्य नित्य प्रातःकाल उठकर इसका श्रवण करता है, वह पृथ्वीपर सुखपूर्वक प्रसन्नताके साथ रहता है और फिर विष्णुलोकको प्राप्त करता है। वेदवेताओंके द्वारा प्रतिपादित इस पुरातन उपाख्यानको, जिसे मैंने कहा है, जो लोग सादर पढ़ेंगे और सुनेंगे, वे शुद्ध होकर अनायास ही विष्णुलोकको प्राप्त कर लेंगे ॥ ४१—४५ ॥

सातवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजीके द्वारा तपस्यापूर्वक श्रीहरिकी आराधना; 'मृत्युञ्जय-स्तोत्र'का पाठ और मृत्युपर विजय प्राप्त करना

श्रीभरद्वाज उवाच

मार्कण्डेयेन मुनिना कथं मृत्युः पराजितः।
एतदाख्याहि मे सूत त्वयैतत् सूचितं पुरा॥ १

सूत उवाच

इदं तु महदाख्यानं भरद्वाज शृणुष्व मे।
शृण्वन्तु ऋषयश्चेष्टे पुरावृत्तं ब्रवीम्यहम्॥ २
कुरुक्षेत्रे महापुण्ये व्यासपीठे वराश्रमे।
तत्रासीनं मुनिवरं कृष्णाद्वैपायनं मुनिम्॥ ३
कृतस्नानं कृतजग्यं मुनिशिष्यैः समावृतम्।
वेदवेदार्थतत्त्वज्ञं सर्वशास्त्रविशारदम्॥ ४
प्रणिपत्य यथान्यायं शुकः परपथार्थिकः।
इममेवार्थमुद्दिश्य तं पप्रच्छ कृताञ्जलिः॥ ५
यमुद्दिश्य चर्यं पृष्ठास्त्वयात्र मुनिसंनिधी।
नरसिंहस्य भक्तेन कृततीर्थनिवासिना॥ ६

श्रीशुक उवाच

मार्कण्डेयेन मुनिना कथं मृत्युः पराजितः।
एतदाख्याहि मे तात श्रोतुमिच्छामि तेऽधुना॥ ७

ब्राह्म उवाच

मार्कण्डेयेन मुनिना यथा मृत्युः पराजितः।
तथा ते कथयिष्यामि शृणु वत्स महामते॥ ८
शृण्वन्तु मुनयश्चेष्टे कथयमानं भयाधुना।
मच्छिष्याश्चेव शृण्वन्तु महदाख्यानमुत्तमम्॥ ९

श्रीभरद्वाजजी बोले—सूतजी! मार्कण्डेय मुनिने मृत्युको कैसे पराजित किया? यह मुझे बताइये। आपने पहले यह सूचित किया था कि वे मृत्युपर विजयी हुए थे*॥ १॥

सूतजी बोले—भरद्वाजजी! इस महान् पुरातन इतिहासको आप और ये सभी ऋषि सुनें; मैं कह रहा हूँ। अत्यन्त पवित्र कुरुक्षेत्रमें, व्यासपीठपर, एक सुन्दर आश्रममें स्नान तथा जप आदि समाप्त करके व्यासासनपर बैठे हुए और शिष्यभूत मुनियोंसे घिरे हुए मुनिवर महर्षि कृष्णाद्वैपायनसे, जो वेद और वेदार्थोंके तत्त्ववेत्ता तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंके विशेषज्ञ थे, परम धर्मात्मा शुकदेवजीने हाथ जोड़ उन्हें यथोचितरूपसे प्रणाम कर इसी विषयको जाननेके लिये प्रश्न किया था, जिसके लिये कि इन मुनियोंके निकट आप पुण्यतीर्थनिवासी नृसिंहभक्तने मुझसे पूछा है॥ २—६॥

श्रीशुकदेवजी बोले—पिताजी! मार्कण्डेय मुनिने मृत्युपर कैसे विजय पायी? यह कथा कहिये। इस समय मैं आपसे यही सुनना चाहता हूँ॥ ७॥

व्यासजी बोले—महामते पुत्र! मार्कण्डेय मुनिने जिस प्रकार मृत्युपर विजय पायी, वह तुमसे कहता हूँ, सुनो। मुझसे कहे जानेवाले इस महान् एवं उत्तम उपाख्यानको ये सभी मुनि और मेरे शिष्यगण भी सुनें।

* यथापि नरसिंहपुराणके गत अध्यायोंमें मार्कण्डेयजीका नाम कहीं नहीं आया है। अतः 'आपने पहले यह सूचित किया था—(त्वयैतत् सूचितं पुरा)' इत्यादि कथनकी कोई संगति नहीं प्रतीत होती, तथापि प्रथम अध्यायके चंद्रहर्षे श्लोकसे इस यातकी सूचना मिलती है कि भरद्वाजजीने सूतजीके मुखसे पहले 'वाराहीसंहिता' सुनी थी, उसके बाद उन्होंने 'नरसिंहसंहिता' सुननेकी इच्छा प्रकट की। तब सूतजीने 'नरसिंहसंहिता' सुनाना आरम्भ किया था। अतः यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वाराहीसंहिता-श्रवणके प्रसंगमें भरद्वाजजीको सूतजीके मुखसे मार्कण्डेयजीके मृत्युपर विजय पानेके इतिहासकी कोई सूचना प्राप्त हुई हो, जिसका स्मरण उन्होंने यहाँ दिलाया है।

भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्नो मृकण्डुर्नामि वै सुतः ।
 सुमित्रा नाम वै पल्ली मृकण्डोस्तु महात्मनः ॥ १०
 धर्मज्ञा धर्मनिरता पितिशुश्रूषणे रता ।
 तस्यां तस्य सुतो जातो मार्कण्डेयो महामतिः ॥ ११
 भृगुपौत्रो महाभागो बालत्वेऽपि महामतिः ।
 ववृद्धे वल्लभो बालः पित्रा तत्र कृतक्रियः ॥ १२
 तस्मिन् वै जातमात्रे तु आगमी कश्चिदद्वितीय ।
 वर्षे द्वादशामे पूर्णे मृत्युरस्य भविष्यति ॥ १३
 श्रुत्वा तन्मातृपितरी दुःखिती तौ बभूवतुः ।
 विद्युमानहृदयी तं निरीक्ष्य महामते ॥ १४
 तथापि तत्पिता तस्य यत्नात् काले क्रिया ततः ।
 चकार सर्वा मेधावी उपनीतो गुरोर्गृहे ॥ १५
 वेदानेवाभ्यसन्नास्ते गुरुशुश्रूषणोद्यतः ।
 स्वीकृत्य वेदशास्त्राणि स पुनर्गृहमागतः ॥ १६
 मातापितृव्रमस्कृत्य पादयोविनयान्वितः ।
 तस्थी तत्र गृहे धीमान् मार्कण्डेयो महामुनिः ॥ १७
 तं निरीक्ष्य महात्मानं सत्प्रज्ञं च विचक्षणम् ।
 दुःखिती तौ भृशं तत्र तन्मातृपितरी शुचा ॥ १८
 तौ हृष्ट्वा दुःखमापत्री मार्कण्डेयो महामतिः ।
 उवाच वचनं तत्र किमर्थं दुःखमीहशम् ॥ १९
 सदैतत् कुरुषे मातस्तातेन सह धीमता ।
 वक्तुमर्हसि दुःखस्य कारणं मम पृच्छतः ॥ २०
 इत्युक्ता तेन पुत्रेण माता तस्य महात्मनः ।
 कथयामास तत्सर्वमागमी यदुवाच ह ॥ २१
 तच्छ्रुत्वासौ मुनिः प्राह मातरं पितरं पुनः ।
 पित्रा सार्थं त्वया मातरं कार्यं दुःखपण्वपि ॥ २२
 अपनेष्यामि भो मृत्युं तपसा नात्र संशयः ।
 यथा चाहं चिरायुः स्यां तथा कुर्यामहं तपः ॥ २३
 इत्युक्त्वा तौ समाश्वास्य पितरी वनमध्यगात् ।
 वल्लीवटं नाम वनं नानाऋषिनिषेवितम् ॥ २४
 तत्रासौ मुनिभिः सार्थमासीनं स्वपितामहम् ।
 भृगुं ददर्श धर्मज्ञं मार्कण्डेयो महामतिः ॥ २५

भृगुजीके उनकी पत्नी ख्यातिके गर्भसे 'मृकण्डु' नामक एक पुत्र हुआ। महात्मा मृकण्डुकी पत्नी सुमित्रा हुई। वह धर्मको जाननेवाली, धर्मपरायणा और पतिकी सेवामें लगी रहनेवाली थी। इसीके गर्भसे मृकण्डुके पुत्र मेधावी मार्कण्डेयजी हुए। ये भृगुके पौत्र महाभाग मार्कण्डेय वचपनमें भी बड़े बुद्धिमान् थे। पिताके द्वारा जातकर्म आदि संस्कार कर देनेपर माँ-बापके लाडले बालक मार्कण्डेयजी क्रमशः बढ़ने लगे ॥ ८—१२ ॥

उनके जन्म लेते ही किसी भविष्यवेत्ता ज्योतिषीने यह कहा था कि 'बारहवाँ वर्षे पूर्ण होते ही इस बालककी मृत्यु हो जायगी।' यह सुनकर उनके माता-पिता बहुत ही दुःखी हुए। महामते ! उन्हें देखा-देखका उन दोनोंका हृदय व्यथित होता रहता था, तथापि उनके पिताने उनके नामकरण आदि सभी संस्कार किये। तत्पश्चात् मेधावी बालक मार्कण्डेय गुरुके घर ले जाये गये। वहाँ उनका उपनयन-संस्कार हुआ। वहाँ वे गुरुकी सेवामें तत्पर रहकर वेदाभ्यास करते हुए ही रहने लगे। वेद-शास्त्रोंका यथावत् अध्ययन करके वे पुनः अपने घर लौट आये। घर आनेपर बुद्धिमान् महामुनि मार्कण्डेयने विनयपूर्वक माता-पिताके चरणोंमें शीश झुकाया और तबसे वे घरपर ही रहने लगे ॥ १३—१७ ॥

शुकदेव ! उस समय उन परम बुद्धिमान् महात्मा एवं बिद्वान् पुत्रको देखकर माता-पिता शोकसे बहुत ही दुःखी हुए। उन्हें दुःखी देखकर महामति मार्कण्डेयजीने कहा—'माँ ! तुम बुद्धिमान् पिताजीके साथ वयों इस प्रकार निरन्तर दुःखी रहा करती हो ? मैं पूछता हूँ मुझसे अपने दुःखका कारण बताऊओ।' अपने पुत्र मार्कण्डेयजीके इस प्रकार पूछनेपर उन महात्माकी माताने, ज्योतिषी जो कुछ कह गया था, वह सब कह सुनाया। यह सुनकर मार्कण्डेयमुनिने माता-पितासे कहा—'माँ ! तुम और पिताजी तनिक भी दुःख न मानो। मैं तपस्याके द्वारा अपनी मृत्युको दूर हटा दूँगा, इसमें संशय नहीं है। मैं ऐसा तप करूँगा, जिससे चिरजीवी हो सकूँ' ॥ १८—२३ ॥

इस प्रकार कहकर, माता-पिताको आशासन देकर, वे अनेक ऋषियोंसे सुसेवित 'बल्लीवट' नामक वनमें गये। वहाँ पहुँचकर महामति मार्कण्डेयजीने मुनियोंके

अभिवाद्य यथान्यायं मुनीश्चैव स धार्मिकः।
कृताङ्गलिपुटो भूत्वा तस्थी तत्सुरतो दमी॥२६
गतायुषं ततो दृष्ट्वा पौत्रं बालं महामतिः।
भृगुराह महाभागं मार्कण्डेयं तदा शिशुम्॥२७
किमागतोऽसि पुत्रात्र पितुस्ते कुशलं पुनः।
मातुश्च बान्धवानां च किमागमनकारणम्॥२८
इत्येवमुक्तो भृगुणा मार्कण्डेयो महामतिः।
उवाच सकलं तस्मै आदेशिवचनं तदा॥२९
पौत्रस्य चचनं श्रुत्वा भृगुस्तु पुनरब्रवीत्।
एवं सति महाबुद्धे किं त्वं कर्म चिकीर्षासि॥३०

मार्कण्डेय उक्ताच

भूतापहारिणं मृत्युं जेतुमिच्छामि साम्प्रतम्।
शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि तत्रोपायं वदस्व नः॥३१

भृगुरकाच

नारायणमनाराध्य तपसा महता सुतं।
को जेतुं शब्दन्यान्मृत्युं तस्मात्तं तपसाच्चर्य॥३२
तमनन्तमजं विष्णुमच्युतं पुरुषोत्तमम्।
भक्तप्रियं सुरश्रेष्ठं भक्त्या त्वं शरणं द्वज॥३३
तमेव शरणं पूर्वं गतवान्नारदो मुनिः।
तपसा महता वत्स नारायणमनामयम्॥३४
तत्प्रसादान्महाभाग नारदो ब्रह्मणः सुतः।
जरां मृत्युं विजित्वाशु दीर्घायुर्वर्धते सुखम्॥३५
तमृते पुण्डरीकाक्षं नारसिंहं जनार्दनम्।
कः कुर्यान्मानदो वत्स मृत्युसत्तानिवारणम्॥३६
तमनन्तमजं विष्णुं कृष्णं जिष्णुं श्रियः पतिम्।
गोविन्दं गोपतिं देवं सततं शरणं द्वज॥३७
नरसिंहं महादेवं यदि पूजयसे सदा।
वत्स जेतासि मृत्युं त्वं सततं नात्र संशयः॥३८

व्यास उक्ताच

उक्तः पितामहेनैवं भृगुणा पुनरब्रवीत्।
मार्कण्डेयो महातेजा विनयात् स्वपितामहम्॥३९

साथ विराजमान अपने पितामह धर्मात्मा भृगुजीका दर्शन किया। उनके साथ ही अन्य ऋषियोंका भी यथोचित अभिवादन करके धर्मपरायण मार्कण्डेयजी मनोनियहपूर्वक दोनों हाथ जोड़कर भृगुजीके समक्ष खड़े हो गये। महामति भृगुजीने अपने बालक पौत्र महाभाग मार्कण्डेयको, जिसकी आयु प्रायः बीत चुकी थी, देखकर कहा— 'वत्स ! तुम यहाँ कैसे आये ? अपने माता-पिता और बान्धवजनोंका कुशल कहो तथा यह भी बतलाओ कि यहाँ तुम्हारे आनेका क्या कारण है ?' भृगुजीके इस प्रकार पूछनेपर महाप्राज्ञ मार्कण्डेयजीने उनसे उस समय ज्योतिषीकी कही हुई सारी चात कह सुनायी। पौत्रकी चात सुनकर भृगुजीने युनः कहा—'महाबुद्धे ! ऐसी स्थितिमें तुम कौन-सा कर्म करना चाहते हो ?' ॥ २४—३० ॥

मार्कण्डेयजी बोले—भगवन् ! मैं इस समय प्राणियोंका अपहरण करनेवाले मृत्युको जीतना चाहता हूँ, इसीलिये आपकी शरणमें आया हूँ। इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये आप मुझे कोई उपाय बतायें ॥ ३१ ॥

भृगुजी बोले—पुत्र ! बहुत बड़ी तपस्याके द्वारा भगवान् नारायणकी आराधना किये बिना कौन मृत्युको जीत सकता है ? इसलिये तुम तपस्याद्वारा उन्होंका अर्चन करो। भक्तोंके प्रियतम और देवताओंमें सर्वश्रेष्ठ उन अनन्त, अजन्मा, अन्युत पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुकी शरणमें जाओ। वत्स ! पूर्वकालमें नारदमुनि भी महान् तपके द्वारा उन्हों अनापय भगवान् नारायणकी शरणमें गये थे। महाभाग ! ब्रह्मपुत्र नारदजी उन्होंकी कृपासे जरा और मृत्युको शीघ्र ही जीतकर दीर्घायु हो सुखपूर्वक रहते हैं। पुत्र ! उन कमललोचन नृसिंहस्वरूप भगवान् जनार्दनके बिना कौन मनुष्य यहाँ मृत्युकी सत्ताका निवारण कर सकता है ? तुम निरन्तर उन्हों अनन्त, अजन्मा, विजयी, कृष्णवर्ण, लक्ष्मीपति, गोविन्द, गोपति भगवान् विष्णुकी शरणमें जाओ ! वत्स ! यदि तुम सदा उन महान् देवता भगवान् नरसिंहकी पूजा करते रहोगे तो सदाके लिये मृत्युपर विजय प्राप्त कर लोगे, इसमें संशय नहीं है ॥ ३२—३८ ॥

व्यासजी बोले—पितामह भृगुके इस प्रकार कहनेपर महान् तेजस्वी मार्कण्डेयजीने उनसे विनयपूर्वक कहा ॥ ३९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

आराध्यः कथितस्तात् विष्णुर्बिश्वेश्वरः प्रभुः ।
कथं कुत्र मया कार्यमच्युताराधनं गुरो ।
येनासी मम तुष्टस्तु मृत्युं सद्योऽपनेष्यति ॥ ४०

भृगुरुवाच

तुङ्गभद्रेति विख्याता या नदी सह्यपर्वते ।
तत्र भद्रवटे वत्स त्वं प्रतिष्ठाप्य केशवम् ॥ ४१
आराध्य जगद्राथं गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ।
हृदि कृत्वेन्द्रियग्रामं मनः संयम्य तत्त्वतः ॥ ४२
हृतपुण्डरीके देवेशं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
ध्यायन्नेकमना वत्स द्वादशाक्षरमभ्यसन् ॥ ४३
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।
इमं मन्त्रं हि जपतो देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥
प्रीतो भवति विश्वात्मा मृत्युं येनापनेष्यति ॥ ४४

व्यास उवाच

इत्युक्तस्तं प्रणम्याथ स जगाम तपोबनम् ॥ ४५
सह्यपादोद्द्वायास्तु भद्रायास्तटमुत्तमम् ।
नानाद्वुमलताकीर्ण नानापुष्पोपशोभितम् ॥ ४६
गुल्मवेणुलताकीर्ण नानामुनिजनाकुलम् ।
तत्र विष्णुं प्रतिष्ठाप्य गन्धधूपादिभिः क्रमात् ॥ ४७
पूजयामास देवेशं मार्कण्डेयो महामुनिः ।
पूजयित्वा हरिं तत्र तपस्तेषे सुदुष्करम् ॥ ४८
निराहारो मुनिसत्र वर्षमेकमतन्द्रितः ।
मात्रोक्तकाले त्वासत्रे दिने तत्र महामतिः ॥ ४९
स्नात्वा यथोक्तविधिना कृत्वा विष्णोस्तथाचंनम् ।
हृदि कृत्वेन्द्रियग्रामं विशुद्धेनान्तरात्मना ॥ ५०
आसनं स्वस्तिकं बद्ध्वा कृत्वासी प्राणसंयमम् ।
अङ्कारोच्चारणाद्वीमान् हृत्पद्मं स विकासयन् ॥ ५१
तन्मध्ये रविसोमाग्निमण्डलानि यथाक्रमम् ।
कल्पयित्वा हरे: पीठं तस्मिन् देशे सनातनम् ॥ ५२

मार्कण्डेयजी बोले—तात ! गुरो ! आपने विश्वपति भगवान् विष्णुको आराध्य तो बतलाया, परंतु मैं उन अच्युतकी आराधना कहाँ और किस प्रकार करौँ ? जिससे वे शीघ्र प्रसन्न होकर मेरी मृत्युको दूर कर दें ॥ ४० ॥

भृगुजी बोले—सह्यपर्वतपर जो 'तुङ्गभद्रा' नामसे विख्यात नहीं है, वहाँ 'भद्रवट' नामक वृक्षके नीचे जगत्राथ भगवान् केशवकी स्थापना कर क्रमशः गन्ध और पुष्प आदिसे उनकी पूजा करो । इन्द्रियोंको मनमें नियन्त्रित कर, मनको भी पूर्णतः संयममें रखते हुए एकाग्रचित्त हो, 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—इस ह्रादशाक्षर मन्त्रका जप करो और अपने हृदयकमलमें शङ्ख, चक्र, गदा (एवं पद्म) धारण किये देवेश्वर भगवान् विष्णुका ध्यान किया करो । जो देवाधिदेव शार्ङ्गधन्वा विष्णुके इस ह्रादशाक्षर मन्त्रका जप करता है, उसके ऊपर वे विश्वात्मा प्रसन्न होते हैं । तुम भी इसका जप करो, जिससे प्रसन्न होकर वे तुम्हारी मृत्यु दूर कर देंगे ॥ ४१—४४ ॥

व्यासजी कहते हैं—वत्स ! भृगुजीके इस प्रकार कहनेपर उन्हें प्रणाम करके मार्कण्डेयजी सह्यपर्वतकी शाखासे निकली हुई तुङ्गभद्राके उत्तम तटपर विधिप्रकारके वृक्ष और लताओंसे भरे हुए नाना भौतिके पुष्पोंसे सुशोभित, गुल्म, लता और वेणुओंसे व्यास तथा अनेकानेक मुनिजनोंसे पूर्ण तपोबनमें गये । वहाँ वे महामुनिने देवेश्वर भगवान् विष्णुकी स्थापना करके क्रमशः गन्ध-धूप आदिसे उनकी पूजा करने लगे । भगवान्की पूजा करते हुए वहाँ उन्होंने निरालस्यभावसे निराहार रहकर सालभर अत्यन्त दुष्कर तप किया । माताका बतलाया हुआ समय निकट आनेपर उस दिन महामति मार्कण्डेयजीने वहाँ स्नान करके पूर्वोक्त विधिसे विष्णुकी पूजा की और स्वस्तिकासन बाँध इन्द्रियसमूहको मनमें संयत कर विशुद्ध अन्तःकरणसे युक्त हो प्राणायाम किया । फिर ॐकारके उच्चारणसे हृदयकमलको विकसित करते हुए उसके मध्यभागमें क्रमशः सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्निमण्डलकी कल्पना करके भगवान् विष्णुका पीठ निश्चित किया और उस स्थानपर

पीताम्बरधरं कृष्णं शशुचक्रगदाधरम्।
भावपुर्यः समध्यर्च्यं मनस्तस्मिन्निवेश्य च ॥ ५३
ब्रह्मरूपं हरिं ध्यायंस्ततो मन्त्रमुदीरयत्।
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ५४

व्यास उकाच

इत्येवं ध्यायतस्तस्य मार्कण्डेयस्य धीमतः।
मनस्तत्रैव संलग्नं देवदेवे जगत्पती ॥ ५५
ततो यमाज्ञया तत्र आगता यमकिंकराः।
पाशहस्तास्तु तं नेतुं विष्णुदूतैस्तु ते हताः ॥ ५६
शूलैः प्रहन्यमानास्तु द्विजं मुक्त्वा ययुस्तदा।
वयं निवर्त्य गच्छामो मृत्युरेवागामिष्यति ॥ ५७

विष्णुदूता ऊनुः

यत्र नः स्वामिनो नाम लोकनाथस्य शार्ङ्गिणः।
को यमस्तत्र मृत्युर्वा कालः कलयतां वरः ॥ ५८

व्यास उकाच

आगत्य स्वयमेवाह मृत्युः पाश्च महात्मनः।
मार्कण्डेयस्य ब्रह्माम विष्णुकिंकरशङ्क्षया ॥ ५९
तेऽप्युद्यम्याशु मुशलानायसान् विष्णुकिंकराः।
विष्णवाज्ञया हनिष्यामो मृत्युमद्येति संस्थिताः ॥ ६०
ततो विष्णवर्पितमना मार्कण्डेयो महामतिः।
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा देवदेवं जनार्दनम् ॥ ६१
विष्णुनैवोदितं यजत्स्तोत्रं कर्णे महात्मनः।
सुभाषितेन मनसा तेन तुष्टाव माधवम् ॥ ६२

मार्कण्डेय उकाच

नारायणं सहस्राक्षं पद्मानाभं पुरातनम्।
प्रणतोऽस्मि हृषीकेशं किं मे मृत्युः करिष्यति ॥ ६३
गोविन्दं पुण्डरीकाक्षमनन्तमजमव्ययम्।
केशवं च प्रपञ्चोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥ ६४
वासुदेवं जगद्योनि भानुवर्णमतीन्द्रियम्।
दामोदरं प्रपञ्चोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥ ६५

पीताम्बर तथा शङ्ख, चक्र, गदा भारण करनेवाले सनातन भगवान् श्रीकृष्णकी भावमय पुष्पोंसे पूजा करके उनमें अपने चित्तको लगा दिया। फिर उन द्वाष्टा-स्वरूप श्रीहरिका ध्यान करते हुए वे 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—इस मन्त्रका जप करने लगे ॥ ४५—५४ ॥

व्यासजी कहते हैं—शुकदेव ! इस प्रकार ध्यान करते हुए बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीका मन उन देवाधिदेव जगदीश्वरमें लीन हो गया। तदनन्तर यमराजकी आज्ञासे उन्हें ले जानेके लिये हाथोंमें पाश लिये हुए यमदूत वहाँ आये; परंतु भगवान् विष्णुके दूतोंने उन्हें मार भगाया। शूलोंसे मारे जानेपर वे उस समय विप्रवर मार्कण्डेयको छोड़कर भाग चले और वह कहते गये कि 'हमलोग तो लौटकर चले जा रहे हैं, परंतु अब साक्षात् मृत्युदेव ही यहाँ आयेंगे' ॥ ५५—५७ ॥

विष्णुदूत बोले—जहाँ हमारे स्वामी जगदीश्वर शार्ङ्गधन्वा भगवान् विष्णुका नाम जपा जाता हो, वहाँ उनकी क्या विसात है ? ग्रसनेवालोंमें श्रेष्ठ काल, मृत्यु अथवा यमराज कौन होते हैं ? ॥ ५८ ॥

व्यासजी कहते हैं—यमदूतोंके लौटनेके बाद साक्षात् मृत्युने ही वहाँ आकर उन्हें यमलोक चलनेको कहा, परंतु श्रीविष्णुदूतोंके डरसे वे महात्मा मार्कण्डेयके आसपास ही घूमते रह गये; उन्हें स्पर्श करनेका साहस न कर सके। इधर विष्णुदूत भी शीघ्र ही लोहेके मूसल डठाकर खड़े हो गये। उन्होंने अपने मनमें यह निश्चय कर लिया था कि 'आज हमलोग विष्णुकी आज्ञासे मृत्युका वध कर डालेंगे।' तत्पश्चात् महामति मार्कण्डेयजी भगवान् विष्णुमें चित्त लगाये उन देवाधिदेव जनार्दनको प्रणाम करते हुए स्तुति करने लगे। भगवान् विष्णुने ही वह स्तोत्र उन महात्माके कानमें कह दिया। उसी सुभाषित स्तोत्रद्वारा उन्होंने मनोयोगपूर्वक भगवान् लक्ष्मीपतिकी स्तुति की ॥ ५९—६२ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—जो सहस्रों नेत्रोंसे युक्त, इन्द्रियोंके स्वामी, पुश्पतन पुरुष तथा पद्मनाभ (अपनी नाभिसे द्वाष्टाण्डमय कमलको प्रकट करनेवाले) हैं, उन श्रीनारायणदेवको मैं प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगा ? मैं अनन्त, अजन्मा, अविकारी, गोविन्द, कमलनयन भगवान् केशवकी शरणमें आ गया हूँ; अब मृत्यु मेरा क्या करेगा ? मैं संसारकी उत्पत्तिके स्थान, सूर्यके समान प्रकाशमान् इन्द्रियातीत वासुदेव (सर्वव्यापी देवता) भगवान् दामोदरकी शरणमें आ गया

शङ्खचक्रधरं देवं छञ्चरूपिणमव्ययम्।
अधोक्षजं प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥ ६६

बाराहं बामनं विष्णुं नरसिंहं जनार्दनम्।
माधवं च प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥ ६७

पुरुषं पुष्करं पुण्यं क्षेमबीजं जगत्पतिम्।
लोकनाथं प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥ ६८

भूतात्मानं महात्मानं जगद्योनिमयोनिजम्।
विश्वरूपं प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥ ६९

सहस्रशिरसं देवं व्यक्ताव्यक्तं सनातनम्।
महायोगं प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥ ७०

इत्युदीरितमाकर्ण्य स्तोत्रं तस्य महात्मनः।
अपयातस्ततो मृत्युर्धिष्णुदूतैश्च पीडितः ॥ ७१

इति तेन जितो मृत्युर्मार्किण्डेयेन धीमता।
प्रसन्ने पुण्डरीकाक्षे नृसिंहे नास्ति दुर्लभम् ॥ ७२

मृत्युञ्जयमिदं पुण्यं मृत्युप्रशमनं शुभम्।
मार्किण्डेयहितार्थाय स्वयं विष्णुरुवाच ह ॥ ७३

य इदं पठते भक्त्या त्रिकालं नियतः शुचिः।
नाकाले तस्य मृत्युः स्यान्नरस्याच्युतचेतसः ॥ ७४

हृत्यद्वामध्ये पुरुषं पुराणं
नारायणं शाश्वतमादिदेवम्।
संचिन्त्य सूर्यादपि राजमानं
मृत्युं स योगी जितवांस्तदैव ॥ ७५

हैं; मृत्यु मेरा क्या कर सकेगा ? जिनका स्वरूप अव्यक्त है, जो विकारोंसे रहित हैं, उन शङ्ख-चक्रधारी भगवान् अधोक्षजकी मैं शरणमें आ गया; मृत्यु मेरा क्या कर लेगा ? मैं बाराह, बामन, विष्णु, नरसिंह, जनार्दन एवं माधवकी शरणमें हूँ; मृत्यु मेरा क्या कर सकेगा ? मैं पवित्र, पुष्कररूप अथवा पुष्कल (पूर्ण) रूप, कल्याणबीज, जगत्-प्रतिपालक एवं लोकनाथ भगवान् पुरुषोत्तमकी शरणमें आ गया हूँ; अब मृत्यु मेरा क्या करेगा ? जो समस्त भूतोंके आत्मा, महात्मा (परमात्मा) एवं जगत्की योनि (उत्पत्तिके स्थान) होते हुए भी स्वयं अयोनिज हैं, उन भगवान् विश्वरूपकी मैं शरणमें आया हूँ; मृत्यु मेरा क्या कर सकेगा ? जिनके सहस्रों मस्तक हैं, जो अक्षकाव्यक्त स्वरूप हैं, उन महायोगी सनातन देवकी मैं शरणमें आया हूँ; अब मृत्यु मेरा क्या कर सकेगा ? ॥ ६३—७० ॥

महात्मा मार्किण्डेयके द्वारा उच्चारित हुए उस स्तोत्रको सुनकर विष्णुदूतोंद्वारा पीडित हुए मृत्युदेव बहाँसे भाग चले। इस प्रकार बुद्धिमान् मार्किण्डेयने मृत्युपर विजय पायी। सच है, कमललोचन भगवान् नृसिंहके प्रसन्न होनेपर कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता। स्वयं भगवान् विष्णुने ही मार्किण्डेयजीके हितके लिये मृत्युको शान्त करनेवाले इस परम पावन मङ्गलमय मृत्युञ्जय-स्तोत्रका उपदेश दिया था। जो नित्य नियमपूर्वक पवित्रभावसे भक्तियुक्त होकर सायं, प्रातः और मध्याह—तीनों समय इस स्तोत्रका पाठ करता है, भगवान् अच्युतमें चित्त लगानेवाले उस पुरुषका अकालमरण नहीं होता। योगी मार्किण्डेयने अपने हृदय-कमलमें सूर्यसे भी अधिक प्रकाशमान सनातन पुराण-पुरुष आदिदेव नारायणका चिन्तन करके तत्काल मृत्युपर विजय प्राप्त कर ली ॥ ७१—७५ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे मार्किण्डेयमृत्युञ्जयो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'मार्किण्डेयकी मृत्युपर विजय' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७५ ॥

आठवाँ अध्याय

मृत्यु और दूतोंको समझाते हुए यमका उन्हें वैष्णवोंके पास जानेसे रोकना;
उनके मुँहसे श्रीहरिके नामकी महिमा सुनकर नरकस्थ जीवोंका
भगवान्को नमस्कार करके श्रीविष्णुके धाममें जाना

श्रीव्यास उचाच

मृत्युक्ष किंकराश्रुव विष्णुदूतः प्रपीडितः ।
स्वराज्ञसेऽनु निर्वेशं गत्वा ते चुकुशुर्भूशम् ॥ १

मृत्युकिंकरा उच्चः

श्रृणु राजन् वचोऽस्माकं तवाग्ये यद् छ्रवीमहे ।
त्वदादेशाद्यं गत्वा मृत्युं संस्थाप्य दूरतः ॥ २
ब्राह्मणस्य समीपं च भूगोः पौत्रस्य सन्तम् ।
तं ध्यायमानं कमपि देवमेकाग्रमानसम् ॥ ३
गन्तुं न शक्तास्तत्पार्श्वं वयं सर्वे महामते ।
यावत्तावन्महाकायैः पुरुषैर्मुशलैर्हताः ॥ ४
वयं निवृत्तास्तद्विक्ष्य मृत्युस्त्र गतः पुनः ।
अस्माक्रिर्भत्यं तत्रायं तैनरैर्मुशलैर्हतः ॥ ५
एवमत्र तमानेतुं ब्राह्मणं तपसि स्थितम् ।
अशक्ता वयमेवात्र मृत्युना सह वै प्रभो ॥ ६
तद्वीहि महाभाग यद्वह्य ब्राह्मणस्य तु ।
देवं कं ध्यायते विष्णुः के वा ते यैर्हता वयम् ॥ ७

व्यास उचाच

इत्युक्तः किंकरैः सर्वैर्मृत्युना च महामते ।
ध्यात्वा क्षणं महाबुद्धिः प्राह वैवस्वतो यमः ॥ ८

यम उचाच

शृणवन्तु किंकराः सर्वे मृत्युक्षान्ये च मे वचः ।
सत्यमेतत्प्रवक्ष्यामि ज्ञानं यद्योगमार्गतः ॥ ९
भूगोः पौत्रो महाभागो मार्कण्डेयो महामतिः ।
स ज्ञात्वाद्यात्मनः कालं गतो मृत्युजिगीषथा ॥ १०
भृगुणोक्तेन मार्गेण स तैये परमं तपः ।
हरिमाराध्य मेधावी जपन् वै द्वादशाक्षरम् ॥ ११

श्रीव्यासजी बोले—विष्णुदूतोंके द्वारा अत्यन्त पीड़ित हुए मृत्युदेव और यमदूत अपने राजा यमके भवनमें जाकर बहुत रोने-कलपने लगे ॥ १ ॥

मृत्यु और यमदूत बोले—राजन्! आपके आगे हम जो कुछ कह रहे हैं, हमारी इन बातोंको आप सुनें। हमलोगोंने आपकी आज्ञाके अनुसार यहाँसे जाकर मृत्युको तो दूर ठहरा दिया और स्वयं भृगुके पौत्र ब्राह्मण मार्कण्डेयके समीप गये। परंतु सत्युरुषशिरोमणे! वह उस समय एकाग्रचित्त होकर किसी देवताका ध्यान कर रहा था। महामते! हम सभी लोग उसके पासतक पहुँचने भी नहीं पाये थे कि बहुत-से महाकाय पुरुष यूसलसे हमें मारने लगे। तब हमलोग तो लौट पड़े, परंतु यह देखकर मृत्युदेव वहाँ फिर पथारे। तब हमें डॉट-फटकारकर उन लोगोंने इन्हें भी मूसलाँसे मारा। प्रभो! इस प्रकार तपस्यामें स्थित हुए उस ब्राह्मणको यहाँतक लानेमें मृत्युसहित हम सब लोग समर्थ न हो सके। महाभाग! उस ब्राह्मणका जो तप है, उसे आप बतलाइये, वह किस देवताका ध्यान कर रहा था और जिन लोगोंने हमें मारा, वे कौन थे? ॥ २—७ ॥

व्यासजी कहते हैं—महामते! मृत्यु तथा समस्त दूतोंके इस प्रकार कहनेपर महाबुद्धि सूर्यकुमार यमने क्षणभर ध्यान करके कहा ॥ ८ ॥

यम बोले—मृत्यु तथा मेरे अन्य सभी किंकर आज मेरी बात सुनें—योगमार्ग (समाधि)-के द्वारा मैंने इस समय जो कुछ जाना है, वही सच-सच बतला रहा है। भृगुके पौत्र महाबुद्धिमान् महाभाग मार्कण्डेयजी आजके दिन अपनी मृत्यु जानकर मृत्युको जीतनेकी इच्छासे तपोबनमें गये थे। वहाँ उन द्वुद्धिमान्से भृगुजीके बतलाये हुए मार्गके अनुसार भगवान् विष्णुकी आशाधना एवं द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करते हुए उत्कृष्ट तपस्या की

एकाग्रेणैव मनसा व्यावते हुदि केशवम्।
सततं योगयुक्तस्तु स मुनिस्तत्र किंकराः ॥ १२
हरिध्यानमहादीक्षाबलं तस्य महामुनेः।
नान्यद्वै प्राप्तकालस्य बलं पश्यामि किंकराः ॥ १३
हृदिस्थे पुण्डरीकाक्षे सततं भक्तवत्सले।
पश्यन्त विष्णुभूतं तु को हि स्यात् केशवाश्रयम् ॥ १४
तेऽपि वै पुरुषा विष्णोर्यैर्यैं ताङिता भृशम्।
अत ऊर्ध्वं न गन्तव्यं यत्र वै वैष्णवाः स्थिताः ॥ १५
न चित्रं ताढनं तत्र अहं पन्ते महात्मभिः।
भवतां जीवनं चित्रं यज्ञोदत्तं कृपालुभिः ॥ १६
नारायणपरं विप्रं कस्तं वीक्षितुमुत्सहेत्।
युष्माभिश्च महापापेमार्कंण्डेयं हरिप्रियम्।
समानेतुं कृतो यत्रः समीचीनं न तत्कृतम् ॥ १७
नरसिंहं महादेवं ये नराः पर्युपासते।
तेषां पाश्चै न गन्तव्यं युष्माभिर्मम शासनात् ॥ १८

श्रीव्यास उक्तव्य

स एवं किंकरानुकृत्वा मृत्युं च पुरतः स्थितम्।
यमो निरीक्ष्य च जनं नरकस्थं प्रपीडितम् ॥ १९
कृपया परया युक्तो विष्णुभक्त्या विशेषतः।
जनस्यानुग्रहार्थाय तेनोक्ताश्च गिरः शृणु ॥ २०
नरके पच्यमानस्य यमेन परिभाषितम्।
किं त्वया नार्चितो देवः केशवः क्लेशनाशनः ॥ २१
उदकेनाप्यलाभे तु द्रव्याणां पूजितः प्रभुः।
यो ददाति स्वकं लोकं स त्वया किं न पूजितः ॥ २२
नरसिंहो हृषीकेशः पुण्डरीकनिषेक्षणः।
स्मरणान्मुक्तिदो नृणां स त्वया किं न पूजितः ॥ २३
इत्युक्त्या नारकान् सर्वान् पुनराह स किंकरान्।
वैवस्वतो यमः साक्षाद्विष्णुभक्तिसमन्वितः ॥ २४
नारदाय स विश्वात्मा प्राहैवं विष्णुरव्ययः।
अन्येभ्यो वैष्णवेभ्यश्च सिद्धेभ्यः सततं श्रुतम् ॥ २५
तद्वः प्रीत्या प्रवक्ष्यामि हरिवाक्यमनुत्तमम्।
शिक्षार्थं किंकराः सर्वे शृणुत प्रणाता हरेः ॥ २६

है। दूतो ! ये मुनि निरन्तर योगयुक्त होकर वहाँ एकाग्रचित्तसे अपने हृदयमें केशवका ध्यान कर रहे हैं। किंकरो ! उस महामुनिको भगवान् विष्णुके ध्यानकी महादीक्षाका ही बल प्राप्त है; क्योंकि जिसका मरणकाल प्राप्त हो गया है, उसके लिये मैं दूसरा कोई बल नहीं देखता। भक्तवत्सल, कमललोचन भगवान् विष्णुके निरन्तर हृदयस्थ हो जानेपर उस विष्णुस्वरूप भगवच्छरणागत पुरुषकी ओर कौन देख सकता है ? ॥ १—१४ ॥

वे पुरुष भी, जिन्होंने तुम्हें बहुत मारा है, भगवान् विष्णुके ही दूत हैं। आजसे जहाँ वैष्णव हों, वहाँ तुमलोग न जाना। उन महात्माओंके द्वारा तुम्हारा मारा जाना आकृद्यकी यात नहीं है। आकृद्य तो यह है कि उन दयालु महापुरुषोंने तुम्हें जीवित रहने दिया है। भला, नारायणके ध्यानमें तत्पर हुए उस द्वाहणको देखनेका भी साहस कौन कर सकता है ? तुम महापापियोंने भगवान्‌के प्रिय भल मार्कण्डेयजीको जो यहाँ लानेका प्रयत्न किया है, वह अच्छा नहीं किया। आजसे तुमलोग मेरी आज्ञा मानकर उन महात्माओंके पास न जाना, जो महादेव भगवान् नृसिंहकी उपासना करते हों ॥ १५—१८ ॥

श्रीव्यासजी कहते हैं—शुकदेव ! यमने अपने सामने खड़े हुए पूत्युदेव और दूतोंसे इस प्रकार कहकर नरकमें पड़े हुए पीड़ित मनुष्योंकी ओर देखा तथा अत्यन्त कृपा एवं विशेषतः विष्णुभक्तिसे युक्त होकर नारकीय जीवोंपर अनुग्रह करनेके लिये जो बातें कहीं, उन्हें तुम सुनो। नरकमें यातना महते हुए जीवोंसे यमने कहा—'पापसे कष्ट पानेवाले जीव ! तुमने क्लेशनाशक भगवान् केशवकी पूजा क्यों नहीं की ? पूजन-सम्बन्धी द्रव्योंके न मिलनेपर केवल जलमात्रसे भी पूजित होनेपर जो भगवान् पूजकको अपना लोकतक दे डालते हैं, उनकी पूजा तुमने क्यों नहीं की ? कमलके समान लोचनोंवाले, नरसिंहरूपधारी जो भगवान् हृषीकेश स्मरणमात्रसे ही मनुष्योंको मुक्ति देनेवाले हैं, उनकी पूजा तुमने क्यों नहीं की ?' ॥ १९—२३ ॥

नरकमें पड़े हुए जीवोंके प्रति यों कहकर विष्णुभक्तिसे युक्त सूर्यनन्दन यमने अपने किंकरोंसे पुनः कहा—'किंकरो ! अविनाशी विश्वात्मा भगवान् विष्णुने नारदजीसे जैसा कहा था और अन्य वैष्णवों तथा सिद्धोंसे जैसा सदा ही सुना गया है, वह अत्यन्त उत्तम भगवद्व्यय में प्रसन्न होकर तुम लोगोंसे शिक्षाके लिये कह रहा है। तुम सभी भगवान्‌के शरणागत होकर सुनो ॥ २४—२६ ॥

हे कृष्ण कृष्ण कृष्णोति यो मां स्मरति नित्यशः।
जलं भित्त्वा यथा पर्यं नरकादुद्धराप्यहम्॥ २७
पुण्डरीकाक्ष देवेश नरसिंह त्रिविक्रम।
त्वामहं शरणं प्राप्त इति यस्तं समुद्दोरे॥ २८
त्वां प्रपञ्चोऽस्मि शरणं देवदेव जनार्दन।
इति यः शरणं प्राप्तस्तं क्लेशादुद्धराप्यहम्॥ २९

ब्राह्मण उच्चाच

इत्युदीरितमाकरण्यं हरिवाक्यं यमेन च।
नारकाः कृष्णकृष्णोति नारसिंहेति चुक्षशुः॥ ३०
यथा यथा हरेनाम कीर्तयन्त्यत्र नारकाः।
तथा तथा हरेभक्तिमुद्भवन्तोऽब्रुवत्रिदम्॥ ३१

नारका ऊँचुः

३० नमो भगवते तस्मै केशवाय महात्मने।
यशामकीर्तनात् सद्यो नरकाग्निः प्रशाप्यति॥ ३२
भक्तप्रियाय देवाय रक्षाय हरये नमः।
लोकनाथाय शान्ताय यज्ञेशायादिमूर्तये॥ ३३
अनन्तायाप्रमेयाय नरसिंहाय ते नमः।
नारायणाय गुरवे शङ्खचक्रगदाभूते॥ ३४
वेदप्रियाय महते विक्रमाय नमो नमः।
वाराहायाप्रतकर्त्याय वेदाङ्गाय महीभूते॥ ३५
नमो द्युतिपते नित्यं द्वाहृणाय नमो नमः।
वामनाय बहुज्ञाय वेदवेदाङ्गधारिणे॥ ३६
बलिबन्धनदक्षाय वेदपालाय ते नमः।
विद्यावे सुरनाथाय व्यापिने परमात्मने॥ ३७
चतुर्भुजाय शुद्धद्रव्याय ते नमः।
जामदग्न्याय रामाय दुष्टक्षत्रान्तकारिणे॥ ३८
रामाय रावणान्ताय नमस्तुभ्यं महात्मने।
अस्मानुद्धर गोविन्द पूतिगन्थान्नमोऽस्तु ते॥ ३९

भगवान् कहते हैं—‘हे कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण!’—इस प्रकार जो मेरा नित्य स्मरण करता है, उसको मैं उसी प्रकार नरकसे निकाल लेता हूँ, जैसे जलको भेदकर कमल बाहर निकल आता है। ‘पुण्डरीकाक्ष! देवेश्वर नरसिंह! त्रिविक्रम! मैं आपकी शरणमें पड़ा हूँ’—यों जो कहता है, उसका मैं उद्धार कर देता हूँ। ‘देवाधिदेव! जनार्दन! मैं आपकी शरणमें आ गया हूँ’—इस प्रकार जो मेरा शरणागत होता है, उसे मैं क्लेशसे मुक्त कर देता हूँ॥ २७—२९॥

व्यासजी कहते हैं—बत्स! यमराजके कहे हुए इस भगवद्वाक्यको सुनकर नरकमें पड़े हुए जीव ‘कृष्ण! कृष्ण! नरसिंह!’ इत्यादि भगवन्नामोंका जोरसे उच्चारण करने लगे। नारकीय जीव वहाँ ज्यों-ज्यों भगवन्नामका कीर्तन करते थे, त्यों-हीं-त्यों भगवद्गीतसे युक्त होते जाते थे। इस तरह भक्तिभावसे पूर्ण हो वे इस प्रकार कहने लगे॥ ३०—३१॥

नरकस्थ जीव बोले—‘३०’ जिनका नाम कीर्तन करनेसे नरककी ज्वाला तत्काल शान्त हो जाती है, उन महात्मा भगवान् केशवको नमस्कार है। जो यज्ञोंके ईश्वर, आदिमूर्ति, शान्तस्वरूप और संसारके स्वामी हैं, उन भक्तप्रिय, विश्वपालक भगवान् विष्णुको नमस्कार है। अनन्त, अप्रमेय नरसिंहस्वरूप, शङ्ख-चक्र-गदा धारण करनेवाले, लोकगुरु आप श्रीनारायणको नमस्कार है। वेदोंके प्रिय, महान् एवं विशिष्ट गतिवाले भगवान्को नमस्कार है। तर्कके अविषय, वेदस्वरूप, पृथ्वीको धारण करनेवाले भगवान् वाराहको प्रणाम है। द्वाहृणकुलमें अवतीर्ण, वेद-वेदाङ्गोंके ज्ञाता और अनेक विषयोंका ज्ञान रखनेवाले कान्तिमान् भगवान् वामनको नमस्कार है। बलिको बांधनेवाले, वेदके पालक, देवताओंके स्वामी, व्यापक, परमात्मा आप वामनस्वरूपधारी विष्णुभगवान्को प्रणाम है। शुद्ध द्रव्यमय, शुद्धस्वरूप भगवान् चतुर्भुजको नमस्कार है। दुष्ट क्षत्रियोंका अन्त करनेवाले जमदग्निनन्दन भगवान् घरशुरामको प्रणाम है। रावणका वध करनेवाले आप महात्मा श्रीरामको नमस्कार है। गोविन्द! आपको बारंबार प्रणाम है। आप इस दुर्गन्धपूर्ण नरकसे हमारा उद्धार करें॥ ३२—३९॥

ब्राह्म उक्ताच

इति संकीर्तिंते विष्णो नारकेर्भक्तिपूर्वकम् ।
तदा सा नारकी पीड़ा गता तेषां महात्मनाम् ॥ ४०
कृष्णरूपधरा: सर्वे दिव्यवस्त्रविभूषिताः ।
दिव्यगन्धानुलिपाङ्गा दिव्याभरणभूषिताः ॥ ४१
तानारोप्य विमानेषु दिव्येषु हरिपूरुषाः ।
तर्जयित्वा यमभटान् नीतास्ते केशवालयम् ॥ ४२
नारकेषु च सर्वेषु नीतेषु हरिपूरुषैः ।
विष्णुलोकं यमो भूयो नमश्क्रेत तदा हरिम् ॥ ४३
यत्रामकीर्तनाद्याता नारकाः केशवालयम् ।
तं नमामि सदा देवं नरसिंहमहं गुरुम् ॥ ४४
तस्य वै नरसिंहस्य विष्णोरमिततेजसः ।
प्रणामं येऽपि कुर्वन्ति तेष्योऽप्यहं नमः ॥ ४५

दृष्टा प्रशान्तं नरकाग्निमुग्रं
यन्नादि सर्वं विपरीतमन्त्र ।
पुनः स शिक्षार्थमथात्मदूतान्
यमो हि वक्तुं कृतवान् मनः स्वयम् ॥ ४६

इति श्रीनरसिंहपुराणे यमगीता नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'यमगीता' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

नवाँ अध्याय

यमाष्टक—यमराजका अपने दूतके प्रति उपदेश

श्रीब्राह्म उक्ताच

स्वपुरुषमधिकीक्ष्य	पाशाहस्तं
वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ।	
परिहर	मधुसूदनप्रपत्रान्
	प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ॥ १
अहममरणार्चितेन	धात्रा
यम इति लोकहिताहिते नियुक्तः ।	
हरिगुरुविमुखान्	प्रशास्त्रमत्यान्
	हरिचरणप्रणतान्नमस्करोमि
	॥ २

ब्राह्मसजी कहते हैं—शुकदेव ! इस प्रकार नरकमें पड़े हुए जीवोंने जब भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुका कीर्तन किया, तब उन महात्माओंको नरक-पीड़ा तत्काल दूर हो गयी । वे सभी अपने अङ्गोंमें दिव्य गन्धका अनुलेप लगाये, दिव्य चम्पा और धूपणोंसे विष्णुपूर्ण हो, श्रीकृष्णस्वरूप हो गये । फिर भगवान् विष्णुके किंकर यमदूतोंकी भत्सना करके उन्हें दिव्य विमानोंपर बिठाकर विष्णुधामको ले गये । विष्णुदूतोंद्वारा सभी नरकस्थ जीवोंके विष्णुलोकमें ले जाये जानेपर यमराजने पुनः भगवान् विष्णुको प्रणाम किया । 'जिनके नामकीर्तनसे नरकमें पड़े हुए जीव विष्णुधामको चले गये, उन गुरुदेव नरसिंह-भगवान्को में सदा प्रणाम करता है । उन अमित तेजस्वी नरसिंहस्वरूप भगवान् विष्णुको जो प्रणाम करते हैं, उन्हें भी मैरा बार-बार नपस्कार है' ॥ ४०—४५ ॥

उग्र नरकाग्निको शान्त और सभी चन्द्र आदिको विपरीत दशामें पड़े देखकर यमराजने स्वयं ही पुनः अपने दूतोंको शिक्षा देनेके लिये भनमें विचार किया ॥ ४६ ॥

श्रीब्राह्म सोले—अपने किंकरको हाथमें पाश लिये कहीं जानेको उद्यत देखकर यमराज उसके कानमें कहते हैं—“दूत ! तुम भगवान् मधुसूदनकी शरणमें गये हुए प्राणियोंको छोड़ देना; क्योंकि मेरी प्रभुता दूसरे मनुष्योंपर ही चलती है, वैष्णवोंपर मेरा प्रभुत्व नहीं है । देवपूजित ब्रह्माजीने मुझे 'यम' कहकर लोगोंके पुण्य-पापका विचार करनेके लिये नियुक्त किया है । जो विष्णु और गुरुसे विमुख हैं, मैं उन्होंने मनुष्योंका शासन करता हूँ । जो श्रीहरिके चरणोंमें शौश झुकानेवाले हैं, उन्हें तो

सुगतिमभिलषामि वासुदेवा-
दहमपि भागवते स्थितान्तरात्मा ।
मधुवधवशगोऽस्मि न स्वतन्त्रः
प्रभवति संयमने ममापि कृष्णः ॥ ३
भगवति विमुखस्य नास्ति सिद्धि-
विषममृतं भवतीति नेदमस्ति ।
बर्वशतमपीह पच्यमानं
व्रजति न काञ्छनतामयः कदाचित् ॥ ४
नहि शशिकलुषच्छविः कदाचित्-
विरमति नो रवितामुपैति चन्द्रः ।
भगवति च हरावनन्यचेता
भृशमप्लिनोऽपि विराजते मनुष्यः ॥ ५
महदपि सुविचार्य लोकतत्त्वं
भगवदुपास्तिमृते न सिद्धिरस्ति ।
सुरगुरुसुहृदप्रसाददौ तौ
हरिचरणौ स्परतापवग्हितोः ॥ ६
शुभमिदमुपलभ्य मानुषत्वं
सुकृतशतेन चृथेन्द्रियाथहितोः ।
रमयति कुरुते न मोक्षमार्ग
दहयति चन्दनमाशु भस्महेतोः ॥ ७
मुकुलितकरकुद्दमलैः सुरेन्द्रैः
सततनमस्कृतपादपङ्कजो यः ।
अविहतगतये सनातनाय
जगति जनि हरते नमोऽग्रजाय ॥ ८
यमाष्टकमिदं पुण्यं पठते यः शृणोति वा ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ९
इतीदमुक्तं यमवाक्यमुत्तमं
मयाधुना ते हरिभक्तिवद्वन्म् ।
पुनः प्रवक्ष्यामि पुरातनीं कथां
भृगोस्तु पौत्रेण च या पुरा कृता ॥ १०

मैं स्वयं ही प्रणाम करता हूँ। भगवद्दक्षोंके चिन्तन एवं स्मरणमें अपना मन लगाकर मैं भी भगवान् वासुदेवसे अपनी सुगति चाहता हूँ। मैं मधुसूदनके वशमें हूँ, स्वतन्त्र नहीं हूँ। भगवान् विष्णु येरा भी नियन्त्रण करनेमें समर्थ है। जो भगवान् से विमुख है, उसे कभी सिद्धि (मुक्ति) नहीं प्राप्त हो सकती; विष अमृत हो जाय, ऐसा कभी सम्भव नहीं है; लोहा सैकड़ों वर्षोंतक आगमें तपाया जाय, तो भी कभी सोना नहीं हो सकता; चन्द्रमाकी कलाङ्कित कान्ति कभी निष्कलाङ्क नहीं हो सकती; वह कभी सूर्यके समान प्रकाशमान नहीं हो सकता; परंतु जो अनन्यचित्त होकर भगवान् विष्णुके चिन्तनमें लगा है, वह मनुष्य अपने शरीरसे अत्यन्त मलिन होनेपर भी बड़ी शोभा पाता है। महान् लोकतत्त्वका अच्छी तरह विचार करनेपर भी यही निश्चित होता है कि भगवान् की उपासनाके बिना सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती; इसलिये देवगुरु बृहस्पतिके ऊपर सुदृढ़ अनुकर्मा करनेवाले भगवचरणोंका तुमलोग मोक्षके लिये स्मरण करते रहो। जो लोग सैकड़ों पुण्योंके फलस्वरूप इस सुन्दर मनुष्य-शरीरको पाकर भी व्यर्थ विषयसुखोंमें रमण करते हैं, मोक्षपथका अनुसरण नहीं करते, वे मानो राखके लिये जल्दी-जल्दी चन्दनकी लकड़ीको फूँक रहे हैं। बड़े-बड़े देवेश्वर हाथ जोड़कर मुकुलित करपङ्कज-कोषद्वारा जिन भगवान् के चरणरविन्दीको प्रणाम करते हैं तथा जिनकी गति कभी और कहीं भी प्रतिहत नहीं होती, उन भवजन्मनाशक एवं सबके अग्रज सनातन पुरुष भगवान् विष्णुको नमस्कार है'' ॥ १-८ ॥

श्रीव्यासजी कहते हैं—इस पवित्र यमाष्टकको जो पढ़ता अथवा सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकको चला जाता है। भगवान् विष्णुकी भक्तिको बढ़ानेवाला यमराजका यह उत्तम वचन मैंने इस समय तुमसे कहा है; अब पुनः उसी पुरानी कथाको अर्थात् भृगुके पौत्र मार्कण्डेयजीने पूर्वकालमें जो कुछ किया था, उसको कहूँगा ॥ ९-१० ॥

दसवाँ अध्याय

मार्कण्डेयका विवाह कर वेदशिराको उत्पन्न करके प्रयागमें अक्षयबटके नीचे तप एवं भगवान्‌की स्तुति करना; फिर आकाशवाणीके अनुसार स्तुति करनेपर भगवान्‌का उन्हें आशीर्वाद एवं वरदान देना तथा मार्कण्डेयजीका क्षीरसागरमें जाकर पुनः उनका दर्शन करना

श्रीव्यास उक्तव्य

जित्वैवमात्मनो मृत्युं तपसा शंसितद्वतः ।
स अगाम पितुर्गेहं मार्कण्डेयो महामतिः ॥ १
कृत्वा विवाहं धर्मेण भृगोर्बाक्यविशेषतः ।
स वेदशिरसं पुत्रमुत्पाद्य च विधानतः ॥ २
इष्ट्वा यज्ञैस्तु देवेशं नारायणमनामयम् ।
आद्देन तु पितृनिष्ट्वा अन्नदानेन चातिथीन् ॥ ३
प्रयागमासाद्य पुनः स्नात्वा तीर्थे गरीयसि ।
मार्कण्डेयो महातेजास्तेपे बटतले तपः ॥ ४
यस्य प्रसादेन पुरा जितवान् मृत्युमात्मनः ।
तं देवं द्रष्टुमिच्छन् चः स तेषे परमं तपः ॥ ५
बायुभक्षश्चिरं कालं तपसा शोषयस्तनुम् ।
एकदा तु महातेजा मार्कण्डेयो महामतिः ॥ ६
आराध्य माधवं देवं गन्धपुष्पादिभिः शुभैः ।
अग्रे व्यग्रमनाः स्थित्वा हृदये तमनुस्मरन् ।
शङ्खचक्रगदापाणिं तुष्टाव गरुडध्वजम् ॥ ७

मार्कण्डेय उक्तव्य

नं	नृसिंहं	नरनाथमच्युतं
		प्रलम्बबाहुं कमलायतेक्षणम् ।
	स्मितीश्वरर्चितपादपङ्कजं	
		नमामि विष्णुं पुरुषं पुरातनम् ॥ ८
जगत्पतिं	क्षीरसमुद्रमन्दिरं	
	तं शार्ङ्गपाणिं मुनिवृन्दवन्दितम् ।	
विष्ण्यःपतिं	श्रीधरमीशमीश्वरं	
	नमामि गोविन्दमनन्तवर्चसम् ॥ ९	

श्रीव्यासजी कहते हैं—शुकदेव ! इस प्रकार तपस्याद्वारा अपनी मृत्युको जीतकर प्रशंसित द्रवतवाले महाबुद्धिमान् मार्कण्डेयजी पिताके घर गये। वहाँ भृगुजीके विशेष आग्रहसे धर्मपूर्वक विवाह करके उन्होंने विधिके अनुसार 'वेदशिरा' नामक एक पुत्र उत्पन्न किया। तत्पश्चात् निरामय (निर्विकार) देवेशर भगवान् नारायणका यज्ञोद्वारा यजन करते हुए उन्होंने श्राद्धसे पितरोंका और अन्नदानसे अतिथियोंका पूजन किया। इसके बाद पुनः प्रयागमें जाकर वहाँके श्रेष्ठतम तीर्थ त्रिवेणीमें स्नान करके महातेजस्वी मार्कण्डेयजी अक्षयबटके नीचे तप करने लगे। जिनके कृपाप्रसादसे उन्होंने पूर्वकालमें मृत्युपर विजय प्राप्त की थी, उन्हीं देवाधिदेवके दर्शनकी इच्छासे उन्होंने उल्लृष्ट तपस्या आरम्भ की। दीर्घकालतक केवल वायु पीकर तपस्याद्वारा अपने शरीरको सुखाते हुए वे महातेजस्वी महाबुद्धिमान् मार्कण्डेयजी एक दिन गन्ध-पुष्प आदि शुभ उपकरणोंसे भगवान् वेणीमाधवको आराधना करके उनके सम्पुख स्वस्थचित्तसे खड़े हो गये और हृदयमें उन्हों शङ्ख-चक्र-गदाधारी गरुडध्वज भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए उनकी स्तुति करने लगे ॥ १—७ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—जो भगवान् श्रेष्ठ नर, नृसिंह और नरनाथ (मनुष्योंके स्वामी) हैं, जिनकी भुजाएँ लक्ष्मी हैं, नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान विशाल हैं तथा चरणारविन्द असंख्य भूपतियोंद्वारा पूजित हैं, उन पुरातन पुरुष भगवान् विष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ। जो संसारके पालक हैं, क्षीरसमुद्र जिनका निवास-स्थान है, जो हाथमें शार्ङ्गधनुष धारण किये रहते हैं, मुनिवृद्ध जिनकी वन्दना करते हैं, जो लक्ष्मीके पति हैं और लक्ष्मीको निरन्तर अपने हृदयमें धारण करते हैं, उन सर्वसमर्थ, सर्वेश्वर, अनन्त तेजोमय भगवान् गोविन्दको

अजं वरेण्यं जनदुःखनाशनं
गुरुं पुराणं पुरुषोत्तमं प्रभुम्।
सहस्रसूर्यद्युतिमन्तमच्युतं
नमामि भक्त्या हरिमाद्यमाधवम्॥ १०

पुरस्कृतं पुण्यवतां परां गतिं
क्षितीश्वरं लोकपतिं प्रजापतिम्।
परं पराणामपि कारणं हरिं
नमामि लोकत्रयकर्मसाक्षिणम्॥ ११

भोगे त्वनन्तस्य पयोदधौ सुरः
पुरा हि शेते भगवाननादिकृत्।
क्षीरोदवीचीकणिकाम्बुनोक्षितं
तं श्रीनिवासं प्रणतोऽस्मि केशवम्॥ १२

यो नारसिंहं वपुरास्थितो महान्
सुरो मुरारिमधुकैटभान्तकृत्।
समस्तलोकार्तिहरं हिरण्यकं
नमामि विष्णुं सततं नमामि तम्॥ १३

अनन्तमव्यक्तभतीन्द्रियं विभुं
स्वे स्वे हि रूपे स्वयमेव संस्थितम्।
योगेश्वरेरेव सदा नमस्कृतं
नमामि भक्त्या सततं जनार्दनम्॥ १४

आनन्दमेकं विरजं विदात्मकं
बृन्दालयं योगिभिरेव पूजितम्।
अणोरणीयांसमवृद्धिमक्षयं
नमामि भक्तप्रियमीश्वरं हरिम्॥ १५

इति स्तोत्रावसाने तं वागुवाचाशशरीरिणी ।
मार्कण्डेयं महाभागं तीर्थेऽनु तपसि स्थितम्॥ १६

किमर्थं किलश्यते ब्रह्मस्त्वया यो नैव दृश्यते ।
माधवः सर्वतीर्थेषु यावत् स्नानमाच्चरेः॥ १७

इत्युक्तः सर्वतीर्थेषु स्नात्वोवाच महामतिः ।
कृत्वा कृत्वा सर्वतीर्थे स्नानं चैव कृतं भवेत् ।
तद्वद त्वं मम प्रीत्या योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते॥ १८

मैं प्रणाम करता हूँ। जो अजन्मा, सबके वरणीय, जन-समुदायके दुःखोंका नाश करनेवाले, गुरु, पुराण-पुरुषोत्तम एवं सबके स्वामी हैं, सहस्रों सूर्योंके समान जिनकी कान्ति है तथा जो अच्युतस्वरूप हैं, उन आदिमाधव भगवान् विष्णुको मैं भक्तिभावसे प्रणाम करता हूँ। जो पुण्यात्मा भक्तोंके ही समक्ष सगुण-साकार रूपसे प्रकट होते हैं, सबकी परमगति हैं, भूमि, लोक और प्रजाओंके पति हैं, 'पर' अर्थात् कारणोंके भी परम कारण हैं तथा तीनों लोकोंके कर्मोंके साक्षी हैं, उन भगवान् विष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ। जो अनादि विधाता भगवान् पूर्वकालमें क्षीरसमुद्रके भीतर 'अनन्त' नामक शेषनागके शरीररूपी शश्यापर सौये थे, क्षीरसिन्धुकी तरङ्गोंके जलकणोंसे अभिषिक्त होनेवाले उन लक्ष्मीनिवास भगवान् केशवको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन्होंने नरसिंहस्वरूप धारण किया है, जो महान् देवता है, मुर दैत्यके शत्रु है, मधु तथा कैटघ नामक दैत्योंका अन्त करनेवाले हैं और समस्त लोकोंकी घोड़ा दूर करनेवाले एवं हिरण्यगर्भ हैं, उन भगवान् विष्णुको मैं सदा नमस्कार करता हूँ। जो अनन्त, अव्यक्त, इन्द्रियातीत, सर्वव्यापी और अपने विभिन्न रूपोंमें स्वयं ही प्रतिष्ठित हैं तथा योगेश्वरगण जिनके चरणोंमें सदा ही मस्तक झुकाते हैं, उन भगवान् जनार्दनको मैं भक्तिपूर्वक निरन्तर प्रणाम करता हूँ। जो आनन्दमय, एक (अद्वितीय), रजोगुणसे रहित, ज्ञानस्वरूप, बृन्दा (लक्ष्मी)-के धाम और योगियोंद्वारा पूजित हैं; जो अणुसे भी अत्यन्त अणु और वृद्धि तथा क्षयसे शून्य हैं, उन भक्तप्रिय भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ८—१५॥

श्रीव्यासजी कहते हैं—बत्स ! इस प्रकार स्तुति समाप्त होनेपर उस तीर्थमें तपस्या करनेवाले उन महाभाग मार्कण्डेयजीसे आकाशवाणीने कहा—'ब्रह्मन् ! क्यों कलेश उठा रहे हो, तुम्हें जो भगवान् माधवका दर्शन नहीं हो रहा है, वह तभीतक जबतक तुम समस्त तीर्थोंमें स्नान नहीं कर लेते' उसके यों कहनेपर महामति मार्कण्डेयजीने समस्त तीर्थोंमें स्नान किया (परंतु जब फिर भी दर्शन नहीं हुआ, तब उन्होंने आकाशवाणीको स्वाक्ष्य करके कहा—) 'जो कार्य करनेसे समस्त तीर्थोंमें स्नान करना सफल होता है, अथवा समस्त तीर्थोंमें स्नानका फल मिल जाता है, वह कार्य मुझे प्रसन्न होकर आप बतलाइये । आप जो भी हों, आपको नमस्कार है'॥ १६—१८॥

वागुकाच

स्तोत्रेणानेन विप्रेन्द्र स्तुहि नारायणं प्रभुम्।
नान्यथा सर्वतीर्थानां फलं प्राप्स्यसि सुव्रतं ॥ १९

मार्कण्डेय उचाच

तदेवाख्याहि भगवन् स्तोत्रं तीर्थफलप्रदम्।
येन जसेन सकलं तीर्थस्नानफलं लभेत् ॥ २०

वागुकाच

जय जय देवदेव जय माधव केशव।
जय पद्मपलाशाक्ष जय गोविन्द गोपते ॥ २१
जय जय पश्चनाभ जय वैकुण्ठ वामन।
जय पश्च हृषीकेश जय दामोदराच्युत ॥ २२
जय पश्चश्वरानन्त जय लोकगुरो जय।
जय शङ्खगदापाणे जय भूधरसूकर ॥ २३
जय यज्ञेश वाराह जय भूधर भूमिप।
जय योगेश योगज जय योगप्रवर्तक ॥ २४
जय योगप्रवर्तक जय धर्मप्रवर्तक।
कृतप्रिय जय जय यज्ञेश यज्ञाङ्ग जय ॥ २५
जय बन्दितसद्द्विज जय नारदसिद्धिद।
जय पुण्यवतां गेह जय वैदिकभाजन ॥ २६
जय जय चतुर्भुज (श्री) जयदेव जय देव्यभयावह।
जय सर्वज्ञ सर्वात्मन् जय शंकर शाश्वत ॥ २७
जय विष्णो महादेव जय नित्यमधोक्षज।
प्रसादं कुरु देवेश दर्शयाद्य स्वकां तनुम् ॥ २८

व्यास उचाच

इत्येवं कीर्तिं तेन मार्कण्डेयेन धीमता।
प्रादुर्बभूव भगवान् पीतवासा जनार्दनः ॥ २९
शङ्खचक्रगदापाणिः सर्वाभरणभूषितः।
तेजसा द्योतयन् सर्वा दिशो विष्णुः सनातनः ॥ ३०
तं हृष्ट्वा सहसा भूमौ विरपार्थितदर्शनम्।
प्रयातः शिरसा बश्यो भक्त्या स भृगुनन्दनः ॥ ३१
निपत्योत्पत्य च पुनः पुनः साङ्गं महामनाः।
प्रबद्धसम्पुटकरो गोविन्दं पुरतः स्तुवन् ॥ ३२

आकाशवाणीने कहा— विप्रेन्द्र ! सुव्रत ! इस स्तोत्रसे प्रभुवर नारायणका स्तवन करो; और किसी उपायसे तुम्हें समस्त तीर्थोंका फल नहीं प्राप्त होगा ॥ १९ ॥

मार्कण्डेयजी बोले— भगवन् ! जिसका जप करनेसे तीर्थस्नानका सम्पूर्ण फल प्राप्त हो जाता है, वह तीर्थफल-दायक स्तोत्र कीन-सा है ? उसे ही मुझे बताइये ॥ २० ॥

आकाशवाणीने कहा— देवदेव ! माधव ! केशव ! आपको जय हो, जय हो । आपके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान शोभा पाते हैं । गोविन्द ! गोपते ! आपकी जय हो, जय हो । पद्मनाभ ! वैकुण्ठ ! वामन ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो । पद्मस्वरूप हृषीकेश ! आपकी जय हो । दामोदर ! अच्युत ! आपकी जय हो । लक्ष्मीपते ! अनन्त ! आपकी जय हो । लोकगुरो ! आपकी जय हो, जय हो । शङ्ख और गदा धारण करनेवाले तथा पृथ्वीको उठानेवाले भगवान् वाराह ! आपकी जय हो, जय हो । यज्ञेश्वर ! पृथ्वीका धारण तथा पोषण करनेवाले वाराह ! आपकी जय हो, जय हो । योगके ईश्वर, ज्ञाता और प्रवर्तक ! आपकी जय हो, जय हो । योग और धर्मके प्रवर्तक ! आपकी जय हो, जय हो । कर्मप्रिय ! यज्ञेश्वर ! यज्ञाङ्ग ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो । उत्तम द्वाहाणोंकी वन्दना करने— उन्हें सम्मान देनेवाले देवता ! आपकी जय हो और नारदजीको सिद्धि देनेवाले परमेश्वर ! आपकी जय हो । पुण्यवानोंके आश्रय, वैदिक वाणीके चरम तात्पर्यभूत एवं वेदोंके कर्मोंके परम आश्रय नारायण ! आपकी जय हो, जय हो । चतुर्भुज ! आपकी जय हो । देत्योंको भय देनेवाले श्रीजयदेव ! आपकी जय हो, जय हो । सर्वज्ञ ! सर्वात्मन् ! आपकी जय हो । सनातनदेव ! कल्प्याणकारी भगवन् ! आपकी जय हो, जय हो । महादेव ! विष्णु ! अधोक्षज ! देवेश्वर ! आप मुझपर प्रसन्न होइये और आज मुझे अपने स्वरूपका प्रत्यक्ष दर्शन कराइये ॥ २१—२८ ॥

श्रीव्यासजी कहते हैं— शुकदेव ! आकाशवाणीके कथनानुसार जब बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीने इस प्रकार भगवन्नामोंका कीर्तन किया, तब पीताम्बरधारी भगवान् जनार्दन वहाँ प्रकट हो गये । वे सनातन भगवान् विष्णु हथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा लिये, समस्त आभूषणोंसे भूषित हो अपने तेजसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे । भृगुवंशको आनन्दित करनेवाले मार्कण्डेयजीने भगवान्को, जिनका दर्शन चिरकालसे प्रार्थित था, सहसा सामने प्रकट हुआ देख, भक्तिविवश हो, भूमिपर मस्तक रखकर प्रणाम किया । भूमिपर गिर-गिरकर थारंबार साष्टांग प्रणाम करके खड़े हो, महामना मार्कण्डेय दोनों हाथ जोड़ सामने उपस्थित हुए भगवान्की इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥ २९—३२ ॥

मार्कण्डेय उकाच

नमोऽस्तु ते देवदेव महाचित्त महाकाय
महाप्राज्ञ महादेव महाकीर्त्ते लङ्घोन्दचन्द्र-
रुद्रार्चितपादयुगल श्रीपद्महस्त सम्पर्दितदैत्य-
देह ॥ ३३ ॥ अनन्तभोगशायनार्पितसर्वाङ्ग सनक-
सनन्दनसनत्कुमाराद्यौर्योगिभिन्नसाग्रन्यस्तलोचने-
सनवरतमभिचिन्तितमोक्षतत्त्व ।

गच्छर्व-

विद्याधरयक्षकिंनरकिम्पुरुषैरहरहोगीयमानदिव्य-
यशः ॥ ३४ ॥ नृसिंह नारायण पश्यनाभ गोविन्द
गोवर्द्धनगुहानिवास योगीश्वर देवेश्वर जलेश्वर
महेश्वर ॥ ३५ ॥ योगधर महामायाधर विद्याधर
यशोधर कीर्तिधर त्रिगुणनिवास त्रितत्त्वधर
त्रेताग्रिधर ॥ ३६ ॥ त्रिवेदभाक् त्रिनिकेत त्रिसुपर्ण
त्रिदण्डधर ॥ ३७ ॥ स्त्रिगद्यमेघाभार्चितद्युतिविराजित

पीताम्बरधर

किरीटकटक-

केयूरहारमणिरत्नांशुदीमिविद्योतितसर्वदिश ॥ ३८ ॥
कनकमणिकुण्डलमणिङ्गतगण्डस्थल मधुसूदन
विश्वमूर्ते ॥ ३९ ॥ लोकनाथ यज्ञेश्वर यज्ञप्रिय तेजोमय
भक्तिप्रिय वासुदेव दुरितापहाराराष्ट्र पुरुषोत्तम
नमोऽस्तु ते ॥ ४० ॥

व्यास उकाच

इत्युदीरितमार्कण्ड्यं भगवांस्तु जनार्दनः ।
देवदेवः प्रसन्नात्मा मार्कण्डेयमुकाच ह ॥ ४१

श्रीभगवानुवाच

तुष्टोऽस्मि भवतो वत्स तपसा महता पुनः ।
स्तोत्रैरपि महाबुद्धे नष्टपापोऽसि साम्प्रतम् ॥ ४२
वरं वरय विप्रेन्द्र वरदोऽहं तवाग्रतः ।
नातसतपसा ब्रह्मन् ब्रह्म साध्योऽहमङ्गसा ॥ ४३

मार्कण्डेयजी बोले—महामना ! महाकाय ! महामते !
महादेव ! महायशस्वी ! देवाधिदेव ! आपको नमस्कार है ।
ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्रमा तथा रुद्र निरन्तर आपके युगल-
चरणारविन्दोंकी अर्चना करते हैं । आपके हाथमें शोभाशाली
कमल सुशोभित होता है; आपने दैत्योंके शरीरोंको मसल
डाला है, आपको नमस्कार है । आप 'अनन्त' नामसे
विख्यात शेषनागके शरीरकी शव्याको अपने सम्पूर्ण अङ्ग
समर्पित कर देते हैं—उसीपर शयन करते हैं । सनक,
सनन्दन और सनत्कुमार आदि योगीजन अपने नेत्रोंकी
दृष्टिको नासिकाके अग्रभागपर सुस्थिर करके नित्य-
निरन्तर जिस मोक्षतत्त्वका चिन्तन करते हैं, वह आप ही
हैं । गच्छर्व, विद्याधर, यक्ष, किंनर और किम्पुरुष प्रतिदिन
आपके ही दिव्य सुयशका गान करते रहते हैं । नृसिंह !
नारायण ! पदानाभ ! गोविन्द ! गिरिराज गोवर्धनकी कन्दरामें
क्रीड़ा-विश्रामादिके लिये निवास करनेवाले ! योगीश्वर !
देवेश्वर ! जलेश्वर और महेश्वर ! आपको नमस्कार है ।
योगधर ! महामायाधर ! विद्याधर ! यशोधर ! कीर्तिधर !
सत्त्वादि तीनों गुणोंके आश्रय ! त्रितत्त्वधारी तथा गार्हपत्यादि
तीनों अग्नियोंको धारण करनेवाले देव ! आपको प्रणाम है ।
आप ऋक्, साम और यजुष—इन तीनों वेदोंके
परम प्रतिपाद्य, त्रिनिकेत (तीनों लोकोंके आश्रय), त्रिसुपर्ण,
मन्त्ररूप और त्रिदण्डधारी हैं; ऐसे आपको प्रणाम है ।
स्त्रिगद्यमेघाभार्चितद्युतिविराजित
सुशोभित, पीताम्बरधारी, किरीट, बलय, केयूर और हारोंमें
जटित मणिरत्नोंकी किरणोंसे समस्त दिशाओंको प्रकाशित
करनेवाले नारायणदेव ! आपको नमस्कार है । सुवर्ण और
मणियोंसे बने हुए कुण्डलोंद्वारा अलंकृत कपोलोंवाले
मधुसूदन ! विश्वमूर्ते ! आपको प्रणाम है । लोकनाथ ! यज्ञेश्वर !
यज्ञप्रिय ! तेजोमय ! भक्तिप्रिय वासुदेव ! पापहारिन् !
आराष्ट्रदेव पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है ॥ ३३—४० ॥

श्रीव्यासजी बोले—इस प्रकार स्तवन सुनकर
देवदेव भगवान् जनार्दनने प्रसन्नचित्त होकर मार्कण्डेयजीसे
कहा ॥ ४२ ॥

श्रीभगवान् बोले—वत्स ! मैं तुम्हारे महान् तप
और फिर स्तोत्रपाठसे तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ । महाबुद्धे !
इस समय तुम्हारा सारा पाप नष्ट हो चुका है । विप्रेन्द्र !
मैं तुम्हारे सम्मुख चर देनेके लिये उपस्थित हूँ; चर माँगो ।
ब्रह्मन् ! जिसने तप नहीं किया है, ऐसा कोई भी मनुष्य
अनायास ही मेरा दर्शन नहीं पा सकता ॥ ४२-४३ ॥

मार्कण्डेय उक्तव्

कृतकृत्योऽस्मि देवेश साम्प्रतं तव दर्शनात्।
त्वद्वक्तिमचलामेकां मम देहि जगत्पते ॥ ४४
यदि प्रसन्नो भगवन् मम माधव श्रीपते।
चिरायुष्यं हृषीकेश येन त्वां चिरमर्चये ॥ ४५

श्रीभगवनुवाच

मृत्युस्ते निर्जितः पूर्वं चिरायुस्त्वं च लब्धवान्।
भक्तिरस्त्वचला ते मे वैष्णवी मुक्तिदायिनी ॥ ४६
इदं तीर्थं महाभाग त्वन्नाम्ना ख्यातिमेष्यति।
पुनस्त्वं द्रक्ष्यसे मां वै क्षीराव्यौ योगशायिनम् ॥ ४७

व्यास उक्तव्

इत्युक्त्वा पुण्डरीकाक्षस्तत्रैवान्तरधीयत ।
मार्कण्डेयोऽपि धर्मात्मा चिन्तायन्मधुसूदनम् ॥ ४८
अचंयन् देवदेवेशं जपन् शुद्धं नमन्नपि।
वेदशास्त्राणि पुण्यानि पुराणान्यखिलानि च ॥ ४९
मुनीनां श्रावयामास गाथाश्चैव तपोधनः।
इतिहासानि पुण्यानि पितृतत्त्वं च सत्तमः ॥ ५०

ततः कदाचित् पुरुषोत्तमोक्तं

वचः स्मरन् शास्त्रविदां वरिष्ठः ।

भगवन् समुद्रं स जगाम द्रष्टुं
हरिं सुरेशं मुनिरुग्रतेजाः ॥ ५१

श्रमेण युक्तश्चिरकालसम्प्रमाद्

भृगोः स पौत्रो हरिभक्तिमुद्वहन् ।

क्षीराव्यौमासाद्य हरिं सुरेशं

नागेन्द्रभोगे कृतनिद्रयैक्षत ॥ ५२

इति श्रीनरसिंहपुराणे मार्कण्डेयवरिते दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणे 'मार्कण्डेयके वरित' वर्णनके प्रसंगमें दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजीद्वारा शोषशायी भगवान्‌का स्तवन

व्यास उक्तव्

प्रणिपत्य जगत्राथं चराचरगुरुं हरिम्।
मार्कण्डेयोऽभितुष्टव भोगपर्यङ्कशायिनम् ॥ १

मार्कण्डेयजी ओले— देवेभर ! इस समय आपके दर्शनसे ही मैं कृतार्थ हो गया । जगत्पते ! अब तो मुझे एकमात्र अपनी अविचल भक्ति ही दीजिये । माधव ! श्रीपते ! हृषीकेश ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे चिरकालिक आयु दीजिये, जिससे मैं चिरकालतक आपकी आराधना कर सकूँ ॥ ४४-४५ ॥

श्रीभगवान् ओले— मृत्युको तो तुम पहले ही जीत चुके हो, अब चिरकालिक आयु भी तुम्हें प्राप्त हुई । साथ ही, मेरी मुक्तिदायिनी अविचल वैष्णवी भक्ति भी तुम्हें प्राप्त हो । महाभाग ! यह तीर्थ आजसे तुम्हारे ही नामसे विख्यात होगा; अब पुनः तुम श्रीरसमुद्रमें योगनिद्राका आश्रय लेकर सोये हुए मेरा दर्शन पाओगे ॥ ४६-४७ ॥

व्यासजी ओले— यों कहकर कमलतोचन भगवान् विष्णु वहीं अदृश्य हो गये । धर्मात्मा, साधुशिरोमणि, तपोधन मार्कण्डेयजी भी शुद्धस्वरूप देवदेवेशर भधुसूदनका ध्यान, पूजन, जप और नमस्कार करते हुए वहीं रहकर मुनियोंकी पवित्र वेदशास्त्र, अखिल पुराण, विविध प्रकारकी गाथाएँ, पावन इतिहास और पितृतत्त्व भी सुनाने लगे । तदनन्तर किसी समय भगवान् पुरुषोत्तमके कहे हुए वचनको स्मरण कर, वे शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ उग्रतेजस्वी मुनि उन सुरेशर भगवान् श्रीहरिका दर्शन करनेके लिये घूमते हुए समुद्रकी ओर चले । हृदयमें भगवान्‌की भक्ति धारण किये चिरकालतक परिश्रमपूर्वक चलते-चलते श्रीरसागरमें पहुँचकर उन भृगुके पौत्रने नागराजके शरीररूपी पर्वतङ्गपर निद्रामग्न हुए सुरेशवर भगवान् विष्णुका दर्शन किया ॥ ४८-५२ ॥

व्यासजी ओले— शुकदेव ! तदनन्तर मार्कण्डेयजी शोषश्चायापर सोये हुए उन चराचरगुरु जगदीश्वर भगवन् विष्णुको प्रणाम करके उनका स्तवन करने लगे ॥ १ ॥

मार्कण्डेय उक्ताच

प्रसीद भगवन् विष्णो प्रसीद पुरुषोत्तम ।
प्रसीद देवदेवेश प्रसीद गरुडध्वज ॥ २

प्रसीद विष्णो लक्ष्मीश प्रसीद धरणीधर ।
प्रसीद लोकनाथाद्य प्रसीद परमेश्वर ॥ ३

प्रसीद सर्वदेवेश प्रसीद कमलेक्षण ।
प्रसीद मन्दरधर प्रसीद मधुसूदन ॥ ४

प्रसीद सुभगाकान्त प्रसीद भुवनाधिप ।
प्रसीदाद्य महादेव प्रसीद मम केशव ॥ ५

जय कृष्णा जयाचिन्त्य जय विष्णो जयाव्यय ।
जय विश्व जयाव्यक्त जय विष्णो नमोऽस्तु ते ॥ ६

जय देव जयाजेय जय सत्य जयाक्षर ।
जय काल जयेशान जय सर्व नमोऽस्तु ते ॥ ७

जय यज्ञपते नाथ जय विश्वपते विभो ।
जय भूतपते नाथ जय सर्वपते विभो ॥ ८

जय विश्वपते नाथ जय दक्ष नमोऽस्तु ते ।
जय पापहरानन्त जय जन्मजरापह ॥ ९

जय भद्रातिभद्रेश जय भद्र नमोऽस्तु ते ।
जय कामद काकुत्स्थ जय मानद माधव ॥ १०

जय शंकर देवेश जय श्रीश नमोऽस्तु ते ।
जय कुङ्कुमरक्ताभ जय पद्मजलोचन ॥ ११

जय चन्दनलिपाङ्ग जय राम नमोऽस्तु ते ।
जय देव जगद्राथ जय देवकिनन्दन ॥ १२

जय सर्वगुरो ज्ञेय जय शम्भो नमोऽस्तु ते ।
जय सुन्दर पश्चाभ जय सुन्दरिवल्लभ ।
जय सुन्दरसर्वाङ्ग जय वन्द्य नमोऽस्तु ते ॥ १३

जय सर्वद सर्वेश जय शर्मद शाश्वत ।
जय कामद भक्तानां प्रभविष्णो नमोऽस्तु ते ॥ १४

मार्कण्डेयजी खोले — भगवन् ! विष्णो ! आप प्रसन्न हों । मुरुषोत्तम ! आप प्रसन्न हों । देवदेवेश ! गरुडध्वज ! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों । लक्ष्मीपते विष्णो ! धरणीधर ! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों । लोकनाथ ! आदिपरमेश्वर ! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों । कमलके समान नेत्रोंवाले सर्वदेवेश ! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों ! समुद्रमन्थनके समय मन्दर पर्वतको धारण करनेवाले मधुसूदन ! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों । लक्ष्मीकान्त ! भुवनपते ! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों । आदिपुरुष महादेव ! केशव ! आप मुङ्गपर प्रसन्न हों, प्रसन्न हों ॥ २—५ ॥

कृष्ण ! अचिन्तनीय कृष्ण ! अव्यय विष्णो ! विश्वके रूपमें रहनेवाले एवं व्यापक व्यक्त होते हुए भी अव्यक्त ! परमेश्वर ! आपकी जय हो, आपको मेरा प्रणाम है । अजेय देव ! आपकी जय हो, जय हो । अविनाशी सत्य ! आपकी जय हो, जय हो । सबका शासन करनेवाले काल ! आपकी जय हो, जय हो । सर्वमय ! आपकी जय हो, आपको नमस्कार है । यज्ञेश्वर ! नाथ ! व्यापक विश्वनाथ ! आपकी जय हो, जय हो । स्वामिन् ! भूतनाथ ! सर्वेश्वर ! विभो ! आपकी जय हो, जय हो । विश्वपते ! नाथ ! कार्यदक्ष ईश्वर ! आपकी जय हो, जय हो; आपको प्रणाम है । पापहारी ! अनन्त ! अन्य तथा चूदावस्थाके भयको नष्ट करनेवाले देव ! आपकी जय हो, जय हो । भद्र ! अतिभद्र ! ईश ! कल्याणमय प्रभो ! आपकी जय हो, जय हो; आपको नमस्कार है । कामनाओंको पूर्ण करनेवाले ककुत्स्थ-कुलोत्पन्न श्रीराम ! सम्मान देनेवाले माधव ! आपकी जय हो, जय हो । देवेश्वर शंकर ! लक्ष्मीपते ! आपकी जय हो, जय हो; आपको नमस्कार है । कुङ्कुमके समान अरुण कान्तिवाले कमलनयन ! आपकी जय हो, जय हो । चन्दनसे अनुलिप्त श्रीअङ्गोंवाले श्रीराम ! आपकी जय हो, जय हो; आपको नमस्कार है । देव ! जगत्राथ ! देवकीनन्दन ! आपकी जय हो, जय हो । सर्वगुरो ! जाननेयोग्य शम्भो ! आपकी जय हो, जय हो; आपको नमस्कार है । नील कमलकी-सी आभावाले श्यामसुन्दर ! सुन्दरी श्रीराधाके प्राणवल्लभ ! आपकी जय हो, जय हो । सर्वाङ्गसुन्दर ! बन्दनीय प्रभो ! आपको नमस्कार है; आपकी जय हो, जय हो । सब कुछ देनेवाले सर्वेश्वर ! कल्याणदायी सनातन पुरुष ! आपकी जय हो, जय हो । भक्तोंकी कामनाओंको देनेवाले प्रभुवर ! आपकी जय हो, आपको नमस्कार है ॥ ६—१४ ॥

नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने।
 लोकनाथ नमस्तेऽस्तु वीरभद्र नमोऽस्तु ते॥ १५
 नमस्तेऽस्तु वीरभद्र नमो नारायणाय ते॥ १६
 नमस्ते वासुदेवाय नमस्ते पीतवाससे।
 नमस्ते नरसिंहाय नमस्ते शार्ङ्गधारिणे॥ १७
 नमः कृष्णाय रामाय नमश्क्रान्तुधाय च।
 नमः शिवाय देवाय नमस्ते भुवनेश्वर॥ १८
 नमो वेदान्तवेदाय नमोऽनन्ताय विष्णवे।
 नमस्ते सकलाध्यक्ष नमस्ते श्रीधराच्युत॥ १९
 लोकाध्यक्ष जगत्पूज्य परमात्मन् नमोऽस्तु ते।
 त्वं माता सर्वलोकानां त्वमेव जगतः पिता॥ २०
 त्वमातानां सुहृन्मित्रं प्रियस्त्वं प्रपितामहः।
 त्वं गुरुस्त्वं गतिः साक्षी त्वं पतिस्त्वं परायणः॥ २१
 त्वं धूवस्त्वं वषट्कर्ता त्वं हविस्त्वं हुताशनः।
 त्वं शिवस्त्वं वसुर्धाता त्वं ब्रह्मा त्वं सुरेश्वरः॥ २२
 त्वं यमस्त्वं गविर्वायुस्त्वं जलं त्वं धनेश्वरः।
 त्वं मनुस्त्वमहोरात्रं त्वं निशा त्वं निशाकरः।
 त्वं धृतिस्त्वं श्रियः कानिस्त्वं क्षमा त्वं धराधरः॥ २३
 त्वं कर्ता जगतामीशस्त्वं हन्ता मधुसूदन।
 त्वमेव गोपा सर्वस्य जगतस्त्वं चराचर॥ २४
 करणं कारणं कर्ता त्वमेव परमेश्वरः।
 शङ्खचक्रगदापाणे भो समुद्धर माधव॥ २५
 प्रिय पद्मपलाशाक्ष शेषपर्यङ्कशायिनम्।
 त्वमेव भक्त्या सततं नमामि पुरुषोत्तमम्॥ २६
 श्रीवत्साङ्गं जगदीजं श्यामलं कमलेक्षणम्।
 नमामि ते वपुदेव कलिकल्पनाशनम्॥ २७
 लक्ष्मीधरमुदाराङ्गं दिव्यमालाविभूषितम्।
 चारुपृष्ठं महाबाहुं चारुभूषणभूषितम्॥ २८
 पद्मनाभं विशालाक्षं पद्मपत्रनिभेक्षणम्।
 दीर्घतुङ्गमहाद्याणं नीलजीमूतसंनिभम्॥ २९
 दीर्घबाहुं सुगुणाङ्गं रत्नहारोज्ज्वलोरसम्।
 सुभूललाटमुकुटं स्त्रिघटदनं सुलोचनम्॥ ३०

जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है तथा जो कमलकी माला पहने हुए हैं, उन भगवान्को नमस्कार है। लोकनाथ! वीरभद्र! आपको बार-बार नमस्कार है। चतुर्व्यूहस्वरूप जगदीश्वर! आप त्रिभुवननाथ देवाधिदेव नारायणको नमस्कार है। पीताम्बरधारी वासुदेवके प्रणाम है, प्रणाम है। शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले नरसिंहस्वरूप आप भगवान् विष्णुको नमस्कार है, नमस्कार है। भुवनेश्वर! चक्रधारी विष्णु, कृष्ण, राम और भगवान् शिवके रूपमें वर्तमान आपको बार-बार नमस्कार है। सबके स्वामी श्रीधर! अच्युत! वेदान्त शास्त्रके द्वारा जाननेयोग्य आप अन्तरहित भगवान् विष्णुको बारम्बार नमस्कार हैं। लोकाध्यक्ष! जगत्पूज्य परमात्मन्! आपको नमस्कार है॥ १५—१९॥

आप ही समस्त संसारकी माता और आप ही सम्पूर्ण जगत्के पिता हैं। आप पीड़ितोंके सुहृद हैं; आप सबके मित्र, प्रियतम, पिताके भी पितामह, गुरु, गति, साक्षी, पति और परम आश्रय हैं। आप ही धूब, वषट्कर्ता, हवि, हुताशन (अग्नि), शिव, वसु, धाता, ब्रह्मा, सुराराज इन्द्र, यम, सूर्य, बायु, जल, कुबेर, मनु, दिन-रात, रजनी, चन्द्रमा, धृति, श्री, कान्ति, क्षमा और धराधर शेषनाम हैं। चराचरस्वरूप मधुसूदन! आप ही जगत्के स्लाण, शासक और संहरक हैं तथा आप ही समस्त संसारके रक्षक हैं। आप ही करण, कारण, कर्ता और परमेश्वर हैं। हाथमें शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले माधव! आप मेरा उद्धार करें। कमलदललोचन प्रियतम! शेषशास्त्रापर शयन करनेवाले पुरुषोत्तम आपको ही मैं सदा भक्तिके साथ प्रणाम करता हूँ। देव! जिसमें श्रीवत्सचिह्न शोभा पाता है, जो जगत्का आदिकारण है, जिसका वर्ण श्यामल और नेत्र कमलके समान हैं तथा जो कलिके दोषोंको नष्ट करनेवाला है, आपके उस श्रीविग्रहको मैं नमस्कार करता हूँ॥ २०—२७॥

जो लक्ष्मीजीको अपने हृदयमें धारण करते हैं, जिनका शरीर सुन्दर है, जो दिव्यमालासे विभूषित हैं, जिनका पृष्ठदेश सुन्दर और भुजाएँ बड़ी-बड़ी हैं, जो सुन्दर आभूषणोंसे अलंकृत हैं, जिनकी नाभिसे पद्म प्रकट हुआ है, जिनके नेत्र कमलदलके समान सुन्दर और विशाल हैं, नासिका बड़ी ऊँची और लम्बी है, जो नील मेघके समान श्याम है, जिनकी भुजाएँ लम्बी, शरीर सुरक्षित और चक्षःखल रत्नोंके हारसे प्रकाशमान है, जिनकी भौंहें, ललाट और मुकुट—सभी सुन्दर हैं, दौत चिकने और नेत्र

चारुबाहुं सुताप्रोष्टं रबोज्ज्वलितकुण्डलम्।
वृत्तकण्ठं सुपीनांसं सासं श्रीधामं हरिम्॥ ३१

सुकुमारमजं नित्यं नीलकुञ्जितमूर्धजम्।
उन्नतांसं महोरस्कं कणान्तायतलोचनम्॥ ३२

हेमारविन्दवदनमिन्दिरायनमीश्वरम् ।
सर्वलोकविधातारं सर्वपापहरं हरिम्॥ ३३

सर्वलक्षणसम्पन्नं सर्वसत्त्वमनोरमम्।
विष्णुमच्युतभीशानमनन्तं पुरुषोत्तमम्॥ ३४

नतोऽस्मि मनसा नित्यं नारायणमनामयम्।
चरदं कामदं कान्तमनन्तं सूनृतं शिवम्॥ ३५

नमामि शिरसा विष्णो सदा त्वां भक्तवत्सल।
अस्मिन्नेकार्णवे घोरे वायुस्कम्भितचञ्चले॥ ३६

अनन्तभोगशायने सहस्रफणशोभिते।
विचित्रशायने रम्ये सेविते मन्दवायुना॥ ३७

भुजपञ्चरसंसक्तकमलालयसेवितम् ।
इह त्वां मनसा सर्वमिदानीं दृष्टवानहम्॥ ३८

इदानीं तु सुदुःखानीं मायया तव मोहितः।
एकोदके निरालम्बे नष्टस्थावरजङ्गमे॥ ३९

शून्ये तमसि दुष्पारे दुःखपङ्के निरापये।
शीतातपजरारोगशोकतृष्णादिभिः सदा॥ ४०

पीडितोऽस्मि भृशं तात सुचिरं कालमच्युत।
शोकमोहयहग्रस्तो विचरन् भवसागरे॥ ४१

इहाद्य विधिना प्राप्तस्तव पादाव्यसंनिधौ।
एकार्णवे महाघोरे दुस्तरे दुःखपीडितः॥ ४२

चिरभूमपरिश्रान्तस्वामद्य शरणं गतः।
प्रसीद सुमहामाय विष्णो राजीवलोचन॥ ४३

मनोहर हैं, जो सुन्दर भुजाओं और सुचिर अरुण अधरोंसे सुशोभित हैं, जिनके कुण्डल रङ्गटित होनेके कारण जगमगा रहे हैं, कण्ठ वर्तुलाकार है और कंधे मांसल हैं, उन रसिकशेखर श्रीधर हरिको नमस्कार है॥ ३८—३१॥

जो अजन्मा एवं नित्य होनेपर भी सुकुमारस्वरूप धारण किये हुए हैं, जिनके केश काले-काले और धूधराले हैं, कंधे ऊँचे और वक्षःस्थल विशाल हैं, और ऊँचे कानोंतक फैली हुई हैं, मुखारविन्द सुवर्णमय कमलके समान परम सुन्दर हैं, जो लक्ष्मीके निवासस्थान एवं सबके शासक हैं, सम्पूर्ण लोकोंके स्त्रष्टा और समस्त पापोंको हर लेनेवाले हैं, समग्र शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न और सभी जीवोंके लिये मनोरम हैं तथा जो सर्वव्यापी, अच्युत, ईशन, अनन्त एवं पुरुषोत्तम हैं, वरदाता, कामपूरक, कमनीय, अनन्त, मधुरभाषी एवं कल्पाणस्वरूप हैं, उन निरामय भगवान् नारायण श्रीहरिको मैं सदा हृदयसे नमस्कार करता हूँ॥ ३२—३५॥

भक्तवत्सल विष्णो ! मैं सदा आपको मस्तक ढुकाकर प्रणाम करता हूँ। इस भयंकर एकार्णवमें, जो प्रलयकालिक वायुकी प्रेरणासे विक्षुब्ध एवं चञ्चल हो रहा है, सहस्र फणोंसे सुशोभित 'अनन्त' नामक शेषनागके शरीरकी विचित्र एवं रमणीय शश्यापर, जहाँ मन्द-मन्द वायु चल रही है, आपके भुजपाशमें बैधी हुई श्रीलक्ष्मीजीसे आप सेवित हैं; मैंने इस समय सर्वस्वरूप आपके रूपका यहाँपर जी भरकर दर्शन किया है॥ ३६—३८॥

इस समय आपकी मायासे मोहित होकर मैं अत्यन्त दुःखसे पीड़ित हो रहा हूँ। दुःखरूपी पङ्कसे भरे हुए, व्याधिपूर्ण एवं अवलम्बशून्य इस एकार्णवमें समस्त स्थावर-जङ्गम नष्ट हो चुके हैं। सब ओर शून्यमय अपार अन्धकार छाया हुआ है। मैं इसके भीतर शीत, आतप, जरा, रोग, शोक और तृष्णा आदिके द्वारा सदा चिरकालसे अत्यन्त कष्ट पा रहा हूँ। तात ! अच्युत ! इस भवसागरमें शोक और मोहरूपी ग्राहसे ग्रस्त होकर भटकता हुआ आज मैं यहाँ दैववश आपके चरणकमलोंके निकट आ पहुँचा हूँ। इस महाभयानक दुस्तर एकार्णवमें बहुत कालतक भटकते रहनेके कारण दुःखपीडित एवं थका हुआ मैं आज आपकी शरणमें आया हूँ। महामायी कमललोचन भगवन् ! विष्णो ! आप मुझपर प्रसन्न हों॥ ३९—४३॥

विश्वयोने विशालाक्ष विश्वात्मन् विश्वसम्भव।
 अनन्यशरणं प्राप्तमतोऽत्र कुलनन्दन॥ ४४
 त्राहि मां कृपया कृष्ण शरणागतमातुरम्।
 नमस्ते पुण्डरीकाक्ष पुराणपुरुषोत्तम॥ ४५
 अञ्जनाभ हृषीकेश मायामय नमोऽस्तु ते।
 मामुद्धर महाबाहो मग्ने संसारसागरे॥ ४६
 गहरे दुस्तरे दुःखविलष्टे क्लेशमहाग्रहैः।
 अनाथं कृपणं दीनं पतितं भवसागरे।
 मां समुद्धर गोविन्द वरदेश नमोऽस्तु ते॥ ४७
 नमस्तैलोक्यनाथाय हरये भूधराय च।
 देवदेव नमस्तेऽस्तु श्रीवल्लभ नमोऽस्तु ते॥ ४८
 कृष्ण कृष्ण कृपालुस्वप्नगतीनां गतिर्भवान्।
 संसारार्णवमग्नानां प्रसीद मधुसूदन॥ ४९
 त्वामेकमाद्यं पुरुषं पुराणं
 जगत्यतिं कारणमच्युतं प्रभुम्।
 जनार्दनं जन्मजरार्तिनाशनं
 सुरेशं सुन्दरमिन्दिरापतिम्॥ ५०

बृहद्दुजं श्यामलकोमलं शुभं
 वराननं वारिजपत्रनेत्रम्।
 तरंगभङ्गायतकुन्तलं हरि
 सुकान्तमीशं प्रणतोऽस्मि शाश्वतम्॥ ५१
 सा जिह्वा या हरि स्तीति तच्चित्तं यत्त्वदर्पितम्।
 तावेव केवली श्लाघ्यी यी त्वत्पूजाकरी करी॥ ५२
 जन्मान्तरसहस्रेषु यन्मया पातकं कृतम्।
 तन्मे हर त्वं गोविन्द वासुदेवेति कीर्तनात्॥ ५३
 व्यास उकाच

इति स्तुतस्ततो विष्णुर्मार्कण्डेयेन धीमता।
 संतुष्टः प्राह विश्वात्मा तं मुनिं गरुडध्वजः॥ ५४

श्रीभगवानुकाच

प्रीतोऽस्मि तपसा विप्र स्तुत्या च भृगुनन्दन।
 वरं वृणीष्व भद्रं ते प्रार्थितं दद्यि ते वरम्॥ ५५

कुलनन्दन कृष्ण! आप विश्वकी उत्पत्तिके स्थान, विशाललोचन, विश्वोत्पादक और विश्वात्मा हैं; अतः दूसरेकी शरणमें न जाकर एकमात्र आपकी ही शरणमें आये हुए मुझ आत्मरक्षा आप कृपापूर्वक यहाँ उद्धार करें। पुराण-पुरुषोत्तम पुण्डरीकलोचन! आपको नमस्कार है। कञ्जलके समान श्याम कानित्याले हृषीकेश! मायके आश्रयभूत महेश्वर! आपको नमस्कार है। महाबाहो! संसार-सागरमें दूबे हुए मुझ शरणागतका उद्धार कर दें। वरदाता ईश्वर! गोविन्द! क्लेशहरी महान् ग्राहोंसे भ्रे हुए दुःख और क्लेशोंसे युक्त, दुस्तर एवं गहरे भवसागरमें गिरे हुए मुझ दीन, अनाथ एवं कृपणका उद्धार करें। विभुवननाथ विष्णु और धरणीधर अनन्तको नमस्कार है। देवदेव! श्रीवल्लभ! आपको बारम्बार नमस्कार है॥ ४८—४८॥

कृष्ण! कृष्ण! आप दयालु और आश्रयहीनके आश्रय हैं। मधुसूदन! संसार-सागरमें निमग्न हुए प्रणियोंपर आप प्रसन्न हों। आज मैं एक (अद्वितीय), आदि, पुराणपुरुष, जगदीश्वर, जगत्के कारण, अच्युतस्वरूप, सबके स्वामी और जन्य-जरा एवं पीड़ाको नष्ट करनेवाले, देवेश्वर, परम सुन्दर लक्ष्मीपति भगवान्, जनार्दनको प्रणाम करता हूँ। जिनकी भुजाएँ बढ़ी हैं, जो श्यामवर्ण, कोमल, सुशोभन, सुमुख और कमलदललोचन हैं, क्षीरसागरकी तरंगभङ्गीके समान जिनके लम्बे-लम्बे घुंघराले केश हैं, उन परम कमलीय, सनातन ईश्वर भगवान्, विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। भगवन्! वही जिह्वा सफल है, जो आप श्रीहरिका स्तवन करती है, वही चित्त सार्थक है, जो आपके चरणोंमें समर्पित हो चुका है तथा केवल वे ही हाथ श्लाघ्य हैं, जो आपकी पूजा करते हैं। गोविन्द! हजारों जन्मान्तरोंमें मैंने जो-जो पाप किये हों, उन सबको आप 'वासुदेव' इस नामका कीर्तन करनेमात्रसे हर लीजिये॥ ४९—५३॥

व्यासजी बोले—तटनन्तर बुद्धिमान् मार्कण्डेय मुनिके इस प्रकार स्तुति करनेपर गृहडचिह्नित ध्वजावाले विश्वात्मा भगवान्, विष्णुने संतुष्ट होकर उनसे कहा॥ ५४॥

श्रीभगवान् बोले—विप्र! भृगुनन्दन! मैं तुम्हारी तपस्या और स्तुतिसे प्रसन्न हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। तुम मुझसे वर माँगो। मैं तुम्हें मुँहमाँगा वर दैगा॥ ५५॥

मार्कण्डेय उक्ताच

त्वत्पादपदे देवेश भक्तिं मे देहि सर्वदा ।
यदि तुष्टो ममाद्य त्वमन्यदेकं वृणोम्यहम् ॥ ५६
स्तोत्रेणानेन देवेश यस्त्वां स्तोत्र्यति नित्यशः ।
स्वलोकवस्ति तस्य देहि देव जगत्पते ॥ ५७
दीर्घायुष्ट्वं तु यहतं त्वया मे तप्यतः पुरा ।
तत्सर्वं सफलं जातमिदानीं तव दर्शनात् ॥ ५८
वस्तुमिच्छामि देवेश तव पादाब्जमर्चयन् ।
अत्रैव भगवन् नित्यं जन्ममृत्युविवर्जितः ॥ ५९

श्रीभगवनुकाच

मव्यस्तु ते भृगुश्रेष्ठ भक्तिरव्यभिचारिणी ।
भक्त्या मुक्तिर्भवत्येव तव कालेन सत्तम ॥ ६०
यस्त्विदं पठते स्तोत्रं सायं प्रातस्तवेरितम् ।
मयि भक्तिं दृढां कृत्वा मम लोके स पोदते ॥ ६१
यत्र यत्र भृगुश्रेष्ठ स्थितस्त्वं मां स्मरिष्यसि ।
तत्र तत्र समेष्यामि दानो भक्तवशोऽस्मि भोः ॥ ६२

व्यास उक्ताच

इत्युक्त्वा तं मुनिश्चेष्टुं मार्कण्डेयं स माधवः ।
विरराम स सर्वत्र पश्यन् विष्णुं यतस्ततः ॥ ६३
इति ते कथितं विष्र चरितं तस्य धीमतः ।
मार्कण्डेयस्य च मुनेस्तेनैवोक्तं पुरा मम ॥ ६४
ये विष्णुभक्त्या चरितं पुराणं
भृगोस्तु पौत्रस्य पठन्ति नित्यम् ।
ते मुक्तपापा नरसिंहलोके
वसन्ति भक्तैरभिपूज्यमानाः ॥ ६५

इति श्रीनरसिंहपुत्रं मार्कण्डेयचरितं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुत्रामें 'मार्कण्डेय-चरित' नामक ग्रन्थका अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—देवेश! यदि आज आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं यही माँगता हूँ कि 'आपके चरणकमलोंमें मेरी भक्ति सदा बनी रहे!' इसके सिवा एक दूसरा वर भी मैं माँग रहा हूँ—'देव! देवेश! जगत्पते! जो इस स्तोत्रसे आपको नित्य सुति करे, उसे आप अपने वैकुण्ठधाममें निवास प्रदान करों।' पूर्वकालमें तपस्या करते हुए मुझको जो आपने दीर्घायु होनेका वरदान दिया था, वह सब आज आपके दर्शनसे सफल हो गया। देवेश! भगवन्! अब मैं आपके चरणारविन्दोंका पूजन करता हुआ जन्म और मृत्युसे रहित होकर यहाँ ही नित्य निवास करना चाहता हूँ ॥ ५६—५९ ॥

श्रीभगवान् बोले—भृगुश्रेष्ठ! मुझमें तुम्हारी अनन्य भक्ति बनी रहे तथा साधुशिरोमणे! समय आनेपर इस भक्तिसे तुम्हारी मुक्ति भी अवश्य ही हो जायगी। तुम्हारे कहे हुए इस स्तोत्रका जो लोग नित्य प्रातःकाल और संध्याके समय पाठ करेंगे, वे मुझमें सुदृढ़ भक्ति रखते हुए मेरे लोकमें आनन्दपूर्वक रहेंगे। भृगुश्रेष्ठ! मैं दान्त (स्ववश) होनेपर भी भक्तोंके वशमें रहता हूँ; अतः तुम जहाँ-जहाँ रहकर मेरा स्मरण करोगे, वहाँ-वहाँ मैं पहुँच जाऊँगा ॥ ६०—६२ ॥

व्यासजी बोले—मुनिवर मार्कण्डेयसे यों कहकर भगवान् लक्ष्मीपति मीन हो गये तथा ये मुनि इधर-उधर विचरते हुए सर्वत्र भगवान् विष्णुका साक्षात्कार करने लगे। विष्र! बुद्धिमान् मार्कण्डेय मुनिके इस चरित्रका, जिसे पूर्वकालमें उन्होंने स्वयं ही मुझसे कहा था, मैंने तुमसे वर्णन किया। जो लोग भृगुके पौत्र मार्कण्डेयजीके इस पुरातन चरित्रका भगवान् विष्णुमें भक्ति रखते हुए नित्य पाठ करते हैं, वे पापोंसे मुक्त हो, भक्तोंसे पूजित होते हुए भगवान् नृसिंहके लोकमें निवास करते हैं ॥ ६३—६५ ॥

बारहवाँ अध्याय

यम और यमीका संवाद*

सूत उचाच

**श्रुत्वेमाममृतां पुण्यां सर्वपापप्रणाशिनीम्।
अवितृप्तः स धर्मात्मा शुक्रो व्यासमभाषत्॥ १**

कौशुक उचाच

**अहोउतीच तपश्चर्या मार्कण्डेयस्य धीमतः।
येन दृष्टो हरि: साक्षाद्येन मृत्युः पराजितः॥ २
न तुमिरस्ति मे तात श्रुत्वेमां वैष्णवीं कथाम्।
पुण्यां पापहरां तात तस्मादन्यन्तु मे वद॥ ३
नराणां दुर्बचित्तानामकार्यं नेह कुर्वताम्।
यत्पुण्यमृषिभिः प्रोक्तं तन्मे वद महामते॥ ४**

व्यास उचाच

**नराणां हृष्टचित्तानामिह लोके परत्र च।
पुण्यं यत् स्यान्मुनिश्चेष्टु तन्मे निगदतः शृणु॥ ५
अत्रैवोदाहरन्तीमितिहासं पुरातनम्।
यम्या च सह संवादं यमस्य च महात्मनः॥ ६
विवस्वानदिते: पुत्रस्तस्य पुत्री सुवर्चसी।
जज्ञाते स यमश्चैव यमी चापि यवीयसी॥ ७
तौ तत्र संविवर्धेते पितुर्भवन उत्तमे।
क्रीडमानौ स्वभावेन स्वच्छन्दगमनावुभौ॥ ८
यमी यमं समासाद्य स्वसा भातरमन्वयीत्॥ ९**

* यह 'यम-यमी-संवाद' ऋच्येटके एक सूक्तपर आधारित है। यही प्रसंग यह है कि यम और यमी, जो परस्पर भाई और बहन हैं, कुमारावस्थामें बालोचित खोलसे मन बहला रहे थे। उनके सामने एक ऐसा दृश्य आया, जिसमें कोई चर वाजे-गाजेके साथ विवाहके लिये जा रहा था। यमीने पूछा—'थैया! यह क्या है?' यमने उसे बताया कि 'यह बाहर है। इसमें चर-वेषधारी पुरुष किसी कुमारी स्त्रीके साथ विवाह करेगा। फिर वे दोनों चति-पत्नी होकर गृहस्थ-जीवित व्यतीत करेंगे।' यमी खालोचित सरलताके साथ प्रस्ताव कर दी—'थैया! आओ, हम और तुम भी परस्पर विवाह कर लें।' यमने उसे समझाया कि भाइके साथ यहनका विवाह नहीं होता। तुम्हें मुझसे भिन्न किसी दूसरे भ्रष्ट पुरुषको अपना पति चुनना होगा—'अच्यु बुणुख सुधगे पत्नि मत्।'

इसी वैदिक उपाख्यानको यहाँ इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है, मानो यमी कामवेदनासे चोहित हो यमसे यह प्रार्थना कर रही हो कि—वे उसे अपनी पत्नी बनाकर उसकी इच्छा पूर्ण करें। इसमें यमीका विकातोरेषादक चित्र प्रस्तुत किया गया है और 'विकातहेती सति विक्षिप्तयन्ते येदानं चेतांसि त एव धीरा:।' (विकारका कारण उपस्थिता होनेपर भी जिनके चित्रमें विकार नहीं होता, वे ही पुरुष धीर—ज्ञानी और संयमी हैं—) इस उकिके अनुसार यमकी जितोन्द्रियता, उनकी धर्मविषयक अविचल निष्ठा, धीर्य और विषेकको लोकके समस्य प्रकाशमें लाया गया। जैसे सोना आगमें तपकर खरा उत्तरता है, उसी प्रकार यम यमीकी अग्नि-परीक्षामें उत्तीर्ण हो सुदृढ़ धर्मात्मा, संयमी और विषेकी सिद्ध हुए हैं। यमके उन्नचल चरित्रको और भी चमत्कारी रूपमें सामने लाना इस कथाका बहेश्य है। इससे प्रत्येक भाई तथा नवयुवकको सदाचारी, संयमी तथा धर्ममें अविचलभावसे स्थित रहनेकी शिक्षा और प्रेरणा मिलती है। यमीके चरित्रसे यह शिक्षा प्राप्त होती है कि प्रत्येक कुमारीका विवाहयोग्य अवस्था होनेपर अविलम्ब किसी योग्य वरके साथ विवाह कर देना चाहिये। बास्तवमें यम और यमी दोनों ही सूर्यदेवकी दिव्य संतानें हैं। उनमें किसी प्रकारके विकारको लेजापात्र भी सम्भावना नहीं है। लोगोंको सदाचार और संयमकी शिक्षा देनेके लिये ही व्यासजीने उस वैदिक उपाख्यानको यहाँ इस प्रकार चिह्नित किया है।

सूतजी बोले—समस्त पापोंको नष्ट करनेवाली और अमृतके समान मधुर इस पावन कथाको सुनकर धर्मात्मा शुकदेवजी तुम न हुए—उनकी श्रवणविषयक इच्छा बढ़ती ही गयी; अतः वे व्यासजीसे बोले ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—पिताजी! बुद्धिमन् मार्कण्डेयजीकी तपस्या बड़ी भारी और अद्भुत है, जिन्होंने साक्षात् भगवान् विष्णुका दर्शन किया और मृत्युपर विजय पायी। तात! पापोंको नष्ट करनेवाली इस विष्णु-सम्बन्धिनी पावन कथाको सुनकर मुझे तुम्हीं नहीं हो रही है; अतः अब मुझसे कोई दूसरी कथा कहिये। महामते! जिनका मन सुदृढ़ है, जो इस जगत्में कभी निषिद्ध कर्म नहीं करते, उन मनुष्योंको जिस पुण्यकी प्राप्ति ऋषियोंने बतायी है, उसे ही आप कहिये ॥ २—४ ॥

व्यासजी बोले—मुनिश्रेष्ठ शुकदेव! स्थिर चित्तवाले पुरुषोंको इस लोकमें या परलोकमें जो पुण्य प्राप्त होता है, उसे मैं बतलाता हूँ; तुम सुनो। इसी विषयमें विद्वान् पुरुष यमीके साथ महात्मा यमके संवादरूप इस प्राचीन इतिहासका वर्णन किया करते हैं। अदितिके पुत्र जो विवस्वान् (सूर्य) हैं, उनके दो तेजस्वी संतानें हुईं। उनमें प्रथम तो 'यम' नामक पुत्र था और दूसरी उससे छोटी 'यमी' नामकी कन्या थी। वे दोनों अपने पिताके उत्तम भवनमें दिनोंदिन भलीभांति बढ़ने लगे। वे बाल-स्वभावके अनुसार साथ-साथ खेलते-कूदते और इच्छानुसार घूमते-फिरते थे। एक दिन यमकी बहिन यमीने अपने भाई यमके पास जाकर कहा— ॥ ५—९ ॥

यमुकाच

न भ्राता भगिनीं योग्यां कामयन्तीं च कामयेत्।
भ्रातृभूतेन किं तस्य स्वसुयों न पतिर्भवेत्॥ १०
अभूत इव स ज्ञेयो न तु भूतः कथञ्चन।
अनाथां नाथमिच्छन्तीं स्वसारं यो न नाथति॥ ११
काङ्क्षन्तीं भ्रातरं नाथं भर्तारं यस्तु नेच्छति।
भ्रातेति नोच्यते लोके स पुमान् मुनिसत्तमः॥ १२
स्याद्वान्यतनया तस्य भायां भवति किं तथा।
ईक्षतस्तु स्वसा भ्रातुः कामेन परिदह्यते॥ १३
यत्कार्यमहमिच्छामि त्वमेवेच्छ तदेव हि।
अन्यथाहं मरिष्यामि त्वामिच्छन्तीं विचेतना॥ १४
कामदुःखमसह्यं नु भ्रातः किं त्वं न चेच्छसि।
कामाग्निना भृशं तसा प्रलीयाप्यह्न मा चिरम्॥ १५
कामार्तायाः स्वियाः कान्त वशगो भव मा चिरम्।
स्वेन कायेन मे कायं संयोजयितुमहसि॥ १६॥

यम उकाच

किमिदं लोकविद्विष्टं धर्मं भगिनि भाषसे।
अकार्यमिह कः कुर्यात् पुमान् भद्रे सुचेतनः॥ १७
न ते संयोजयिष्यामि कायं कायेन भामिनि।
न भ्राता मदनार्तायाः स्वसुः कामं प्रयच्छति॥ १८
महापातकमित्याहुः स्वसारं योऽधिगच्छति।
पशूनामेष धर्मः स्यात् तिर्यग्योनिवतां शुभे॥ १९

यमुकाच

एकस्थाने यथा पूर्वं संयोगो नौ न दुष्यति।
मातृगर्भे तथैवायं संयोगो नौ न दुष्यति॥ २०
किं भ्रातरप्यनाथां त्वं मम नेच्छसि शोभनम्।
स्वसारं निर्ऋती रक्षः संगच्छति च नित्यशः॥ २१

यमी बोली—जो भाई अपनी योग्य बहिनको उसके चाहनेपर भी न चाहे, जो बहिनका पति न हो सके, उसके भाई होनेसे क्या लाभ? जो स्वामीकी इच्छा रखनेवाली अपनी कुमारी बहिनका स्वामी नहीं बनता, उस भ्राताको ऐसा समझना चाहिये कि वह पैदा ही नहीं हुआ। किसी तरह भी उसका उत्पन्न होना नहीं माना जा सकता। ऐया! यदि बहिन अपने भाईको ही अपना स्वामी—अपना पति बनाना चाहती है, इस दशामें जो बहिनको नहीं चाहता, वह पुरुष मुनिशिरोमणि ही क्यों न हो, इस संसारमें भ्राता नहीं कहा जा सकता। यदि किसी दूसरेकी ही कन्या उसकी पत्नी हो तो भी उससे क्या लाभ, यदि उस भाईकी अपनी बहिन उसके देखते-देखते कामसे दाघ हो रही है। मेरे होश, इस समय अपने ठिकाने नहीं हैं। मैं इस समय जो काम करना चाहती हूँ, तुम भी उसीकी इच्छा करो; नहीं तो मैं तुम्हारी ही चाह लेकर प्राण त्याग दूँगी, मर जाऊँगी। भाई! कामकी वेदना असद्ग होती है। तुम मुझे क्यों नहीं चाहते? प्यारे ऐया! कामाग्निसे अत्यन्त संतप्त होकर मैं मरी जा रही हूँ; अब देर न करो। कान्त! मैं कामपीड़िता स्त्री हूँ। तुम शोष्ण हो मेरे अधीन हो जाओ। अपने शरीरसे मेरे शरीरका संयोग होने दो॥ १०—१६॥

यम बोले—बहिन! सारा संसार जिसकी निन्दा करता है, उसी इस पापकर्मको तू धर्म कैसे बता रही है? भद्रे! भला कौन सचेत पुरुष यह न करने योग्य पाप-कर्म कर सकता है? भामिनि! मैं अपने शरीरमें तुम्हारे शरीरका संयोग न होने दूँगा। कोई भी भाई अपनी काम-पीड़िता बहिनकी इच्छा नहीं पूरी कर सकता। जो बहिनके साथ समागम करता है, उसके इस कर्मको महापातक बताया गया है—शुभे! यह तिर्यग्-योनिमें पढ़े हुए पशुओंका धर्म है—देवता या मनुष्यका नहीं॥ १७—१९॥

यमी बोली—ऐया! हम दोनों जुड़वी संतानें हैं और माताके गर्भमें एक साथ रहे हैं। पहले माताके गर्भमें एक ही स्थानपर हम दोनोंका जो संयोग हुआ था, वह जैसे दूषित नहीं माना गया, उसी प्रकार यह संयोग भी दूषित नहीं हो सकता। भाई! अभीतक मुझे पतिकी प्राप्ति नहीं हुई है। तुम मेरा भला करना क्यों नहीं चाहते? 'निर्ऋति' नामक राक्षस तो अपनी बहिनके साथ नित्य ही समागम करता है॥ २०—२१॥

यम उकाच

स्वयम्भुवापि निन्देत लोकवृत्तं जुगुप्सितम् ।
प्रधानपुरुषाचीर्ण लोकोऽयमनुवर्तते ॥ २२

तस्मादनिन्दितं धर्मं प्रधानपुरुषश्चरेत् ।
निन्दितं वर्जयेद्यत्कादेतद्वर्मस्य लक्षणम् ॥ २३

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ २४

अतिपापमहं मन्ये सुभगे वचनं तव ।
विरुद्धं सर्वधर्मेषु लोकेषु च विशेषतः ॥ २५

मत्तोऽन्यो यो भवेष्यो वै विशिष्टो रूपशीलतः ।
तेन सार्थं प्रमोदस्व न ते भर्ता भवाम्यहम् ॥ २६

नाहं स्पृशामि तन्वा ते तनुं भद्रे दृढव्रतः ।
मनयः पापमाहुस्तं यः स्वसारं निगृह्णति ॥ २७

सम्युक्ताच

दुर्लभं चैव पश्यामि लोके रूपमिहेदूशम् ।
यत्र रूपं वयश्चैव पृथिव्यां छ प्रतिष्ठितम् ॥ २८

न विजानामि ते चित्तं कुत एतत् प्रतिष्ठितम् ।
आत्मरूपगुणोपेतां न कामयसि मोहिताम् ॥ २९

लतेव पादपे लग्ना कामं त्वच्छुरणं गता ।
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य निवसामि शुचिस्मिता ॥ ३०

यम उकाच

अन्यं श्रयस्व सुश्रोणि देवं देव्यसितेक्षणो ।
यस्तु ते काममोहेन चेतसा विभ्रमं गतः ।
तस्य देवस्य देवी त्वं भवेथा खरवर्धिनि ॥ ३१

ईप्सितां सर्वभूतानां वर्या शांसन्ति मानवाः ।
सुभद्रां चारुसर्वाङ्गीं संस्कृतां परिचक्षते ॥ ३२

तत्कृतेऽपि सुविद्वांसो न करिष्यन्ति दूषणम् ।
परितापं महाप्राज्ञे न करिष्ये दृढव्रतः ॥ ३३

चित्तं मे निर्मलं भद्रे विष्णो रुद्रे च संस्थितम् ।
अतः पापं नु नेच्छामि धर्मचित्तो दृढव्रतः ॥ ३४

यम बोले—यहिन। कुत्सित लोकव्यवहारकी निन्दा ब्रह्माजीने भी की है। इस संसारके लोग श्रेष्ठ पुरुषोदारा आचरित धर्मका ही अनुसरण करते हैं। इसलिये श्रेष्ठ पुरुषको चाहिये कि वह उत्तम धर्मका ही आचरण करे और निन्दित कर्मको यत्नपूर्वक त्याग दे—यही धर्मका लक्षण है। श्रेष्ठ पुरुष जिस-जिस कर्मका आचरण करते हैं, उसीको अन्य लोग भी आचरणमें लाते हैं और वह जिसे प्रमाणित कर देता है, लोग उसीका अनुसरण करते हैं। सुधगे! मैं तो तुम्हारे इस वचनको अत्यन्त पापमूर्ण समझता हूँ। इतना ही नहीं, मैं इसे सब धर्मों और विशेषतः समस्त लोकोंके विपरीत मानता हूँ। मुझसे अन्य जो कोई भी रूप और शीलमें विशिष्ट हो, उसके साथ तुम आनन्दपूर्वक रहो; मैं तुम्हारा पति नहीं हो सकता। भद्रे! मैं दृढ़तापूर्वक उत्तम ब्रतका पालन करनेवाला हूँ, अतः अपने शरीरसे तुम्हारे शरीरका स्पर्श नहीं करूँगा। जो बहिनको ग्रहण करता है, उसे मुनियोंने 'पापी' कहा है ॥ २२—२७ ॥

यमी बोली—मैं देखती हूँ, इस संसारमें ऐसा (तुम्हारे समान) रूप दुर्लभ है। भला, पृथ्वीपर ऐसा स्थान कहाँ है, जहाँ रूप और समान अवस्था—दोनों एकत्र वर्तमान हों। मैं नहीं समझती, तुम्हारा यह चित्त इतना स्थिर कैसे है, जिसके कारण तुम अपने समान रूप और गुणसे युक्त होनेपर भी मुझ मोहिता स्त्रीकी इच्छा नहीं करते हो। वृक्षमें संलग्न हुई लताके समान मैं स्वेच्छानुसार तुम्हारी शरणमें आयी हूँ। मेरे मुखपर पवित्र मुस्कान शोभा पाती है। अब मैं अपनी दोनों भुजाओंसे तुम्हारा आलिङ्गन करके ही रहूँगी ॥ २८—३० ॥

यम बोले—श्यामलोचने। सुश्रोणि! मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करनेमें असमर्थ हूँ। तुम किसी दूसरे देवताका आश्रय लो। वरवर्धिनि! तुम्हें देखकर काममोहसे जिसका चित्त विभ्रान्त हो उठे, उसी देवताकी तुम देवी हो जाओ। जिसे समस्त प्राणी चाहते हैं, मानवगण जिसे वरणीय बतलाते हैं, कल्याणपर्यायी, सर्वाङ्गसुन्दरी और सुसंस्कृता कहते हैं, उसके लिये भी विद्वान् पुरुष कभी दूषित कर्म नहीं करेंगे। महाप्राज्ञ! मेरा ब्रत अटल है। मैं यह पश्चात्तापजनक पाप करापि नहीं करूँगा। भद्रे! मेरा चित्त निर्मल है, भगवान् विष्णु और शिवके चिन्तनमें लगा हुआ है। इसलिये मैं दृढ़संकल्प एवं धर्मात्मा होकर निश्चय ही यह पापकर्म नहीं करना चाहता ॥ ३१—३४ ॥

ब्राह्म उक्ताच

असकृत् प्रोच्यमानोऽपि तथा चैवं दृढ़न्तः।
कृतवान् न यमः कार्यं तेन देवत्वमाप्नवान्॥ ३५
नराणां दृढ़चित्तानामेवं पापमकुर्वताम्।
अनन्तं फलमित्याहुस्तेषां स्वर्गफलं भवेत्॥ ३६
एतत् यम्युपाख्यानं पूर्ववृत्तं सनातनम्।
सर्वपापहरं पुण्यं श्रोतव्यमनमूर्यया॥ ३७
यश्चेतत् पठते नित्यं हव्यकव्येषु ब्राह्मणः।
संतुष्टाः पितरस्तस्य न विशन्ति यमालयम्॥ ३८
यश्चेतत् पठते नित्यं पितॄणामनृणो भवेत्।
वैवस्वतीभ्यस्तीद्वाभ्यो यातनाभ्यः प्रमुच्यते॥ ३९
पुत्रेतदाख्यानमनुत्तमं मया
तवोदितं वेदपदार्थनिश्चितम्।
पुरातनं पापहरं सदा नृणां
किमन्यदद्यैव वदामि शंस मे॥ ४०

श्रीब्र्यासजी कहते हैं—शुकदेव! यमीके बारंबार कहनेपर भी दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाले यमने वह पाप-कर्म नहीं किया; इसलिये वे देवत्वको प्राप्त हुए। इस प्रकार स्थिरचित्त होकर पाप न करनेवाले मनुष्योंके लिये अनन्त पुण्यफलकी प्राप्ति बतलायी गयी है। ऐसे लोगोंको स्वर्गरूप फल उपलब्ध होता है। यह यमीका उपाख्यान, जो प्राचीन एवं सनातन इतिहास है, सब पापोंको दूर करनेवाला और पवित्र है। असूया त्यागकर इसका श्रवण करना चाहिये। जो ब्राह्मण देवयाग और पितॄयागमें सदा इसका पाठ करता है, उसके पितॄगण पूर्णतः शुद्ध होते हैं। उन्हें कभी यमराजके भवनमें प्रवेश नहीं करना पड़ता। जो इसका नित्य पाठ करता है, वह पितॄशणसे मुक्त हो जाता है तथा उसे तौत्र यम-यातनाओंसे छुटकारा मिल जाता है। बेटा शुकदेव! मैंने तुमसे यह सर्वोत्तम एवं पुरातन उपाख्यान कह सुनाया, जो वेदके पदों तथा अर्थोंद्वारा निश्चित है। इसका पाठ करनेपर यह सदा ही मनुष्योंका पाप हर लेता है। मुझे बताओ, अब मैं तुम्हें और क्या सुनाऊँ?॥ ३५—४०॥

इति श्रीनरसिंहपुराणं यमोऽयमसवादो नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'यमो-यम-संवाद' नामक ब्रह्महवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

पतिव्रताकी शक्ति; उसके साथ एक ब्रह्मचारीका संवाद; माताकी रक्षा परम धर्म है, इसका उपदेश

श्रीशुक उक्ताच

विचित्रेयं कथा तात वैदिकी मे त्वयेरिता।
अन्या: पुण्याशु मे ब्रूहि कथा: पापप्रणाशिनीः॥ १

ब्राह्म उक्ताच

अहं ते कथयिष्यामि पुरावृत्तमनुत्तमम्।
पतिव्रतायाः संवादं कस्यचिद्ब्रह्मचारिणः॥ २
कश्यपो नीतिमान् नाम ब्राह्मणो वेदपारगः।
सर्वशास्वार्थतत्त्वज्ञो व्याख्याने परिनिष्ठितः॥ ३

श्रीशुकदेवजी बोले—तात! आपने जो यह वैदिक कथा मुझे सुनायी है, बही विचित्र है। अब दूसरी पापनाशक कथाओंका मेरे सम्मुख वर्णन कीजिये॥ १॥

व्यासजी बोले—बेटा! अब मैं तुमसे उस परम उत्तम प्राचीन इतिहासका वर्णन करूँगा, जो किसी ब्रह्मचारी और एक पतिव्रता स्त्रीका संवादरूप है। (मध्यदेशमें) एक कश्यप नामक ब्राह्मण रहते थे, जो बड़े ही नीतिज्ञ, वेद-वेदाङ्गके पाण्डित विद्वान्, समस्त शास्त्रोंके अर्थ एवं तत्त्वके ज्ञाता, व्याख्यानमें प्रवीण,

स्वधर्मकार्यनिरतः परधर्मपराङ्मुखः ।
 ऋतुकालाभिगामी च अग्निहोत्रपरायणः ॥ ४
 सायंप्रातर्महाभाग हुत्वाग्नि तर्पयन् द्विजान् ।
 अतिथीनागतान् गेहे नरसिंहं च पूजयत् ॥ ५
 तस्य पल्ली महाभागा सावित्री नाम नामतः ।
 पतिव्रता महाभागा पत्युः प्रियहिते रता ॥ ६
 भर्तुः शुश्रूषणैव दीर्घकालमनिन्दिता ।
 परोक्षज्ञानमापन्ना कल्याणी गुणसम्पत्ता ॥ ७
 तथा सह स धर्मात्मा मध्यदेशे महामतिः ।
 नन्दिग्रामे वसन् धीमान् स्वानुष्ठानपरायणः ॥ ८
 अथ कौशलिको विप्रो यज्ञशर्मा महामतिः ।
 तस्य भार्याभवत् साध्वी रोहिणी नाम नामतः ॥ ९
 सर्वलक्षणसम्पन्ना पतिशुश्रूषणे रता ।
 सा प्रसूता सुतं त्वेकं तस्माद्दर्तुरनिन्दिता ॥ १०
 स यायावरवृत्तिस्तु पुत्रे जाते विचक्षणः ।
 जातकर्म तदा चक्रे स्नात्वा पुत्रस्य मन्त्रतः ॥ ११
 द्वादशोऽहनि तस्यैव देवशमेति बुद्धिमान् ।
 पुण्याहं वाचयित्वा तु नाम चक्रे यथाविधि ॥ १२
 उपनिष्ठमणं चैव चतुर्थं मासि यत्क्रितः ।
 तथात्रप्राशनं षष्ठे मासि चक्रे यथाविधि ॥ १३
 संवत्सरे ततः पूर्णं चूडाकर्म च धर्मवित् ।
 कृत्वा गर्भाष्टमे वर्षे द्रवतबन्धं चकार सः ॥ १४
 सोपनीतो यथान्यायं पित्रा वेदमधीतवान् ।
 स्वीकृते त्वेकवेदे तु पिता स्वलोकमास्थितः ॥ १५
 मात्रा सहास दुःखी स पितर्युपरते सुतः ।
 धीर्यमास्थाय मेधावी साधुभिः प्रेरितः पुनः ॥ १६
 प्रेतकार्याणि कृत्वा तु देवशर्मा गतः सुतः ।
 गङ्गादिषु सुतीर्थेषु स्नानं कृत्वा यथाविधि ॥ १७
 तपेष्व प्राप्तवान् ग्रामं यत्रास्ते सा पतिव्रता ।
 सम्प्राप्य विश्रुतः सोऽथ द्वह्यचारी महामते ॥ १८

अपने धर्मके अनुकूल कार्योंमें तत्पर और परधर्मसे विपुल रहनेवाले थे । वे ऋतुकाल आनेपर ही पल्ली-समागम करते और प्रतिदिन अग्निहोत्र किया करते थे । महाभाग ! कश्यपजी नित्य सायं और प्रातःकाल अग्निमें हवन करनेके पश्चात् ब्राह्मणों तथा घरपर आये हुए अतिथियोंको तुस करते हुए भगवान् नृसिंहका पूजन किया करते थे । उनकी परम सीभाग्यशालिनी पल्लीका नाम सावित्री था । महाभागा सावित्री पतिव्रता होनेके कारण पतिके ही प्रिय और हित-साधनमें लगी रहती थी । अपने गुणोंके कारण उसका बड़ा सम्पादन था । वह कल्याणमयी अनिन्दिता सती-साध्वी दीर्घकालतक पतिकी शुश्रूषामें संलग्न रहनेके कारण परोक्ष-ज्ञानसे सम्पन्न हो गयी थी—परोक्षमें धृष्टि होनेवाली धटनाओंका भी उसे ज्ञान हो जाता था । मध्यदेशके निवासी वे धर्मात्मा एवं परम बुद्धिमान् कश्यपजी अपनी उसी धर्मपत्नीके साथ नन्दिग्राममें रहते हुए स्वधर्मके अनुष्ठानमें लगे रहते थे ॥ २—८ ॥

उन्हीं दिनों कोशलदेशमें उत्पन्न यज्ञशर्मा नामक एक परम बुद्धिमान् आह्यण थे, जिनकी सती-साध्वी स्त्रीका नाम रोहिणी था । वह समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थी और पतिकी सेवामें सदा तत्पर रहती थी । उस उत्तम आचार-विचारवाली स्त्रीने अपने स्वामी यज्ञशर्मासे एक पुत्र उत्पन्न किया । पुत्रके उत्पन्न होनेपर यायावर-वृत्तिवाले बुद्धिमान् पण्डित यज्ञशर्माने खान करके मन्त्रोद्घारा उसका जातकर्म-संस्कार किया और जन्मके बारहवें दिन उन्होंने विधिपूर्वक पुण्याहवाचन कराकर उसका ‘देवशर्मा’ नाम रखा । इसी प्रकार चौथे महीनेमें यत्पूर्वक उसका उपनिष्ठमण हुआ अर्थात् वह घरसे बाहर लाया गया और छठे मासमें उन्होंने उस पुत्रका विधिपूर्वक अन्नप्राशन-संस्कार किया ॥ ९—१३ ॥

तदनन्तर एक वर्ष पूर्ण होनेपर धर्मज्ञ पिताने उसका चूडाकर्म और गर्भसे आठवें वर्षपर उपनयन-संस्कार किया । पिताके हाथ यथोचितरूपसे उपनयन-संस्कार हो जानेपर उसने वेदाध्ययन किया । उसके हाथारा एक वेदका अध्ययन पूर्ण हो जानेपर उसके पिता स्वर्गागमी हो गये । पिताकी मृत्यु होनेपर वह अपनी माताके साथ बहुत दुःखी हो गया । फिर श्रेष्ठ पुरुषोंकी आज्ञासे उस बुद्धिमान् पुत्रने धीर्य धारण करके पिताका प्रेतकार्य किया । इसके पश्चात् ब्राह्मणकुमार देवशर्मा घरसे निकल गया (विरक हो गया) । वह गङ्गा आदि उत्तम तीर्थोंमें विधिपूर्वक स्नान करके घूमता हुआ बहीं जा पहुँचा, जहाँ वह पतिव्रता सावित्री निवास करती थी । महामते !

भिक्षाटनं तु कृत्वासीं जपन् वेदमतन्द्रितः ।
कुर्वन्नेवाग्निकार्यं तु नन्दिग्रामे च तस्थिवान् ॥ १९

मृते भर्तरि तन्माता पुत्रे प्रद्वजिते तु सा ।
दुःखाददुःखमनुप्राप्ता नियतं रक्षकं विना ॥ २०

अथ स्नात्वा तु नद्यां वै ब्रह्मचारी स्वकर्पटम् ।
क्षितीं प्रसार्य शोषार्थं जपन्नासीत वाग्यतः ॥ २१

काको बलाका तद्वस्त्रं परिगृह्णाशु जग्मतुः ।
तौ दृष्ट्वा भर्त्सयामास देवशर्मा ततो द्विजः ॥ २२

विष्णामुत्सुम्य वस्त्रे तु जग्मतुस्तस्य भर्त्सनात् ।
रोषेण दीक्षयामास खे यान्तौ पक्षिणौ तु सः ॥ २३

तद्रोषवह्निना दग्धीं भूम्यां निपतितौ खगौ ।
स दृष्ट्वा तौ क्षितिं यातीं पक्षिणौ विस्मयं गतः ॥ २४

तपसा न मया कञ्चित् सदृशोऽस्ति महीतले ।
इति मत्वा गतो भिक्षामटितुं ग्राममञ्जसा ॥ २५

अटन् ब्राह्मणगेहेषु ब्रह्मचारी तपःस्मयी ।
प्रविष्टस्तदगृहं बत्स गृहे यत्र पतिव्रता ॥ २६

ते दृष्ट्वा याच्यमानापि तेन भिक्षां पतिव्रता ।
वाग्यता पूर्वे विज्ञाय भर्तुः कृत्वानुशासनम् ॥ २७

क्षालयामास तत्पादीं भूय उष्णोन वारिणा ।
आश्वास्य स्वपतिं सा तु भिक्षां दातुं ग्रचक्रमे ॥ २८

ततः क्रोधेन रक्ताक्षो ब्रह्मचारी पतिव्रताम् ।
दग्धुकामस्तपोवीर्यात् पुनः पुनरुदैक्षत ।
सावित्री तु निरीक्ष्यैवं हसन्ती सा तमब्रवीत् ॥ २९

न काको न बलाकाहं त्वत्क्रोधेन तु यी मृतौ ।
नदीतीरिऽद्य क्रोपात्मन् भिक्षां मत्तो यदीच्छसि ॥ ३०

वहाँ जाकर वह 'ब्रह्मचारी'के रूपमें विख्यात हुआ। भिक्षाटन करके जीवन-निर्वाह करता हुआ वह आलस्यरहित हो वेदके स्वाध्याय तथा अग्निहोत्रमें तत्पर रहकर उसी नन्दिग्राममें रहने लगा। इधर उसकी माता अपने स्वामीके मरने और पुत्रके विरक होकर घरसे निकल जानेके बाद किसी नियत रक्षकके न होनेसे दुःख-पर-दुःख भोगने लगी ॥ १४—२० ॥

तदनन्तर एक दिन ब्रह्मचारीने नदीमें खान करके अपना वस्त्र सुखानेके लिये पृथ्वीपर फैला दिया और स्वयं मौन होकर जप करने लगा। इसी समय एक कौआ और बगुला—दोनों वह वस्त्र लेकर शीघ्रतासे उड़ चले। तब उन्हें इस प्रकार करते देख देवशर्मा ब्राह्मणने ढाँट बतायी। उसकी ढाँट सुनकर वे पक्षी उस वस्त्रपर बीट करके उसे वहाँ छोड़कर चले गये। तब ब्राह्मणने आकाशमें जाते हुए उन पक्षियोंकी ओर क्रोधपूर्वक देखा। वे पक्षी उसकी क्रोधाग्निसे भस्म होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। उन्हें पृथ्वीपर गिरा देख ब्रह्मचारी बहुत ही विस्मित हुआ। फिर वह यह समझकर कि इस पृथ्वीपर तपस्यामें मेरी चराचरी करनेवाला कोई नहीं है, अनायास ही गौवर्में भिक्षा माँगने चला ॥ २१—२५ ॥

बत्स ! तपस्याका अभिमान रखनेवाला वह ब्रह्मचारी ब्राह्मणोंके घरोंमें भीख माँगता हुआ उस घरमें गया, जहाँ वह पतिव्रता सावित्री रहती थी। पतिव्रताने उसे देखा, ब्रह्मचारीने भिक्षाके लिये उससे याचना की, तो भी वह मौन ही रही। पहले उसने अपने स्वामीके आदेशकी ओर ध्यान दे उसीका पालन किया; फिर गरम जलसे पतिके चरण धोये—इस प्रकार स्वामीको आराम देकर वह भिक्षा देनेको उद्यत हुई। तब ब्रह्मचारी क्रोधसे लाल आँखें करके अपने तपोबलके हारा पतिव्रताको जला देनेकी इच्छासे उसकी ओर बारंबार देखने लगा। सावित्री उसे यों करते देख हँसती हुई बोली—'ऐ क्रोधी ब्राह्मण ! मैं कौआ और बगुला नहीं हूँ, जो आज नदीके तटपर तुम्हारे कोपसे जलकर भस्म हो गये थे। मुझसे यदि भीख चाहते हो, तो चुपचाप ले लो' ॥ २६—३० ॥

तयैवमुक्तः सावित्र्या भिक्षामादाय सोऽग्रतः ।
चिन्तायन् मनसा तस्याः शक्तिं दूरार्थवेदिनीम् ॥ ३१
एत्याश्रमे मठे स्थाप्य भिक्षापात्रं प्रयत्नतः ।
पतिव्रतायां भुक्तायां गृहस्थे निर्गते पतौ ॥ ३२
पुनरागम्य तद्वेहं तामुवाच पतिव्रताम् ।

ब्रह्मचार्यवाच

प्रब्रह्मोत्तमहाभागे पृच्छतो मे यथार्थतः ॥ ३३
विप्रकृष्टार्थविज्ञानं कथमाशु तवाभवत् ।
इत्युक्ता तेन सा साध्वी सावित्री तु पतिव्रता ॥ ३४
तं ब्रह्मचारिणं प्राह पृच्छन्तं गृहमेत्य वै ।
श्रुणुष्वावहितो ब्रह्मन् यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ३५
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि स्वर्धर्मपरिवृहितम् ।
रुद्रीणां तु पतिशुश्रूषा धर्म एषः परिस्थितः ॥ ३६
तमेवाहं सदा कुर्यां नान्यमस्मि महामते ।
दिवारात्रमसंदिग्धं श्रद्धया परितोषणम् ॥ ३७
कुर्वन्त्या मम सम्भूतं विप्रकृष्टार्थदर्शनम् ।
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि निबोध त्वं यदीच्छसि ॥ ३८
पिता यायावरः शुद्धस्तस्माद्देवमधीत्य वै ।
मृते पितरि कृत्वा तु प्रेतकार्यमिहागतः ॥ ३९
उत्सुच्य मातरं द्रष्टुं वृद्धां दीनां तपस्विनीम् ।
अनाथां विधवामत्र नित्यं स्वोदरपोषकः ॥ ४०
यथा गर्भे धृतः पूर्वं पालितो लालितस्तथा ।
तां त्यक्त्वा विपिने धर्मं चरन् विप्रं न लज्जसे ॥ ४१
यथा तव कृतं ब्रह्मन् बाल्ये मलनिकृन्तनम् ।
दुःखितां तां गृहे त्यक्त्वा किं भवेद्विपिनेऽटतः ॥ ४२
मातृदुःखेन ते वक्त्रं पूर्तिगन्धमिदं भवेत् ।
पित्रैव संस्कृतो यस्मात् तस्माच्छक्तिरभूदियम् ॥ ४३

सावित्रीके यों कहनेपर उससे भिक्षा लेकर वह आगे चला और उसकी दूरवर्ती घटनाको जान लेनेवाली शक्तिका मन-ही-मन चिन्तन करता हुआ अपने आश्रमपर पहुंचा । वहीं भिक्षापात्रको यत्नपूर्वक मठमें रखकर जब पतिव्रता भोजनसे निवृत्त हो गयी और जब उसका गृहस्थ पति घरसे बाहर चला गया, तब वह पुनः उसके घर आया और उस पतिव्रतासे बोला ॥ ३१-३२ ॥, ॥

ब्रह्मचारीने कहा—महाभागे ! मैं तुमसे एक बात पूछता हूं, तुम मुझे यथार्थरूपसे बताओ, तुम्हें दूरकी घटनाका ज्ञान इतना शीघ्र कैसे हो गया ? ॥ ३३ ॥, ॥

उसके यों कहनेपर वह साध्वी पतिव्रता सावित्री घर आकर प्रश्न करनेवाले उस ब्रह्मचारीसे यों बोली—‘ब्रह्मन् ! तुम मुझसे जो कुछ पूछते हों, उसे सावधान होकर सुनो—स्वर्धम-पालनसे अड़े हुए अपने परीक्षज्ञानके विषयमें मैं तुमसे भलीभौति बताऊँगी । पतिकी सेवा करना ही स्वियोंका सुनिश्चित परम धर्म है । महामते ! मैं सदा उसी धर्मका पालन करती हूं किसी अन्य धर्मका नहीं । निससंदेह मैं दिन-रात ऋद्धापूर्वक पतिको संतुष्ट करती रहती हूं इसीलिये मुझे दूर होनेवाली घटनाका भी ज्ञान हो जाता है । मैं तुम्हें कुछ और भी बताऊँगी; तुम्हारी इच्छा हो, तो सुनो—‘तुम्हारे पिता यज्ञशर्मा यायावर-वृत्तिके शुद्ध ब्राह्मण थे । उनसे ही तुमने वेदाध्ययन किया था । पिताके मर जानेपर उनका प्रेतकार्य करके तुम यहाँ चले आये । दीन-अवस्थामें पङ्ककर कष्ठ भोगती हुई उस अनाथ विधवा वृद्धा माताकी देख-भाल करना छोड़कर तुम यहाँ रोज अपना ही पेट भरनेमें लगे हुए हो । ज्ञाहण ! जिसने पहले तुम्हें गर्भमें धारण किया और जन्मके बाद तुम्हारा लालन-पालन किया, उसे असहायवस्थामें छोड़कर वनमें धर्माचरण करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती ? ब्रह्मन् ! जिसने बाल्यावस्थामें तुम्हारा मल-मूत्र साफ किया था, उस दुखिया माताको घरमें अकेली छोड़कर वनमें धूमनेसे तुम्हें क्या लाभ होगा ? माताके कष्ठसे तुम्हारा मुँह दुर्गंथयुक्त हो जायगा । तुम्हारे पिताने ही तुम्हारा उत्तम संस्कार कर दिया था, जिससे तुम्हें यह

पक्षी दग्धः सुदुर्बुद्धे पापात्मन् साम्प्रतं वृथा ।
वृथा स्नानं वृथा तीर्थं वृथा जसं वृथा हुतम् ॥ ४४
स जीवति वृथा ब्रह्मन् यस्य माता सुदुःखिता ।
यो रक्षेत् सततं भवत्या मातां मातुवत्सलः ॥ ४५
तस्येहानुष्ठितं सर्वं फलं चामुत्र चेह हि ।
मातुश्च वचनं ब्रह्मन् पालितं यैर्नरोत्तमैः ॥ ४६
ते मान्यास्ते नमस्कार्या इह लोके परत्र च ।
अतस्त्वं तत्र गत्वाद्य यत्र माता व्यवस्थिता ॥ ४७
तां त्वं रक्षय जीवन्तीं तद्रक्षा ते परं तपः ।
क्रोधं परित्यजैनं त्वं दृष्टादृष्टविधातकम् ॥ ४८
तयोः कुरु वधे शुद्धिं पक्षिणोरात्मशुद्धये ।
याथातथ्येन कथितमेतत्सर्वं मया तत्र ॥ ४९
ब्रह्मचारिन् कुरुत्वं त्वं यदीच्छसि सतां गतिम् ।
इत्युक्त्वा विरामाथ द्विजपुत्रं पतिव्रता ॥ ५०
सोऽपि तामाह भूयोऽपि सावित्रीं तु क्षमापयन् ।
अज्ञानात्कृतपापस्य क्षमस्व वरवर्णिनि ॥ ५१
मया तवाहितं यच्च कृतं क्रोधनिरीक्षणम् ।
तत् क्षमस्व महाभागे हितमुक्तं पतिव्रते ॥ ५२
तत्र गत्वा मया यानि कर्माणि तु शुभवते ।
कार्याणि तानि मे द्वृहि यथा मे सुगतिर्भवेत् ॥ ५३
तेनेवमुक्ता साप्याह तं पृच्छन्तं पतिव्रता ।
यानि कार्याणि वक्ष्यामि त्वया कर्माणि मे शृणु ॥ ५४
पोष्या माता त्वया तत्र निश्चयं भैक्षवृत्तिना ।
अत्र वा तत्र वा ब्रह्मन् प्रायश्चित्तं च पक्षिणोः ॥ ५५
यज्ञशर्मसुता कन्या भार्या तत्र भविष्यति ।
तां गृहीच्छ च धर्मेण गते त्वयि स दास्यति ॥ ५६
पुत्रस्ते भविता तस्यामेकः संततिवर्धनः ।
यायावरधनाद्वृत्तिः पितृवत्ते भविष्यति ॥ ५७

शक्ति प्राप्त हुई है। दुर्खुदि पापात्मन्! तुमने व्यर्थ ही पक्षियोंको जलाया। इस समय तुम्हारा किया हुआ स्नान, तीर्थसेवन, जप और होम—सब व्यर्थ हैं। ब्रह्मन्! जिसकी माता अत्यन्त दुःखमें पड़ी हो, वह व्यर्थ ही जीवन धारण करता है। जो पुत्र मातापर दया करके भक्तिपूर्वक निरन्तर उसकी रक्षा करता है, उसका किया हुआ सब कर्म यहाँ और परलोकमें भी फलप्रद होता है। ब्रह्मन्! जिन उत्तम पुरुषोंने माताके वचनका पालन किया है, वे इस लोक और परलोकमें भी माननीय तथा नमस्कारके योग्य हैं। अतः जहाँ तुम्हारी माता है, वहाँ जाकर उसके जीते-जी उसीकी रक्षा करो। उसकी रक्षा करना ही तुम्हारे लिये परम तपस्या है। इस क्रोधको त्याग दो; क्रोधक यह तुम्हारे दृष्ट और अदृष्ट—सभी कर्मोंको नष्ट करनेवाला है। उन पक्षियोंकी हत्याके पापसे अपनी शुद्धिके लिये तुम प्रायश्चित्त करो। यह सब मैंने तुमसे यथार्थ बातें कही हैं। ब्रह्मचारिन्! यदि तुम सत्युरुषोंकी गतिको प्राप्त करना चाहते हो तो मेरे कहे अनुसार करो' ॥ ३४—४९ ॥

ब्रह्मणकुमारसे यों कहकर वह पतिव्रता चुप हो गयी। तब ब्रह्मचारी भी पुनः अपने अपराधके लिये क्षमा मांगता हुआ सावित्रीसे बोला—‘वरवर्णिनि! अनजानमें किये हुए मेरे इस पापको क्षमा करो। महाभागे! पतिव्रते! तुमने मेरे हितकी ही बात कही है। मैंने जो क्रोधपूर्वक तुम्हारी और देखकर तुम्हारा अपराध किया था, उसे क्षमा कर दो। शुभवते! अब मुझे माताके पास जाकर जिन कर्तव्योंका पालन करना चाहिये, उन्हें बताओ, जिनके करनेसे मेरी शुभगति हो’ ॥ ५०—५३ ॥

उसके इस प्रकार कहनेपर उस पूछनेवाले ब्रह्मणसे पतिव्रता सावित्री पुनः बोली—‘ब्रह्मन्! वहाँ तुमको जो कर्म करने चाहिये, उन्हें बतलाती हैं; सुनो—‘तुम्हें पिक्षावृत्तिसे जीवननिवाह करते हुए वहाँ माताका निश्चय ही पोषण करना चाहिये और पक्षियोंकी हत्याका प्रायश्चित्त यहाँ अथवा वहाँ अवश्य करना चाहिये। यज्ञशर्माकी* पुत्री तुम्हारी पक्षी होगी। उसे ही तुम धर्मपूर्वक ग्रहण करो। तुम्हारे जानेपर यज्ञशर्मा अपनी कन्या तुम्हें दे देंगे। उसके गर्भसे तुम्हारी वंश-परम्पराको बढ़ानेवाला एक पुत्र होगा। पिताकी भाँति यायावर-वृत्तिसे प्राप्त हुए धनसे ही तुम अपनी जीविका चलाओगे।

* ये यज्ञशर्मां देवशर्माके पितासे भिन्न हैं।

पुनर्मृतायां भार्यायां भविता त्वं त्रिदण्डकः ।
स यत्याश्रमधर्मेण यथोक्त्यानुष्ठितेन च ।
नरसिंहप्रसादेन वैष्णवं पदमाप्स्यसि ॥ ५८

भाव्यमेतत् कथितं मया तत्र हि पृच्छतः ।
मन्यसे नानुतं त्वेतत् कुरु सर्वं हि मे वचः ॥ ५९

ब्रह्मण उवाच

गच्छामि मातृरक्षार्थमद्यवाहं पतिव्रते ।
करिष्ये त्वद्वचः सर्वं तत्र गत्वा शुभेक्षणे ॥ ६०
इत्युक्त्वा गत्वान् ब्रह्मन् देवशर्मा ततस्त्वरन् ।
संरक्ष्य मातरं यत्नात् क्रोधमोहविवर्जितः ॥ ६१
कृत्वा विवाहमुत्पाद्य पुत्रं वंशकरं शुभम् ।
मृतभार्यश्च संन्यस्य समलोष्टाश्मकाञ्जनः ।
नरसिंहप्रसादेन परां सिद्धिमवाप्तवान् ॥ ६२
पतिव्रताशक्तिरियं तवेरिता
शर्मश्च मातुः परिरक्षणं परम् ।
संसारवृक्षं च निहत्य वन्धनं
छित्त्वा च विष्णोः पदमेति मानवः ॥ ६३

इति श्रीनरसिंहपुराणे ब्रह्मचारिसंवादो नाम ऋक्षोदज्ञोऽध्यायः ॥ १३ ॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'पतिव्रता' और 'ब्रह्मचारीका संवाद' विषयक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

तीर्थसेवन और आराधनसे भगवान्‌की प्रसन्नता; 'अनाश्रमी' रहनेसे दोष तथा
आश्रमधर्मके पालनसे भगवत्प्राप्तिका कथन

ब्रह्मस उवाच

शृणु वत्स महाबुद्धे शिष्याश्रीतां परां कथाम् ।
मयोच्यमानां श्रृणवन्तु सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ १
पुरा द्विजवरः कश्चिद्देवशास्त्रविशारदः ।
मृतभार्यो गतस्तीर्थं चक्रे स्नानं यथाविधि ॥ २
तपः सुतसं विजने निःस्मृहो दारकर्मणि ।
भिष्माहारः प्रवसितो जपस्नानपरायणः ॥ ३

फिर तुम अपनी पत्नीकी मृत्युके बाद त्रिदण्डी (संन्यासी) हो जाओगे। वहाँ संन्यासाश्रमके लिये शास्त्रविहित धर्मका यथावत् रूपसे पालन करनेपर भगवान् नरसिंहकी प्रसन्नतासे तुम विष्णुपदको प्राप्त कर लोगे।' तुम्हारे पूछनेपर मैंने ये भविष्यमें होनेवाली बातें तुमसे बतलादी हैं। यदि तुम इन्हें असत्य नहीं मानते, तो मेरे सब बचनोंका पालन करो ॥ ५४—५९ ॥

ब्रह्मण बोला—पतिव्रते! मैं माताकी रक्षाके लिये आज ही जाता हूँ। शुभेक्षणे! वहाँ जाकर तुम्हारी सब बातोंका मैं पालन करूँगा ॥ ६० ॥

ब्रह्मन्! यों कहकर देवशर्मा वहाँसे श्रीमृतापूर्वक चला गया और क्रोध तथा मोहसे रहित होकर उसने यज्ञ-पूर्वक माताकी रक्षा की। फिर विवाह करके एक सुन्दर वंशवर्धक पुत्र उत्पन्न किया और कुछ कालके बाद पत्नीकी मृत्यु हो जानेपर संन्यासी होकर ढेले और मिट्टीको बराबर समझते हुए उसने भगवान् नृसिंहकी कृपासे परमसिद्धि (मोक्ष) प्राप्त कर ली। यह मैंने तुमसे पतिव्रताकी शक्ति बतायी और यह भी बतलाया कि माताकी रक्षा करना परम धर्म है। संसारवृक्षका उच्छेद करके सब बन्धनोंको तोड़ देनेपर मनुष्य विष्णुपदको प्राप्त करता है ॥ ६१—६३ ॥

ब्राह्मजी बोले—महाबुद्धिमान् पुत्र शुकदेव। तुम और मेरे अन्य शिष्यगण भी मेरे द्वारा कही जानेवाली इस पापहारिणी कथाको सुनो ॥ १ ॥

पूर्वकालमें कोई वेदशास्त्रविशारद श्रेष्ठ ब्रह्मण अपनी पत्नीकी मृत्यु हो जानेपर तीर्थमें गया और वहाँ उसने विधिपूर्वक स्नान किया और विजन (एकान्त)-में रहकर उत्तम तपस्या की। तत्पश्चात् दारकर्म (विवाह)-की इच्छा न रखकर वह परदेशमें रहता हुआ भिष्म माँगकर

स्नात्वा स गङ्गां यमुनां सरस्वतीं
पुण्यां वित्स्तामथ गोमतीं च।
गयां समासाद्य पितृन् पितामहान्
संतर्पयन् सन् गतवान् महेन्द्रम्॥ ४

तत्रापि कुण्डेषु गिरौ महामतिः
स्नात्वा तु दृष्टा भृगुनन्दनोत्तमम्।
कृत्वा पितृभ्यस्तु तथैव तुमि
द्वजन् वनं पापहरं प्रविष्टः॥ ५

धारा पतन्तीं महतीं शिलोच्चयात्
संधार्य भक्त्या त्वनु नारसिंहे।
शिरस्यशेषाघविनाशिनीं तदा
विशुद्धदेहः स बभूव विग्रः॥ ६

विन्ध्याचले सक्तमनन्तमच्युतं
भक्तमूर्तीन्द्रैरपि पूजितं सदा।
आराध्य पुर्णिंगिरिसम्पूर्वैः शुभे-
स्त्रैव सिद्धिं त्वभिकांश्य संस्थितः॥ ७

स नारसिंहो बहुकालपूजया
तुष्टः सुनिद्रागतमाह भक्तम्।
अनाश्रमित्वं गृहभङ्गकारणं
हृतो गृहाणाश्रममुत्तमं द्विज॥ ८

अनाश्रमीति द्विजवेदपारगा-
नपि त्वहं नानुगृह्णामि चात्र।
तथापि निष्ठां तव बीक्ष्य सत्तम
त्वयि प्रसन्नेन मयेत्युदीरितम्॥ ९

तेनैवमुक्तः परमेश्वरेण
द्विजोऽपि बुद्ध्या प्रविचिन्त्य वावयम्।
हेररलङ्घयं नरसिंहमूर्ते-
बाधं च कृत्वा स यतिर्भूव॥ १०

त्रिदण्डवृक्षाक्षपवित्रपाणि-
राम्लुत्य तोये त्वघहारिणि स्थितः।
जपन् सदा मन्त्रमपास्तदोषं
सावित्र्यमीशं हृदये स्मरन् हरिम्॥ ११

यथाकर्थचित् प्रतिलभ्य शाकं
भैक्ष्याभितुष्टो वनवासवासी।
अभ्यर्थ्य विष्णुं नरसिंहमूर्ति
ध्यात्वा च नित्यं हृदि शुद्धमाद्यम्॥ १२

जीवननिर्वाह करने और अप, स्नान आदि उत्तम कर्ममें तत्पर रहने लगा। गङ्गा, यमुना, सरस्वती, पाण्डव वित्स्ताम (होलम) और गोमती आदिमें स्नान करके वह गयामें पहुँचा और वहाँ अपने पिता-पितामह आदिका तर्पण करके महेन्द्र पर्वतपर गया। वहाँ उस परम बुद्धिमान् द्विजने पर्वतीय कुण्डोंमें स्नान करनेके पश्चात् ऋषिश्रेष्ठ भृगुनन्दन परशुरामजीका दर्शन किया; फिर पूर्ववत् पितरोंके लिये तर्पण करके चलते-चलते एक वनमें प्रवेश किया, जो पापोंका नाश करनेवाला था ॥ २-५ ॥

वहाँ एक पर्वतसे बहुत बड़ी धारा गिरती थी, जो निश्चेष पापराशिका विनाश करनेवाली थी। उसके जलको लेकर ब्राह्मणने भक्तिपूर्वक भगवान् नृसिंहके मस्तकपर चढ़ाया। इससे उसी समय उसका शरीर विशुद्ध हो गया। फिर विन्ध्याचल पर्वतपर स्थित होकर भक्तों और मुनीशरोंसे सदा पूजित होनेवाले अनन्त अच्युत भगवान् विष्णुकी सुन्दर पर्वतीय पुष्पोंसे पूजा करता हुआ वह ब्राह्मण सिद्धिकी कामनासे वहाँ ठहर गया ॥ ६-७ ॥

इस तरह दीर्घकालतक उसने पूजा की। उससे प्रसन्न होकर वे भगवान् नृसिंह गाढ़ निद्रामें सोये हुए अपने उस भक्तसे स्वप्नमें दर्शन देकर बोले—'ब्रह्मन्! किसी आश्रमधर्मको स्वीकार करके न चलना गृहस्थकी मर्यादाके भङ्गका कारण होता है; अतः यदि तुम्हें गृहस्थ नहीं रहना है तो किसी दूसरे उत्तम आश्रमको ग्रहण करो। ब्रह्मन्! जो किसी आश्रममें स्थित नहीं है, वह यदि वेदोंका पारगामी बिद्वान् हो, तो भी मैं यहाँ उसपर अनुग्रह नहीं करता; परंतु साधुवर! तुम्हारी निष्ठा देखकर मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, इसीसे मैंने तुमसे यह बात कही है' ॥ ८-९ ॥

उन परमेश्वरके इस प्रकार कहनेपर उस ब्राह्मणने भी अपनी बुद्धिसे नृसिंहस्वरूप श्रीहरिके उस कथनपर विचार करके उसे अलङ्घनीय माना और सम्पूर्ण जगत्‌का बाध (त्याग) करके वह संन्यासी हो गया ॥ १० ॥

फिर प्रतिदिन उस पापहारी जलमें डुबकी लगाकर तथा उसीमें खड़ा रहकर त्रिदण्ड और अक्षमाला धारण करनेसे पवित्र हाथोंवाला वह ब्राह्मण मन-ही-मन भगवान् विष्णुका स्मरण करता हुआ निर्दोष गायत्री-मन्त्रका जप करते लगा। नित्यप्रति शुद्ध आदिदेव भगवान् विष्णुका हृदयमें ध्यान करके उनके नृसिंह-विग्रहका पूजन करता

विविक्तदेशे विपुले कुशासने
निवेश्य सर्वं हृदयेऽस्य सर्वम्।
बाह्यं समस्तं गुणमिन्द्रियाणां
विलीय भेदं भगवत्यनन्ते ॥ १३
विज्ञेयमानन्दमजं विशालं
सत्यात्मकं क्षेमपदं वरेण्यम्।
संचिन्त्य तस्मिन् प्रविहाय देहं
बभूव मुक्तः परमात्मरूपी ॥ १४
इमां कथां मुक्तिपरां यथोक्तां
पठन्ति ये नारसिंहं स्मरन्तः।
प्रयागतीर्थप्लवने तु यत्फलं
तत् प्राप्य ते यान्ति हरे: पदं महत् ॥ १५
इत्येतदुक्तं तद्ब सुत्रं पृच्छतः:
पुरातनं पुण्यतमं पवित्रकम्।
संसारवृक्षस्य विनाशनं परं
पुनः कमिच्छस्यभिवाज्जितं वद ॥ १६

इति श्रीनरसिंहपुराणं चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १५ ॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें चौदहर्षी अध्याय पूरा हुआ ॥ १५ ॥

और बनवासी हो किसी प्रकार शाक आदि खाक भिक्षावृत्तिसे ही संतोषपूर्वक रहता था। विस्तृत एकान्त प्रदेशमें कुशासनपर बैठकर वह इन्द्रियोंके समस्त बाह्य विषयों तथा भेदबुद्धिको हृदयस्थित भगवान् अनन्तमें विलीन करके विज्ञेय, अजन्मा, विराट, सत्यस्वरूप, श्रेष्ठ, कल्प्याणधाम आनन्दमय परमेश्वरका विनान करता हुआ आयु पूरी होनेपर शरीर त्यागकर मुक्त एवं परमात्मस्वरूप हो गया ॥ १५—१६ ॥

जो लोग मोक्ष-साम्बन्धिनी अधवा मोक्षको ही उत्कृष्ट बनानेवाली इस कथाको भगवान् नृसिंहका स्मरण करते हुए पढ़ते हैं, वे प्रयागतीर्थमें रनान करनेसे जो फल होता है, उसे पाकर अन्तमें भगवान् विष्णुके महान् पदको प्राप्त कर लेते हैं। बेटा! तुम्हारे पृछनेसे मैंने यह उत्तम, पवित्र, पुण्यतम एवं पुरातन उपाख्यान, जो संसारवृक्षका नाश करनेवाला है, तुमसे कहा है; अब और क्या सुनना चाहते हो? अपना मनोरथ प्रकट करो ॥ १५-१६ ॥

पंद्रहवाँ अध्याय

संसारवृक्षका वर्णन तथा इसे नष्ट करनेवाले ज्ञानकी महिमा

श्रीशुक उकाच

श्रीतुमिच्छाम्यहं तात साप्नातं मुनिभिः सह ।
संसारवृक्षं सकलं येनेदं परिवर्तते ॥ १
बलुमर्हसि मे तात त्वयैतत् सूचितं पुरा ।
नान्यो वेत्ति महाभाग संसारोच्चारलक्षणम् ॥ २

सूत उकाच

स पुत्रेणवमुक्तस्तु शिष्याणां मध्यगेन च ।
कृष्णादौपायनः प्राह संसारतरुलक्षणम् ॥ ३

ज्ञास उकाच

श्रृणवन्तु शिष्याः सकला वत्स त्वं शृणु भावितः ।
संसारवृक्षं वक्ष्यामि येन चेदं समावृतम् ॥ ४

श्रीशुकदेवजी बोले—तात! मैं इस समय मुनियोंके साथ संसारवृक्षका वर्णन सुनना चाहता हूँ, जिसके द्वारा यह परिवर्तनका सम्पूर्ण चक्र चलता रहता है। तात! आपने ही पहले इस वृक्षको सूचित किया है; अतः आप ही इसका वर्णन करनेके योग्य हैं। महाभाग! आपके सिवा दूसरा कोई इस संसारवृक्षका लक्षण नहीं जानता ॥ १-२ ॥

सूतजी बोले—भरद्वाज! अपने शिष्योंके बीचमें बैठे हुए पुत्र शुकदेवजीके इस प्रकार पूछनेपर श्रीकृष्णद्वौपायन (च्यासजी) -ने उन्हें संसारवृक्षका लक्षण इस प्रकार बताया ॥ ३ ॥

श्रीव्यासजी बोले—मेरे सभी शिष्य इस विषयको सुनें; तथा वत्स! तुम भी सावधान होकर सुनो—मैं

अव्यक्तमूलप्रभवस्तस्मादग्ने तथोत्थितः ।
बुद्धिस्कन्धमयश्चैव इन्द्रियाङ्कुरकोटरः ॥ ५
महाभूतविशाखश्च विशेषैः पत्रशाखवान् ।
धर्माधर्मसुपुष्यश्च सुखदुःखफलोदयः ॥ ६
आजीव्यः सर्वभूतानां ब्रह्म बृक्षः सनातनः ।
एतद्ब्रह्म परं चैव ब्रह्म बृक्षस्य तस्य तत् ॥ ७
इत्येवं कथितं बत्स संसारवृक्षलक्षणम् ।
बृक्षमेनं समारूढा मोहमायान्ति देहिनः ॥ ८
संसरन्तीह सततं सुखदुःखसमन्विताः ।
प्रायेण प्राकृता मर्त्या ब्रह्मज्ञानपराङ्मुखाः ॥ ९
छिन्त्यैनं कृतिनो यान्ति नो यान्ति ब्रह्मज्ञानिनः ।
कर्मक्रिये महाप्राज्ञ नैनं छिन्दन्ति दुष्कृताः ॥ १०
एनं छिन्त्या च भिन्त्या च ज्ञानेन परमासिना ।
ततोऽमरत्वं ते यान्ति यस्याच्चावर्तते पुनः ॥ ११
देहदारमयैः पाशैर्दुःखं बद्धोऽपि मुच्यते ।
ज्ञानमेव परं पुंसां श्रेयसामभिवाज्जितम् ।
तोषणं नरसिंहस्य ज्ञानहीनः पशुः पुमान् ॥ १२
आहारनिद्राभयमैश्चुनानि
समानमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।
ज्ञानं नराणामधिकं हि लोके
ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः ॥ १३

इति श्रीनरसिंहपुराणे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें पञ्चदशैं अध्याय पूरा हुआ ॥ १५ ॥

संसारवृक्षका वर्णन करता हूँ जिसने इस सारे दृश्य-प्रपञ्चको व्याप्त कर रखा है। यह संसारवृक्ष अव्यक्त परमात्मारूपी मूलसे प्रकट हुआ है। उन्हींसे प्रकट होकर हमारे सामने इस रूपमें खड़ा है। बुद्धि (महतत्त्व) उसका तना है, इन्द्रियाँ ही उसके अङ्गकर और कोटर हैं, पश्चमहाभूत उसकी बड़ी-बड़ी डालियाँ हैं, विशेष पदार्थ ही उसके पते और टहनियाँ हैं, धर्म-अधर्म फूल हैं, उससे 'सुख' और 'दुःख' नामक फल प्रकट होते हैं, प्रवाहरूपसे सदा रहनेवाला यह संसारवृक्ष ब्रह्मकी भौति सभी भूतोंका आश्रय है। यह अपरब्रह्म और परब्रह्म भी इस संसारवृक्षका कारण है। पुत्र! इस प्रकार मैंने तुमसे संसारवृक्षका लक्षण बतलाया है। इस वृक्षपर चढ़े हुए देहापिमानी जीव मोहित हो जाते हैं। प्रायः ब्रह्मज्ञानसे विमुख प्राकृत मनुष्य सदा सुख-दुःखसे युक्त होकर इस संसारमें फँसे रहते हैं, ब्रह्मज्ञानी विद्वान् इस संसारवृक्षको नहीं प्राप्त होते। वे इसका उच्छेद करके मुक्त हो जाते हैं। महाप्राज्ञ शुकदेव! जो पापी हैं, वे कर्म-क्रियाका उच्छेद नहीं कर पाते। ज्ञानी पुरुष ज्ञानरूपी उत्तम खद्गके द्वारा इस वृक्षको छिन्न-भिन्न करके उस अमरपदको प्राप्त करते हैं, जहाँसे जीव पुनः इस संसारमें नहीं आता। शरीर तथा स्त्रीरूपी बन्धनोंसे दृढ़तापूर्वक बँधा हुआ पुरुष भी ज्ञानके द्वारा मुक्त हो जाता है; अतः श्रेष्ठतम् पुरुषोंको ज्ञानकी प्राप्ति ही परम अभीष्ट होती है; क्योंकि ज्ञान ही भगवान् नृसिंहको संतोष देता है। ज्ञानहीन पुरुष तो पशु ही है। मनुष्योंके आहार, निद्रा, भय और मैथुन आदि कर्म तो पशुओंके ही समान होते हैं, उनमें केवल ज्ञान ही अधिक होता है। जो ज्ञानहीन हैं, वे पशुओंके ही तुल्य हैं॥ ४—१३॥

सोलहवाँ अध्याय

भगवान् विष्णुके व्यानसे बोक्षकी प्रासिका प्रतिपादन

श्रीशुक उकाच

संसारवृक्षमारह्मा द्वन्द्वपाशाशतैर्द्वैः ।
बध्यमानः सुतैश्चर्यैः पतितो योनिसागरे ॥ १

श्रीशुकदेवजी बोले—पिताजी! जो संसारवृक्षपर आरूढ़ हो; राग-द्वेषादि द्वन्द्वमय सैकड़ों सुदृढ़ पाशों तथा पुत्र और ऐश्वर्य आदिके बन्धनसे बँधकर योनि-

यः कामक्रोधलोभैस्तु विषयैः परिपीडितः ।
बद्धः स्वकर्मभिर्गाणैः पुत्रदारैषणादिभिः ॥ २
स केन निस्तरत्याशु दुस्तरं भवसागरम् ।
पृच्छामाख्याहि मे तात तस्य मुक्तिः कथं भवेत् ॥ ३

शीघ्रात् उक्ताच

शृणु वत्स महाप्राज्ञ यज्ञात्मा मुक्तिमानुयात् ।
तत्त्वं वक्ष्यामि ते दिव्यं नारदेन श्रुतं पुरा ॥ ४
नरके रीरवे घोरे धर्मज्ञानविवर्जिताः ।
स्वकर्मभिर्महादुःखं प्राप्ता यत्र यमालये ॥ ५
महापापकृतं घोरं सम्प्राप्ताः पापकृज्ञानाः ।
आलोक्य नारदः शीघ्रं गत्वा यत्र त्रिलोचनः ॥ ६
गङ्गाधरं महादेवं शंकरं शूलपाणिनम् ।
प्रणम्य विधिवदेवं नारदः परिपृच्छति ॥ ७

नारद उक्ताच

यः संसारे महाद्वन्द्वैः कामभोगैः शुभाशुभैः ।
शब्दादिविषयैर्बद्धैः पीड्यमानः षड्मिभिः ॥ ८
कथं तु मुच्यते क्षिप्रं मृत्युसंसारसागरात् ।
भगवन् द्वौहि मे तत्त्वं श्रोतुमिच्छामि शंकरः ॥ ९
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा नारदस्य त्रिलोचनः ।
उक्ताच तमृषिं शास्त्रं प्रसन्नवदनो हरः ॥ १०

महेश्वर उक्ताच

ज्ञानामृतं च गुह्यं च रहस्यमूषिसत्तम् ।
वक्ष्यामि शृणु दुःखानं सर्वबन्धभयाप्यहम् ॥ ११
तृणादि चतुरास्यान्तं भूतग्रामं चतुर्विधम् ।
चराचरं जगत्सर्वं प्रसुतं यस्य मायथा ॥ १२
तस्य विष्णोः प्रसादेन यदि कश्चित् प्रबुद्ध्यते ।
स निस्तरति संसारं देवानामपि दुस्तरम् ॥ १३
भोगैश्वर्यमदोन्मत्तस्त्वज्ञानपराइमुखः ।
संसारसुमहापद्मे जीर्णा गौरिव मज्जति ॥ १४

समुद्रमें गिरा हुआ है तथा काम, क्रोध, लोभ और विषयोंसे पीड़ित होकर अपने कर्ममय मुख्य बन्धनों तथा पुत्रेषणा और दौरेषणा आदि गाँण बन्धनोंसे आबद्ध है, वह मनुष्य इस दुस्तर भवसागरको कैसे शीघ्र पार कर सकता है? उसको मुक्ति कैसे हो सकती है? हमारे इस प्रश्नका समाधान कीजिये ॥ १—३ ॥

श्रीव्यासजी बोले—महाप्राज्ञ पुत्र! मैंने यूर्बकालमें नारदजीके मुखसे जिसका श्रवण किया था और जिसे जान लेनेपर मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है, उस दिव्य ज्ञानका मैं तुमसे वर्णन करता हूँ। यमराजके भवनमें जहाँ घोर रीरव नरकके भीतर धर्म और ज्ञानसे रहित प्राणी अपने पापकर्मोंके कारण महान् कष्ट पाते हैं, वहाँ एक बार नारदजी गये। उन्होंने देखा, पापी जीव अपने महान् पापोंके फलस्वरूप घोर संकटमें पड़े हैं। यह देखकर नारदजी शीघ्र ही उस स्थानपर गये, जहाँ त्रिलोचन महादेवजी थे। वहाँ पहुँचकर सिरपर गङ्गाजीको धारण करनेवाले महान् देवता शूलपाणि भगवान् शंकरको उन्होंने विधिवत् प्रणाम किया और इस प्रकार पूछा ॥ ४—७ ॥

नारदजी बोले—‘भगवन्! जो संसारमें महान् द्वन्द्वों, शुभाशुभ कामभोगों और शब्दादि विषयोंसे बैधकर छहों ऊर्मियोंद्वारा* पीड़ित हो रहा है, वह मृत्युमय संसार-सागरसे किस प्रकार शीघ्र ही मुक्त हो सकता है? कल्याणस्वरूप भगवान् शिव! यह बात मुझे बताइये। मैं यही सुनना चाहता हूँ।’ नारदजीका वह वचन सुनकर त्रिनेत्रधारी भगवान् हरका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिल उठा। वे उन महर्षिसे बोले ॥ ८—१० ॥

श्रीमहेश्वरने कहा—मुनिश्रेष्ठ! सुनो; मैं सब प्रकारके बन्धनोंका भय और दुःख दूर करनेवाले गोपनीय रहस्यभूत ज्ञानामृतका वर्णन करता हूँ। तृणसे लेकर चतुरानन लहाजीतक, जो चार प्रकारका प्राणिसमुदाय है, वह अथवा समस्त चराचर जगत् जिनकी मायथा सुस हो रहा है, उन भगवान् विष्णुकी कृपासे यदि कोई जाग उठता है—ज्ञानवान् हो जाता है तो वही देवताओंके लिये भी दुस्तर इस संसार-सागरको पार कर जाता है। जो मनुष्य भोग और ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त और तत्त्वज्ञानसे विमुख है, वह संसाररूपी

* धूख, ध्यास, जरा, मृत्यु, शोक और मोह—ये छः दुःख ‘ऊर्मि’ कहे गये हैं।

यस्त्वात्मानं निबध्नति कर्मभिः कोशकारवत्।
तस्य मुक्तिं न पश्यामि जन्मकोटिशतैरपि ॥ १५

तस्मात्त्रारद सर्वेशं देवानां देवमव्ययम्।
आराधयेत्सदा सप्त्यग् ध्यायेद्विष्णुं समाहितः ॥ १६

यस्तं विश्वमनाद्यन्तमाद्यं स्वात्मनि संस्थितम्।
सर्वज्ञममलं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ १७

निर्विकल्पं निराकाशं निष्प्रपञ्चं निरामयम्।
वासुदेवमजं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ १८

निरञ्जनं परं शान्तमच्युतं भूतभावनम्।
देवगार्भं विभुं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ १९

सर्वपापविनिर्मुक्तमप्रमेयमलक्षणम् ।
निर्वाणमनधं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ २०

अमृतं परमानन्दं सर्वपापविवर्जितम्।
ब्रह्मण्यं शंकरं विष्णुं सदा संकीर्त्य मुच्यते ॥ २१

योगेश्वरं पुराणाख्यमशारीरं गुहाशयम्।
अपात्रमव्ययं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ २२

शुभाशुभविनिर्मुक्तमूर्धिष्ठदकपरं विभुम्।
अचिन्त्यममलं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ २३

सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तं सर्वदुःखविवर्जितम्।
अप्रत्यक्यमजं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ २४

अनामगोत्रमद्वैतं चतुर्थं परमं पदम्।
तं सर्वहृदयं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ २५

अरूपं सत्यसंकल्पं शुद्धमाकाशवत्परम्।
एकाग्रमनसा विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ २६

सर्वात्मकं स्वभावस्थमात्मचैतन्यरूपकम्।
शुभमेकाक्षरं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ २७

अनिर्वाच्यमविज्ञेयमक्षरादिमसम्परम् ।
एकं नूलं सदा विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ २८

महान् पङ्कुमें उस तरह झूच जाता है, जैसे कोचड़ीमें फैंसी हुई चूदी गाय। जो रेशमके कीड़ेकी भाँति अपनेको कर्मोंके बन्धनसे थांध लेता है, उसके लिये करोड़ों जन्मोंमें भी मैं मुक्तिकी सम्भावना नहीं देखता। इसलिये नारद! सदा समाहितचित्त होकर सर्वेश्वर अविनाशी देवदेव भगवान् विष्णुका सदा भलीभाँति आराधन और ध्यान करना चाहिये ॥ ११—१८ ॥

जो सदा उन विश्वस्वरूप, आदि-अन्तसे रहित, सबके आदिकारण, आत्मनिष्ठ, अमल एवं सर्वज्ञ भगवान् विष्णुका ध्यान करता है, वह मुक्त हो जाता है। जो विकल्पसे रहित, अवकाशशून्य, प्रपञ्चसे परे, रीग-शोकसे हीन एवं अजन्मा हैं, उन वासुदेव (सर्वव्यापी भगवान्) विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला पुरुष संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो सब दोषोंसे रहित, परम शान्त, अच्युत, प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले तथा देवताओंके भी उत्पत्ति-स्थान हैं, उन भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला पुरुष जन्म-मृत्युके बन्धनसे छुटकारा पा जाता है। जो सम्पूर्ण पापोंसे शून्य, प्रमाणरहित, लक्षणहीन, शान्त तथा निष्पाप हैं, उन भगवान् विष्णुका सदा चिन्तन करनेवाला मनुष्य कर्मोंके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो अमृतमय, परमानन्दस्वरूप, सब पापोंसे रहित, आहारप्रिय तथा सबका कल्याण करनेवाले हैं, उन भगवान् विष्णुका निरन्तर नाम-कीर्तन करनेसे मनुष्य संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो योगोंके ईश्वर, पुराण, प्राकृत देहहीन, बुद्धिरूप गुहामें शयन करनेवाले, विषयोंके सम्बर्कसे शून्य और अविनाशी हैं, उन भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला पुरुष जन्म-मृत्युके बन्धनसे छुटकारा पा जाता है ॥ १७—२२ ॥

जो शुभ और अशुभके बन्धनसे रहित, छ: ऊर्ध्वियोंसे परे, सर्वव्यापी, अधिनानीय तथा निर्मल हैं, उन भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला मनुष्य संसारसे मुक्त हो जाता है। जो समस्त द्वन्द्वोंसे मुक्त और सब दुःखोंसे रहित हैं, उन तर्कके अविषय, अजन्मा भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करता हुआ पुरुष मुक्त हो जाता है। जो नाम-गोत्रसे शून्य, अद्वितीय और जाग्रत् आदि तीनों अवस्थाओंसे परे तुरीय परमपद है, समस्त भूतोंके हृदय-मन्दिरमें विद्यमान उन भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला पुरुष मुक्त हो जाता है। जो रूपरहित, सत्यसंकल्प और आकाशके समान परम शुद्ध हैं, उन भगवान् विष्णुका सदा एकाग्रचित्तसे चिन्तन करनेवाला मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है। जो सर्वरूप, स्वभावनिष्ठ और आत्मचैतन्यरूप हैं, उन प्रकाशमान एकाक्षर (प्रणवमय) भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला मनुष्य मुक्त हो जाता है।

विश्वादं विश्वगोपारं विश्वादं सर्वकामदम्।
स्थानत्रयातिगं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ २९
सर्वदुःखक्षयकरं सर्वशान्तिकरं हरिम्।
सर्वपापहरं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ ३०
ब्रह्मादिदेवगन्धर्वै मुनिभिः सिद्धचारणैः।
योगिभिः सेवितं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ ३१
विष्णोऽप्रतिष्ठितं विश्वं विष्णुर्विश्वं प्रतिष्ठितः।
विश्वेश्वरमजं विष्णुं कीर्तयन्नेव मुच्यते ॥ ३२
संसारबन्धनामुक्तिमिच्छन् काममणेषतः।
भक्त्यैव वरदं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ ३३

व्यास उकाच

नारदेन पुरा पृष्ठ एवं स वृषभघ्वजः।
यदुवाच तदा तस्मै तन्मया कथितं तव ॥ ३४
तमेव सततं ध्याहि निर्बीजं ब्रह्म केवलम्।
अवाप्यसि धूर्वं तात शाश्वतं पदमव्ययम् ॥ ३५
श्रुत्वा सुरकृष्टविष्णोः प्राधान्यमिदमीश्वरात्।
स विष्णुं सम्प्यगारात्य परां सिद्धिमवासवान् ॥ ३६
यश्चैवं पठते चैव नृसिंहकृतमानसः।
शतजन्मकृतं पापमणि तस्य प्रणश्यति ॥ ३७
विष्णोः स्तवमिदं पुण्यं महादेवेन कीर्तिंतम्।
प्रातः स्नात्वा पठेत्रित्यममृतत्वं स गच्छति ॥ ३८

ध्यायन्ति ये नित्यमनन्तामच्युतं
हृत्यच्यामद्योद्याथ कीर्तयन्ति ये।
उपासकानां प्रभुमीश्वरं परं
ते यान्ति सिद्धिं परमां तु वैष्णवीम् ॥ ३९ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे विष्णोः स्तवराजनिरूपये षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणे 'श्रीविष्णुस्तवराजनिरूपण' विषवक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

जो अनिर्वचनीय, ज्ञानातीत, प्रणवस्वरूप और जन्म-रहित हैं, उन एकमात्र नित्यनूतन भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला मनुष्य मुक्त हो जाता है। जो विश्वके आदिकरण, विश्वके ऋक, विश्वका भशण (संहार) करनेवाले तथा सम्पूर्ण काम्यवस्तुओंके दाता हैं, तीनों अवस्थाओंसे अतीत उन भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला मनुष्य मुक्त हो जाता है। समस्त दुःखोंके नाशक, सबको शान्ति प्रदान करनेवाले और सम्पूर्ण यापोंको हर लेनेवाले भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला मनुष्य संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। ब्रह्म आदि देवता, गन्धर्व, मुनि, सिद्ध, चारण और योगियोंद्वारा मेवित भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला पुरुष पाप-तापसे मुक्त हो जाता है। यह विश्व भगवान् विष्णुमें स्थित है और भगवान् विष्णु इस विश्वमें प्रतिष्ठित हैं। सम्पूर्ण विश्वके स्वामी, अजन्मा भगवान् विष्णुका कीर्तन करनेमात्रसे मनुष्य मुक्त हो जाता है। जो संसार-बन्धनसे मुक्ति तथा सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति चाहता है, वह यदि भक्तिपूर्वक वरदायक भगवान् विष्णुका ध्यान करे तो सफलमनोरथ होकर संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है ॥ २३—३३ ॥

श्रीव्यासजी कहते हैं—ये टा! इस प्रकार पूर्वकालमें देवर्थि नारदजीके पूछनेपर उन वृषभचिह्नित ध्वजावाले भगवान् शंकरने उस समय उनके प्रति जो कुछ कहा था, वह सब मैंने तुमसे कह सुनाया। तात! निर्बीज ब्रह्मरूप उन अद्वितीय विष्णुका ही निरन्तर ध्यान करो; इससे तुम अवश्य ही सनातन अविनाशी पदको प्राप्त करोगे ॥ ३४—३५ ॥

देवर्थि नारदने शंकरजीके मुखसे इस प्रकार भगवान् विष्णुकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन सुनकर उनकी भलीभीति आराधना करके उत्तम सिद्धि प्राप्त कर ली। जो भगवान् नृसिंहमें चित्त लगाकर इस प्रसंगका नित्य पाठ करता है, उसका सी जन्मोंमें किया हुआ पाप भी नष्ट हो जाता है। महादेवजीके द्वारा कथित भगवान् विष्णुके इस पावन स्तोत्रका जो प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करके पाठ करता है, वह अमृतपद (मोक्ष)-को प्राप्त कर लेता है। जो लोग अपने हृदय-कमलके मध्यमें विराजमान अनन्त भगवान् अच्युतका सदा ध्यान करते हैं और उपासकोंके प्रभु उन परमेश्वर भगवान् विष्णुका कीर्तन करते हैं, वे परम उत्तम वैष्णवी सिद्धि (विष्णु-सायुज्य) प्राप्त कर लेते हैं ॥ ३६—३९ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

अष्टाक्षरमन्त्र और उसका माहात्म्य

श्रीशुक उकाल

किं जपन् मुच्यते तात सततं विष्णुतप्तः ।
संसारदुःखात् सर्वेषां हिताय चद मे पितः ॥ १

व्यास उकाल

अष्टाक्षरं प्रवक्ष्यामि मन्त्राणां मन्त्रमुत्तमम् ।
यं जपन् मुच्यते पत्यो जन्मसंसारवन्धनात् ॥ २
हत्पुण्डरीकमध्यस्थं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
एकाग्रमनसा ध्यात्वा विष्णुं कुर्याजपं द्विजः ॥ ३
एकान्ते निर्जनस्थाने विष्णवये आ जलान्तिके ।
जपेदष्टाक्षरं मन्त्रं चित्ते विष्णुं निधाय चै ॥ ४
अष्टाक्षरस्य मन्त्रस्य त्रैषिनारायणः स्वयम् ।
छन्दश्च दैवी गायत्री परमात्मा च देवता ॥ ५
शुक्लवर्णं च ॐकारं नकारं रक्तमुच्यते ।
मोकारं वर्णतः कृष्णं नाकारं रक्तमुच्यते ॥ ६
राकारं कुद्धुमाभं तु यकारं पीतमुच्यते ।
णाकारमञ्जनाभं तु यकारं बहुवर्णकम् ॥ ७
ॐ नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ।
भक्तानां जपतां तात स्वर्गमोक्षफलप्रदः ।
वेदानां प्रणवेनैष सिद्धो मन्त्रः सनातनः ॥ ८
सर्वपापहरः श्रीमान् सर्वमन्त्रेषु चोत्तमः ।
एनमष्टाक्षरे मन्त्रं जपन्नारायणं स्मरेत् ॥ ९
संध्यावसाने सततं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
एष एव परो मन्त्र एष एव परं तपः ॥ १०
एष एव परो मोक्ष एष स्वर्ग उदाहृतः ।
सर्ववेदरहस्येभ्यः सार एष समुद्धृतः ॥ ११
विष्णुना वैष्णवानां हि हिताय मनुजां पुरा ।
एवं ज्ञात्वा ततो विप्रो ह्यष्टाक्षरमिमं स्मरेत् ॥ १२

श्रीशुकदेवजी बोले—तात ! पिताजी ! मनुष्य सदा भगवान् विष्णुके भजनमें तत्पर रहकर किस मन्त्रका जप करनेसे सांसारिक कष्टसे मुक्त होता है ? यह मुझे बताइये । इससे सब लोगोंका हित होगा ॥ १ ॥

श्रीव्यासजी बोले—बेटा ! मैं तुम्हें सभी मन्त्रोंमें उसम अष्टाक्षरमन्त्र बतलाऊंगा, जिसका जप करनेवाला मनुष्य जन्म और मृत्युसे युक्त संसाररूपी बन्धनसे मुक्त हो जाता है ॥ २ ॥

द्विजको चाहिये कि अपने हृदय-कमलके प्रध्यभागमें शङ्ख, चक्र और गदा प्रारण करनेवाले भगवान् विष्णुका एकाग्रचित्तसे ध्यान करते हुए जप करे । एकान्त, जनशून्य स्थानमें, श्रीविष्णुमूर्तिके सम्मुख अथवा जलाशयके निकट मनमें भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए अष्टाक्षरमन्त्रका जप करना चाहिये । साक्षात् भगवान् नारायण ही अष्टाक्षरमन्त्रके ऋषि हैं, दैवी गायत्री छन्द है, परमात्मा देवता है, ॐकार शुक्लवर्ण है, 'न' रक्तवर्ण है, 'मो' कृष्णवर्ण है, 'ना' रक्त है, 'रा' कुद्धुकुम-रंगका है, 'य' पीतवर्णका है, 'णा' अङ्गनके समान कृष्णवर्णवाला है और 'य' विविध वर्णोंसे युक्त है । तात ! यह 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्र समस्त प्रयोजनोंका साधक है और भक्तिपूर्वक जप करनेवाले लोगोंको स्वर्ग तथा मोक्षरूप फल देनेवाला है ॥ ३—७ ॥

यह सनातन मन्त्र वेदोंके प्रणव (सारभूत अक्षरों)– से सिद्ध होता है । यह सभी मन्त्रोंमें उत्तम, श्रीसम्प्रभ और सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाला है । जो सदा संध्याके अन्तमें इस अष्टाक्षरमन्त्रका जप करता हुआ भगवान् नारायणका स्मरण करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है । यही उत्तम मन्त्र है और यही उत्तम तपस्या है । यही उत्तम मोक्ष तथा यही स्वर्ग कहा गया है । पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने वैष्णवजनोंके हितके लिये सम्पूर्ण वेद-रहस्योंसे यह सारभूत मन्त्र निकाला है । इस प्रकार जानकर द्वाष्टायणको चाहिये कि इस अष्टाक्षर-मन्त्रका स्मरण (जप) करे ॥ ८—१२ ॥

स्नात्वा शुचिः शुचौ देशो जपेत् पापविशुद्धये ।
जपे दाने च होमे च गमने ध्यानपर्वत्सु ॥ १३
जपेत्त्रारायणं मन्त्रं कर्मपूर्वे परे तथा ।
जपेत्सहस्रं नियुतं शुचिर्भूत्वा समाहितः ॥ १४
मासि मासि तु द्वादश्यां विष्णुभक्तो द्विजोत्तमः ।
स्नात्वा शुचिर्जपेत्यस्तु नमो नारायणं शतम् ॥ १५
स गच्छेत् परमं देवं नारायणमनामयम् ।
गन्धपुष्पादिभिर्विष्णुमनेनाराध्य यो जपेत् ॥ १६
महापातकयुक्तोऽपि मुच्यते नात्र संशयः ।
हृदि कृत्वा हरि देवं मन्त्रमेनं तु यो जपेत् ॥ १७
सर्वपापविशुद्धात्मा स गच्छेत् परमां गतिम् ।
प्रथमेन तु लक्षणं आत्मशुद्धिर्भविष्यति ॥ १८
द्वितीयेन तु लक्षणं मनुसिद्धिमवाप्नुयात् ।
तृतीयेन तु लक्षणं स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ॥ १९
चतुर्थेन तु लक्षणं हरेः सामीप्यमाप्नुयात् ।
पञ्चमेन तु लक्षणं निर्मलं ज्ञानमाप्नुयात् ॥ २०
तथा षष्ठेन लक्षणं भवेद्विष्णी स्थिरा यतिः ।
सप्तमेन तु लक्षणं स्वरूपं प्रतिपद्यते ॥ २१
अष्टमेन तु लक्षणं निर्वाणमधिगच्छति ।
स्वस्वर्धमंसपायुक्तो जपं कुर्याद् द्विजोत्तमः ॥ २२
एतत् सिद्धिकरं मन्त्रमष्टाक्षरमतन्त्रितः ।
दुःस्वप्रासुरपैशाचा उरगा ब्रह्मराक्षसाः ॥ २३
जापिनं नोपसर्पन्ति चौरक्षुद्राधयस्तथा ।
एकाग्रमनसाव्यग्रो विष्णुभक्तो दुष्कृतः ॥ २४
जपेत्त्रारायणं मन्त्रमेतन्मृत्युभयापहम् ।
मन्त्राणां परमो मन्त्रो देवतानां च देवतम् ॥ २५

स्नान करके, पवित्र होकर, शुद्ध स्थानमें बैठकर पापशुद्धिके लिये इस मन्त्रका जप करना चाहिये । जप, दान, होम, गमन, ध्यान तथा पर्वते अवसरपर और किसी कर्मके पहले तथा पश्चात् इस नारायण-मन्त्रका जप करना चाहिये । भगवान् विष्णुके भक्तश्रेष्ठ द्विजको चाहिये कि वह प्रत्येक मासकी द्वादशी तिथिको पवित्र-भावसे एकाग्रचित्त होकर सहस्र या लक्ष मन्त्रका जप करे ॥ १३-१४ ॥

स्नान करके पवित्रभावसे जो 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्रका सौ (एक सौ आठ) बार जप करता है, वह निरामय परमदेव भगवान् नारायणको प्राप्त करता है । जो इस मन्त्रके द्वारा गन्ध-पुष्प आदिसे भगवान् विष्णुकी आराधना करके इसका जप करता है, वह महापातकसे युक्त होनेपर भी निसर्देह मुक्त हो जाता है । जो हृदयमें भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए इस मन्त्रका जप करता है, वह समस्त पापोंसे विशुद्धचित्त होकर उत्तम गतिको प्राप्त करता है ॥ १५—१७ ॥

एक लक्ष मन्त्रका जप करनेसे चित्तशुद्धि होती है, दो लक्षके जपसे मन्त्रकी सिद्धि होती है, तीन लक्षके जपसे मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त कर सकता है, चार लक्षसे भगवान् विष्णुकी समीपता प्राप्त होती है और पाँच लक्षसे निर्मल ज्ञानकी प्राप्ति होती है । इसी प्रकार छः लक्षसे भगवान् विष्णुमें चित्त स्थिर होता है, सात लक्षसे भगवत्स्वरूपका ज्ञान होता है और आठ लक्षसे पुरुष निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त कर लेता है । द्विजमात्रको चाहिये कि अपने-अपने धर्मसे युक्त रहकर इस मन्त्रका जप करे । यह अष्टाक्षरमन्त्र सिद्धिदायक है । आलस्य त्यागकर इसका जप करना चाहिये । इसे जप करनेवाले पुरुषके पास दुःखप्र असुर, पिशाच, सर्प, ब्रह्मराक्षस, चौर और छोटी-मोटी मानसिक व्याधियाँ भी नहीं फैलती हैं ॥ १८—२३ ॥

विष्णुभक्तको चाहिये कि वह दृढ़संकल्प एवं स्वस्थ होकर एकाग्रचित्तसे इस नारायण-मन्त्रका जप करे । यह मृत्युभयका नाश करनेवाला है । मन्त्रोंमें सबसे उत्कृष्ट मन्त्र और देवताओंका भी देवता (आराध्य) है ।

गुह्यानां परमं गुह्यमोक्ताराद्यक्षराष्ट्रकम्।
आयुधं धनपुत्रांशु पशून् विद्यां महद्याशः ॥ २६
धर्मार्थकाममोक्षांशु लभते च जपत्ररः।
एतत् सत्यं च धर्मं च वेदश्रुतिनिर्दर्शनात् ॥ २७
एतत् सिद्धिकरं नृणां मन्त्ररूपं न संशयः।
ऋषयः पितरो देवाः सिद्धास्त्वसुररक्षसाः ॥ २८
एतदेव परं जप्त्वा परां सिद्धिमितो गताः।
ज्ञात्वा यस्त्वात्मनः कालं शास्त्रान्तरविधानतः।
अन्तकाले जपत्रेति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ २९
नारायणाय नम इत्ययमेव सत्यं
संसारघोरविषसंहरणाय मन्त्रः।
शृणवन्तु भव्यमतयो मुदितास्त्वरागा
उच्चैस्तरामुपदिशाम्यहमूर्ध्वबाहुः ॥ ३० ॥

भूत्योर्ध्वबाहुरद्याहं सत्यपूर्वं छवीम्यहम्।
हे पुत्र शिष्याः श्रणुत न मन्त्रोऽष्टाक्षरात्परः ॥ ३१
सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुक्तिप्य भुजमुच्यते।
वेदाच्छास्त्रं परं नास्ति न देवः केशवात् परः ॥ ३२
आलोच्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।
इदमेकं सुनिष्ठत्रं ध्येयो नारायणः सदा ॥ ३३
इत्येतत् सकलं प्रोक्तं शिष्याणां तत्र पुण्यदम्।
कथाश्च विविधाः प्रोक्ता मया भज जनार्दनम् ॥ ३४
अष्टाक्षरमिमं मन्त्रं सर्वदुःखविनाशनम्।
जप पुत्र महाबुद्धे यदि सिद्धिमभीप्ससि ॥ ३५
इदं सत्वं व्यासमुखान्तु निस्मृतं
संध्यात्रये ये पुरुषाः पठन्ति।
ते धौतपाण्डुरपटा इव राजहंसाः
संसारसागरपेतभयास्तरन्ति ॥ ३६

यह उंडकारादि अष्टाक्षर-मन्त्र गोपनीय वस्तुओंमें परम गोपनीय है। इसका जप करनेवाला मनुष्य आयु, धन, पुत्र, पशु, विद्या, महान् यश एवं धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको भी प्राप्त कर लेता है। यह वेदों और श्रुतियोंके कथनानुसार धर्मसम्मत तथा सत्य है। इसमें कोई संदेह नहीं कि ये मन्त्ररूपी नारायण मनुष्योंको सिद्धि देनेवाले हैं। ऋषि, पितृगण, देवता, सिद्ध, असुर और राक्षस इसी परम उत्तम मन्त्रका जप करके परम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। जो ज्यौतिष आदि अन्य शास्त्रोंके विधानसे अपना अन्तकाल निकट जानकर इस मन्त्रका जप करता है, वह भगवान् विष्णुके प्रसिद्ध परमपदको प्राप्त होता है ॥ २४—२९ ॥

भव्य बुद्धिवाले विरक्त पुरुष प्रसन्नतापूर्वक मेरी बात सुनें—मैं दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर उच्चस्वरसे यह उपदेश देता हूँ कि “संसाररूपी सर्पके भयानक विषका नाश करनेके लिये यह ‘उंड नारायणाय नमः’ मन्त्र ही सत्य (अमोघ) औषध है”। पुत्र और शिष्यों। सुनो—आज मैं दोनों बाँहें ऊपर उठाकर सत्यपूर्वक कह रहा हूँ कि ‘अष्टाक्षरमन्त्र’ से बढ़कर दूसरा कोई मन्त्र नहीं है। मैं भुजाओंको ऊपर उठाकर सत्य, सत्य और सत्य कह रहा हूँ, ‘वेदसे बढ़कर दूसरा शास्त्र और भगवान् विष्णुसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है।’ सम्पूर्ण शास्त्रोंकी आलोचना तथा बार-बार उनका विचार करनेसे एकमात्र यही उत्तम कर्तव्य सिद्ध होता है कि ‘नित्य-निरन्तर भगवान् नारायणका ध्यान ही करना चाहिये’। वेटा! तुमसे और शिष्योंसे यह सारा पुण्यदायक प्रसंग मैंने कह सुनाया तथा नाना प्रकारकी कथाएँ भी सुनायीं; अब तुम भगवान् जनार्दनका भजन करो। महाबुद्धिमान् पुत्र! यदि तुम सिद्धि चाहते हो तो इस सर्वदुःखनाशक अष्टाक्षरमन्त्रका जप करो। जो पुरुष श्रीव्यासजीके मुखसे निकले हुए इस स्तोत्रका त्रिकाल संध्याके समय पाठ करेंगे, वे धूले हुए थेत वस्त्र तथा राजहंसोंके समान निर्मल (विशुद्ध)-चित्र हो निर्भयतापूर्वक संसार-सागरसे पार हो जायेंगे ॥ ३०—३६ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे अष्टाक्षरमन्त्रं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणे ‘अष्टाक्षरमन्त्रका माहात्म्य’ नामक सत्रहर्वा अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

अठारहवाँ अध्याय

भगवान् सूर्यद्वारा संज्ञाके गर्भसे मनु, यम और यमीकी, छायाके गर्भसे मनु, शनैश्चर एवं तपतीकी उत्पत्ति तथा अश्वारूपधारिणी संज्ञासे अश्विनीकुमारोंका प्रादुर्भाव

सूत उचाच

इति श्रुत्वा कथा: पुण्याः सर्वपापप्रणाशिनीः ।
नानाविधा मुनिश्रेष्ठाः कृष्णद्वैपायनात् पुनः ॥ १
शुकः पूर्व महाभागो भरद्वाजो महामते ।
सिद्धैरन्यैश्च सहितो नारायणपरोऽभवत् ॥ २
एवं ते कथिता विप्र मार्कण्डेयादिकाः कथाः ।
मया विचित्राः पापब्ल्यः किं भूयः श्रोतुमिच्छुसि ॥ ३

भरद्वाज उचाच

वस्यादीनां तथा प्रोक्ता मम सृष्टिस्त्वया पुरा ।
अश्विनोर्मरुतां चैव नोक्तोत्पत्तिस्तु तां वद ॥ ४

सूत उचाच

मरुतां विस्तरेणोक्ता वैष्णवाख्ये महामते ।
पुराणे शक्तिपुत्रेण पुरोत्पत्तिश्च वायुना ॥ ५
अश्विनोर्देवयोश्चैव सृष्टिरुक्ता सुविस्तरात् ।
संक्षेपात्तव वक्ष्यामि सृष्टिमेतां श्रुणुच्च मे ॥ ६

दक्षकन्यादितिः । अदितेरादित्यः पुत्रः । तस्मै त्वष्टा दुहितरं संज्ञां नाम कन्यां दत्तवान् ॥ ७ ॥ सोऽपि त्वाष्ट्रीं रूपवर्तीं मनोज्ञां प्राप्य तया सह रेमे । सा कतिपयात् कालात् स्वर्भर्तुरादित्यस्य तापमसहनी पितुर्गृहं जगाम ॥ ८ ॥ तामवलोक्य सुतां पितोवाच किं पुत्रि तव भर्ता सविता स्नेहात् त्वां रक्षत्युत परुष इति ॥ ९ ॥ एवं पितुर्बचनं श्रुत्वा संज्ञा तं प्रत्युवाच । दग्धाहं भर्तुः प्रचण्डतापादिति ॥ १० ॥ एवं श्रुत्वा तामाह पिता गच्छ पुत्रि भर्तुर्गृहभिति ॥ ११ ॥ युवतीस्त्रीणां भर्तुः शुश्रूषणमेव धर्मः श्रेयान् । अहमपि कतिपयदिवसादागत्यादित्यस्योद्यातां जामातुरुद्धरिष्यामि ॥ १२ ॥

सूतजी बोले— मुनिवरो तथा महामते भरद्वाज ! पूर्वकालमें श्रीकृष्णद्वैपायनसे इस प्रकार नाना भौतिकी पावन पापनाशक कथाएँ सुनकर महाभाग शुक अन्य सिद्धगणोंके साथ भगवान् नारायणकी आराधनामें तप्त हो गये । द्वादश । इस प्रकार मैंने आपसे पाप-नाश करनेवाली मार्कण्डेय आदिकी विचित्र कथाएँ कहीं; अब आप और व्या सुनना चाहते हैं ? ॥ १—३ ॥

भरद्वाजजी बोले— सूतजी ! आपने पहले मुझसे वसु आदि देवताओंकी सृष्टिका उस प्रकार वर्णन किया; परंतु अश्विनीकुमारों तथा मरुदण्डोंकी उत्पत्ति नहीं कही; अतः अब उसे ही कहिये ॥ ४ ॥

सूतजी बोले— महामते ! पूर्वकालमें शक्तिनन्दन श्रीपराशरजीने विष्णुपुराणमें मरुदण्डोंकी उत्पत्तिका विस्तार-पूर्वक वर्णन किया है तथा वायुदेवताने वायुपुराणमें अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्ति भी विस्तारपूर्वक कही है; अतः मैं यहाँ संक्षेपसे ही इस सृष्टिका वर्णन करूँगा, सुनिये ॥ ५—६ ॥

प्रजापति दक्षकी एक कन्या अदिति नामसे प्रसिद्ध है । उनके गर्भसे 'आदित्य' नामक पुत्र हुआ । अदितिकुमार आदित्यको त्वष्टा प्रजापतिने अपनी संज्ञा नामकी कन्या ज्याह दी । आदित्य भी त्वष्टाकी रूपवती एवं मनोरमा कन्या संज्ञाको पाकर उसके साथ सुखपूर्वक रहने लगे । संज्ञा अपने पतिके तापको न सह सकनेके कारण कुछ कालके बाद अपने पिताके घर चली गयी । उस कन्याको देखकर पिताने कहा— 'बेटी ! तुम्हारे स्वामी सूर्यदेव तुम्हारा स्नेहपूर्वक पालन करते हैं या तुम्हारे साथ कठोरतापूर्ण व्यवहार करते हैं ?' पिताकी ऐसी जात सुनकर संज्ञा उनसे बोली— 'तात ! मैं स्वामीके प्रचण्ड तापसे जल गयी हूँ ।' यह सुनकर पिताने उससे कहा— 'बेटी ! तुम पतिके घर चली जाओ । पतिकी सेवा करना ही युवती स्त्रियोंका परम उत्तम धर्म है । मैं भी कुछ दिनोंके बाद आकर जामाता आदित्यदेवकी उष्णताको उनके शरीरसे कुछ कम कर दूँगा' ॥ ७—१२ ॥

इत्युक्ता सा च पुनर्भर्तुर्गृहं प्राप्य कतिपय-
दिवसामनु यमी यमं चापत्यत्रयमादित्यात् प्राप्तु ।
पुनस्तदुष्टातामसहन्ती छायां भर्तुरुपभोगाय
स्वप्रज्ञावलेनोत्पाद्य तत्र संस्थाप्य गत्वोत्तर-
कुरुनथिष्ठायाश्ची भूत्वा विच्चार ॥ १३ ॥

आदित्योऽपि संज्ञेयमिति मत्वा तस्यां जायां
पुनरपत्यत्रयमुत्पादयामास ॥ १४ ॥ मनु शनैश्चरं तपतीं
च । स्वेष्वपत्येषु पक्षपातेन वर्तन्तीं छायां दृष्ट्वा यमः
स्वपितरमाह नेयमस्मम्नातेति ॥ १५ ॥ पितापि
तच्छ्रुत्वा भार्या प्राह । सर्वेष्वपत्येषु सममेव
वर्ततामिति ॥ १६ ॥ पुनरपि स्वेष्वपत्येषु स्नेहात्
प्रवर्तन्तीं छायां दृष्ट्वा यमो यमी च तां
बहुविधमपीत्थमुवाच । आदित्यसंनिधानात् तूष्णीं
बभूवतु ॥ १७ ॥ ततश्छाया तयोः शापं दत्तवती ।
यम त्वं प्रेतराजो भव यमि त्वं यमुना नाम नदी
भवेति ॥ १८ ॥ ततः क्रोधादादित्योऽपि छायापुत्रयोः
शापं दत्तवान् हे पुत्र शनैश्चर त्वं यहो भव
कूरदृष्टिर्मन्दगामी च पापग्रहस्त्वं च ॥ १९ ॥ पुत्रि
तपती नाम नदी भवेति । अथादित्यो ध्यानमास्थाय
संज्ञा त्रु स्थितेति विचारयामास ॥ २० ॥

स दृष्ट्वानुत्तरकुरुषु ध्यानचक्षुषाश्चीभूय
विचरन्तीम् । स्वयं चाश्रुपेण तत्र गत्वा
तया सह सम्पकं कृतवान् ॥ २१ ॥
तस्यामेवादित्यादधिनावुत्पन्नी तयोरतिशयवपुषोः
साक्षात् प्रजापतिरागत्य देवत्वं यज्ञभागत्वं मुख्यं च
देवानां भिषजत्वं दत्त्वा जगाम । आदित्यश्चाश्रुपं
विहाय स्वभार्या संज्ञां त्वाष्ट्री स्वरूपधारिणीं
नीत्वा स्वरूपमास्थाय दिवं जगाम ॥ २२ ॥

पिताके यों कहनेपर वह पुनः पिताके घर लौट आयी
तथा कुछ दिनोंके बाद क्रमशः मनु, यम और यमी
(यमुना) — इन तीन संतानोंको जन्म दिया । किंतु पुनः
जब सूर्यका ताप उससे नहीं सहा गया, तब संज्ञाने अपनी
बुद्धिके बलसे स्वामीके उपधोगके लिये अपनी छाया
(प्रतिबिष्ट) — स्वरूपा एक स्त्रीको उत्पन्न किया तथा उसे
ही घरमें रखकर वह उत्तरकुरुदेशमें चली गयी और वहाँ
घोड़ीका रूप धारण करके इधर-उधर विचरने लगी ॥ १३ ॥

अदितिनन्दन सूर्यने भी उसे संज्ञा ही मानकर उस
अपनी जाया (भार्या) — रूपधारिणी छायाके गर्भसे पुनः
मनु, शनैश्चर तथा तपती — इन तीन संतानोंको उत्पन्न
किया । छायाको अपनी संतानोंके प्रति पक्षपातपूर्ण बर्ताव
करते देखकर यमने अपने पितासे कहा — 'तात ! यह
हमलोगोंकी माता नहीं है ।' पिताने भी जब यह सुना, तब
उस भार्यासे कहा — 'सब संतानोंके प्रति समानरूपसे ही
बर्ताव करो ।' फिर भी छायाको अपनी ही संतानोंके प्रति
अधिक स्नेहपूर्ण बर्ताव करते देख यम और यमीने उसे
बहुत कुछ युग-भला कहा, किंतु जब सूर्यदेव पास आये,
तब वे दोनों चुप हो रहे । यह देख छायाने उन दोनोंकी
शाप देते हुए कहा — 'यम ! तुम प्रेतोंके राजा बनो और
यमी ! तू 'यमुना' नामक नदी हो जा ।' छायाका यह
कूरतापूर्ण बर्ताव देखकर भगवान् सूर्य भी कुपित हो उठे
और उसके पुत्रोंको शाप देते हुए बोले — 'बेटा शनैश्चर !
तू कूरतापूर्ण दृष्टिसे देखनेवाला मन्दगामी ग्रह हो जा । तेरी
गणना पापग्रहोंमें होगी । बेटी तपती ! तू भी 'तपती'
नामकी नदी हो जा ।' इसके बाद भगवान् सूर्य ध्यानस्थ
होकर विचार करने लगे कि 'संज्ञा' कहाँ है ॥ १४—२० ॥

उन्होंने ध्यान-नेत्रसे देखा, संज्ञा उत्तरकुरुमें 'अक्षा' का
रूप धारण करके विचर रही है । तब वे स्वयं भी अक्षका
रूप धारण करके वहाँ गये । जाकर उन्होंने उसके साथ
समागम किया । उस अक्षरूपधारिणी संज्ञाके ही गर्भसे
सूर्यके दीर्घसे दोनों 'अक्षिनीकुमार' उत्पन्न हुए । उनके
शरीर सब देवताओंसे अधिक सुन्दर थे । साक्षात् ब्रह्माजीने
वहाँ पधारकर उन दोनों कुमारोंको देवत्व तथा यज्ञोंमें भाग
प्राप्त करनेका अधिकार प्रदान किया । साथ ही उन्हें
देवताओंका प्रधान वैद्य बना दिया । इसके बाद ब्रह्माजी चले
गये । फिर सूर्यदेवने अक्षका रूप त्यागकर अपना स्वरूप

विश्वकर्मा चागत्य आदित्यं नामभिः स्तुत्वा
तदतिशयोष्टातामपशात्यामास ॥ २३ ॥

एवं चः कथिता विप्रा अश्विनोत्पत्तिरुत्तमा ।
पुण्या पवित्रा पापची भरद्वाज महामते ॥ २४

आदित्यपुत्री	भिषजी	सुराणां
दिव्येन	रूपेण	विराजमानी ।
श्रुत्वा	तयोर्जन्म	नरः पृथिव्यां
भवेत्	सुरूपो	दिवि मोदते च ॥ २५

इति श्रीनरसिंहपुराणे अश्विनीलक्ष्मतिर्त्यग्म अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'दोनों अश्विनीकुमारोंको उत्पत्ति' नामक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

धारण कर लिया । त्वष्टा प्रजापतिकी पुत्री संज्ञा भी अश्वका रूप छोड़कर अपने साक्षात् स्वरूपमें प्रकट हो गयी । उस अवस्थामें सूर्यदेव त्वष्टाकी पुत्री अपनी पत्नी संज्ञाको आदित्यलोकमें ले गये । तदनन्तर विश्वकर्मा सूर्यके पास आये और उन्होंने विविध नामोंद्वारा उनका स्तबन किया तथा उनकी अनुमतिसे ही उनके श्रीअङ्गोंकी अतिशय उष्णताके अंशको कुछ शान्त कर दिया ॥ २१—२३ ॥

महामते भरद्वाज तथा अन्य ब्राह्मणो ! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे दोनों अश्विनीकुमारोंके जन्मकी उत्तम, पुण्यमयी, पवित्र एवं पापनाशक कथा कह सुनायी । सूर्यके बे दोनों पुत्र देवताओंके बैद्य हैं । अपने दिव्यरूपसे सदा प्रकाशित होते रहते हैं । उन दोनोंके जन्मकी कथा सुनकर मनुष्य इस भूतलपर सुन्दर रूपसे सुशोभित होता है और अन्तमें स्वर्गलोकमें जाकर वहाँ आनन्दका अनुभव करता है ॥ २४—२५ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

विश्वकर्माद्वारा १०८ नामोंसे भगवान् सूर्यका स्तबन

भरद्वाज उक्तव्य

यैः स्तुतो नामभिस्तेन सविता विश्वकर्मणा ।
तान्यहं श्रोतुमिच्छामि वद सूत विवस्वतः ॥ १

सूत उक्तव्य

तानि मे श्रृणु नामानि यैः स्तुतो विश्वकर्मणा ।
सविता तानि वक्ष्यामि सर्वपापहराणि ते ॥ २

आदित्यः सविता सूर्यः खगः पूषा गर्भस्तिमान् ।
तिमिरोन्मध्यनः शम्भुस्त्वष्टा मार्तण्ड आशुगः ॥ ३

भरद्वाजजी बोले—सूतजी ! विश्वकर्मने जिन नामोंके द्वारा भगवान् सूर्यका स्तबन किया था, उन्हें मैं सुनना चाहता हूँ । आप सूर्यदेवके उन नामोंका वर्णन करें ॥ १ ॥

सूतजीने कहा—ब्रह्मन् ! विश्वकर्मने जिन नामोंद्वारा भगवान् सविता का स्तबन किया था, उन सर्वपापहारी नामोंको तुम्हें बतलाता हूँ, सुनो ॥ २ ॥

१. आदित्यः—अदितिके पुत्र, २. सविता—जगत्के उत्पादक, ३. सूर्यः—सम्पत्ति एवं प्रकाशके रूप, ४. खगः—आकाशमें विचरनेवाले, ५. पूषा—सबका पोषण करनेवाले, ६. गर्भस्तिमान्—सहस्रों किरणोंसे युक्त, ७. तिमिरोन्मध्यनः—अन्धकारनाशक,

हिरण्यगर्भः कपिलस्तपनो भास्करो रविः ।
अग्निगर्भोऽदितेः पुत्रः शम्भुस्तिमिरनाशनः ॥ ४

अंशुमानंशुमाली च तमोजस्तोजसां निधिः ।
आतपी मण्डली मृत्युः कपिलः सर्वतापनः ॥ ५

हरिविश्वो महातेजाः सर्वरत्रप्रभाकरः ।
अंशुमाली तिमिरहा ऋग्यजुस्सामभावितः ॥ ६

प्राणाविष्करणो मित्रः सुप्रदीपो मनोजवः ।
यज्ञेशो गोपतिः श्रीमान् भूतज्ञः कलेशनाशनः ॥ ७

८. शम्भुः—कल्याणकारी, ९. त्वष्टा—विश्वकर्मा अथवा विश्वरूपी शिल्पके निर्माता, १०. मार्तण्डः—मृत अण्डसे प्रकट, ११. आशुगः—शीघ्रगामी ॥ ३ ॥

१२. हिरण्यगर्भः—ब्रह्मा, १३. कपिलः—कपिलवर्णवाले अथवा कपिलमुनिस्वरूप, १४. तपनः—तपने या ताप देनेवाले, १५. भास्करः—प्रकाशक, १६. रविः—रव—वेदत्रयीकी ध्वनिसे युक्त अथवा भूतलके रसोंका आदान (आकर्षण) करनेवाले, १७. अग्निगर्भः—अपने भीतर अग्निमय तेजको धारण करनेवाले, १८. अदितेः पुत्रः—अदितिदेवीके पुत्र, शम्भुः—कल्याणके उत्पादक, १९. तिमिरनाशनः—अन्धकारका नाश करनेवाले ॥ ४ ॥

२०. अंशुमान्—अनन्त किरणोंसे प्रकाशमान, २१. अंशुमाली—किरणमालामण्डित, २२. तमोजः—अन्धकारनाशक, २३. तेजसां निधिः—तेज अथवा प्रकाशके भण्डार, २४. आतपी—आतप या घाम प्रकट करनेवाले, २५. मण्डली—अपने मण्डल या विष्वसे युक्त, २६. मृत्युः—मृत्युस्वरूप अथवा मृत्युके अधिष्ठाता यमको जन्म देनेवाले, २७. कपिलः सर्वतापनः—भूरी या सुनहरी किरणोंसे युक्त होकर सबको संताप देनेवाले ॥ ५ ॥

२८. हरिः—सूर्य अथवा पापहारी, २९. विश्वः—सर्वरूप, ३०. महातेजः—महातेजस्वी, ३१. सर्वरत्रप्रभाकरः—सम्पूर्ण रत्नों तथा प्रभापुञ्जको प्रकट करनेवाले, ३२. अंशुमाली तिमिरहा—किरणोंकी माला धारण करके अन्धकारको दूर करनेवाले, ३३. ऋग्यजुस्सामभावितः—ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद—इन तीनोंके द्वारा भावित या प्रतिपादित ॥ ६ ॥

३४. प्राणाविष्करणः—प्राणोंके आधारभूत अत्र आदिकी उत्पत्ति और जलकी वृष्टि करनेवाले, ३५. मित्रः—‘मित्र’ नामक आदित्य अथवा सबके सुहृद, ३६. सुप्रदीपः—भलीभौति प्रकाशित होनेवाले अथवा सर्वत्र उत्तम प्रकाश विखेरनेवाले, ३७. मनोजवः—मनके समान या उससे भी अधिक तीव्र वेगवाले, ३८. यज्ञेशः—यज्ञोंके स्वामी नारायणस्वरूप, ३९. गोपतिः—किरणोंके स्वामी अथवा भूमि एवं गीओंके पालक, ४०. श्रीमान्—कान्तिमान्, ४१. भूतज्ञः—सम्पूर्ण भूतोंके ज्ञाता अथवा भूतकालकी बातोंको

अमित्रहा शिवो हंसो नायकः प्रियदर्शनः ।
शुद्धो विरोचनः केशी सहस्रांशुः प्रतर्दनः ॥ ८

भी जाननेवाले, ४२. बलेशनाशनः—सब प्रकारके
बलेशोंका नाश करनेवाले ॥ ७ ॥

४३. अमित्रहा—शत्रुनाशक, ४४. शिवः—
कल्याणस्वरूप, ४५. हंसः—आकाशरूपी सरोवरमें
विचरनेवाले एकमात्र राजहंस अथवा सबके आत्मा,
४६. नायकः—नेता अथवा नियन्ता, ४७. प्रियदर्शनः—
सबका प्रिय देखने या चाहनेवाले अथवा जिनका दर्शन
प्राणिमात्रको प्रिय है, ऐसे, ४८. शुद्धः—मलिनतासे
रहित, ४९. विरोचनः—अत्यन्त प्रकाशमान,
५०. केशी—किरणरूपी केशोंसे युक्त, ५१.
सहस्रांशुः—असंख्य किरणोंके युज, ५२. प्रतर्दनः—
अन्धकार आदिका विशेषरूपसे संहार करनेवाले ॥ ८ ॥

५३. धर्मराशिमः—धर्मयी किरणोंसे युक्त अथवा
धर्मके प्रकाशक, ५४. पतंगः—किरणरूपी पंखोंसे
उड़नेवाले आकाशचारी पक्षिस्वरूप, ५५. विशालः—
महान् आकारवाले अथवा विशेषरूपसे शोभायमान, ५६.
विश्वसंस्तुतः—समस्त जगत् जिनकी स्तुति—गुणगान
करता है, ऐसे, ५७. दुर्धिंज्ञेयगतिः—जिनके स्वरूपको
जानना या समझना अत्यन्त कठिन है, ऐसे, ५८.
शूरः—शौर्यशाली, ५९. तेजोराशिः—तेजके समूह,
६०. महायशाः—महान् यशसे सम्पन्न ॥ ९ ॥

६१. भाजिष्युः—दीपिमान्, ६२. ज्योतिषामीशः—
तेजोमय ग्रह-नक्षत्रोंके स्वामी, ६३. विजिष्युः—
विजयशील, ६४. विश्वभावनः—जगत्के उत्पादक,
६५. प्रभविष्युः—प्रभावशाली अथवा जगत्की
उत्पत्तिके कारण, ६६. प्रकाशात्मा—प्रकाशस्वरूप,
६७. ज्ञानराशिः—ज्ञानगिधि, ६८. प्रभाकरः—उल्कृष्ट
प्रकाश फैलानेवाले ॥ १० ॥

६९. आदित्यो विश्वहक—आदित्यरूपसे जगत्के
द्रष्टा या साक्षी अथवा सम्पूर्ण संसारके नेत्ररूप,
७०. यज्ञकर्ता—जगत्को जल एवं जीवन प्रदान करके
दानयज्ञ सम्पन्न करनेवाले, ७१. नेता—अन्धकारका
नयन—अपसारण कर देनेवाले, ७२. यशस्करः यशका
विस्तार करनेवाले। ७३. विमलः—निर्मलस्वरूप,
७४. वीर्यवान्—शक्तिशाली, ७५. ईशः—ईश्वर,

भाजिष्युर्योतिषामीशो विजिष्युर्विश्वभावनः ।
प्रभविष्युः प्रकाशात्मा ज्ञानराशिः प्रभाकरः ॥ १०

आदित्यो विश्वहक् यज्ञकर्ता नेता यशस्करः ।
विमलो वीर्यवानीशो योगज्ञो योगभावनः ॥ ११

अमृतात्मा शिवो नित्यो वरेण्यो वरदः प्रभुः ।
धनदः प्राणदः श्रेष्ठः कामदः कामस्तपथ्यक् ॥ १२

तरणिः शाश्वतः शास्ता शास्त्रज्ञस्तपनः शायः ।
वेदगर्भो विभुवीरः शान्तः सावित्रिवल्लभः ॥ १३

छ्येयो विश्वेश्वरो भर्ता लोकनाथो महेश्वरः ।
महेन्द्रो वरुणो धाता विष्णुरग्निर्दिवाकरः ॥ १४

एतैस्तु नामभिः सूर्यः स्तुतस्तेन महात्मना ।
उवाच विश्वकर्मणं प्रसन्नो भगवान् रविः ॥ १५

प्रभिमारोप्य मामत्र मण्डलं मम शातय ।
तद्गुद्धिस्थं मया ज्ञातमेवमौष्यं शामं द्वजेत् ॥ १६

७६. योगजः—भगवान् श्रीहरिसे कर्मयोगका ज्ञान प्राप्त करके उसका मनुको उपदेश करनेवाले*, ७७. योगभावनः—योगको प्रकट करनेवाले ॥ ११ ॥

७८. अमृतात्मा शिवः—अमृतस्वरूप शिव, ७९. नित्यः—सनातन, ८०. वरेण्यः—वरणीय—आश्रय लेनेयोग्य, ८१. वरदः—उपासकको मनोवाङ्गित वर देनेवाले, ८२. प्रभुः—सब कुछ करनेमें समर्थ, ८३. धनदः—धनदान करनेवाले, ८४. प्राणदः—प्राणदाता, ८५. श्रेष्ठः—सबसे उत्कृष्ट, ८६. कामदः—मनोवाङ्गित वस्तु देनेवाले, ८७. कामस्तपथ्यक्—इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले ॥ १२ ॥

८८. तरणिः—संसारसागरसे तारनेवाले, ८९. शाश्वतः—सनातन पुरुष, ९०. शास्ता—शासक या उपदेशक, ९१. शास्त्रज्ञः—समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता, तपनः—तपनेवाले या ताप देनेवाले, ९२. शायः—सबके अधिष्ठान या आश्रय, ९३. वेदगर्भः—शुक्लयजुर्वेदको प्रकट करनेवाले, ९४. विभुः—सर्वत्र व्यापक, ९५. वीरः—शूरवीर, ९६. शान्तः—शमयुक्त, ९७. सावित्रिवल्लभः—गायत्रीमन्त्रके अधिदेवता ॥ १३ ॥

९८. ध्येयः—ध्यान करनेयोग्य, ९९. विश्वेश्वरः—सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर, १००. भर्ता—सबका भरण-पोषण करनेवाले, १०१. लोकनाथः—संसारके रक्षक, १०२. महेश्वरः—परमेश्वर, १०३. महेन्द्रः—देवराज इन्द्र-स्वरूप, १०४. वरुणः—पश्चिम दिशाके अधिपति 'वरुण' नामक आदित्य, १०५. धाता—जगत्का धारण-पोषण करनेवाले अथवा 'धाता' नामक आदित्य, १०६. विष्णुः—व्यापक अथवा 'विष्णु' नामक आदित्य, १०७. अग्निः—अग्निस्वरूप, १०८. दिवाकरः—रात्रिका अंधकार दूर करके प्रकाशपूर्ण दिनको प्रकट करनेवाले ॥ १४ ॥

उन महात्मा विश्वकर्मनि उपर्युक्त नामोंद्वारा भगवान् सूर्यका स्तबन किया। इससे भगवान् सूर्यको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे उन विश्वकर्मासे बोले ॥ १५ ॥

प्रजापते! आपको बुद्धिमें जो बात है—आप जिस उद्देश्यको लेकर आये हैं, वह मुझे ज्ञात है। अतः आप मुझे शाणचक्रपर चढ़ाकर मेरे मण्डलको छाँट दें; इससे मेरी उच्छता कुछ कम हो जायगी ॥ १६ ॥

* वैसा कि गीतमें कहा है—'इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्। विवस्वान् मनवे प्राह..... ॥'

इत्युक्तो विश्वकर्मा च तथा स कृतवान् द्विज ।
शान्तोष्णः सविता तस्य दुहितुर्विश्वकर्मणः ॥ १७

संज्ञायाश्चाभवद्विप्र भानुस्त्वष्टारमब्रवीत् ।
त्वया यस्मात् स्तुतोऽहं वै नाम्नामष्टशतेन च ॥ १८

वरं वृणीष्व तस्मात् त्वं वरदोऽहं तवानघ ।
इत्युक्तो भानुना सोऽथ विश्वकर्माद्वीदिदप् ॥ १९
वरदो यदि मे देव वरमेतं प्रयच्छ मे ।
एतेस्तु नामभिर्यस्त्वां नरः स्तोष्यति नित्यशः ॥ २०
तस्य पापक्षयं देव कुरु भक्तस्य भास्कर ॥ २१

तेनैवमुक्तो दिनकृत् तथेति
त्वष्टारमुक्त्वा विराम भास्करः ।
संज्ञां विशङ्गां रविमण्डलस्थितां
कृत्वा जगामाथ रविं प्रसाद्य ॥ २२ ।

इति श्रीनरसिंहपुराणे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें उक्तीस वाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

ब्रह्मन् ! भगवान् सूर्यके यों कहनेपर विश्वकर्मनि बैसा हो किया । विप्रवर ! उस दिनसे प्रकाशस्वरूप सविता विश्वकर्माकी बेटी संज्ञाके लिये शान्त हो गये तथा उनकी उष्णता कम हो गयी । इसके बाद वे त्वष्टासे बोले ॥ १७ ॥

अनघ ! चौंक आपने एक सौ आठ नामोंके द्वारा मेरी स्तुति की है, इसलिये मैं प्रसन्न होकर आपको वर देनेके लिये उद्घात हूँ । कोई वर माँगिये ॥ १८ ॥

भगवान् सूर्यके यों कहनेपर विश्वकर्मा बोले—देव ! यदि आप मुझे वर देनेको उद्घात हैं तो यह मुझे वर प्रदान कीजिये—‘देव भास्कर ! जो मनुष्य इन नामोंके द्वारा प्रतिदिन आपकी स्तुति करे, उस भक्तपुरुषके सारे पापोंका आप नाश कर दें’ ॥ १९—२१ ॥

विश्वकर्माके यों कहनेपर दिन प्रकट करनेवाले भगवान् भास्कर उनसे ‘बहुत अच्छा’ कहकर चुप हो गये, तत्पश्चात् सूर्यमण्डलमें निवास करनेवाली संज्ञाको निर्भय करके, सूर्यदेवको संतुष्टकर विश्वकर्मा अपने स्थानको चले गये ॥ २२ ॥

बीसवाँ अध्याय

मारुतोंकी उत्पत्ति

सूत उवाच

साम्ब्रतं मारुतोत्पत्तिं वक्ष्यामि द्विजसत्तम । पुरा
देवासुरे युद्धे देवैरित्यादिभिर्दितेः ॥ १ ॥ पुत्राः पराभूता
दितिश्च विनष्टपुत्रा महेन्द्रदर्पहरं पुत्रमिच्छन्ती
कश्यपमृष्ठिं स्वपतिमाराध्यामास ॥ २ ॥ स च
तपसा संतुष्टो गर्भाधानं चकार तस्याम् ।
पुनस्तामेवमुक्तवान् ॥ ३ ॥ यदि त्वं शुचिः सती

ओसूतजी बोले—द्विजश्रेष्ठ ! अब मैं मारुतोंकी उत्पत्तिका वर्णन करूँगा । पूर्वकालमें देवासुर-संग्राममें इन्द्र आदि देवताओंद्वारा दितिके पुत्र दैत्यगण पराजित हो गये थे । उस समय दिति, जिसके पुत्र नह थे गये थे, महेन्द्रके अभिमानको चूर्ण करनेवाले पुत्रकी इच्छा मनमें होकर अपने पति कश्यप ऋषिकी आराधना करने लगी । तपस्यासे संतुष्ट होकर ऋषिके दितिके भीतर गर्भका आधान किया । फिर वे उससे इस प्रकार बोले—‘यदि तुम पवित्र रहती हुई

शारच्छतमिमं गर्भं धारयिष्यसि ततश्च महेन्द्रदर्पहन्ता
पुत्रो भविष्यति। इत्येवमुक्ता सा च तं गर्भं
धारयामास ॥ ४ ॥ इन्द्रोऽपि तत्ज्ञात्वा
वृद्धब्राह्मणरूपेणागत्य दितिपार्श्वं स्थितवान्।
किंचिदृनपूर्णे वर्षशते पादशीचमकृत्वा दितिः
शब्दनमारुह्य निद्रां गता ॥ ५ ॥ सोऽपि लक्ष्यावसरो
वज्रपाणिस्तत्कुक्षिं प्रविश्य बच्रेण तं गर्भं सप्तथा
चिच्छेद। सोऽपि तेन प्रच्छिद्यमानो रुरोद ॥ ६ ॥ मा
रोदीरिति वदत्रिन्द्रस्तान् सप्तथैकैकं चिच्छेद ॥ ७ ॥
सप्तथा ते सर्वे मरुतो यतो जातमात्रान्मा
रोदीरित्युक्तवान्। महेन्द्रस्य सहाया अभी मरुतो नाम
देवा बभूवुः ॥ ८ ॥

एवं मुने सृष्टिरियं तवेरिता
देवासुराणां नरनागरक्षसाम्।
विष्णुखानामपि यः पठेदिदं
शृण्वन्शु भक्त्या हरिलोकमेति सः ॥ ९

सौ वर्षोतक इस गर्भको धारण कर सकोगी तो उसके
बाद इन्द्रका दर्प चूर्ण करनेवाला पुत्र तुम्हारे गर्भसे उत्पन्न
होगा।' कश्यपजीके यों कहनेपर दितिने उस गर्भको
धारण किया ॥ १—४ ॥ इन्द्रको भी जब यह समाचार ज्ञात
हुआ, तब वे बूढ़े ब्राह्मणके वेषमें दितिके पास आये और
रहने लगे। जब सौ वर्ष पूर्ण होनेमें कुछ ही कमी रह
गयी, तब एक दिन दिति (पोजनके पश्चात) पैर धोये
बिना ही शव्यापर आरुह्य हो, तो गवी। इधर इन्द्रने भी
अवसर प्राप्त हो जानेसे बज्र हाथमें ले, दितिके उदरमें प्रविष्ट
हो, बज्रसे उस गर्भके सात टुकड़े कर दिये। उनके द्वारा
काटे जानेपर वह गर्भ रोने लगा। तब इन्द्रने 'मा रोदीः' (मत
रोओ)—यों कहते हुए पुनः एक-एकके सात-सात टुकड़े
कर खाले। इस तरह सात-सात टुकड़ोंमें बटे हुए वे सातों
खण्ड 'मारूत' नामसे विख्यात हुए; क्योंकि जन्म होते ही
इन्द्रने उन्हें 'मा रोदीः'—इस प्रकार कहा था। ये सभी
इन्द्रके सहायक 'मरुत' नामक देवता हुए ॥ ५—८ ॥

मुने! इस प्रकार मैंने तुमसे देवता, असुर, नर, नाग,
राक्षस और आकाश आदि भूतोंकी सृष्टिका वर्णन
किया। जो इसका भक्तिपूर्वक पाठ अथवा श्रवण करता
है, वह विष्णुलोकको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे विश्वतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'मरुतोंकी उत्पत्ति' नामक वाँसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥

इककीसवाँ अध्याय

सूर्यवंशका वर्णन

भरद्वाज उकाच

अनुसर्गश्च सर्गश्च त्वया चित्रा कथेरिता।
वंशमन्वन्तरे बूहि वंशानुचरितं च मे ॥ १

सूर उकाच

राजां वंशः पुराणोषु विस्तरेण प्रकीर्तिः।
संक्षेपात् कथयिष्यामि वंशमन्वन्तराणि ते ॥ २

वंशानुचरितं चैव श्रुणु विष्र महामते।
शृण्वन्तु मुनयश्चेमे श्रोतुमागत्य ये स्थिताः ॥ ३

भरद्वाजजी ओले—सूतजी! आपने 'सर्ग' और
'अनुसर्ग' का वर्णन किया, विचित्र कथाएँ सुनायों; अब
मुझसे राजाओंके वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरितका
वर्णन करें ॥ १ ॥

सूतजी ओले—पुराणोंमें राजाओंके वंशका विस्तार-
पूर्वक वर्णन किया गया है; यहाँ मैं राजाओंके वंश,
मन्वन्तर तथा वंशानुचरितका संक्षेपसे वर्णन
करूँगा। महामते विष्रवर! इसे आप तथा अन्य
मुनि भी, जो कथाश्रवणके लिये यहाँ आकर ठहरे
हुए हैं, सुनें ॥ २-३ ॥

आदौ तावद्वहा ब्रह्मणो मरीचिः । मरीचे:
कश्यपः कश्यपादादित्यः ॥ ४ ॥ आदित्यान्मनुः ।
मनोरिक्ष्वाकुः, इक्ष्वाकोर्विकुक्षिः । विकुक्षेद्योतः,
द्योताद्वेनो वेनात्पृथुः पृथोः पृथाश्चः ॥ ५ ॥
पृथाश्चादसंख्याताश्चवः । असंख्याताश्चा-
मान्याता ॥ ६ ॥ मान्यातुः पुरुकृत्सः पुरुकृत्साददुष्टदो
दुष्टदादभिशम्भुः ॥ ७ ॥ अभिशम्भोर्दार्कणो दारुणात्
सगरः ॥ ८ ॥ सगराद्धर्यश्चो हर्यश्चाद्धारीतः ॥ ९ ॥
हारीताद्रोहिताश्चो रोहिताश्चादंशुमान् । अंशुमतो
भगीरथः ॥ १० ॥ भगीरथात् सौदासः सौदासा-
च्छ्रुंदमः ॥ ११ ॥ शत्रुंदमादनरण्यः ।
अनरण्याहीर्घ्यबाहुः । दीर्घबाहोरजः ॥ १२ ॥
अजादशरथः, दशरथाद्रामः, रामाल्लवः,
लवात् पश्यः ॥ १३ ॥ पश्यादनुपर्णः ।
अनुपर्णाद्वस्त्रपाणिः ॥ १४ ॥ वस्त्रपाणोः शुद्धोदनः ।
शुद्धोदनादुधः । बुधादादित्यवंशो निवर्तते ॥ १५ ॥
सूर्यवंशभवा ये ते प्राधान्येन प्रकीर्तिताः ।
वैरियं पृथिवी भुक्ता धर्मतः क्षत्रियैः पुरा ॥ १६ ॥
सूर्यस्य वंशः कथितो मया मुने
समुद्रता यत्र नरेश्वराः पुरा ।
मयोच्यमानाञ्छिनः समाहितः
शृणुष्व वंशोऽथ नृपाननुज्ञमान् ॥ १७ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे सूर्यवंशकथनं नामैकविंशतोऽध्यायः ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'सूर्यवंशका वर्णन' नामक इककीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१ ॥

बाईसवाँ अध्याय

चन्द्रवंशका वर्णन

सूर्य उकाव
सोमवंशं शृणुष्वाथ भरद्वाज महामुने ।
पुराणो विस्तरेणोत्तं संक्षेपात् कथयेऽधुना ॥ १ ॥
आदौ तावद्वहा । ब्रह्मणो मानसः पुत्रो
मरीचिर्मरीचेर्दाक्षायण्यां कश्यपः ॥ २ ॥ कश्यपा-

सबसे पहले ब्रह्माजी प्रकट हुए; उनसे मरीचि, मरीचिसे कश्यप, कश्यपसे सूर्य, सूर्यसे मनु मनुसे इक्ष्वाकु, इक्ष्वाकुसे विकुक्षि, विकुक्षिसे द्योत, द्योतसे वेन, वेनसे पृथु और पृथुसे पृथाश्चकी उत्पत्ति हुई। पृथाश्चसे असंख्याताश्च, असंख्याताश्चसे मान्याता, मान्यातासे पुरुकृत्स, पुरुकृत्ससे हृषद, हृषदसे अभिशम्भु, अभिशम्भुसे दारुण, दारुणसे सगर, सगरसे हर्यश्च, हर्यश्चसे हारीत, हारीतसे रोहिताश्च, रोहिताश्चसे अंशुमान् तथा अंशुमान्से भगीरथ उत्पन्न हुए। भगीरथसे सौदास, सौदाससे शत्रुंदम, शत्रुंदमसे अनरण्य, अनरण्यसे दीर्घबाहु, दीर्घबाहुसे अज, अजसे दशरथ, दशरथसे श्रीराम, श्रीरामसे लव, लवसे पद्म, पद्मसे अनुपर्ण और अनुपर्णसे वस्त्रपाणिका जन्म हुआ। वस्त्रपाणिसे शुद्धोदन और शुद्धोदनसे बुध (बुद्ध)-की उत्पत्ति हुई। बुधसे सूर्यवंश समाप्त हो जाता है ॥ ४—१५ ॥

सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए जो क्षत्रिय हैं, उनमें से मुख्य-मुख्य लोगोंका यहाँ वर्णन किया गया है, जिन्हें पूर्वकालमें इस पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन किया है। मुने ! यह मैंने सूर्यवंशका वर्णन किया है, जिसमें प्राचीन कालमें अनेकानेक नरेश हो गये हैं। अब मेरे हारा चतलाये जानेवाले चन्द्रवंशीय परम उत्तम राजाओंका वर्णन आपलोग सुनें ॥ १६—१७ ॥

सूतजी बोले—महामुने भरद्वाज ! अब चन्द्रवंशका वर्णन सुनो। (अन्य) पुराणोंमें इसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है, अतः इस समय मैं यहाँ संक्षेपमें इसका वर्णन करता हूँ॥ १ ॥

सर्वप्रथम ब्रह्माजी हुए, उनके मानसपुत्र मरीचि हुए,

ददितेरादित्यः । आदित्यात् सुवर्चलायां मनुः ॥ ३ ॥
 मनोः सुरूपायां सोमः । सोमाद्रोहिण्यां बुधः ।
 बुधादिलायां पुरुरवाः ॥ ४ ॥ पुरुरवस आयुः ।
 आयो रूपवत्यां नहुषः ॥ ५ ॥ नहुषात् पितृवत्यां
 यथातिः । यथातेः शर्मिष्ठायां पूरुः ॥ ६ ॥ पूरोर्वशदायां
 सम्पातिः । सम्पातेभानुदत्तायां सार्वभौमः ।
 सार्वभौमस्य वैदेह्यां भोजः ॥ ७ ॥ भोजस्य लिङ्गायां
 दुष्यन्तः । दुष्यन्तस्य शकुन्तलायां भरतः ॥ ८ ॥
 भरतस्य नन्दायामजमीढः । अजमीढस्य सुदेव्यां
 पृश्निः । पृश्नेनुग्रसेनायां प्रसरः । प्रसरस्य बहुरूपायां
 शंतनुः । शंतनोर्योजनगन्धायां विचित्रबीर्यः ।
 विचित्रबीर्यस्याम्बिकायां पाण्डुः ॥ ९ ॥ पाण्डोः
 कुन्तिदेव्यामर्जुनः । अर्जुनात् सुभद्राया-
 मधिमन्युः ॥ १० ॥ अधिमन्योरुत्तरायां परीक्षितः ।
 परीक्षितस्य मातृवत्यां जनमेजयः । जनमेजयस्य
 पुण्यवत्यां शतानीकः ॥ ११ ॥ शतानीकस्य पुण्यवत्यां
 सहस्रानीकः । सहस्रानीकस्य मृगवत्यामुदयनः ।
 तस्य बासवदत्तायां नरवाहनः ॥ १२ ॥
 नरवाहनस्याश्रमेधायां क्षेमकः । क्षेमकान्ता:
 पाण्डवाः सोमवंशो निवर्तते ॥ १३ ॥

य इदं शृणुयात्रित्यं राजवंशमनुजमम् ।
 सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकं स गच्छति ॥ १४ ॥
 यश्चेदं पठते नित्यं श्राद्धे वा श्रावयेत् पितृन् ।
 वंशानुकीर्तनं पुण्यं पितृणां दत्तमक्षयम् ॥ १५ ॥
 राजां हि सोमस्य मया तवेरिता
 वंशानुकीर्तिर्द्विज पापनाशनी ।
 शृणुष्व विप्रेन्द्र मयोच्यमानं
 मन्वन्तरं चापि चतुर्दशाख्यम् ॥ १६ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे सोमवंशानुकीर्तनं नाम द्वाविशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणे 'सोमवंशका वर्णन' नामक वार्षिका आधार पूरा हुआ ॥ २२ ॥

मरीचिसे दाक्षायणीके गर्भसे कश्यपजी उत्पन्न हुए । कश्यपसे अदितिके गर्भसे सूर्यका जन्म हुआ । सूर्यसे सुवर्चला (संज्ञा)-के गर्भसे मनुको उत्पत्ति हुई । मनुके द्वारा सुरूपाके गर्भसे सोम और सोमके द्वारा रोहिणीके गर्भसे बुधका जन्म हुआ तथा बुधके द्वारा इलाके गर्भसे राजा पुरुरवा उत्पन्न हुए । पुरुरवासे आयुका जन्म हुआ, आयुद्वारा रूपवतीके गर्भसे नहुष हुए । नहुषके द्वारा पितृवतीके गर्भसे यथाति हुए और यथातिसे शर्मिष्ठाके गर्भसे पूरुका जन्म हुआ । पूरुके द्वारा वंशदाके गर्भसे सम्पाति और उससे भानुदत्ताके गर्भसे सार्वभौम हुआ । सार्वभौमसे वैदेहीके गर्भसे भोजका जन्म हुआ । भोजके लिङ्गाके गर्भसे दुष्यन्त और दुष्यन्तके शकुन्तलासे भरत हुआ । भरतके नन्दासे अजमीढ नामक पुत्र हुआ, अजमीढके सुदेवीके गर्भसे पृश्न हुआ तथा पृश्नके उत्तरसेनाके गर्भसे प्रसरका आविर्भाव हुआ । प्रसरके बहुरूपाके गर्भसे शंतनु हुए, शंतनुसे योजनगन्धाने विचित्रबीर्यको जन्म दिया । विचित्रबीर्यके अम्बिकाके गर्भसे पाण्डुका जन्म हुआ । पाण्डुसे कुन्तीदेवीके गर्भसे अर्जुन हुआ, अर्जुनसे सुभद्राने अधिमन्युको उत्पन्न किया । अधिमन्युसे उत्तराके गर्भसे परीक्षित् हुआ, परीक्षित्के मातृवतीसे जनमेजय उत्पन्न हुआ और जनमेजयके पुण्यवतीके गर्भसे शतानीककी उत्पत्ति हुई । शतानीकके पुण्यवतीसे सहस्रानीक हुआ, सहस्रानीकसे मृगवतीसे उदयन उत्पन्न हुआ और उदयनके बासवदत्ताके गर्भसे नरवाहन हुआ । नरवाहनके अश्रमेधासे क्षेमक हुआ । यह क्षेमक ही पाण्डववंशका अन्तिम राजा है, इसके बाद सोमवंश निवृत्त हो जाता है ॥ २—१३ ॥

जो पुरुष इस उत्तम राजवंशका सदा त्रयण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त एवं विशुद्धचित्त होकर विष्णु-लोकको प्राप्त होता है । जो इस पवित्र वंश-वर्णनको प्रतिदिन स्वयं पढ़ता अथवा श्राद्धकालमें पितृगणोंको सुनाता है उसके पितरोंको दिया हुआ दान अक्षय हो जाता है । ह्रिज ! यह मैंने आपसे सोमवंशी राजाओंका पाप-नाशक वंशानुकीर्तन सुनाया । विप्रवर ! अब मेरे द्वारा बताये जानेवाले चौदह मन्वन्तरोंको सुनिये ॥ १४—१६ ॥

तेर्झसवाँ अध्याय

चौदह मन्वन्तरोंका वर्णन

सुत उकाच

प्रथमं तावत् स्वायम्भुवं मन्वन्तरं तत्स्वरूपं
कथितम्। सर्गादौ स्वारोचिषो नाम द्वितीयो
मनुः ॥ १ ॥ तस्मिन् स्वारोचिषे मन्वन्तरे विष्णुनाम
देवेन्द्रः। पारावताः सतुषिता देवाः ॥ २ ॥ ऊर्जस्तस्यः
सुप्राणो दन्तो निर्वृष्टभो वरीयानीश्वरः सोमः
समर्थश्चैवम् किम्पुरुषाद्याः स्वारोचिषस्य मनोः
पुत्रा राजानो भवन्ति ॥ ३ ॥ तृतीय उत्तमो नाम मनुः।
सुधामानः सत्याः शिवाः प्रतर्दना वंशवर्तिनश्च देवाः।
पञ्चाते द्वादशगणाः ॥ ४ ॥ तेषां सुशान्तिरिन्द्रः ॥ ५ ॥
बन्धाः समर्थयोऽभवन्। अत्र परशुचित्राद्या मनोः
सुताः ॥ ६ ॥ चतुर्थस्तामसो नाम मनुः। तत्र मन्वन्तरे
सुराः पराः सत्याः सुधियश्च सप्तविंशतिका
गणाः ॥ ७ ॥ तत्र भुशुण्डी नाम देवेन्द्रः। हिरण्यरोमा
देवश्रीरूपव्यवाहुदेवबाहुः सुधामा ह पञ्चन्यो
मुनिरित्येते समर्थयः ॥ ८ ॥ ज्योतिर्धामा पृथुः
काश्योऽग्निर्धनक इत्येते तामसस्य मनोः पुत्रा
राजानः ॥ ९ ॥ पञ्चमो नाम रैवतो मनुः।
तस्यान्तरेऽमिता निरता वैकुण्ठाः सुमेधस इत्येते
देवगणाश्चतुर्दशका गणाः। अमुगान्तको नाम देवेन्द्रः।
सप्तकाद्या मनोः सुता राजानो वै बभूवुः ॥ १० ॥
शान्तः शान्तभयो विद्वांस्तपस्वी मेधावी सुतपाः
सप्तर्थयोऽभवन् ॥ ११ ॥ षष्ठ्याश्चक्षुषो नाम मनुः।
पुरुशतद्युन्प्रमुखास्तस्य सुता राजानः। सुशान्ता
आप्याः प्रसूता भव्याः प्रथिताश्च महानुभावा
लेखाद्याः पञ्चाते द्युष्टका गणास्तत्र देवाः ॥ १२ ॥
तेषामिन्द्रो मनोजवः। मेधाः सुमेधा विरजा
हविष्यानुत्तमो मतिमात्रामा सहिष्णुश्चैते
सप्तर्थयः ॥ १३ ॥ सप्तमो वैवस्वतो मनुः साम्प्रतं वर्तते।
तस्य पुत्रा इक्ष्वाकुप्रभृतयः क्षत्रिया भूभूजः ॥ १४ ॥

सुतजी ओले—प्रथम 'स्वायम्भुव' मन्वन्तर है, उसका
स्वरूप पहले बतलाया जा चुका है। सृष्टि के आदिकालमें
'स्वारोचिष' नामक द्वितीय मनु हुए थे। उस स्वारोचिष
मन्वन्तरमें 'विष्णुश्चत' नामक देवराज इन्द्र थे। उस समयके
देवता 'पारावत' और 'तुषित' नामसे प्रसिद्ध थे। ऊर्जस्तस्य,
सुधाम, दन्त, निर्वृष्ट, वरीयान्, ईश्वर और सोम—ये
उस मन्वन्तरमें सप्तर्थिं थे। इसी प्रकार 'स्वारोचिष'
मनुके किम्पुरुष आदि पुत्र उन दिनों भूमण्डलके राजा
थे। तृतीय मनु 'उत्तम' नामसे प्रसिद्ध हुए। उनके समयमें
सुधामा, सत्य, शिव, प्रतर्दन और वंशवर्ती (अथवा
वशवर्ती) —ये पांच देवगण थे। इनमेंसे प्रत्येक गणमें
बारह-बारह व्यक्ति थे। इन देवताओंके इन्द्रका नाम
था—'सुशान्ति'। उन दिनों जो सप्तर्थिं थे, उनकी 'बन्ध'
संज्ञा थी। इस मन्वन्तरमें 'परशु' और 'चित्र' आदि
मनुपुत्र राजा थे। चौथे मनुका नाम था—'तामस'। उनके
मन्वन्तरमें देवताओंके पर, सत्य और सुधी नामवाले
गण थे। इनमेंसे प्रत्येक गणमें सत्ताईस-सत्ताईस देवता
थे। इन देवताओंके राजा इन्द्रका नाम था—'भुशुण्डी'।
उस समय हिरण्यरोमा, देवश्री, ऊर्जवाहु, देवबाहु, सुधामा,
पञ्चन्य और मुनि—ये सप्तर्थिं थे। ज्योतिर्धाम, पृथु, काश्य,
अग्नि और धनक—ये तामस मनुके पुत्र इस भूमण्डलके
राजा थे। पांचवें मनुका नाम था—'रैवत'। उनके
मन्वन्तरमें अमित, निरत, वैकुण्ठ और सुमेधा—ये
देवताओंके गण थे। इनमेंसे प्रत्येक गणमें चौदह-चौदह
व्यक्ति थे। इन देवताओंके जो इन्द्र थे, उनका नाम
था—'असुरान्तक'। उस समय सप्तक आदि मनुपुत्र भूतलके
राजा थे। शान्त, शान्तभय, विद्वान्, तपस्वी, मेधावी और
सुतपा—ये सप्तर्थिं थे। छठे मनुका नाम 'चाक्षुष' था।
उनके समयमें पुरु और शतद्युम्न आदि मनुपुत्र राजा थे।
उस समय अत्यन्त शान्त रहनेवाले लेख, आप्य, प्रसूत,
भव्य और प्रथित—ये पांच महानुभाव देवगण थे। इन
पांचों गणोंमें आठ-आठ व्यक्ति थे। इनके इन्द्रका नाम
'मनोजव' था। उन दिनों मेधा, सुमेधा, विरजा, हविष्यान्,
उत्तम, मतिमान् और सहिष्णु—ये सप्तर्थिं थे। सातवें
मनुको 'वैवस्वत' कहते हैं, जो इस समय वर्तमान
है। इनके इक्ष्वाकु आदि क्षत्रियजातीय पुत्र भूपाल हुए।

आदित्यविश्ववसुरुद्राद्या देवाः पुरंदरोऽत्र
देवेन्द्रः ॥ १५ ॥ वसिष्ठः कश्यपोऽत्रिर्जमदग्निगौतम-
विश्वामित्रभरद्वाजाः सप्तर्षयो भवन्ति ॥ १६ ॥

भविष्याणि मन्वन्तराणि कथ्यन्ते । तद्यथा
आदित्यात् संज्ञायां जातो यो मनुः
पूर्वोक्तश्छायायायामुत्पन्नो मनुद्दितीयः स तु । पूर्वजस्य
सावर्णस्य मन्वन्तरं सावर्णिकमष्टमं शृणु ॥ १७ ॥
मनुः सावर्णोऽष्टमो भविता तत्र सुतपाद्या
देवगणास्तेषां बलिरिन्द्रो भविता ॥ १८ ॥ दीसिमान्
गालबो नामा कृपद्वौणिव्यासऋष्यशृङ्गाश्च सप्तर्षयो
भवितारः । विराजोर्वरीयनिर्मोकाद्याः सावर्णस्य मनोः
सुता राजानो भविष्यन्ति ॥ १९ ॥ नवमो दक्ष-
सावर्णिमनुर्भविता । धृतिः कीर्तिर्दीपिः केतुः पञ्चहस्तो
निरामयः पृथुश्रवाद्या दक्षसावर्णा राजानोऽस्य मनोः
पुत्राः ॥ २० ॥ मरीचिगर्भाः सुधर्मणो हविष्यन्तस्तत्र
देवता । तेषामिन्द्रोऽद्युतः ॥ २१ ॥ सवनः कृतिमान्
हव्यो वसुमेधातिथिज्योतिथानित्येते सप्तर्षयः ॥ २२ ॥
दशमो ब्रह्मसावर्णिमनुर्भविता । विरुद्धादयस्तत्र
देवाः । तेषां शान्तिरिन्द्रः । हविष्यान् सुकृतिः
सत्यस्तपोमूर्तिनाभागः प्रतिमोकः सप्तकेतुरित्येते
सप्तर्षयः ॥ २३ ॥ सुक्षेत्र उत्तमो भूरिषेणादयो
ब्रह्मसावर्णिपुत्रा राजानो भविष्यन्ति ॥ २४ ॥ एकादशो
मन्वन्तरे धर्मसावर्णिको मनुः ॥ २५ ॥ सिंहसवनादयो
देवगणाः । तेषां दिवस्पतिरिन्द्रः ॥ २६ ॥
निर्मोहस्तत्त्वदशी निकम्पो निरुत्साहो धृतिमान् रुच्य
इत्येते सप्तर्षयः । चित्रसेनविचित्राद्या धर्मसावर्णिपुत्रा
भूभृतो भविष्यन्ति ॥ २७ ॥ रुद्रसावर्णिर्भविता
द्वादशो मनुः ॥ २८ ॥ कृतधामा तत्रेन्द्रो हरिता रोहिता:
सुमनसः सुकर्मणः सुतपाश्च देवाः ॥ २९ ॥ तपस्वी
चारुतपास्तपोमूर्तिस्तपोरतिस्तपोधृतिज्योतिस्तप इत्येते
सप्तर्षयः ॥ ३० ॥ देववान् देवश्रेष्ठाद्यास्तस्य मनोः
सुता भूपाला भविष्यन्ति ॥ ३१ ॥ ब्रयोदशो रुचिर्नाम
मनुः । स्वर्णी बाणः सुधर्मा प्रभृतयो देवगणाः ।

इस मन्वन्तरमें आदित्य, विश्ववसु और रुद्र आदि देवगण हैं और 'पुरंदर' इनके इन्द्र हैं । वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र और भरद्वाज—ये इस मन्वन्तरके सप्तर्षि हैं ॥ १—१६ ॥

अब भविष्य मन्वन्तरोंका वर्णन किया जाता है—
आदित्यसे संज्ञाके गर्भसे उत्पन्न हुए जो 'मनु' हैं, उनकी
चर्चा पहले हो चुकी है और छायाके गर्भसे उत्पन्न दूसरे
'मनु' हैं । इनमें प्रथम उत्पन्न हुए जो 'सावर्ण' मनु हैं,
उनके ही 'सावर्णिक' नामक आठवें मन्वन्तरका वर्णन
सुनिये । 'सावर्ण' ही आठवें मनु होंगे । उस समय सुतप
आदि देवगण होंगे और 'बलि' उनके इन्द्र होंगे । दीसिमान्,
गालब, नामा, कृप, अश्वत्थामा, व्यास और क्रष्णशृङ्ग—
ये सप्तर्षि होंगे । विराज, उर्वरीय और निर्मोक आदि
सावर्ण मनुके पुत्र राजा होंगे । नवें भावी मनु 'दक्षसावर्णि'
हैं । धृति, कीर्ति, दीपि, केतु, पञ्चहस्त, निरामय तथा
पृथुश्रवा आदि दक्षसावर्णि मनुके पुत्र उस समय राजा
होंगे । उस मन्वन्तरमें मरीचिगर्भ, सुधर्मा और हविष्यान्—
ये देवता होंगे और उनके इन्द्र 'अद्युत' नामसे प्रसिद्ध
होंगे । सवन, कृतिमान्, हव्य, वसु, मेधातिथि तथा ज्योतिष्मान्
(और सत्य) —ये सप्तर्षि होंगे । दसवें मनु 'ब्रह्मसावर्णि'
होंगे । उस समय विरुद्ध आदि देवता और उनके 'शान्ति'
नामक इन्द्र होंगे । हविष्यान्, सुकृति, सत्य, तपोमूर्ति,
नाभाग, प्रतिमोक और सप्तकेतु—ये सप्तर्षि होंगे । सुक्षेत्र,
उच्चम, भूरिषेण आदि 'ब्रह्मसावर्णि' के पुत्र राजा होंगे ।
ग्याहवें मन्वन्तरमें 'धर्मसावर्णि' नामक मनु होंगे । उस
समय सिंह, सवन आदि देवगण और उनके 'दिवस्पति'
नामक इन्द्र होंगे । निर्मोह, तत्त्वदशी, निकम्प, निरुत्साह,
धृतिमान् और रुच्य—ये सप्तर्षि होंगे । चित्रसेन और विचित्र
आदि धर्मसावर्णि मनुके पुत्र राजा होंगे । चारहवें मनु
'रुद्रसावर्णि' होंगे । उस मन्वन्तरमें 'कृतधामा' नामक इन्द्र
और हरित, रोहित, सुमना, सुकर्मा तथा सुतपा नामक
देवगण होंगे । तपस्वी, चारुतपा, तपोमूर्ति, तपोरति, तपोधृति,
ज्योति और तप—ये सप्तर्षि होंगे । रुद्रसावर्णिके पुत्र देववान्
और देवश्रेष्ठ आदि भूमण्डलके राजा होंगे । तेरहवें मनुका
नाम 'रुचि' होगा । उस समय स्वर्णी, बाण और सुधर्मा

तेषामिन्द्रं ऋषभो नाम भविता ॥ ३२ ॥
 निश्चितोऽग्नितेजा वपुष्मान् धृष्टो वारुणिर्विष्मान्
 नहुयो भव्य इति सप्तर्थयः । सुधर्मा देवानीकादयस्तस्य
 मनोः पुत्राः पृथ्वीश्वरा भविष्यन्ति ॥ ३३ ॥
 भौमश्चतुर्दशो मनुर्भविता । सुलचिस्तत्रेन्द्रः चक्षुष्मनः
 पवित्राः कनिष्ठाभा देवगणाः ॥ ३४ ॥
 अग्निबाहुशुचिशुक्रमाधवशिवाभीमजितश्वासा इत्येते
 सप्तर्थयः । उरुगम्भीरद्व्याध्यास्तस्य मनोः सुता
 राजानः ॥ ३५ ॥ एवं ते चतुर्दश मन्वन्तराणि
 कथितानि । राजानश्च यैरियं वसुधा पाल्यते ॥ ३६ ॥
 मनुः सप्तर्थयो देवा भूपालाश्च मनोः सुताः ।
 मन्वन्तरे भवन्त्येते शङ्काश्चैवाधिकारिणाः ॥ ३७ ॥

चतुर्दशभिरेतैस्तु गतैर्मन्वन्तरर्द्धिज ।
 सहस्रव्युगपर्यन्तः कालो गच्छति वासरः ॥ ३८ ॥
 तावत्प्रमाणा च निशा ततो भवति सत्तम ।
 ब्रह्मरूपधरः शेते सर्वात्मा नृहरिः स्वयम् ॥ ३९ ॥
 त्रैलोक्यमण्खिलं ग्रस्ता भगवानादिकृद्धिभुः ।
 स्वमायामास्थितो विप्र सर्वरूपी जनार्दन ॥ ४० ॥
 अथ प्रबुद्धो भगवान् यथा पूर्वं तथा पुनः ।
 युगव्यवस्थां कुरुते सुष्टि च पुरुषोत्तमः ॥ ४१ ॥
 एते ततोक्ता मनवोऽमराश्च
 पुत्राश्च भूपा मुनयश्च सर्वे ।
 विभूतयस्तस्य स्थिती स्थितस्य
 तस्यैव सर्वं त्वमवेहि विप्र ॥ ४२ ॥

नामक देवगण तथा उनके 'ऋषभ' नामक इन्द्र होंगे ।
 निश्चित, अग्नितेजा, वपुष्मान्, धृष्ट, वारुणि, हविष्मान्
 और भव्यमूर्ति नहुप—ये सप्तर्थि होंगे । उस मनुके सुधर्मा
 तथा देवानीक आदि पुत्र भूपाल होंगे । चौदहवें भावो
 मनुका नाम 'भौम' होगा । उस समय 'सुरुचि' नामक
 इन्द्र और चक्षुष्मान्, पवित्र तथा कनिष्ठाभ नामक देवगण
 होंगे । अग्निबाहु, शुचि, शुक्र, माधव, शिव, अभीम और
 जितश्वास—ये सप्तर्थि होंगे तथा उस भौम मनुके पुत्र
 उरु, गम्भीर और द्वाहा आदि भूतलके राजा होंगे । इस
 प्रकार मैंने आपसे चौदह मन्वन्तरोंका और उन-उन
 मनुके पुत्र तत्कालीन राजाओंका वर्णन किया, जिनके
 द्वारा इस वसुधाका पालन होता है ॥ ३७—३८ ॥

प्रत्येक मन्वन्तरमें मनु, सप्तर्थि, देवता और भूपाल
 मनुपुत्र तथा इन्द्र—ये अधिकारी होते हैं । ब्रह्मन् ! इन
 चौदह मन्वन्तरोंके व्यतीत हो जानेपर एक हजार चतुर्युगका
 समय बीत जाता है । यह (ब्रह्माजीका) एक दिन
 कहलाता है । साधुशिरोमणे ! फिर उतने ही प्रमाणकी
 उनकी रात्रि होती है । उस समय सब भूतोंके आत्मा
 साक्षात् भगवान् नृसिंह ब्रह्मरूप धारण करके शयन
 करते हैं । विप्रवर ! सर्वत्र व्यापक एवं आदिविधाता
 सर्वरूप भगवान् जनार्दन उस समय समस्त त्रिभुवनको
 अपनेमें लौन करके अपनी योगमायाका आश्रय ले
 शयन करते हैं । फिर जाग्रत् होनेपर वे भगवान् पुरुषोत्तम
 पूर्वकल्पके अनुसार पुनः युग-व्यवस्था तथा सृष्टि करते
 हैं । ब्रह्मन् ! इस प्रकार मैंने मनु, देवगण, भूपाल, मनुपुत्र
 और ऋषि—इन सबका आपसे वर्णन किया । आप इन
 सबको पालनकर्ता भगवान् विष्णुकी विभूतियाँ हों
 समझें ॥ ३७—४२ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे ऋषोविशेषोऽध्यायः ॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'चौदह मन्वन्तरोंका वर्णन' नामक तेर्तस्तर्ता अध्याय पूरा हुआ ॥ २३ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

सूर्यवंश—राजा इक्ष्वाकुका भगवत्प्रेम; उनका भगवद्गीतानके हेतु तपस्याके लिये प्रस्थान

ओसूत उच्चाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि वंशानुचरितं शुभम्।
शृणवतामपि पापज्ञं सूर्यसोमनुपात्मकम्॥ १

सूर्यवंशोद्धवो यो वै मनुपुत्रः पुरोदितः।
इक्ष्वाकुर्नाम भूपालश्चरितं तस्य मे शृणु॥ २

आसीद् भूमौ महाभाग पुरी दिव्या सुशोभना।
सरयूतीरमासाद्य अयोध्या नाम नामतः॥ ३

अमरावत्यतिशया त्रिंशद्योजनजालिनी।
हस्त्यश्वरथपत्त्योद्धृत्यैः कल्पद्रुमप्रभैः॥ ४

प्राकाराद्वप्रतोलीभिस्तोरणैः काञ्छनप्रभैः।
विराजमाना सर्वत्र सुविभक्तचतुष्पथा॥ ५

अनेकभूमिप्रासादा बहुभाण्डसुविक्रया।
पचोत्पलशुभैस्तोर्यैर्वापीभिरुपशोभिता॥ ६

देवतायतनैर्दिव्यैर्वेदघोषैश्च शोभिता।
वीणावेणुमुद्घैश्च शब्दैरुत्कृष्टैर्द्युता॥ ७

शालैस्तालैर्नालिकैरैः पनसामलजम्बुकैः।
तथैवाप्रकपित्थाद्यैरशोकैरुपशोभिता॥ ८

आरामैर्विविधैर्युक्ता सर्वत्र फलपादपैः।
मल्लिनकामालतीजातिपाटलानागचम्पकैः॥ ९

करवीरैः कर्णिकारैः केतकीभिरलङ्घकता।
कदलीलवलीजातिमातुलुङ्गमहाफलैः।
छविच्यन्दनगन्धाद्यैरङ्गैश्च सुशोभिता॥ १०

नित्योत्सवप्रमुदिता गीतवाद्यविचक्षणैः।
नरनारीभिराङ्गाभी रूपद्रविणप्रेक्षणैः॥ ११

श्रीसूतजी कहते हैं— अब मैं सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी राजाओंके 'वंशानुचरित' का वर्णन करूँगा, जो श्रीताओंका भी पाप नहीं करनेवाला है। मुने! मैंने पहले सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए जिन मनुपुत्र 'इक्ष्वाकु' नामक भूपालकी चर्चा की थी, उनके चरित्रका वर्णन आप मुझसे सुनें॥ १—२॥

महाभाग! इस पृथ्वीपर सरयू नदीके किनारे 'अयोध्या' नामसे प्रसिद्ध एक शोभायमान दिव्य पुरी है। वह अमरावतीसे भी बढ़कर सुन्दर और तीस योजन लंबी-चौड़ी थी। हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंके समूह तथा कल्पवृक्षके समान कान्तिमान् वृक्ष उस पुरीकी शोभा बढ़ाते थे। चहारदीवारी, अद्वालिकन, प्रतोली (गली या राजमार्ग) और सुवर्णकी-सी कान्तिवाले फाटकोंसे वह बड़ी शोभा पा रही थी। अलग-अलग बने हुए उसके चौराहे बहुत सुन्दर लगते थे। वहाँके महल कई मंजिल कैंचे थे। नाना प्रकारके भाण्डी (भौति-भौतिके सामानों)-का सुन्दर ढंगसे क्रय-विक्रय होता था। कमलों और उत्पलोंसे सुशोभित जलसे भरी हुई बावलियाँ उस पुरीकी शोभा बढ़ा रही थीं। दिव्य देवालय तथा वेदमन्त्रोंके घोष उस नगरीकी श्री-वृद्धि करते थे। बीणा, वेणु और मृदङ्ग आदिके उत्कृष्ट शब्दोंसे वह पुरी गूँजती रहती थी। शाल (साख), ताल (ताड़), नारियल, कटहल, आँखला, जामुन, आम और कपितथ (कैथ) आदिके वृक्षों तथा अशोक-पुष्पोंसे अयोध्यापुरीकी बड़ी शोभा होती थी॥ ३—८॥

वहाँ सब जगह नाना प्रकारके बागीचे और फलबाले वृक्ष पुरीकी शोभा बढ़ाते थे। मलिलका (मोतिया या बेला), मालती, चमेली, पाढ़ेर, नागकेसर, चम्पा, कनेर, कनकचम्पा और केतकी (केवड़ा) आदि पुष्पोंसे मानो उस पुरीका शृङ्खार किया गया था। केला, हरफा, रेवड़ी, जायफल और बिजौरा नीबू, चन्दनकी-सी गम्भवाले तथा दूसरे प्रकारके संतरे आदि बड़े-बड़े फल उसकी शोभा बढ़ाते थे। गीत और वाद्यमें कुशल पुरुष उस पुरीमें प्रतिदिन आनन्दोत्सव मचाये रहते थे। वहाँके स्त्री-पुरुष रूप-वैभव तथा सुन्दर नेत्रोंसे सम्पन्न थे॥ ९—११॥

नानाजनपदाकीर्णा पताकाध्वजशोभिता ।
देवतनुल्यप्रभायुक्तैर्नृपपुत्रैश्च संयुता ॥ १२

सुरुपाभिर्वरस्त्रीभिर्देवस्त्रीभिरिवावृता ।
विष्णैः सत्कविभिर्युक्ता बृहस्पतिसमप्रभैः ॥ १३

वणिगजनैस्तथा पौरैः कल्पवृक्षवैर्युता ।
अश्वैरुच्चैः श्रवस्तुल्यैर्दन्तिभिर्दिग्गजैरिव ॥ १४

इति नानाविधिभविरयोध्येन्द्रपुरीसमा ।
तां दृष्टा नारदः इलोकं सभामध्ये पुरोक्तवान् ॥ १५

स्वर्गं वै सुजमानस्य व्यर्थं स्यात् पद्मजन्मनः ।
जातायोध्याधिका स्वर्गात् कामभोगसमन्विता ॥ १६

तामावसदयोध्यां तु स्वाभिषिक्तो महीपतिः ।
जितवान् सर्वभूपालान् धर्मेण स महाबलः ॥ १७

माणिक्यमुकुटैर्युक्ते राजभिर्मण्डलाधिष्ठैः ।
नमद्विर्भक्तिभीतिभ्यां पादौ तस्य किणीकृती ॥ १८

इश्वाकुरक्षतबलः सर्वशास्त्रविशारदः ।
तेजसेन्द्रेण सदृशो मनोः सूनुः प्रतापवान् ॥ १९

धर्मतो न्यायतक्षीव वेदज्ञैर्ब्रह्मणीर्युतः ।
पालयामास धर्मात्मा आसमुद्दां महीभिमाम् ॥ २०

अस्त्रैर्जिगाय सकलान् संयुगे भूपतीन् बली ।
अवजित्य सुतीक्ष्णैस्तु तन्मण्डलमध्याहरत् ॥ २१

जितवान् परलोकांश्च क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ।
दानैश्च विविधैर्ब्रह्मन् राजेश्वाकुः प्रतापवान् ॥ २२

वाहूद्वयेन वसुधां जिह्वाग्रेण सरस्वतीम् ।
द्वधार पच्चामुरसा भक्तिं चित्तेन माधवे ॥ २३

संतिष्ठुतो हरे रूपमुपविष्टुं च माधवम् ।
शायानमप्यनन्तं तु कारयित्वा पटेऽपलम् ॥ २४

वह पुरी नाना देशोंके मनुष्योंसे भरी-पूरी, ध्वजापताकाओंसे सुशोभित तथा अनेकानेक कान्तिमान् देवोपम राजकुमारोंसे युक्त थी । वहाँ देवाङ्गनाओंके समान श्रेष्ठ एवं रूपवत्ती चनिताएँ निवास करती थीं । बहस्पतिके समान तेजस्वी सत्कवि ब्राह्मण उस नगरीकी शोभा बढ़ाते थे । कल्पवृक्षसे भी बढ़कर उदार नागरिकों और वैश्यों, उच्चैःश्रवाके समान श्रेष्ठ घोड़ों और दिग्गजोंके समान विशालकाय हाथियोंसे वह पुरी बड़ी शोभा पाती थी । इस प्रकार नाना वस्तुओंसे भरी-पूरी अयोध्यापुरी इन्द्रपुरी अमरावतीकी समता करती थी । पूर्वकालमें नारदजीने उस पुरीको देखकर भरी सभामें यह इलोक कहा था—‘स्वर्गकी सृष्टि करनेवाले विधाताका वह सारा प्रबल व्यर्थ हो गया; क्योंकि अयोध्यापुरी उससे भी बढ़कर मनोवाञ्छित भोगोंसे सम्पन्न हो गयी’ ॥ १२—१६ ॥

इश्वाकु इसी अयोध्यामें निवास करते थे । वे राजके पदपर अभिषिक्त हो, पृथ्वीका पालन करने लगे । उन महान् बलशाली नरेशने धर्मयुद्धके द्वारा समस्त भूपालोंको जीत लिया था । मानिकके बने मुकुटोंसे अलंकृत अनेक छोटे-छोटे मण्डलोंके शासक राजाओंके भक्ति तथा भयपूर्वक प्रणाम करनेसे उनके दोनों चरणोंमें मुकुटोंकी रगड़से चिह्न बन गया था ॥ १७-१८ ॥

मनुपुत्र प्रतापी राजा इश्वाकु अपने राजोचित तेजसे इन्द्रकी समानता करते थे । वे सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञानमें निपुण थे । उनका बल कभी क्षीण नहीं होता था । वे धर्मात्मा भूपाल वेदवेत्ता ब्राह्मणोंके साथ धर्म और न्यायपूर्वक इस समुद्रपर्यन्त पृथिवीका पालन करते थे । उन बलशाली नरेशने संग्राममें अपने तीखे शस्त्रोंसे समस्त भूपोंको जीतकर उनका मण्डल अपने अधिकारमें कर लिया था ॥ १९—२१ ॥

ब्रह्मन्! प्रतापी राजा इश्वाकुने प्रचुर दक्षिणावाले चन्द्र और नाना प्रकारके दान करके परलोकोंपर भी विजय प्राप्त कर ली थी । वे अपनी दोनों भुजाओंद्वारा पृथ्वीका, जिह्वाके अग्रभागसे सरस्वतीका, वक्षःस्थलसे राजलक्ष्मीका और हृदयसे भगवान् लक्ष्मीपतिकी भक्तिका भार बहन करते थे । एक वस्त्रपर छड़े हुए भगवान् हरिका, बैठे हुए

त्रिकालं त्रयमाराध्य रूपं विष्णोर्महात्मनः।
गन्धपुष्पदिभिर्नित्यं रेमे द्विष्टा पटे हरिम्॥ २५

कृष्णं तं कृष्णमेघाभं भुजगेन्द्रनिवासिनम्।
पद्माक्षं पीतवासं च स्वप्नेष्वपि स दृष्टवान्॥ २६

चकार मेघे तद्वर्णं बहुमानमतिं नृपः।
पक्षपातं च तत्राम्नि मृगे पद्मे च तादृशो॥ २७

दिव्याकृतिं हरेः साक्षाद् द्रष्टुं तस्य महीभृतः।
अतीव तृष्णा संजाता अपूर्वैव हि सत्तम्॥ २८

तृष्णायां तु प्रवृद्धायां मनसैव हि पार्थिवः।
चिन्तयामास मतिमान् राज्यभोगमसारवत्॥ २९

वेश्मदारसुतक्षेत्रं संन्यस्ते येन दुःखदम्।
वैराग्यज्ञानपूर्वेण लोकेऽस्मिन् नास्ति तत्समः॥ ३०

इत्येवं चिन्तयित्वा तु तपस्यासक्तचेतनः।
वसिष्ठं परिप्रच्छ तत्रोपायं पुरोहितम्॥ ३१

तपोबलेन देवेशं नारायणमजं मुने।
द्रष्टुमिच्छाम्यहं तत्र उपायं तं बदस्व मे॥ ३२

इत्युक्तः प्राह राजानं तपस्यासक्तमानसम्।
वसिष्ठः सर्वधर्मज्ञः सदा तस्य हिते रतः॥ ३३

यदीच्छसि महाराज द्रष्टुं नारायणं परम्।
तपसा सुकृतेनैह आराधय जनार्दनम्॥ ३४

केनाप्यतस्तपसा देवदेवो जनार्दनः।
द्रष्टुं न शक्यते जातु तस्मात् तं तपसार्चय॥ ३५

पूर्वदक्षिणादिरभागे सरयूतीरो नृप।
गालवप्रमुखानां च ऋषीणामस्ति चाश्रमः॥ ३६

पञ्चयोजनमध्यवानं स्थानमस्मान्तु पावनम्।
नानाद्रुमलताकीर्णी नानापुष्पसमाकुलम्॥ ३७

लक्ष्मीपतिका और सोये हुए अनन्तदेवका निर्मल चित्र बनवाकर ब्रह्मशः प्रतःकाल, मध्याह्नकाल और संध्याकालमें तीनों समय वे महात्मा भगवान् विष्णुके उन तीनों रूपोंका गन्ध तथा पुष्प आदिके द्वारा पूजन करते और उस पटपर प्रतिदिन भगवान् विष्णुका दर्शन करके प्रसन्न रहते थे। उन्हें स्वप्नमें भी नागराज अनन्तकी शश्यापर सोये हुए, काले मेघके समान श्यामवर्ण, कमललोचन, पीताम्बरधारी भगवान् श्रीकृष्ण (विष्णु)-का दर्शन हुआ करता था। राजाने भगवान्‌के समान श्यामवर्णवाले मेघमें अत्यन्त सम्मानपूर्ण बुद्धि कर ली थी। भगवान् श्रीकृष्णके नामसे युक्त कृष्णसार मृगमें और कृष्णवर्णवाले कमलमें वे पक्षपात रखते थे॥ २२—२७॥

साधुशिरोमणे! उस राजाके मनमें भगवान् विष्णुके दिव्य स्वरूपको प्रत्यक्ष देखनेकी अत्यन्त उत्कट अभिलाषा जाग्रत् हुई; उनकी वह तृष्णा अपूर्व ही थी। जब उनकी तृष्णा बहुत बढ़ गयी, तब वे बुद्धिमान् भूपाल मन-ही-मन सारे राज्य-भोगको निस्सार-सा समझने लगे। उन्होंने सोचा—‘जिस पुरुषने गेह, स्त्री, पुत्र और क्षेत्र आदि दुःखद भोगोंको वैराग्य और ज्ञानपूर्वक त्याग दिया है, उसके समान बड़भागी इस संसारमें कोई नहीं है।’ इस प्रकार सोच-विचारकर, तपस्यामें आसक्तचित्त हो उन्होंने उसके लिये अपने पुरोहित वसिष्ठजीसे उपाय पूछा—‘मुने! मैं तपस्याके बलसे देवेशर, अजन्मा भगवान् नारायणका दर्शन करना चाहता हूँ; इसके लिये आप मुझे कोई उत्तम उपाय बताइये’॥ २८—३२॥

उनके इस प्रकार कहनेपर राजाके हितमें सदा लगे रहनेवाले सर्वधर्मज्ञ मुनिवर वसिष्ठजीने तपमें आसक्तचित्त उन नरेशसे कहा—‘महाराज! यदि तुम परमात्मा नारायणका साक्षात्कार करना चाहते हो तो तपस्या और शुभकर्मोंके द्वारा उन भगवान् जनार्दनकी आराधना करो। कोई भी पुरुष तपस्या किये थिना देवदेव जनार्दनका दर्शन नहीं पा सकता। इसलिये तुम तपस्याके द्वारा उनका पूजन करो। यहाँसे पाँच योजन दूर सरयूके तटपर पूर्व और दक्षिण भागमें एक पवित्र स्थान है, जहाँ गालव आदि ऋषियोंका

स्वमन्त्रिणि महाप्राज्ञे नीतिमत्यजुने नृप।
स्वराज्यभारं विन्यस्य कर्मकाण्डमपि द्विज ॥ ३८

स्तुत्वाऽऽराज्य गणाध्यक्षमितो द्वज विनायकम्।
तपःसिद्ध्यर्थमन्वच्छंस्तस्मात् तत्र तपः कुरु ॥ ३९

तापसं वेषमास्थाय शाकमूलफलाशनः।
ध्यायन् नारायणं देवमिमं मन्त्रं सदा जप ॥ ४०

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।
एष सिद्धिकरो मन्त्रो द्वादशाक्षरसंज्ञितः।
जप्त्वैनं मुनयः सिद्धिं परां प्राप्ताः पुरातनाः ॥ ४१

गत्वा गत्वा निवर्तन्ते चन्द्रसूर्यादयो ग्रहाः।
अद्यापि न निवर्तन्ते द्वादशाक्षरचिन्तकाः ॥ ४२

ब्राह्मेन्द्रियं हृदि स्थाप्य मनः सूक्ष्मे परात्मनि।
नृप संजप तन्मनं द्रष्टव्यो मधुसूदनः ॥ ४३

इति ते कथितोपायो हरिप्राप्तेस्तपःकृती।
पृच्छतः साम्प्रतं भूयो यदीच्छसि कुरुच्च तत् ॥ ४४

इत्येवमुक्तो मुनिना स राजा
राज्यं भुवो मन्त्रिवरे समर्थ्य।
स्तुत्वा गणेशं सुप्तनोभिरच्य
गतः पुरात् स्वात् तपसे धृतात्मा ॥ ४५ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे इश्वाकुचरित्रे चतुर्विंशतोऽध्यायः ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'इश्वाकुका चरित्र' विषयक चौधीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

आश्रम है। वह स्थान नाना प्रकारके वृक्षों और लताओंसे व्याप्त तथा विविध भौतिके पुष्पोंसे परिपूर्ण है। राजन्! अपने बुद्धिमान् एवं नीतिज्ञ मन्त्री अर्जुनको राज्यका भार तथा सारा कार्य-कलाप सौंप, तत्पश्चात् गणनायक भगवान् विनायककी स्तुति एवं आराधना करके तपस्याको सिद्धिरूप प्रयोजनको इच्छा मनमें लेकर यहाँसे उस आश्रमकी यात्रा करो और वहाँ पहुँचकर तपस्यामें संलग्न हो जाओ। तपस्वीका वेष धारणकर, साग और फल-मूलका आहार करते हुए भगवान् नारायणके ध्यानमें तत्पर रहकर सदा ही 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।'—इस मन्त्रका जप करो। यह 'द्वादशाक्षर'-संज्ञक मन्त्र अभीष्टको सिद्ध करनेवाला है। प्राचीन कालके ऋषियोंने इस मन्त्रका जप करके परम सिद्धि प्राप्त की है। चन्द्रमा और सूर्य आदि ग्रह जा-जाकर पुनः लौट आते हैं, परंतु द्वादशाक्षर-मन्त्रका चिन्तन करनेवाले पुरुष आजतक नहीं लौटे—भगवान्‌को पाकर आवागमनसे मुक्त हो गये। नरेश्वर! ब्राह्म इन्द्रियोंको हृदयमें स्थापितकर तथा मनको सूक्ष्म परात्मतत्त्वमें स्थिर करके इस मन्त्रका जप करो; इससे तुम्हें भगवान् मधुसूदनका दर्शन होगा। इस प्रकार इस समय तुम्हारे पूछनेपर मैंने तपरूप कर्मसे भगवान्‌की प्राप्तिका उपाय बतलाया; अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो, करो।' ॥ ३३—४४ ॥

मुनिवर वसिष्ठके इस प्रकार कहनेपर वे राजा इश्वाकु अपने श्रेष्ठ मन्त्रीको भूमण्डलके राज्यका भार सौंपकर, पुष्पोंद्वारा गणेशजीका पूजन तथा स्तवन करके, तपस्या करनेका दृढ़ निश्चय मनमें लेकर, अपने नगरसे चल दिये ॥ ४५ ॥

पचीसवाँ अध्याय

इश्वाकुकी तपस्या और ब्रह्माजीद्वारा विष्णुप्रतिमाकी प्राप्ति

भरद्वाज उवाच

कथं स्तुते गणाध्यक्षस्तेन राजा महात्मना।
यथा तेन तपस्तमं तन्मे बद महापते ॥ १ ॥

भरद्वाजजीने पूछा—महामते! उन महात्मा राजों किस प्रकार गणेशजीका स्तवन किया? तथा उन्होंने जिस प्रकार तपस्या की, उसका आप मुझसे वर्णन करें। १॥

सूत उवाच

चतुर्थीदिवसे राजा स्नात्वा विष्ववर्णं द्विजं।
रक्ताम्बरधरो भूत्वा रक्तगन्धानुलेपनः ॥ २

सुरक्षकुसुमैर्हृदीर्विनायकमथार्चयत् ।
रक्तचन्दनतोयेन रानपूर्वं यथाविधि ॥ ३

विलिष्य रक्तगन्धेन रक्तपुष्टैः प्रपूजयत् ।
ततोऽसौ दत्तवान् धूपमाञ्चयुक्तं सचन्दनम् ।
नैवेद्यं चैव हारिद्रं गुडखण्डयृतप्लुतम् ॥ ४

एवं सुविधिना पूज्य विनायकमथास्तवीत् ।

इक्ष्वाकुरुवाच

नमस्कृत्य महादेवं स्तोष्येऽहं तं विनायकम् ॥ ५

महागणपतिं शूरमजितं ज्ञानवर्धनम् ।
एकदन्तं द्विदन्तं च चतुर्दन्तं चतुर्भुजम् ॥ ६

त्र्यक्षं त्रिशूलहस्तं च रक्तनेत्रं वरप्रदम् ।
आम्बिकेयं शूर्पकण्ठं प्रचण्डं च विनायकम् ॥ ७

आरक्षं दण्डनं चैव बहिवक्त्रं हुतप्रियम् ।
अनर्चितो विष्णकरः सर्वकार्येषु यो नृणाम् ॥ ८

तं नमामि गणाध्यक्षं भीमसुग्रुमासुतम् ।
मदपत्तं विरुपाक्षं भक्तविष्णनिवारकम् ॥ ९

सूर्यकोटिप्रतीकाशं भिन्नाङ्गनसमप्रभम् ।
बुद्धं सुनिर्मलं शान्तं नमस्यामि विनायकम् ॥ १०

नमोऽस्तु गजवक्त्राय गणानां पतये नमः ।
मेरुमन्दररूपाय नमः कैलासवासिने ॥ ११

विरुपाय नमस्तेऽस्तु नमस्ते ब्रह्मचारिणे ।
भक्तस्तुताय देवाय नमस्तुभ्यं विनायक ॥ १२

त्वया पुराणं पूर्वोषां देवानां कार्यसिद्धये ।
गजरूपं समास्थाय त्रासिताः सर्वदानवाः ॥ १३

सूतजी बोले— द्विज ! गणेश-चतुर्थीके दिन राजाने त्रिकाल स्नान करके रक्तवस्त्र धारण किया और लाल चन्दन लगाकर मनोहर लाल फूलों तथा रक्तचन्दनमिश्रित जलसे गणेशजीको स्नान कराके विधिवत् उनका पूजन किया । स्नान करानेके बाद उनके श्रीअङ्गोंमें लाल चन्दन लगाया । फिर रक्तपुष्टोंसे उनकी पूजा की । तदनन्तर उन्हें घृत और चन्दन मिला हुआ धूप निवेदन किया । अन्तमें हल्दी, धी और गुडखण्डके मैलसे तैयार किया हुआ मधुर नैवेद्य अर्पण किया । इस प्रकार सुन्दर विधिपूर्वक भगवान् विनायकका पूजन करके राजाने उनकी स्तुति आरम्भ की ॥ २—४ ॥ ॥

इक्ष्वाकु बोले— मैं महान् देव गणेशजीको प्रणाम करके उन विष्णुराजका स्तवन करता हूँ, जो महान् देवता एवं गणोंके स्वामी हैं, शूरवीर तथा अपराजित हैं और ज्ञानवृद्धि करानेवाले हैं । जो एक, दो तथा चार दौतोंवाले हैं, जिनकी चार भुजाएँ हैं, जो तीन नेत्रोंसे युक्त और हाथमें त्रिशूल धारण करते हैं, जिनके नेत्र रक्तवर्ण हैं, जो वर देनेवाले हैं, जो माता पार्वतीके पुत्र हैं, जिनके सूप-जैसे कान हैं, जिनका वर्ण कुछ-कुछ लाल है, जो दण्डधारी तथा अग्रिमुख हैं एवं जिन्हें होम प्रिय है तथा जो प्रथम पूजित न होनेपर मनुष्योंके सभी कार्योंमें विश्वकारी होते हैं, उन भीमकाय और उग्र स्वभाववाले पार्वतीनन्दन गणेशजीको मैं नमस्कार करता हूँ । जो मदसे मत रहते हैं, जिनके नेत्र भयंकर हैं और जो भक्तोंके विघ्न दूर करनेवाले हैं, करोड़ों सूर्यके समान जिनकी कान्ति है, खानसे काटकर निकाले हुए कोयलेकी भाँति जिनकी शयाम प्रभा है तथा जो विमल और शान्त हैं, उन भगवान् विनायकको मैं नमस्कार करता हूँ । मेरुगिरिके समान रूप और हाथीके मुख-सदृश मुखवाले, कैलासवासी गणपतिको नमस्कार है । विनायक देव ! आप विरुपधारी और ब्रह्मचारी हैं, भक्तजन आपकी स्तुति करते हैं, आपको बारंबार नमस्कार है ॥ ५—१२ ॥

पुराणपुरुष ! आपने पूर्ववर्ती देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये हाथीका स्वरूप धारण करके समस्त दानवोंको

ऋषीणां देवतानां च नायकत्वं प्रकाशितम् ।
यतस्ततः सूर्यग्रे पूज्यसे त्वं भवात्पञ्ज ॥ १४
त्वामाराध्य गणाध्यक्षं सर्वज्ञं कामरूपिणम् ।
कायार्थी रक्तकुसुमे रक्तचन्दनवारिभिः ॥ १५
रक्ताम्बरधरो भूत्वा चतुर्थ्यामर्चयेजपेत् ।
त्रिकालमेककालं वा पूजयेत्रियताशनः ॥ १६
राजानं राजपुत्रं वा राजमन्त्रिणमेव वा ।
राज्यं च सर्वविद्येश वशं कुर्यात् सराष्ट्रकम् ॥ १७
अविघ्नं तपसो महां कुरु नौमि विनायक ।
मयेत्थं संस्तुतो भक्त्वा पूजितश्च विशेषतः ॥ १८
यत्फलं सर्वतीर्थेषु सर्वद्वज्ञेषु यत्फलम् ।
तत्फलं पूर्णमाणोति स्तुत्वा देवं विनायकम् ॥ १९
विषमं न भवेत् तस्य न च गच्छेत् पराभवम् ।
न च विज्ञो भवेत् तस्य जातो जातिस्मरो भवेत् ॥ २०
य इदं पठते स्तोत्रं षड्भिर्मासैर्वरं लभेत् ।
संवत्सरेण सिद्धिं च लभते नात्र संशयः ॥ २१

सूत उवाच

एवं स्तुत्वा पुरा राजा गणाध्यक्षं द्विजोत्तम ।
तापसं वेषमास्थाय तपश्चर्तुं गतो चनम् ॥ २२
उत्सूज्य वस्त्रं नागत्वकसदृशं बहुमूल्यकम् ।
कठिनां तु त्वचं वाक्षीं कटघां धत्ते नृपोत्तमः ॥ २३
तथा रत्नानि दिव्यानि वलयानि निरस्य तु ।
अक्षसूत्रमलंकारं फलैः पदास्य शोभनम् ॥ २४
तथोत्तमाङ्गे युकुटं रक्षाटकशोभितम् ।
त्यक्त्वा जटाकलापं तु तपोऽर्थं विभूयावृपः ॥ २५
कृत्वेत्थं स तपोवेषं वसिष्ठोत्तं तपोवनम् ।
प्रविश्य च तपस्त्रेपे शाकमूलफलाशनः ॥ २६

भयभीत किया था । शिवपुत्र ! आपने ऋषि और देवताओंपर अपना स्वामित्व प्रकट कर दिया है, इसीसे देवगण आपकी प्रधम पूजा करते हैं । सर्वविघ्नेश्वर ! यदि मनुष्य रक्तवस्त्र धारणकर नियमित आहार करके अपने कार्यकी सिद्धिके लिये लाल पुष्पों और रक्तचन्दन-युक्त जलसे चतुर्थीके दिन तीनों काल या एक कालमें आप कामरूपी सर्वज्ञ गणपतिका पूजन करे तथा आपका नाम जपे तो वह पुरुष राजा, राजकुमार, राजमन्त्रीको राज्य अथवा समस्त राष्ट्रसहित अपने वशमें कर सकता है ॥ १३—१७ ॥

विनायक ! मैं आपकी स्तुति करता हूँ । आप मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक स्तवन एवं विशेषरूपसे पूजन किये जानेपर मेरी तपस्याके विद्वको दूर कर दें । सम्पूर्ण तीर्थों और समस्त यज्ञोंमें जो फल प्राप्त होता है, उसी फलको मनुष्य भगवान् विनायकका स्तवन करके पूर्णरूपसे प्राप्त कर लेता है । उसपर कभी संकट नहीं आता, उसका कभी तिरस्कार नहीं होता और न उसके कार्यमें विद्व ही पड़ता है; वह जन्म लेनेके बाद पूर्वजन्मकी बातोंको स्मरण करनेवाला होता है । जो प्रतिदिन इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह छः महोनोंतक निरन्तर पठ करनेसे गणेशजीसे मनोवाञ्छित वर प्राप्त करता है और एक वर्षमें पूर्णतः सिद्धि प्राप्त कर लेता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥ १८—२१ ॥

सूतजी बोले—द्विजोत्तमगण ! इस प्रकार राजा इक्षवाकु पहले गणेशजीका स्तवन करके, फिर तपस्यीका वेष धारणकर तप करनेके लिये चनमें चले गये । सौपकी त्वचाके समान मुलायम एवं बहुमूल्य वस्त्र त्यागकर वे श्रेष्ठ महाराज कमरमें वृक्षोंकी कठोर छाल पहनने लगे । दिव्य रत्नोंके हार और कड़े निकालकर हाथमें अक्षसूत्र तथा गलेमें कमलगहूँोंकी बनी हुई सुन्दर माला धारण करने लगे । इसी प्रकार वे नरेश मस्तकपरसे रत्न तथा सुवर्णसे सुशोभित मुकुट हटाकर वहाँ तपस्याके लिये जटाजूट रखने लगे ॥ २२—२५ ॥

इस प्रकार वसिष्ठजीके कथनानुसार तापस-वेष धारणकर तपोवनमें प्रविष्ट हो, वे शाक और फल-मूलका आहार करते हुए तपस्यामें प्रवृत्त हो गये ।

ग्रीष्मे पञ्चाग्रिमध्यस्थोऽतपत्काले महातपाः।
वर्षाकाले निरालम्बो हेमन्ते च सरोजले ॥ २७

इन्द्रियाणि समस्तानि नियम्य हृदये पुनः।
मनो विष्णौ समावेश्य मन्त्रं च द्वादशाक्षरम् ॥ २८

जपतो वायुभक्षस्य तस्य राज्ञो महात्मनः।
आविर्बंधूव भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ २९

तमागतमध्यालोक्य पश्योनि चतुर्मुखाम्।
प्रणम्य भक्तिभावेन स्तुत्या च पर्यतोषयत् ॥ ३०

नमो हिरण्यगर्भाय जगत्त्वष्टे महात्मने।
चेदशास्त्रार्थविदुये चतुर्वक्त्राय ते नमः ॥ ३१

इति स्तुतो जगत्त्वष्टा ब्रह्मा प्राह नृपोत्तमम्।
तपस्यभिरतं शान्तं त्यक्तराज्यं महासुखाम् ॥

ब्रह्माजीका वाच

लोकप्रकाशको राजन् सूर्यस्तव पितामहः ॥ ३२

मुनीनामपि सर्वेषां सदा मान्यो मनुः पिता।
कृतवन्तौ तपः पूर्वं तीव्रं पितृपितामहौ ॥ ३३

किमर्थं राज्यभोगं तु त्यक्त्वा सर्वं नृपोत्तमं।
तपः करोषि घोरं त्वं समाचक्षव महामते ॥ ३४

इत्युक्तो ब्रह्मणा राजा तं प्रणाम्याद्वीद्वचः।
द्रष्टुमिच्छुस्तपश्चयाविलेन मधुसूदनम् ॥ ३५

करोम्येवं तपो ब्रह्मन् शङ्खचक्रगदाधरम्।
इत्युक्तः प्राह राजानं पद्मजन्मा हस्त्रिव ॥ ३६

न शक्यस्तपसा द्रष्टुं त्वया नारायणो विभुः।
मादृशैरपि नो दृश्यः केशवः क्लेशनाशनः ॥ ३७

पुरातनीं पुण्यकथां कथयामि निवोध मे।
निशान्ते प्रलये लोकान् निनीय कमलेक्षणः ॥ ३८

महातपस्वी राजा इक्ष्वाकु ग्रीष्म ऋतुमें पञ्चाग्रिके बीच स्थित होकर तपस्या करते थे, वर्षाके समय खुले मैदानमें रहते और शीतकालमें सरोवरके जलमें खड़े होकर तप करते थे। इस प्रकार समस्त इन्द्रियोंको मनमें निरुद्ध करके, मनको भगवान् विष्णुमें लौन कर द्वादशाक्षर-मन्त्रका जप करते और वायु पीकर रहते हुए उन महात्मा राजाके समक्ष लोक-पितामह भगवान् ब्रह्माजी प्रकट हुए। उन चार मुखोंवाले पश्योनि ब्रह्माजीको आया देख राजाने उन्हें भक्तिभावसे प्रणाम एवं उनकी स्तुति करके संतुष्ट किया ॥ २६—३० ॥

(राजा बोले—) 'संसारकी सृष्टि करनेवाले तथा वेद-शास्त्रोंके मर्मज्ञ, चार मुखोंवाले महात्मा हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीको नमस्कार है।' इस प्रकार स्तुति की जानेपर जगत्त्वष्टा ब्रह्माजीने राज्य त्यागकर तपस्यामें लगे हुए उन शान्त एवं महान् सुखी श्रेष्ठ नरेशसे कहा ॥ ३१ ॥

ब्रह्माजी बोले—राजन्! समस्त विश्वको प्रकाशित करनेवाले तुम्हारे पितामह सूर्य तथा पिता मनु भी सदा ही सभी मुनियोंके मान्य हैं। तुम्हारे पिता और पितामहने भी पूर्वकालमें तीव्र तपस्या की थी। (उन्हींके समान आज तुम भी तप कर रहे हो।) महामते नृपश्रेष्ठ! सारा राज्य-भोग छोड़कर किसलिये यह घोर तप कर रहे हो? इसका कारण बताओ ॥ ३२—३४ ॥

ब्रह्माजीके इस प्रकार पूछनेपर राजाने उनको प्रणाम करके कहा—'ब्रह्मन्! मैं तपोबलसे शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् मधुसूदनका प्रत्यक्ष दर्शन करनेकी इच्छा लेकर ही ऐसा तप कर रहा हूँ।' राजाके यों कहनेपर कमलजन्मा ब्रह्माजीने हैसते हुए-से उनसे कहा ॥ ३५—३६ ॥

"राजन्! सर्वत्र व्यापक भगवान् नारायणका दर्शन तुम केवल तपस्यासे नहीं कर सकोगे। (औरोंकी तो बात ही क्या है,) हमारे-जैसे लोगोंको भी बलेशनाशन भगवान् केशवका दर्शन नहीं हो पाता। महामते! मैं तुम्हें एक पुरातन पवित्र कथा सुनाता हूँ, सुनो—'प्रलयकी रातमें कमललोचन भगवान् विष्णुने समस्त लोकोंको

अनन्तभोगशयने योगनिद्रां गतो हरिः।
सनन्दनादीर्मुनिभिः स्तूयमानो महामते॥ ३९

तस्य सुमस्य नाभौ तु महत्पद्ममजायत।
तस्मिन् पदे शुभे राजन् जातोऽहं वेदवित् पुरा॥ ४०

ततो भूत्वा त्वधोदृष्टिरूपवान् कमलेक्षणम्।
अनन्तभोगपर्यङ्के भिन्नाभ्युननिभं हरिम्॥ ४१

अतसीकुसुमाभासं शयानं पीतवाससम्।
दिव्यरत्नविचित्राङ्गु मुकुटेन विराजितम्॥ ४२

कुन्देनुसदृशाकारमनन्तं च महामते।
सहस्रफणमध्यस्थैर्मणिभिर्दीप्तिमत्तरम्॥ ४३

क्षणमात्रं तु तं दृष्टा पुनस्तत्र न दृष्टवान्।
दुःखेन महताऽऽविष्टो बभूवाहं नृपोत्तम॥ ४४

ततो न्यवातरं तस्मात् पद्मनालं समाश्रितः।
कौतूहलेन तं द्रष्टुं नारायणमनामयम्॥ ४५

ततस्त्वन्विष्य राजेन्द्र सलिलान्ते न दृष्टवान्।
श्रीशं पुनस्तमेवाहं पद्ममाश्रित्य चिन्तयन्॥ ४६

तद्वृपं वासुदेवस्य द्रष्टुं तेषे महत्पः।
ततो मामन्तरिक्षस्था वागुवाचाशरीरिणी॥ ४७

बृथा किं विलश्यते ब्रह्मन् साम्प्रतं कुरु मे वचः।
न दृश्यो भगवान् विष्णुस्तपसा महतापि ते॥ ४८

सृष्टि कुरु तदाज्ञसो यदि द्रष्टुमिहेच्छसि।
शुद्धस्फटिकसंकाशनागपर्यङ्कशायिनम्॥ ४९

यद्द्रष्टुं शार्ङ्गिणो रूपं भिन्नाभ्युनसमप्रभम्।
प्रतिभानियतं रूपं विमानस्थं महामते॥ ५०

भज नित्यमनालस्यस्ततो द्रक्ष्यसि माधवम्।
तयेत्थं चोदितो राजेस्त्वकत्वा तस्ममनुक्षणम्॥ ५१

अपनेमें लीन कर लिया और सनन्दन आदि मुनियोंसे अपनी स्तुति सुनते हुए वे 'अनन्त' नामक शेषनागकी शाय्यापर योगनिद्राका आश्रय ले सो गये। राजन्! उन सोये हुए भगवान्की नाभिसे प्रकाशमान एक बहुत बड़ा कमल उत्पन्न हुआ। पूर्वकालमें उस प्रकाशमान कमलपर सर्वप्रथम मुझ वेदवेता ब्रह्माका ही आविर्भाव हुआ। तत्पश्चात् नीचेकी ओर दृष्टि करके मैंने खानसे काटकर निकाले हुए कोयलेके समान श्यामवर्णवाले भगवान् विष्णुको शेषनागकी शाय्यापर सोते देखा। उनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति अलसीके पूर्णकी भौति सुन्दर जान पड़ती थी, दिव्य रूपोंके आभरणोंसे उनके श्रीविघ्नहकी विचित्र शोभा हो रही थी और उनका मस्तक मुकुटसे शोभायमान था॥ ३७—४२॥

'महामते! उस समय मैंने उन अनन्तदेव शेषनागकी भी दर्शन किया, जिनका आकार कुन्द और चन्द्रमके समान थेत था तथा जो हजारों फणोंकी मणियोंसे अत्यन्त देवीप्रमान हो रहे थे। नृपश्रेष्ठ! क्षणभर ही वहाँ उन्हें देखकर मैं फिर उनका दर्शन न पा सका, इससे अत्यन्त दुःखी हो गया। तब मैं कौतूहलवशा निरामय भगवान् नारायणका दर्शन करनेके लिये कमलनालका सहारा ले वहाँसे नीचे डूरता; परंतु राजेन्द्र! उस समय जलके भीतर बहुत खोजनेपर भी मैं उन लक्ष्मीपतिका पुनः दर्शन न पा सका। तब मैं फिर उसी कमलका आश्रय ले वासुदेवके उसी रूपका चिन्तन करता हुआ उनके दर्शनके लिये बड़ी भारी तपस्या करने लगा। तत्पश्चात् अन्तरिक्षके भीतरसे किसी अव्यक्त शरीरवाली वाणीने मुझसे कहा॥ ४३—४७॥

"ब्रह्मन्! क्यों व्यर्थ कलेश उठा रहे हो? इस समय मेरी बात मानो। बहुत बड़ी तपस्यासे भी तुम्हें भगवान् विष्णुका दर्शन नहीं हो सकेगा। यदि यहाँ शुद्ध स्फटिक-मणिके समान थेत नाग-शाय्यापर शयन करनेवाले भगवान् विष्णुका दर्शन करना चाहते हो तो उनके आज्ञानुसार सृष्टि करो। महामते! तुमने 'शार्ङ्ग' धनुष धारण करनेवाले उन भगवान्का, जो अज्ञान-पुञ्जके समान श्याम सुषमासे दुर्ल तथा स्वभावतः प्रतिभाशालीरूप विमान (शेषशय्या)- पर स्थित देखा है, उसीका अलस्यरहित होकर भजन-ध्यान करो, तब उन माधवको देख सकोगे॥ ४८—५०॥

"राजन्! उस आकाशवाणीद्वारा इस प्रकार प्रेरित हो मैंने निरन्तर की जानेवाली तीव्र तपस्याका अनुष्ठान

सुष्टुवान् लोकभूतानां सुष्टुं सुष्टु मिथतस्य च ।
आविर्बंधूव पनसि विश्वकर्मा प्रजापतिः ॥ ५२

अनन्तकृष्णायोस्तेन द्वे रूपे निर्मिते शुभे ।
विमानस्थो यथापूर्वं मया दृष्टो जले नृप ॥ ५३

तथैव तं ततो भवत्या सम्पूर्ण्याहं हरिं स्थितः ।
तत्प्रसादात्तपः श्रेष्ठं मया ज्ञानमनुज्ञम् ॥ ५४

लक्ष्मा मुक्तिं च पश्यामि अविकारक्रियासुखम् ।
तदहं ते प्रवक्ष्यामि हितं नृपवरेश्वर ॥ ५५

विसञ्ज्यैतत्तपो धोरं पुरीं द्वज निजां नृप ।
प्रजानां पालनं धर्मस्तपश्चैव महीभृताम् ॥ ५६

विमानं ग्रेषयिष्यामि सिद्धद्विजगणान्वितम् ।
तत्राराधय देवेशं बाह्यार्थिरखिलैः शुभैः ॥ ५७

नारायणमनन्ताख्ये शयानं क्रतुभिर्यजन् ।
निष्कामो नृपशार्दूल प्रजा धर्मेण पालय ॥ ५८

प्रसादाद्वासुदेवस्य मुक्तिस्ते भविता नृप ।
इत्युक्त्वा तं जगामाथ ब्रह्मलोकं पितामहः ॥ ५९

इक्ष्वाकुश्चिन्तयन्नास्ते पद्मयोनिवचो द्विज ।
आविर्बंधूव पुरतो विमानं तन्महीभृतः ॥ ६०

ब्रह्मदत्तं द्विजयुतं माधवानन्तयोः शुभम् ।
तं दृष्टा परया भवत्या नत्या च पुरुषोत्तमम् ॥ ६१

ऋषीन् प्रणाम्य विग्रांश्च तदादाय यथी पुरीम् ।
पौर्जनैश्च नारीभिर्हृष्टः शोभासमन्वितैः ॥ ६२

लाजा विनिष्कृपद्विद्वश्च नीतो राजा स्वकं गृहम् ।
स्वमन्दिरे विशाले तु विमानं वैष्णवं शुभम् ॥ ६३

त्यागकर इस अगत्यके प्राणियोंको सृष्टि की । सृष्टि करके स्थित होनेपर मेरे हृदयमें प्रजापति विश्वकर्माका प्राकट्य हुआ । उन्होंने 'अनन्त' नामक शेषनाग और भगवान् विष्णुकी दो चमकीली प्रतिमाएँ बनायीं । नरेश्वर! मैंने पहले जलके भीतर शेष-शत्र्यापर जिस रूपमें देख चुका था, उसी रूपमें भगवान् श्रीहरिकी वह प्रतिमा बनायी गयी थी । तब मैं उन श्रीहरिके उस श्रीविष्णुकी भक्तिपूर्वक पूजा करके और उन्हींके प्रसादसे श्रेष्ठ तपरूप परम उत्तम ज्ञान प्राप्त करके विकाररहित नित्यानन्दमय मोक्ष-सुखका अनुभव करने लगा ॥ ५१—५४ ॥

"राजराजेश्वर! इस समय मैं तुम्हारे हितकी बात बता रहा हूं, सुनो—राजन्! इस धोर तपस्याको छोड़कर अब अपनी पुरीको लौट जाओ । प्रजाओंका पालन करना ही राजाओंका धर्म तथा तप है । मैं सिद्धों और ब्राह्मणोंसहित उस विमानको, जिसपर भगवान्की प्रतिमा है, तुम्हारे पास भेजूँगा । उसीमें तुम सुन्दर बाह्य उपचारोद्धारा उन देवेश्वरकी आराधना करो । नृपश्रेष्ठ! तुम यज्ञोद्धारा 'अनन्त' नामक शेषनागकी शत्र्यापर शयन करनेवाले भगवान् नारायणका निष्कामधावसे यज्ञोद्धारा आराधन करते हुए धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करो । नृप! भगवान् वासुदेवकी कृपासे अवश्य ही तुम्हारी मुक्ति हो जायगी ।" राजासे यों कहकर लोकपितामह ब्रह्माजी अपने धामको चले गये ॥ ५५—५९ ॥

द्विज! ब्रह्माजीके चले जानेपर राजा इक्ष्वाकु उनकी बातोंपर विचार ही कर रहे थे, तबतक उनके समक्ष वह विष्णु और अनन्तकी प्रतिमाओंका शुभ विमान, जिसे ब्रह्माजीने दिया था, सिद्ध ब्राह्मणोंसहित प्रकट हो गया । उन भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करके उन्होंने बढ़ी भक्तिके साथ उन्हें प्रणाम किया तथा साथमें आये हुए ऋषियों एवं ब्राह्मणोंको भी नमस्कार करके वे उस विमानको लेकर अपनी पुरीको गये । वहाँ नगरके सभी शोभायमान स्त्री-पुरुषोंने राजाका दर्शन किया और लावा छीटते हुए वे उन्हें राजभवनमें ले गये । राजाने अपने विशाल मन्दिरमें उस सुन्दर वैष्णव-विमानको स्थापित किया और साथ आये हुए उन

संस्थाप्याराधयामास तैर्द्वैरर्चितं हरिम्।
महिष्यः शोभना यास्तु पिष्ठा तु हरिचन्दनम्॥ ६४

मालां कल्पा सुगच्छाढ्यां प्रीतिस्तस्य वर्वर्धं ह।
पौरा: कर्पूरश्रीखण्डं कुइकुमाद्यगुरुं तथा ॥ ६५

कृत्स्नं विशेषतो वस्त्रं महिषाढ्यं च गुग्गुलम्।
पुष्पाणि विष्णुयोग्यानि ददुरानीय भूपतेः ॥ ६६

विमानस्थं हरिं पूज्य गन्धपुष्पादिभिः क्रमात्।
त्रिसंघ्यं परया भक्त्या जपैः स्तोत्रैश्च वैष्णवैः ॥ ६७

गीतैः कोलाहलैः शब्दैः शङ्खवादित्रनादितैः।
प्रेक्षणीरपि शास्त्रोत्तैः प्रीतैश्च निशिजागैः ॥ ६८

कारयामास सुचिरमुत्सवं परमं हरे:।
यागैश्च तोषयित्वा तं सर्वदेवमयं हरिम्॥ ६९

निष्कामो दानधर्मैश्च परं ज्ञानमवासवान्।
यजन् यज्ञं महीं रक्षन् स कुर्वन् केशवार्चनम्॥ ७०

उत्पाद्य पुत्रान् पित्रश्च व्यानात्यकल्पा कलेवरम्।
व्यायन् वै केवलं ब्रह्म प्राप्तवान् वैष्णवं पदम्॥ ७१

अजं विशोकं विमलं विशुद्धं
शान्तं सदानन्दचिदात्मकं ततः।

विहाय संसारमनन्तदुःखं
जगाम तद्विष्णुपदं हि राजा ॥ ७२

ब्रह्मणोद्भारा पूजित भगवान् विष्णुको वे आराधना करने लगे। उनकी सुन्दरी रानियाँ चन्दन घिसकर और सुगन्धित फूलोंका हार गैथकर अर्पण करती थीं, इससे राजाको बड़ी प्रसन्नता होती थी। इसी प्रकार नगर-निवासी जन कपूर, श्रीखण्ड, कुइकुम, अगुरु आदि सभी उपचार और विशेषतः वस्त्र, गुग्गुल तथा श्रीविष्णुके योग्य पुष्प ला-लाकर राजाको अर्पित करते थे ॥ ६०—६६ ॥

राजा तीनों संघ्याओंमें विमानपर विराजमान भगवान् श्रीहरिकी क्रमशः गन्ध-पुष्प आदि उपचारोंद्वारा बड़ी भक्तिसे पूजा करते थे। श्रीविष्णुके नामोंका जप, उनके स्तोत्रोंका पाठ, उनके गुणोंका गान और शङ्ख आदि वाद्योंका शब्द करते-करते थे। शास्त्रोत्त विधिसे प्रेमपूर्वक सजायी हुई भगवान्को झाँकियों तथा रात्रिमें जागरण आदिके द्वारा वे सदा ही देरतक भगवत्सम्बन्धी उत्सव कराया करते थे। निष्कामभावसे किये गये यज्ञ, दान तथा धर्माचरणोद्भारा उन सर्वदेवमय भगवान् विष्णुके संतुष्ट करके राजाने परम उत्तम ज्ञान प्राप्त कर लिया। यज्ञोंका अनुष्ठान, पृथ्वीका पालन और भगवान् केशवका पूजन करते हुए राजाने पितृगणोंकी तुसिके निमित्त श्राद्ध आदि कर्म करनेके लिये पुत्रोंको उत्पन्न किया और केवल ब्रह्मका चिनान करते हुए ध्यानके द्वारा ही शरीरका त्यागकर भगवान् विष्णुके धामको प्राप्त कर लिया। इस प्रकार राजा इक्षवाकु अनन्त दुःखोंसे पूर्ण संसारका त्याग करके अज, अशोक, अमल, विशुद्ध, शान्त एवं सञ्चिदानन्दमय विष्णुपदको प्राप्त हो गये ॥ ६७—७२ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे इत्याकुचरिते पञ्चविंशतोऽध्यायः ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणके अनार्थि 'इक्षवाकुचरित्र' विषयक पञ्चांसका अध्याय पूरा हुआ ॥ २५ ॥

छब्बीसवाँ अध्याय

इक्ष्वाकुकी संततिका वर्णन

श्रीसूत उवाच

इक्ष्वाकोविर्कुक्षिनामपुत्रः । स तु सिद्धे पितरि
महर्षिभिरभिषिक्तो धर्मेण पृथिवीं पालयन्
विमानस्थमनन्तभौगशायिनमच्युतमाराध्य यागैरपि
देवानिष्ठा स्वपुत्रं राज्ये सुबाहुमधिष्ठित्य दिवपारुरोह ।
सुबाहोर्भाजमानादुष्टोतोऽभिगीयते । स तु सप्तद्वीपां
पृथिवीं धर्मेण पालयित्वा भक्तिं परां नारायणे
पितामहवत् कृत्वा क्रतुभिर्भूरिदक्षिणीर्यज्ञेश्वरं
निष्कामेन मनसेष्ठा नित्यं निरञ्जनं निर्विकल्पं परं
ज्योतिरमृताक्षरं परमात्मरूपं ध्यात्वा हरिमनन्तं च
यरमाराध्य स्वर्गलोकं गतः ॥ १ ॥

तस्य युवनाश्चो युवनाश्चस्य च मांधाता
पुत्रोऽभवत् । स चाभिषिक्तो महर्षिभिर्निंसगदिव
विष्णुभक्तोऽनन्तशयनमच्युतं भक्त्याऽराधयन्
यागैश्च विविधेरिष्ठा सप्तद्वीपवर्तीं पृथिवीं परिपाल्य
दिवं गतः ॥ २ ॥

यस्यैष श्लोको गीयते ।

यावत्सूर्य उद्देति स्म यावच्य प्रतितिष्ठिति ।
सर्वं तद्यौवनाश्चस्य मांधातुः क्षेत्रमुच्यते ॥ ३ ॥

तस्य पुरुकुशयोऽभवद् येन देवा ब्राह्मणाश्च
यागदानैः संतुष्टाः ॥ ४ ॥ पुरुकुशयाद् हृषदो

श्रीसूतजी बोले—इक्ष्वाकुके ज्येष्ठ पुत्रका नाम था विकुक्षि । वह अपने पिताके मुक्त हो जानेपर महर्षियोंद्वारा राज्यपदपर अभिषिक्त हुआ और धर्मपूर्वक पृथिवीका पालन करने लगा । राजा विकुक्षिने विमानपर विराजमान शेषशायी भगवान् विष्णुकी आराधना करते हुए अनेक यज्ञोद्वारा देवताओंका भी यजन किया । अन्तमें वे अपने पुत्र सुबाहुको राज्यपर अभिषिक्तकर स्वयं स्वर्गगामी हो गये । अब तेजस्वी राजा सुबाहुके पुत्र उद्योतका यशोगान किया जाता है । उद्योतने सातों द्वीपोंवाली पृथिवीका धर्मपूर्वक पालन किया । उन्होंने अपने पितामह राजा इक्ष्वाकुकी ही भाँति भगवान् नारायणमें पराभक्ति करके प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञोद्वारा यज्ञपति विष्णुका निष्कामभावसे यजन किया तथा नित्य, निरञ्जन, निर्विकल्प, अमृत, अक्षर, परम, ज्योतिर्मय यरमात्मरूपका चिन्तन करते हुए श्रीविष्णु और अनन्तकी आराधना करके वे परमधामको प्राप्त हुए ॥ ५ ॥

उनके पुत्र युवनाश्च हुए युवनाश्चके पुत्र मांधाता । मांधाता स्वभावसे ही भगवान् विष्णुके भक्त थे । महर्षियोंने जब उनका राज्याभिषेक कर दिया, तब शेषशायी भगवान् विष्णुकी भक्तिपूर्वक आराधना तथा विविध यज्ञोद्वारा यजन करते हुए उन्होंने सातों द्वीपोंसे युक्त पृथिवीका पालन किया और अन्तमें उनका वैकुण्ठवास हुआ ॥ ६ ॥

मांधाताके ही विषयमें यह श्लोक अबतक गाया जाता है—

‘जहाँसे सूर्य उदय होता और जहाँतक जाकर अस्त होता है, वह सब युवनाश्चके पुत्र मांधाताका ही क्षेत्र कहलाता है’ ॥ ३ ॥

मांधाताका पुत्र पुरुकुशय (या पुरुकुत्स) हुआ, जिसने यज्ञ और दानके द्वारा देवताओं तथा ब्राह्मणोंको संतुष्ट किया था । पुरुकुशयसे दृष्ट और

हृषदादभिशम्भुः । अभिशम्भोदर्कणो
 दारुणात्सगरः ॥ ५ ॥ सगराद्वर्यश्चो हर्यश्चाद्वारीतो
 हारीताद्रोहिताश्चः । रोहिताश्चादंशुमान् ॥ ६ ॥ अंशुमतो
 भगीरथः । येन महता तपसा पुरा दिवो गङ्गा
 अशोषकल्पयनाशिनी चतुर्विधपुरुषार्थदायिनी
 भुवमानीता । अस्थिशक्तराभूताः कपिलमहर्षि-
 निर्दग्धाश्च गुरवः सगराख्या गङ्गातोयसंस्पृष्टा
 दिवमारोपिताः । भगीरथात् सौदासः
 सौदासात् सत्रसवः ॥ ७ ॥ सत्रसवा-
 दनरण्योऽनरण्यादीर्घबाहुः ॥ ८ ॥ दीर्घबाहो-
 रजोऽजादृशरथः । तस्य गृहे रावणविनाशार्थ
 साक्षात्रारायणोऽवतीर्णो रामः ॥ ९ ॥

स तु पितृवचनाद् भ्रातृभार्यासिहितो दण्डकारण्यं
प्राप्य तपश्चार । वने रावणापहतभार्यो भ्रात्रा सह
दुःखितोऽनेक कोटि वानरनायक सुग्रीवसहायो
महोदधी सेतु निवाष्य तैर्गत्वा लङ्घां रावणं देवकण्टकं
सबान्धवं हत्वा सीतामादाय पुनरयोध्यां प्राप्य
भरताभिषिक्तो विभीषणाय लङ्घाराज्यं विमानं वा
दत्त्वा तं प्रेषयामास । स तु परमेश्वरो विमानस्थो
विभीषणेन नीयमानो लङ्घायामपि राक्षसपुर्यां
वस्तुमनिछ्छन् पुण्यारण्यं तत्र स्थापितवान् ॥ २० ॥
तत्रिरीक्ष्य तत्रैव महाहिभोगशायने भगवान् शेते ।
सोऽपि विभीषणस्ततस्तद्विमानं नेतुमसमर्थः,
तद्वचनात् स्वां पुरीं जगाम ॥२१ ॥

नारायणसंनिधानान्महद्वैष्णवं क्षेत्रमभवदद्यापि
दृश्यते। रामाल्लबो लवात्ययः पश्यादत् पर्या

दूषदसे अभिशाम्भु हुआ। अभिशाम्भुसे दाहण और दारणसे सगरका जन्म हुआ। सगरसे हर्यश्च, हर्यश्चसे हारीत, हारीतसे रोहिताश्च, रोहिताश्चसे अंशुमान् और अंशुमान्से भगीरथ हुए, जो पूर्वकालमें बहुत बड़ी तपस्या करके समस्त पापोंका नाश करनेवाली और चारों पुरुषाधोको देनेवाली गङ्गाको आकाशसे पृथ्वीपर ले आये। उन्होंने गङ्गाजलके स्पर्शसे अपने 'सगर' संज्ञक पितरोंको, जो महर्षि कपिलके शापसे दग्ध होकर अस्थि-भस्ममात्र शेष रह गये थे, स्वर्गलोकको पहुँचा दिया। भगीरथसे सौदास और सौदाससे सत्रसवका जन्म हुआ। सत्रसवसे अनरण्य और अनरण्यसे दीर्घबाहु हुआ। दीर्घबाहुसे अज तथा अजसे दशरथ हुए। इनके घरमें साक्षात् भगवान् नारायण रावणका नाश करनेके लिये 'राम' रूपमें अवतोर्ण हुए थे ॥ ४—९ ॥

राम अपने पिताके कहनेसे छोटे भाई लक्ष्मण तथा
पत्नीसहित दण्डकारण्यमें जाकर तपस्या करने लगे।
उस बनमें रावणने इनकी पत्नी सीताका अपहरण कर
लिया। इससे दुःखी होकर वे अपने भाई लक्ष्मणको
साथ लेकर अनेक करोड़ बानर-सेनाके अधिष्ठित सुग्रीवको
सहायक बनाकर चले और महासागरमें पुल बाँधकर
उन सबके साथ लङ्घायें जा पहुँचे। वहाँ देवताओंके
मार्गका कँटा बने हुए रावणको उसके बन्धु-बान्धवोंसहित
मारकर सीताको साथ ले पुनः अयोध्यामें लौट आये।
अयोध्यामें भरतजीने उनका 'राजा' के पदपर अभिषेक
किया। श्रीरामने विभीषणको लङ्घाका राज्य तथा
(विष्णुप्रतिमायुक्त) विमान देकर अयोध्यासे विदा किया।
विमानपर विराजमान परमेश्वर विष्णु विभीषणद्वारा ले
जाये जानेपर भी राक्षसपुरी लङ्घामें निवास करना नहीं
चाहते थे, अतः विभीषणने वहाँ जिस पवित्र बनकी
स्थापना की थी, उसको देखकर वे उसीमें स्थित हो गये।
वहाँ महान् सर्प-शरीरकी शव्यापर भगवान् शयन करते हैं।
विभीषण भी जब वहाँसे उस विमानको ले जानेमें
असमर्थ हो गये, तब भगवान्के ही कहनेसे वे उन्हें वहाँ
छोड़ अपनी पुरी लङ्घाको चले गये॥१०-११॥

भगवान् नारायणकी उपस्थितिसे वह स्थान महान् वैष्णवतीर्थ हो गया, जो आज भी श्रीरङ्गक्षेत्रके नामसे प्रसिद्ध देखा जाता है। यमसे लब्ध लब्धसे पद्म पद्मसे

ऋतुपर्णादस्त्रपाणिः । अस्त्रपाणोः शुद्धोदनः
शुद्धोदनाद्बृथः । बुधाद्वंशो निवर्तते ॥ १२ ॥

एते महीपा	रविवंशजास्तव
ग्राधान्यतस्ते	कथिता महाबलाः ।
पुरातनैर्यवंसुधा	प्रपालिता
यज्ञक्रियाभिश्च	दिवीकसैर्नैषः ॥ १३ ॥

ऋतुपर्ण, ऋतुपर्णसे अस्त्रपाणि, अस्त्रपाणिसे शुद्धोदन और शुद्धोदनसे बुध (बुद्ध)-को उत्पत्ति हुई; बुधसे इस चंशकी समाप्ति हो जाती है ॥ १२ ॥

मैंने यहाँ आपके समक्ष पूर्ववर्ती उन प्रधान-प्रधान महाबली सूर्यवंशी राजाओंका नामोल्लेख किया है, जिन्होंने धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन और यज्ञ-क्रियाओंद्वारा देवताओंका भी पोषण किया था ॥ १३ ॥

इति ब्रौनरसिंहपुराणे सूर्यवंशानुचरितं नाम वद्विशेषध्यायः ॥ २६ ॥
इस प्रकार ब्रौनरसिंहपुराणें 'सूर्यवंशका अनुचरित' नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २६ ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

चन्द्रवंशका वर्णन

सूत उकाच

अथ सोमवंशोद्धवानां भूभुजां संक्षेपेण
चरितमुच्यते ॥ १ ॥ आदौ तावत् समस्तं त्रैलोक्यं
कुक्षीं कृत्वा एकार्णवे महाभसि
नागभोगशायने ॥ २ ॥ ऋद्धमयो यजुर्मयः
साममयोऽथर्वमयो भगवान्नारायणो योगनिद्रां
समारेषे । तस्य सुसस्य नाभी महापद्ममजायत । तस्मिन्
पद्मे चतुर्मुखो ब्रह्माभवत् ॥ ३ ॥ तस्य ब्रह्मणो मानसः
पुत्रोऽत्रिरभवत् । अत्रेनसूयायां सोमः । स तु
प्रजापतेर्दक्षस्य त्रयस्त्रिंशत् कन्या रोहिण्याद्या भार्यार्थी
गृहीत्वा प्रियायां ज्येष्ठायां विशेषात् प्रसन्नमनाः
रोहिण्यां बुधं पुत्रमुत्पादयामास ॥ ४ ॥ बुधोऽपि
सर्वशास्त्रज्ञः प्रतिष्ठाने पुरेऽवसत् । इलायां पुरुरवसं
पुत्रमुत्पादयामास । तस्यातिशयरूपान्वितस्य
स्वर्गभोगान् विहाय उर्वशी बहुकालं भार्या
बभूव ॥ ५ ॥ पुरुरवसः उर्वश्यामायुः पुत्रो जज्ञे । स
तु राज्यं धर्मतः कृत्वा दिवमारुरोह ॥ ६ ॥ आयो
रूपवत्यां नहुषः पुत्रोऽभवत् । येनेन्द्रत्वं प्राप्तम् ।
नहुषस्यापि पितृमत्यां यथातिः ॥ ७ ॥ यस्य बंशजा

सूतजी बोले—अब संक्षेपसे चन्द्रवंशी राजाओंके चरित्रिका वर्णन किया जाता है । कल्पके आदिकी चात है । ऋक्, यजुष्, साम और अथर्ववेदस्वरूप भगवान् नारायण समस्त त्रिभुवनको अपने उदरमें लीन करके एकर्णवकी अगाध जलराशिमें रोषनागकी भव्यापर योगनिद्रका आश्रय ले सो रहे थे । सोये हुए उन भगवान्की नाभिसे एक महान् कमल प्रकट हुआ । उस कमलमें चतुर्मुख ब्रह्माका आविर्भाव हुआ । उन ब्रह्माजीके मानसपुत्र अत्रि हुए । अत्रिसे अनसूयाके गर्भसे चन्द्रमाका जन्म हुआ । उन्होंने दक्ष प्रजापतिकी रोहिणी आदि तीतीस कन्याओंको पली बनानेके लिये ग्रहण किया और ज्येष्ठ भार्या रोहिणीसे उसके प्रति अधिक प्रसन्न रहनेके कारण, 'बुध' नामक पुत्र उत्पन्न किया । बुध भी समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता होकर प्रतिष्ठानपुरमें निवास करने लगे । उन्होंने इलाके गर्भसे पुरुरवा नामक पुत्रको जन्म दिया । पुरुरवा बहुत ही सुन्दर थे, अतः उर्वशी नामक अप्सरा बहुत कालतक स्वर्गके भोगोंको ल्यागकर इनकी भार्या बनी रही । पुरुरवाद्वारा उर्वशीके गर्भसे आयु नामक पुत्रका जन्म हुआ । वह धर्मपूर्वक राज्य करके अन्तमें स्वर्गलोकको चला गया । आयुके रूपवतीसे नहुष नामक पुत्र हुआ, जिसने इन्द्रत्व प्राप्त किया था । नहुषके भी पितृमतीके गर्भसे यथाति

वृथ्यायः । यथाते: शर्मिष्ठायां पूरुभवत् ॥८॥
पूरोद्देशदायां संयाति: पुत्रोऽभवत् । यस्य पृथिव्यां
सम्पन्नाः सर्वे कामाः ॥९॥

संयातेर्भानुदत्तायां सार्वभीमः । स तु सर्वी पृथिवीं
धर्मेण परिपालयन्नरसिंहं भगवन्नमाराध्य यागदानैः
सिद्धिमाप ॥१०॥ तस्य सार्वभीमस्य वैदेह्यां भोजः ।
यस्य वंशे पुरा देवासुरसंग्रामे विष्णुचक्रहतः
कालनैमिः कंसो भूत्वा वृष्णिवंशजेन वासुदेवेन
घातितो निधनं गतः ॥११॥

तस्य भोजस्य कलिङ्गायां दुष्यन्तः । स तु नरसिंहं
भगवन्नमाराध्य तत्प्रसादात्रिष्टकण्टके राज्यं धर्मेण
कृत्वा दिवं प्राप्तवान् । दुष्यन्तस्य शकुन्तलायां
भरतः । स तु धर्मेण राज्यं कुर्वन् क्रतुभिर्भूरि-
दक्षिणीः सर्वदेवतामयं भगवन्नमाराध्य
निवृत्ताधिकारो छस्यानपरो वैष्णवे परे ज्योतिषिः
लयमवाप ॥१२॥

भरतस्य आनन्दायामजमीढः । स च परमवैष्णवो
नरसिंहमाराध्य जातपुत्रो धर्मेण कृतराज्यो
विष्णुपुरमारुरोह ॥१३॥ अजमीढस्य सुदेव्यां वृष्णिः
पुत्रोऽभवत् । सोऽपि बहुवर्षं धर्मेण राज्यं कुर्वन्
दुष्टनिग्रहं शिष्टपरिपालनं समद्वीपां पृथ्वीं वशे चक्रे ।
वृथ्योरुग्रसेनायां प्रत्यञ्जः पुत्रो बभूव ॥१४॥ सोऽपि
धर्मेण मेदिनी पालयन् प्रतिसंवत्सरं ज्योतिष्ठेमं चकार ।
निर्वाणमपि लब्धवान् । प्रत्यञ्जस्य बहुरूपायां

हुए, जिनके वंशज वृष्णि कहलाते हैं । यथातिके शर्मिष्ठाके गर्भसे पूरु हुए । पूरुके वंशदासे संयाति नामक पुत्र हुआ, जिसको इस पृथ्वीपर सभी तरहके मनोवाञ्छित भोग प्राप्त थे ॥१—९॥

संयातिसे भानुदत्ताके गर्भसे सार्वभीम नामक पुत्र हुआ । उसने सम्पूर्ण पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन करते हुए यज-दान आदिके द्वारा भगवान् नृसिंहकी आराधना करके सिद्धि (मुक्ति) प्राप्त कर ली । उपर्युक्त सार्वभीमसे वैदेहीके गर्भसे भोज उत्पन्न हुआ, जिसके वंशमें कालनैमि नामक राक्षस, जो पहले देवासुर-संग्राममें भगवान् विष्णुके चक्रसे मारा गया था, केसके रूपमें उत्पन्न हुआ और वृष्णिवंशी वसुटेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णके हाथसे मारा जाकर मृत्युको प्राप्त हुआ ॥१०—११॥

भोजकी पत्नी कलिङ्गासे दुष्यन्तका जन्म हुआ । वह भगवान् नृसिंहकी आराधना करके उनकी प्रसन्नतासे धर्मपूर्वक निष्टकण्टक राज्य भोगकर जीवनके अन्तमें स्वर्गको प्राप्त हुआ । दुष्यन्ताको शकुन्तलाके गर्भसे भरत नामक पुत्र प्राप्त हुआ । वह धर्मपूर्वक राज्य करता हुआ प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञोंसे सर्वदेवमय भगवान् विष्णुकी आराधना करके कर्माधिकारसे निवृत्त एवं ब्रह्मच्यान-परायण हो परम ज्योतिर्मय वैष्णवधाममें लीन हो गया ॥१२॥

भरतके उसकी पत्नी आनन्दाके गर्भसे अजमीढ नामक पुत्र हुआ । वह परम वैष्णव था । राजा अजमीढ भगवान् नृसिंहकी आराधनासे पुत्रवान् होकर धर्मपूर्वक राज्य करनेके पश्चात् श्रीविष्णुधामको प्राप्त हुए । अजमीढके सुदेवीके गर्भसे वृष्णि नामक पुत्र हुआ । वह भी बहुत वर्षोंतक धर्मपूर्वक राज्य करता रहा । दुष्टोंका दमन और सज्जनोंका पालन करते हुए उसने सातों द्वीपोंसे युक्त पृथ्वीको अपने वशमें कर लिया था । वृष्णिके उपरसेनाके गर्भसे प्रत्यञ्ज नामक पुत्र हुआ । वह भी धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करता था । उसने प्रतिवर्ष ज्योतिष्ठेमयागका अनुष्ठान करते हुए आयुका अन्त होनेपर निर्वाणपद (मोक्ष) प्राप्त कर लिया । प्रत्यञ्जको

शांतनुः ॥ १५ ॥ तस्य देवदत्तस्यन्दनारोहणमशक्यं
बभूव पुरतः शक्यं च ॥ १६ ॥

बहुरूपाके गर्भसे शांतनु नामक पुत्र प्राप्त हुआ, जिनमें
देवताओंके दिये हुए रथपर चढ़नेकी पहले शक्ति
नहीं थी, परंतु पीछे उसपर चढ़नेकी शक्ति हो
गयी ॥ १३—१६ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे सौमवंशवर्णनं नाम सक्षविज्ञोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'सौमवंशवर्णन' नामक सताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २७ ॥

अद्वाईसवाँ अध्याय

शांतनुका चरित्र

भरद्वाज उकाच

स्यन्दनारोहणे पूर्वमशक्तिः शांतनोः कथम् ।
पश्चाच्छक्तिः कथं चासीत् तस्य वै तद्वदस्व नः ॥ १ ॥

सूत उकाच

भरद्वाज शृणु वैतत् पुरावृत्तं वदामि ते ।
सर्वपापहरं तद्विद्व चरितं शांतनोर्नुणाम् ॥ २ ॥
बभूव शांतनुर्भक्तो नरसिंहतनीं पुरा ।
नारदोक्तविधानेन पूजयामास माधवम् ॥ ३ ॥
नरसिंहस्य देवस्य निर्माल्यं तेन लङ्घितम् ।
राजा शांतनुना विप्र तस्मात् स्यन्दनमुत्तमम् ॥ ४ ॥
देवदत्तं तदारोहुमशक्तस्तत्क्षणादभूत् ।
किमियं मे गतिर्भग्ना सहसा वै रथात्ततः ॥ ५ ॥

दुःखं चिन्तयतस्तस्य सम्प्राप्तो नारदः किल ।
किं विषण्णः स्थितो राजन्निति पृष्ठः स शांतनुः ॥ ६ ॥

नारदैतत्र जानामि गतिभङ्गस्य कारणम् ।
इत्युक्तो नारदो ध्यात्वा ज्ञात्वा तत्कारणं ततः ॥ ७ ॥

शांतनुं प्राह राजानं विनयेन यतः स्थितः ।
यत्र क्लापि त्वया राजन् नरसिंहस्य वै धूवम् ॥ ८ ॥

निर्माल्यो लङ्घितस्तस्माद्रथारोहणकर्मणि ।
गतिर्भग्ना महाराज श्रूयतामत्र कारणम् ॥ ९ ॥

भरद्वाजजीने पूछा — शांतनुको पहले देवताओंके
रथपर चढ़नेकी शक्ति क्यों नहीं थी ? और फिर उनमें
वह शक्ति कैसे आ गयी ? इसे आप हमें बतलायें ॥ १ ॥

सुतजी बोले — भरद्वाजजी ! यह पुराना इतिहास है;
इसे मैं कहता हूँ सुनिये । शांतनुका चरित्र मनुष्योंके
समस्त पापोंका नाश करनेवाला है । शांतनु पूर्वकालमें
नृसिंहरूपधारी भगवान् विष्णुके भक्त थे और नारदजीकी
बतायी हुई विधिसे भगवान् लक्ष्मीपतिकी सदा पूजा
किया करते थे । विप्रबर ! एक बार राजा शांतनु भूलसे
श्रीनरसिंहदेवके निर्माल्यको लौंघ गये, अतः वे उसी
क्षण देवताओंके दिये हुए उत्तम रथपर चढ़नेमें असमर्थ
हो गये । तब वे सोचने लगे—'यह क्या बात है ?
इस रथपर चढ़नेमें हमारी गति सहसा कुण्ठित क्यों
हो गयी ?' कहते हैं, इस प्रकार दुःखी होकर सोचते
हुए उन राजाके पास नारदजी आये और उन्होंने
राजा शांतनुसे पूछा—'राजन् ! तुम क्यों विषादमें डूबे
हुए हो ?' ॥ २—६ ॥

राजाने कहा — 'नारदजी ! मेरी गति कुण्ठित कैसे
हुई, इसका कारण मुझे जात नहीं हो रहा है, इसीसे मैं
चिनित हूँ ।' उनके यों कहनेपर नारदजीने ध्यान लगाया
और उसका कारण जानकर राजा शांतनुसे, जो विनीतभावसे
वहाँ खड़े थे, कहा—'राजन् ! अवश्य ही तुमने कही—
न-कही भगवान् नृसिंहके निर्माल्यका लङ्घन किया है ।
इसीसे रथपर चढ़नेमें तुम्हारी गति अवरुद्ध हो गयी है ।
महाराज ! इसका कारण सुनो ॥ ७—९ ॥

अन्तर्वेद्यां पुरा राजनासीत् कश्चिन्महामतिः ।
मालाकारो रविनाम्ना तेन वृन्दावनं कृतम् ॥ १०

विविधानि च पुष्पार्थं बनानि सुकृतानि वै ।
मल्लिकामालतीजातिबकुलादीनि सर्वशः ॥ ११

प्राकारभुच्छ्रुतं तस्य स्वभूमी चापि विस्तृतम् ।
अलङ्घयमप्रवेश्य च कृत्वा चक्रे स्वकं गृहम् ॥ १२

गृहं प्रविश्य तद्वारं भवेन्नान्यत्र सत्तम् ।
एवं कृत्वा तु वसतो मालाकारस्य धीमतः ॥ १३

पुष्पितं तद्वनं त्वासीद् गन्धामोदितदिङ्मुखम् ।
भार्या सह पुष्पाणि समाहृत्य दिने दिने ॥ १४

कृत्वा मालां यथान्यायं नरसिंहस्य नित्यशः ।
ददौ काश्चिद्द्विजेभ्यश्च काश्चिद्विक्रीय पोषणम् ॥ १५

चक्रे समात् प्रजीवी च भार्यादेशात्पनस्तथा ।
अथ स्वर्गादुपागम्य इन्द्रपुत्रो रथेन वै ॥ १६

अप्सरोगणसंयुक्तो निशि पुष्पाणि संहरेत् ।
तद्वन्धलिप्तुः सर्वाणि विचित्याहृत्य गच्छति ॥ १७

दिने दिने हते पुष्पे मालाकारोऽप्यचिन्तायत् ।
नान्यद् द्वारं वनस्यास्यालङ्घयप्राकारमुन्नतम् ॥ १८

समस्तपुष्पजातस्य हरणे निशि वै नृणाम् ।
अहं शक्तिं न पश्यामि किमिदं तु परीक्षये ॥ १९

इति संचिन्त्य मेधावी जाग्रद्रात्रौ बने स्थितः ।
तथैवागत्य पुष्पाणि संग्रहीत्वा गतः पुमान् ॥ २०

तं दृष्टा दुःखितोऽतीव माल्यजीवी बनेऽभवत् ।
ततो निद्रां गतः स्वप्ने दृष्टवांस्तं नुकेसरिम् ॥ २१

तद्वाक्यं श्रुतवांश्चैव निर्माल्यं मम पुत्रक ।
आनीय क्षिप्यतां क्षिप्रं पुष्पारामसपीपतः ॥ २२

‘राजन्! पूर्वकालकी बात है, अन्तर्वेदीमें कोई बड़ा बुद्धिमान् माली रहता था। उसका नाम था रघु। उसने तुलसीका बगीचा लगाया था और उसका नाम ‘वृन्दावन’ रखा दिया था। उसमें फूलोंके लिये सब ओर मलिलका, मालती, जाती तथा बकुल (मौलसिरी) आदि नाना प्रकारके वृक्षोंके बाग सुंदर हँगासे लगाये थे। उस बनकी चहारदीवारी बहुत कँची और चौड़ी बनवाकर, उसे अलङ्घनीय और दुर्गम करके भीतरकी भूमिपर उसने अपने रहनेके लिये घर बनाया था। साधुशिरोमणे! उसने ऐसा प्रबन्ध किया था कि घरमें प्रवेश करनेके बाद ही उस बाटिकाका द्वार प्राप्त हो सकता था, दूसरी ओरसे उसका मार्ग नहीं था ॥ १०—१२ ॥

‘ऐसी व्यवस्था करके निवास करते हुए उस मालीका वह वृन्दावन फूलोंसे भरा रहता था और उसकी सुगन्धसे सारी दिशाएँ सुवासित होती रहती थीं। वह प्रतिदिन अपनी पत्नीके साथ फूलोंका संग्रह करके यथोचित मालाएँ तैयार करता था। उनमेंसे कुछ मालाएँ तो वह भगवान् नृसिंहको अर्पण कर देता था, कुछ द्वाह्याणोंको दे डालता था और कुछको बेचकर उससे अपना तथा पत्नी आदिका पालन-पोषण करता था। मालासे जो कुछ प्राप्त होता, उसीके द्वारा वह अपनी जीविका चलाता था ॥ १३—१५ ॥

‘कुछ कालके बाद वहाँ इन्द्रका पुत्र जयन्त प्रतिदिन रातमें स्वर्गसे अप्सराओंके साथ रथपर चढ़कर आने और फूलोंकी चोरी करने लगा। उस बनके पुष्पोंकी सुगन्धके लोभसे वह सारे फूल तोड़ लेता और लेकर चल देता था। जब प्रतिदिन फूलोंकी चोरी होने लगी, तब मालीको बड़ी चिन्ता हुई। उसने मन-ही-मन सोचा—‘इस बनका कोई दूसरा द्वार तो है नहीं। चहारदीवारी भी इतनी कँची है कि वह लौटी नहीं जा सकती। मनुष्योंकी ऐसी शक्ति मैं नहीं देखता कि इसे लौटकर वे सारे फूल चुरा ले जानेमें समर्थ हों।’ फिर इन फूलोंके लुप्त होनेका क्या कारण है, आज अवश्य ही इसका पता लगाऊँगा।’ यह सोचकर वह बुद्धिमान् माली उस रातमें जागता हुआ बगीचेमें ही बैठा रहा। अन्य दिनोंकी भाँति उस दिन भी वह पुरुष आया और फूल लेकर चला गया ॥ १६—२० ॥

‘उसे देखकर मालाओंसे ही जीविका चलानेवाला वह माली उस उपवनमें बहुत ही दुःखी हुआ। तदनन्तर रातको नींद आनेपर उसने स्वप्नमें साक्षात् भगवान् नृसिंहको देखा तथा उन नृसिंहदेवका यह बचन भी सुना—‘पुत्र! तुम शीघ्र ही फूलोंके बगीचेके समीप मेरा

इन्द्रपुत्रस्य दुष्टस्य नान्यदस्ति निवारणम्।
इति श्रुत्वा हरेवाक्यं नरसिंहस्य धीमतः ॥ २३
बुद्धवाऽनीय तु निर्माल्यं तथा चक्रे यथोदितम्।
सोऽप्यागत्य यथापूर्वं रथेनालक्षितेन तु ॥ २४
रथादुत्तीर्यं पुष्पाणि विचिन्वन्स्ताद्युवि स्थितम्।
निर्माल्यं लङ्घयामास इन्द्रसूनुरनिष्टकृत् ॥ २५
ततस्तस्य न शक्तिः स्याद्रथारोहणकर्मणि।
उक्तः सारथिना चैव रथस्यारोहणे तव ॥ २६
नरसिंहस्य निर्माल्यलङ्घने नास्ति योग्यता।
गच्छामि दिवमेवाहं त्वं भूम्यां वस माऽऽरुह ॥ २७
तेनैवमुक्तो मतिमांस्तमाह हरिनन्दनः।
पापस्य नोदनं त्वत्र कर्मणा येन मे भवेत् ॥ २८
तदुक्त्वा गच्छ नाकं त्वं कर्मास्मान् सारथे ह्रुतम् ॥

सारथिरुक्तव्य

रामसत्रे कुरुक्षेत्रे द्वादशाब्दे तु नित्यशः ॥ २९
द्विजोच्छिष्टापनयनं कृत्वा त्वं शुद्धिमेष्यसि।
इत्युक्त्वासां गतः स्वर्गं सारथिदेवसेवितम् ॥ ३०
इन्द्रसूनुः कुरुक्षेत्रे प्राप्तः सारस्वतं तटम्।
रामसत्रे तथा कुर्याद्द्विजोच्छिष्टस्य मार्जनम् ॥ ३१
पूर्णे द्वादशमे वर्षे तमूच्चुः शङ्किता द्विजाः।
कस्त्वं चूहि महाभाग नित्यमुच्छिष्टमार्जकः ॥ ३२
न भुज्ञसे च नः सत्रे शङ्का नो महती भवेत्।
इत्युक्तः कथयित्वा तु यथावृत्तमनुक्रमात् ॥ ३३
जगाम त्रिदिवं क्षिप्रं रथेन तनयो हरे:।
तस्मात् त्वपर्यं भूपाल ब्राह्मणोच्छिष्टमादरात् ॥ ३४
मार्जनं कुरु रामस्य सत्रे द्वादशवार्षिके।
ब्राह्मणोभ्यः परं नास्ति सर्वपापहरं परम् ॥ ३५
एवं कृते देवदत्तस्यन्दनारोहणे गतिः।
भविष्यति महीपाल प्रायश्चित्ते कृते तव ॥ ३६
अत ऋष्वं च निर्माल्यं मा लङ्घय महामते।
नरसिंहस्य देवस्य तथान्येषां दिवीकसाम् ॥ ३७

निर्माल्य लाकर छीट दो। उस दुष्ट इन्द्रपुत्रको रोकनेका कोई दूसरा उपाय नहीं है' ॥ २१—२२½, ॥

'बुद्धिमान् भगवान् नृसिंहका यह वचन सुनकर माली जाग उठा और उसने निर्माल्य लाकर उनके कथनानुसार वहाँ छीट दिया। जयन्त भी पहलेके ही समान अलक्षित रथसे आया और उससे उत्तरकर फूल तोड़ने लगा। उसी समय अपना अनिष्ट करनेवाला इन्द्रपुत्र वहाँ भूमिपर पढ़े हुए निर्माल्यको लौंघ गया। इससे उसमें रथपर चढ़नेकी शक्ति नहीं रह गयी। तब सारथिने उससे कहा—'नृसिंहका निर्माल्य लौंघ जानेके कारण अब तुममें इस रथपर चढ़नेकी योग्यता नहीं रह गयी है। मैं तो स्वर्गलोकको लौटता हूँ, किंतु तुम यहाँ भूतलपर ही रहो, रथपर न चढ़ो' ॥ २३—२७ ॥

'सारथिके इस प्रकार कहनेपर मतिमान् इन्द्रकुमारने उससे कहा—'सारथे! जिस कर्मसे यहाँ मेरे पापका निवारण हो, उसे बताकर तुम शीघ्र स्वर्गलोकको जाओ' ॥ २८½, ॥

सारथि बोला—'कुरुक्षेत्रमें परशुरामजीका एक यज्ञ हो रहा है, जो बारह वर्षोंमें समाप्त होनेवाला है। उसमें जाकर तुम प्रतिदिन ब्राह्मणोंका जूठन साफ करने तुम्हारी शुद्धि होगी।' यों कहकर सारथि देवसेवित स्वर्गलोकको चला गया ॥ २९—३० ॥

'इधर इन्द्रपुत्र जयन्त कुरुक्षेत्रमें सरस्वतीके तटपर आया और परशुरामजीके यज्ञमें ब्राह्मणोंकी जूठन साफ करने लगा। जब बारहवाँ वर्ष पूर्ण हुआ, तब ब्राह्मणोंने शङ्कित होकर उससे पूछा—'महाभाग! तुम कौन हो? जो नित्य जूठन साफ करते हुए भी हमारे यज्ञमें भोजन नहीं करते। इससे हमारे मनमें महान् संदेह हो रहा है।' उनके इस प्रकार पूछनेपर इन्द्रकुमार क्रमशः अपना सारा वृत्तान्त ठीक-ठीक बताकर तुरंत रथसे स्वर्गलोकको चला गया ॥ ३१—३३½, ॥

'इसलिये, हे भूपाल! तुम भी परशुरामजीके द्वादशवार्षिक यज्ञमें आदरपूर्वक ब्राह्मणोंकी जूठन साफ करो। ब्राह्मणोंसे बढ़कर दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो पापोंका अपहरण कर सके। महीपाल! इस प्रकार प्रायश्चित्त कर लेनेपर तुम्हें देवताओंके दिये हुए रथपर चढ़नेकी शक्ति प्राप्त हो जायगी। महामते! आजसे तुम भी श्रीनृसिंहदेवका तथा अन्य देवताओंके भी निर्माल्यका उल्लंघन न करना' ॥ ३४—३७ ॥

इत्युक्तः शांतनुस्तेन ब्राह्मणोच्छिष्ठमार्जनम्।
कृतवान् द्वादशाब्दं तु आरुरोह रथं च तम् ॥ ३८
एवं पूर्वमशक्तिः स्याद् रथारोहे महीक्षितः।
पश्चात् तस्यैव विप्रेन्द्र शक्तिरेवमजायत ॥ ३९
एवं ते कथितो विप्र दोषो निर्माल्यलङ्घने।
पुण्यं तथा द्विजानां तु प्रोक्तमुच्छिष्ठमार्जने ॥ ४०

भक्त्या द्विजोच्छिष्ठमिहापमार्जये-

च्छुचिन्नरो यः सुसमाहितात्मा ।

स पापबन्धं प्रविहाय भुझे

गवां प्रदानस्य फलं दिवि स्थितः ॥ ४१

नारदजीके ऐसा कहनेपर शांतनुने बारह वर्षोंतक ब्राह्मणोंकी जूठन साफ की। इसके बाद वे शक्ति पाकर उस रथपर चढ़नेमें समर्थ हुए। विप्रवर! इस प्रकार पूर्व-कालमें राजाकी उस रथपर चढ़नेकी शक्ति जाती रही और फिर उक्त उपाय करनेसे उनमें पुनः वह शक्ति आ गयी ॥ ३८-३९ ॥

बहान! इस प्रकार मैंने निर्माल्य लाँघनेमें जो दोष है, वह बताया तथा ब्राह्मणोंका जूठा साफ करनेमें जो पुण्य है, उसका भी वर्णन किया। जो मनुष्य इस लोकमें पवित्र होकर, अपने चित्तको एकाग्र करके, भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंका जूठा साफ करता है, वह पापबन्धनसे मुक्त हो स्वर्गमें निवास करता और गौओंके दानका फल भोगता है ॥ ४०-४१ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे शांतनुचरितं नामाङ्कविंशतिः अध्यायः ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'शांतनुचरित' नामक अद्वैतसंबोध अध्याय पूरा हुआ ॥ २८ ॥

उन्तीसवाँ अध्याय

शांतनुकी संततिका वर्णन

श्रीसूत उक्तव्य

शांतनोर्योजनगन्धायां विचित्रवीर्यः। स तु
हस्तिनापुरे स्थित्वा प्रजाः स्वधर्मेण पालयन् देवांश्च
यागैः षिर्तुश्च श्राद्धैः संतर्ष्य संजातपुत्रो
दिवमारुरोह ॥ १ ॥ विचित्रवीर्यस्याम्बालिकायां
पाण्डुः पुत्रो जज्ञे। सोऽपि राज्यं धर्मतः कृत्वा
मुनिशापाच्छरीरं विहाय देवलोकमवाप। तस्य
पाण्डोः कुन्तिदेव्यामर्जुनः ॥ २ ॥ स तु महता तपसा
शंकरं तोषयित्वा पाशुपतमस्त्रमवाप्य त्रिविष्टपाधिपते:
शत्रून् निवातकवचान् दानवान् हत्वा खाण्डववन-
मण्डेयथारुचि निवेद्य तुमाग्रितो दिव्यान् वरानवाप्य

श्रीसूतजी कहते हैं—शांतनुके योजनगन्धासे 'विचित्रवीर्य' नामक पुत्र हुआ। राजा विचित्रवीर्य हस्तिनापुरमें रहकर धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते रहे और यज्ञोद्धारा देवताओंको तथा श्राद्धके द्वारा पितरोंको तृप्त करके पुत्र पैदा होनेपर स्वर्गलोकको प्राप्त हुए। विचित्रवीर्यके अम्बालिकाके गर्भसे 'पाण्डु' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पाण्डु भी धर्मपूर्वक राज्यपालन करके मुनिके शापसे शरीर त्यागकर देवलोकको चले गये। उन राजा पाण्डुके कुन्तीदेवीके गर्भसे 'अर्जुन' नामक पुत्र हुआ। अर्जुनने बड़ी भारी तपस्या करके शंकरजीको प्रसन्न किया, उनसे 'पाशुपत' नामक अस्त्र प्राप्त किया और स्वर्गलोकके अधिपति इन्द्रके शत्रु 'निवातकवच' नामक दानवोंका वध करके अग्निदेवको उनकी रुचिके अनुसार खाण्डववन समर्पित किया। खाण्डववनको जलाकर, तृप्त हुए अग्निदेवसे अनेक दिव्य वर प्राप्त कर,

सुयोधनेन हतराज्यो धर्मभीमनकुलसहदेव-
द्रोपदीसहितो विराटनगरेऽज्ञातवासं चरित्वा गोग्रहे
च भीष्मद्रोणकृपदुर्योधनकणादीन् जित्वा
समस्तगोपण्डलं निवर्तयित्वा भारुभिः सह
विराटराजकृतपूजो वासुदेवसहितः कुरुक्षेत्रे
धार्तराष्ट्रेवृबलैर्युद्धं कुर्वन् भीष्मद्रोणकृपशाल्य-
कणादिभिर्भूरिपराक्रमैः क्षत्रियैर्नानादेशागतैरनेकरपि
राजपुत्रैः सह दुर्योधनादीन् धार्तराष्ट्रान् हत्वा स्वराज्यं
प्राप्य धर्मेण राज्यं परिपाल्य भारुभिः सह मुदितो
दिवमारुरोह ॥ ३ ॥

अर्जुनस्य सुभद्रायामभिमन्युः । येन भारतयुद्धे
चक्रव्यूहं प्रविश्यानेकभूभुजो निधनं प्रापिताः ॥ ४ ॥
अभिमन्योरुत्तरायां परीक्षितः । सोऽप्यभिषित्तो वनं
गच्छता धर्मपुत्रेण राज्यं कृत्वा राजपुत्रो नाकं सम्प्राप्य
रेते ॥ ५ ॥ परीक्षितान्मातृवत्यां जनमेजयः । येन
ब्रह्महत्यावारणार्थं महाभारतं व्यासशिष्या-
द्वैशम्पायनात् साद्यनं श्रुतम् ॥ ६ ॥ राज्यं च धर्मतः
कृत्वा दिवमारुरोह । जनमेजयस्य चुष्यवत्यां
शतानीकः ॥ ७ ॥ स तु धर्मेण राज्यं कुर्वन्
संसारदुःखाद्विरक्तः शौनकोपदेशोन क्रियायोगेन
सकललोकनाथं विष्णुमाराध्य निष्कामो वैष्णवं
पदमवाप । तस्य शतानीकस्य फलवत्यां
सहस्रानीकः ॥ ८ ॥ स तु बाल एवाभिषित्तो
नरसिंहेऽत्यन्तं भक्तिमानभवत् । तस्य चरितमुपरिष्ठाद्
भविष्यति ॥ ९ ॥ सहस्रानीकस्य मृगवत्यामुदयनः ।
सोऽपि राज्यं कृत्वा धर्मतो नारायणमाराध्य
तत्पुरपवाप ॥ १० ॥ उदयनस्य वासवदत्तायां
नरवाहनः । स तु यथान्यायं राज्यं कृत्वा दिवमवाप ।

दुर्योधनद्वारा अपना राज्य छिन जानेपर उन्होंने (अपने भाई) धर्म (युधिष्ठिर), भीम, नकुल, सहदेव और (पत्नी) द्रौपदीके साथ विराटनगरमें अज्ञातवास किया । वहाँ जब शत्रुओंने आक्रमण करके विराटकी गौओंको अपने अधिकारमें कर लिया, तब अर्जुनने भीष्म, द्रोण, कृप, दुर्योधन और कर्ण आदिको हराकर समस्त गौओंको वापस भुमाया । फिर विराटराजके द्वारा भाइयोंसहित सम्मानित होकर कुरुक्षेत्रमें भगवान् वासुदेवको साथ ले अत्यन्त बलशाली धूतराष्ट्रपुत्रोंके साथ युद्ध किया और भीष्म, द्रोण, कृप, शाल्य, कर्ण आदि महापराक्रमी क्षत्रियों तथा नाना देशोंसे आये हुए अनेकों राजपुत्रोंसहित दुर्योधनादि धूतराष्ट्रपुत्रोंका उन्होंने भीम आदिके सहयोगसे बध करके अपना राज्य प्राप्त कर लिया । फिर भाइयोंसहित वे धर्मके अनुसार (अपने सबसे बड़े भाई धर्मराज युधिष्ठिरको राजा के पदपर अभिषेक करके) राज्यका पालन करके अन्तमें सबके साथ प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गलोकमें चले गये ॥ १—३ ॥

अर्जुनको सुभद्राके गर्भसे 'अभिमन्यु' नामक पुत्र प्राप्त हुआ, जिसने महाभारत-युद्धमें चक्रव्यूहके भीतर प्रवेश करके अनेक राजाओंको मृत्युके घाट उताए था । अभिमन्युके उत्तराके गर्भसे परीक्षित्तका जन्म हुआ । धर्मनन्दन युधिष्ठिर जब बानप्रस्थ धर्मके अनुसार यन्में जाने लगे, तब उन्होंने परीक्षित्तको राजा के पदपर अभिषिक्त कर दिया । तब वे भी धर्मपूर्वक राज्यका पालन करके अन्तमें वैकुण्ठधाममें जाकर अक्षय सुखके भागी हुए । परीक्षित्तसे मातृवतीके गर्भसे जनमेजयका जन्म हुआ, जिन्होंने ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त होनेके लिये व्यासशिष्य वैशम्पायनके मुखसे सम्पूर्ण महाभारत आदिसे अन्ततक सुना था । वे भी धर्मपूर्वक राज्यका पालन करके अन्तमें स्वर्गवासी हुए । जनमेजयको अपनी पत्नी पुष्पवतीके गर्भसे 'शतानीक' नामक पुत्र प्राप्त हुआ । उन्होंने धर्मपूर्वक राज्यका पालन करते हुए संसार-दुःखसे विरक्त हो, शौनकके उपदेशसे यागादि कर्मोंके द्वारा समस्त लोकोंके अधीश्वर भगवान् विष्णुकी निष्कामभावसे आराधना की और अन्तमें वैष्णवधार्यको प्राप्त कर लिया । शतानीकके फलवतीके गर्भसे सहस्रानीककी उत्पत्ति हुई । सहस्रानीक बाल्यावस्थामें ही राजके पदपर अभिषिक्त हो भगवान् नृसिंहके प्रति अत्यन्त भक्तिभाव रखने लगे । उनके चरित्रका आगे वर्णन किया जायगा । सहस्रानीकके मृगवतीसे उदयन हुए । वे कौशाम्बीमें धर्मपूर्वक राज्यका पालन करके नारायणकी आराधना करते हुए वैकुण्ठधामको प्राप्त हुए । उदयनके वासवदत्ताके गर्भसे नरवाहन नामक पुत्र हुआ । वह भी न्यायतः राज्यका पालन करके स्वर्गको

नरवाहनस्याश्वमेधदत्तायां क्षेमकः ॥ ११ ॥ स च
राज्यस्थः प्रजाः परिपाल्य म्लेच्छाभिभूते जगति
ज्ञानबलात् कलापग्राममाश्रितः ॥ १२ ॥

यः श्रहधानः पठते शृणोति वा
हरी च भक्तिं चरितं महीभृताम् ।
स संततिं प्राप्य विशुद्धकर्मकृद्
दिवं समासाद्य वसेच्चिरं सुखी ॥ १३ ॥

प्राप्त हुआ। नरवाहनके अश्वमेधदत्ताके गर्भसे क्षेमक नामक पुत्रका जन्म हुआ। क्षेमक राजाके पदपर प्रतिष्ठित होनेके पश्चात् प्रजाका धर्मपूर्वक पालन करने लगे। उन्हीं दिनों म्लेच्छोंका आक्रमण हुआ और सम्पूर्ण जगत् उनके द्वारा पददलित होने लगा। तब वे ज्ञानके बलसे कलापग्राममें चले आये ॥ ४—१२ ॥

जो उपर्युक्त राजाओंकी हरिभक्ति तथा चरित्रका श्रद्धापूर्वक पाठ या श्रवण करता है, वह विशुद्ध कर्म करनेवाला पुरुष संतति प्राप्त करके अन्तमें स्वर्गलोकमें पहुँचकर वहाँ सुदीर्घ कालतक सुखी रहता है ॥ १३ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे शांतनुसंततिवर्णं नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'शांतनुकी संततिका वर्णन' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २९ ॥

तीसवाँ अध्याय

भूगोल तथा स्वर्गलोकका वर्णन

श्रीसूत उकाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि भूगोलं द्विजसत्तमाः ।
संक्षेपात् पर्वताकीर्णं नदीभिश्च समन्ततः ॥ १ ॥

जम्बुप्लक्षशाल्मलकुशक्रीडशाकपुष्करसंज्ञाः
सप्त द्वीपाः । लक्ष्योजनप्रमाणाजम्बुद्वीपादुत्तरोत्तर-
द्विगुणाः ॥ लवणेश्वरससुरासर्पिर्दधिदुग्धस्वच्छोदक-
संज्ञैः परस्परं द्विगुणैः सप्तसमुद्रैर्वलयाकारैस्ते द्वीपाः
परिधिष्ठिताः ॥ २ ॥ योऽसौ मनुपुत्रः प्रियव्रतो नाम
स सप्तद्वीपाधिपतिर्बभूव । तस्य अग्रीधादयो दश
पुत्रा बभूवः ॥ ३ ॥ त्रयः प्रव्रजिताः । शिष्टानां सप्तानां
सप्तद्वीपाः पित्रा दत्ताः । तत्र जम्बुद्वीपाधिपतेरग्नीधस्य
नव पुत्रा जाताः ॥ ४ ॥

नाभिः किम्पुरुषश्चैव हरिवर्ष इलावृतः ।
रथ्यो हिरण्मयश्चैव कुरुर्भद्रश्च केतुमान् ॥ ५ ॥

श्रीसूतजी बोले—द्विजवरो! अब मैं सब और नदी तथा पर्वतोंसे व्याप्त भूगोल (भूमिमण्डल)-का संक्षेपसे वर्णन करूँगा ॥ १ ॥

इस पृथ्वीपर जम्बु, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च,
शाक और पुष्कर नामके सात द्वीप हैं। इनमें जम्बुद्वीप
तो लाख योजन लंबा-चौड़ा है और प्लक्ष आदि
जम्बुद्वीपसे उत्तरोत्तर दुगुने बड़े हैं। ये द्वीप क्रमशः
अपनेसे दूने प्रमाणवाले लवण, इक्षुरस, सुरा, धृत, दधि,
दुग्ध और शुद्धोदक नामसे विख्यात सात वलयाकार
समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। मनुके जो 'प्रियव्रत' नामक पुत्र
थे, वे ही सात द्वीपोंके अधिपति हुए। उनके अग्रीध आदि
दस पुत्र हुए। इनमेंसे तीन तो सर्वत्यागी संन्यासी हो गये
और शेष सातोंको उनके पिताने एक-एक द्वीप बौट
दिया। इनमें जम्बुद्वीपके अधिपति 'अग्रीध'के नी पुत्र
हुए। उनके नाम ये हैं—नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत,
रथ्य, हिरण्मय, कुरु, भद्र और केतुमान् ॥ २—५ ॥

नववर्षाः विभज्य पुत्रेभ्यः पित्रा दत्ता वनं
प्रविशता । अग्रीधीयं हिमाह्नयम् । यस्याधिपतिर्नाभः
ऋषभः पुत्रो वभूव ॥ ६ ॥

ऋषभाद् भरतो भरतेन चिरकालं धर्मेण
पालितत्वादिदं भारतं वर्षमभूत् । इलावृतस्य मध्ये
मेरुः सुवर्णमयश्चतुरशीतिसहस्राणि योजनानि
तस्योच्छायः । षोडशसहस्रमप्यधस्तादवगाढः ।
तद्विगुणो मूर्धि विस्तारः ॥ ७ ॥ तन्मध्ये ब्रह्मणः
पुरी । ऐन्द्रशमिन्द्रस्य चामरावती । आग्नेय्या-
मानेस्तेजोवती । याम्यां यमस्य संयमनी । नैऋत्यां
निर्झर्तेर्थयंकरी । वारुण्यां वरुणस्य विश्वावती ।
बायव्यां वायोर्गन्धवती । उदीच्यां सोमस्य
विभावरीति । नववर्षान्वितं जम्बूदीयं पुण्यपर्वतैः
पुण्यनदीभिरन्वितम् ॥ ८ ॥ किम्पुरुषादीन्यष्टवर्षाणि
पुण्यवतां भोगस्थानानि साक्षाद् भारतवर्षमेकं
कर्मभूमिश्चातुर्वर्ण्ययुतम् ॥ ९ ॥

तत्रैव कर्मभिः स्वर्गं कृतैः प्राप्यन्ति मानवाः ।
मुक्तिश्चात्रैव निष्कामैः प्राप्यते ज्ञानकर्मभिः ।
अधोगतिमितो विष्णु यान्ति वै पापकारिणः ॥ १०

ये पापकारिणस्तान् विद्धि पातालतले नरके
कोटिसमन्वितान् ॥ ११ ॥

अथ सप्त कुलपर्वताः कथ्यन्ते । महेन्द्रो मलयः
शुक्लिमान् ऋष्यमूकः सह्यपर्वतो विन्ध्यः पारियात्रः
इत्येते भारते कुलपर्वताः ॥ १२ ॥ नर्मदा सुरसा
ऋषिकुल्या भीमरथी कृष्णा वेणी चन्द्रभागा
ताम्रपणी इत्येताः सप्त नद्याः । गङ्गा यमुना गोदावरी
तुङ्गभद्रा कावेरी सारयुरित्येता महानद्याः
पापघ्न्यः ॥ १३ ॥

जम्बुनाम्ना च विख्यातं जम्बूदीपमिदं शुभम् ।
लक्ष्योजनविस्तीर्णमिदं श्रेष्ठं तु भारतम् ॥ १४

राजा अग्रीध जब (घर त्यागकर) बनमे जाने लगे
तब उन्होंने जम्बूदीपको उसके नौ खण्ड करके अपने
पुत्रोंको बाँट दिया । हिमालय पर्वतसे मिला हुआ वर्ष
अग्रीध (नाभि)-को मिला था । इसके अधिपति राजा
नाभिसे 'ऋषभ' नामक पुत्र हुआ ॥ ६ ॥

ऋषभसे भरतका जन्म हुआ, जिनके हांग चिरकालतक
धर्मपूर्वक पालित होनेके कारण इस देशका नाम 'भारतवर्ष'
पड़ा । इलावृत वर्षके बीचमें मेरु नामक सुवर्णमय पर्वत
है । उसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है । वह सोलह
हजार योजनतक नीचे जमीनमें गङ्गा है और इससे दूनी
(बत्तीस हजार योजन) इसकी चोटीकी चौड़ाई है ।
इसीके मध्यभागमें ब्रह्माजीकी पुरी है, पूर्वभागमें इन्द्रकी
'अमरावती' है, अग्निकोणमें अग्निकी 'तेजोवती' पुरी है,
दक्षिणमें यमराजकी 'संयमनी' है, नैऋत्यकोणमें निर्झर्तिकी
'भयंकरी' नामक पुरी है, पश्चिममें वरुणकी 'विश्वावती'
है, बायव्यकोणमें वायुकी 'गन्धवती' नगरी है और
उत्तरमें चन्द्रमाकी 'विभावरी' पुरी है । नौ खण्डोंसे मुक्त
यह जम्बूदीप पुण्य पर्वतों तथा पुण्य नदियोंसे युक्त है ।
किम्पुरुष आदि आठ वर्ष पुण्यवानोंके भोगस्थान हैं;
केवल एक भारतवर्ष ही चारों वर्णोंसे युक्त कर्मक्षेत्र है ।
भारतवर्षमें ही कर्म करनेसे मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करेंगे और
वहाँ ही ज्ञान-साधकको निष्काम कर्मोंसे मुक्ति भी प्राप्त
होती है । विप्रवर ! पाप करनेवाले पुरुष यहाँसे अधोगतिको
प्राप्त होते हैं । जो पापी हैं, उन करोड़ों मनुष्योंको
पातालस्थ नरकमें पड़े हुए समझिये ॥ ७—११ ॥

अब सात कुलपर्वतोंका वर्णन किया जाता है—
महेन्द्र, मलय, शुक्लिमान्, ऋष्यमूक, सह्य, विन्ध्य और
पारियात्र । ये ही भारतवर्षमें कुलपर्वत हैं । नर्मदा, सुरसा,
ऋषिकुल्या, भीमरथी, कृष्णावेणी, चन्द्रभागा तथा
ताम्रपणी—ये सात नदियाँ हैं तथा गङ्गा, यमुना, गोदावरी,
तुङ्गभद्रा, कावेरी और सरयू—ये छः महानदियाँ सब
पापोंको नष्ट करनेवाली हैं ॥ १२-१३ ॥

यह सुन्दर जम्बूदीप जम्बू (जामुन)-के नापसे
विख्यात है । इसका विस्तार एक लाख योजन है ।
इस द्वीपमें यह भारतवर्ष ही सबसे श्रेष्ठ स्थान है ॥ १४ ॥

ऋक्षद्वीपादिपुण्या जनपदाः। निष्कामा चे
स्वधर्मेण नरसिंहं यजन्ति से तत्र निवासन्ति।
अधिकारक्षयान्मुक्तिं च प्राप्नुवन्ति ॥ १५ ॥
जम्बवाह्याः स्वादूदकान्ताः सप्त पद्योधयः। ततः परा
हिरण्यमयी भूमिः। ततो लोकालोकपर्वतः। एष
भूलोकः ॥ १६ ॥

अस्योपरि अन्तरिक्षलोकः। खेचराणां
रम्यस्तदूर्ध्वं स्वर्गलोकः ॥ १७

स्वर्गस्थाने महापुण्यं प्रोच्यमानं निबोधत ।
भारते कृतपुण्यानां देवानामपि चालयम् ॥ १८

मध्ये पृथिव्यामद्रीन्द्रो भास्वान् मेरुहिरण्यमयः।
योजनानां सहस्राणि चतुराशीतिमुच्छ्रुतः ॥ १९

प्रविष्टः ओडशाधस्ताद्वरण्यां धरणीधरः।
तावत्प्रमाणा पृथिवीं पर्वतस्य समन्ततः ॥ २०

तस्य शृङ्गब्रयं मूर्धिन् स्वर्गो यत्र प्रतिष्ठितः।
नानाद्वृमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम् ॥ २१

मध्यमं पक्षिमं पूर्वं मेरोः शृङ्गाणि त्रीणि वै।
मध्यमं स्फटिकं शृङ्गं चैतूर्यमणिकामयम् ॥ २२

इन्द्रनीलमयं पूर्वं माणिक्यं पक्षिमं स्मृतम्।
योजनानां सहस्राणि नियुतानि चतुर्दश ॥ २३

उच्छ्रुतं मध्यमं शृङ्गं स्वर्गो यत्र त्रिविष्टपः।
अप्रभान्तरितं शृङ्गं मूर्धिन् छत्राकृति स्थितम् ॥ २४

पूर्वमुत्तरशृङ्गाणामन्तरं मध्यमस्य च।
त्रिविष्टये नाकपृष्ठे हृप्सरा: सन्ति निर्वृताः ॥ २५

आनन्दोऽथ प्रमोदश्च स्वर्गशृङ्गे तु मध्यमे।
श्वेतश्च पी॒ष्टिकश्चैव उपशोभनमन्यथी ॥ २६

ऋक्षद्वीप आदि पुण्य देश हैं। जो लोग निष्कामभावसे अपने-अपने वर्णधर्मका आचरण करते हुए भगवान् नृसिंहका यजन करते हैं, वे ही उन पुण्य देशोंमें निवास करते हैं तथा कर्माधिकारका क्षय हो जानेपर मोक्ष भी प्राप्त कर लेते हैं। जम्बूद्वीपसे लेकर 'शुद्धोदक' संज्ञक समुद्रपर्यन्त सात द्वीप और सात समुद्र हैं। उसके बाद स्वर्णमयी भूमि है। उसके आगे लोकालोक पर्वत है—यह सब 'भूलोक' का वर्णन हुआ ॥ १५—१६ ॥

इसके ऊपर अन्तरिक्षलोक है, जो अन्तरिक्षचारी प्राणियोंके लिये परम रमणीय है। इसके ऊपर स्वर्गलोक है। अब महापुण्यमय स्वर्गलोकका वर्णन किया जाता है, उसे आपलोग मुझसे सुनें। जिन्होंने भारतवर्षमें रहकर पुण्यकर्म किये हैं, उनका तथा देवताओंका बहाँ निवास है। भूमण्डलके बीचमें पर्वतोंका राजा मेरु है, जो सुवर्णमय होनेके कारण अपनी प्रभासे उद्घासित होता रहता है। वह पर्वत चौरासी हजार योजन ऊँचा है और सोलह हजार योजनतक पृथ्वीमें नीचेकी ओर धैसा हुआ है। साथ ही उसके चारों ओर उतने ही प्रमाणगाली पृथिवी हैं ॥ १७—२० ॥

मेरुगिरिके ऊपरी भागमें तीन शिखर हैं, जहाँ स्वर्गलोक वसा हुआ है। मेरुके बे स्वर्णीय शिखर नाना प्रकारके वृक्ष और लताओंसे आवृत तथा भौति-भौतिके पुष्पोंसे सुशोभित हैं। मध्यम, पक्षिम और पूर्व—ये ही तीन मेरुके शिखर हैं। इनमें मध्यम शृङ्ग स्फटिक तथा चैतूर्यमणिमय है, पूर्व शृङ्ग इन्द्रनीलमय और पक्षिम शिखर माणिक्यमय कहा जाता है। इनमेंसे मध्यम शृङ्ग चौदह लाख चौदह हजार योजन ऊँचा है, जहाँ 'त्रिविष्ट' नामका स्वर्गलोक प्रतिष्ठित है। पूर्व शृङ्ग मेरुके ऊपर छत्राकार स्थित है। मध्यम शृङ्ग और उसके बीच अन्यकारका व्यवधान है। वह मध्यम शृङ्ग और उसके बादवाले पक्षिम शिखरके बीचमें स्थित है। नाकपृष्ठ—त्रिविष्टमें आनन्दमयी अप्सराएँ निवास करती हैं ॥ २१—२५ ॥

मेरुके मध्यवर्ती शिखरपर विराजमान स्वर्गमें आनन्द और प्रमोदका वास है। पक्षिम शिखरपर शेष, पी॒ष्टिक, उपशोभन और काम एवं स्वर्गके

आह्नाटः स्वर्गराजा वै स्वर्गशुद्धे तु पश्चिमे।
निर्मलो निरहंकारः सौभाग्यश्रातिनिर्मलः ॥ २७

स्वर्गाश्चैव द्विजश्रेष्ठ पूर्वशुद्धे समास्थिताः।
एकविंशतिः स्वर्गा वै निविष्टा मेरुमूर्धनि ॥ २८

अहिंसादानकतरी यज्ञानां तपसां तथा।
तत्तेषु निवसन्ति स्म जनाः क्रोधविवर्जिताः ॥ २९

जलप्रवेशे चानन्दं प्रमोदं बहिसाहसे।
भृगुप्रपाते सौख्यं च रणं चैवास्य निर्मलम् ॥ ३०

अनाशके तु संन्यासे मृतो गच्छेत्रिविष्टपम्।
कतुयाजी नाकपृष्ठमग्निहोत्री च निर्वृतिम् ॥ ३१

तडागकूपकर्ता च लभते पौष्टिकं द्विज।
सुवर्णदायी सौभाग्यं लभन् स्वर्गं तपःफलम् ॥ ३२

शीतकाले महाबह्वि प्रज्वालयति यो नरः।
सर्वसत्त्वहितार्थाय स्वर्गं सोऽप्सरसं लभेत् ॥ ३३

हिरण्यगोप्रदाने हि निरहंकारमाज्यात्।
भूमिदानेन शुद्धेन लभते शान्तिकं पदम् ॥ ३४

रौप्यदानेन स्वर्गं तु निर्मलं लभते नरः।
अश्वदानेन पुण्याहं कन्यादानेन मङ्गलम् ॥ ३५

द्विजेभ्यस्तर्पणं कृत्वा दत्त्वा वस्त्राणि भक्तितः।
श्वेतं तु लभते स्वर्गं यत्र गत्वा न शोचते ॥ ३६

कपिलागोप्रदानेन परमार्थं महीयते।
गोवृष्टस्य प्रदानेन स्वर्गं मन्मथमाज्यात् ॥ ३७

माघमासे सरित्त्वायी तिलधेनुप्रदस्तथा।
छत्रोपानहदाता च स्वर्गं यात्युपशोभनम् ॥ ३८

राजा आह्नाट निवास करते हैं। द्विजश्रेष्ठ! पूर्व शिखरपर निर्मल, निरहंकार, सौभाग्य और अतिनिर्मल नामक स्वर्ग सुशोभित होते हैं। मेरु पर्वतकी चोटीपर कुल इककीस स्वर्ग बसे हुए हैं। जो अहिंसाधर्मका पालन करनेवाले और दानी हैं तथा जो यज्ञ और तपका अनुष्ठान करनेवाले हैं, वे क्रोधरहित मनुष्य इन स्वर्गोंमें निवास करते हैं ॥ २६—२९ ॥

जो धर्मपालनके लिये जलमें प्रविष्ट होकर प्राण त्याग करते हैं, वे 'आनन्द' नामक स्वर्गको प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार जो धर्मरक्षकके ही लिये अग्रिमें जलनेका साहस करते हैं, उन्हें 'प्रमोद' नामक स्वर्गकी प्राप्ति होती है और जो धर्मार्थ पर्वतशिखरसे कूदकर प्राण देते हैं, उन्हें 'सौख्य' संज्ञक स्वर्ग प्राप्त होता है। संग्रामकी मृत्युसे 'निर्मल' (या अतिनिर्मल) नामक स्वर्गकी उपलब्धि होती है। उपवास-द्व्रत एवं संन्यासावस्थामें पृथ्युको प्राप्त होनेवाले लोग 'त्रिविष्ट' नामक स्वर्गमें जाते हैं। श्रीत यज्ञ करनेवाला 'नाकपृष्ठ'में और अग्निहोत्री 'निर्वृति' नामक स्वर्गमें जाते हैं। द्विज! पोखरा और कुओं थनघानेवाला मनुष्य 'पौष्टिक' स्वर्गको पाता है, सोना दान करनेवाला पुरुष तपस्याके फलभूत 'सौभाग्य' नामक स्वर्गको जाता है। जो शीतकालमें सब प्राणियोंके हितके लिये लकड़ियोंके ढेरको जलाकर बड़ी भारी अग्निराशि प्रज्वलित करता और उन्हें गरमी पहुँचाता है, वह 'अप्सरा' संज्ञक स्वर्गको उपलब्ध करता है। सुवर्ण और गोदान करनेपर दाता 'निरहंकार' नामवाले स्वर्गको पाता है और शुद्धभावसे भूमिदान करके मनुष्य 'शान्तिक' नामसे प्रसिद्ध स्वर्गधामको उपलब्ध करता है। चाँदी दान करनेसे मनुष्यको 'निर्मल' नामक स्वर्गकी प्राप्ति होती है। अश्वदानसे दाता 'पुण्याह'का और कन्यादानसे 'मङ्गल'का लाभ करता है। द्वाहाणोंको तृप्त करके उन्हें भक्तिपूर्वक वस्त्र दान करनेसे मनुष्य 'श्वेत' नामक स्वर्गको पाता है, जहाँ जाकर वह कभी शोकका भागी नहीं होता ॥ ३०—३६ ॥

कपिला गौका दान करनेसे दाता 'परमार्थ' नामक स्वर्गमें पूजित होता है और उत्तम साँड़का दान करनेसे उसे 'मन्मथ' नामक स्वर्गकी प्राप्ति होती है। जो माघके महीनेमें नित्य नदीमें स्नान करता, तिलमयी धेनु देता

त्रिवृत्तं त्रिवृत्तं त्रिवृत्तं त्रिवृत्तं ।
त्रिवृत्तं त्रिवृत्तं त्रिवृत्तं त्रिवृत्तं ॥ ३९

त्रिवृत्तं त्रिवृत्तं त्रिवृत्तं त्रिवृत्तं च नित्यशः ।
त्रिवृत्तं त्रिवृत्तं त्रिवृत्तं त्रिवृत्तं शुभं लभेत् ॥ ४० ॥

त्रिवृत्तं त्रिवृत्तं त्रिवृत्तं त्रिवृत्तं ब्रह्मचारी दुष्कृतः ।
त्रिवृत्तं त्रिवृत्तं त्रिवृत्तं त्रिवृत्तं यथा भूतहिते रतः ।
त्रिवृत्तं त्रिवृत्तं त्रिवृत्तं त्रिवृत्तं नेधावी निरहंकारमानुयात् ॥ ४१ ॥

ये ये हि भावेन यद्यहानं प्रयच्छति ।
ननन्त्यगम्बाग्रोति यद्यदिच्छति मानवः ॥ ४२ ॥

चत्वारि अतिदानानि कन्या गौर्भः सरस्वती ।
नरकादुद्धरन्त्येते जयवाहनदोहनात् ॥ ४३ ॥

यस्तु सर्वाणि दानानि ब्राह्मणोभ्यः प्रयच्छति ।
सप्त्याप्य न निवर्त्तेत स्वर्गं शान्तपनापयम् ॥ ४४ ॥

शृङ्गे तु पश्चिमे यत्र ब्रह्मा तत्र स्थितः स्वयम् ।
पूर्वशृङ्गे स्वयं विष्णुः मध्ये चैव शिवः स्थितः ॥ ४५ ॥

अतः परं तु विप्रेन्द्र स्वर्गाध्यानमिमं शृणु ।
विमलं विपुलं शुद्धमुपर्युपरि संस्थितम् ॥ ४६ ॥

प्रथमे तु कुमारस्तु द्वितीये मातरः स्थिताः ।
तृतीये सिद्धगन्धर्वास्तुये विद्याधरा द्विजः ॥ ४७ ॥

पञ्चमे नागराजश्च षष्ठे तु विनतासुतः ।
सप्तमे दिव्यपितरो धर्मराजस्तथाष्टमे ।
नवमे तु तथा दक्ष आदित्यो दशमे पथिः ॥ ४८ ॥

भूलोकाच्छतसाहस्रादूर्ध्वं चरति भास्करः ।
योजनानां सहस्रे द्वे विष्णुभनं समन्ततः ॥ ४९ ॥

और छत्र तथा जूतेका दान करता है, वह 'उपशोभन' नामक स्वर्गमें जाता है। जिसने देवमन्दिर बनवाया है, जो द्विजोंकी सेवा करता है तथा सदा तीर्थयात्रा करता रहता है, वह 'स्वर्गराज' (आह्लाद)-में प्रतिष्ठित होता है। जो मनुष्य नित्य एक ही अन्न भोजन करता, जो प्रतिदिन केवल रातमें ही खाता तथा त्रिरात्र आदि द्वितोंके द्वारा उपवास किया करता है, वह 'शुभ' नामक स्वर्गको पाता है। नदीमें स्नान करनेवाला, क्रोधको जीतनेवाला एवं दृढ़तापूर्वक द्रवतका पालन करनेवाला ब्रह्मचारी सम्पूर्ण जीवोंके हितमें तत्पर रहनेवाले पुरुषके समान 'निर्मल' नामक स्वर्गको पाता है। मेधावी पुरुष विद्यादान करके 'निरहंकार' नामक स्वर्गको प्राप्त होता है ॥ ३७—४१ ॥

मनुष्य जिस-जिस भावनासे जो-जो दान देता है और उससे जो-जो फल चाहता है, तदनुसार ही विभिन्न स्वर्गलोकोंको पाता है। कन्या, गौ, भूमि तथा विद्या—इन चारोंके दानको 'अतिदान' कहा गया है। ये चार वस्तुएँ दान की जानेपर दाताका नरकसे डंडार कर देती हैं। इतना ही नहीं, बैलपर सबारी करने और गायको दुहनेसे जो दोष होता है, उससे भी मनुष्य मुक्त हो जाता है। जो ब्राह्मणोंको सब प्रकारके दान अप्रित करता है, वह शान्त एवं निरामय स्वर्गलोकको प्राप्त होकर फिर वहाँसे नहीं लौटता है। मेरुगिरिके पश्चिम शिखरपर, जहाँ स्वयं ब्रह्मजी विराजमान हैं, वहाँ वह स्वयं भी वास करता है। पूर्वशृङ्गपर साक्षात् भगवान् विष्णु और मध्यम शृङ्गपर शिवजी विराजमान हैं ॥ ४२—४५ ॥

विप्रेन्द्र ! इसके बाद आप स्वर्गके इन 'निर्मल' तथा 'विशाल' मार्गका वर्णन सुनें। स्वर्गलोकके दस मार्ग हैं। ये सभी एकके ऊपर दूसरेके क्रमसे स्थित हैं। प्रथम मार्गपर कुमार कातिकिय और दूसरेपर मातृकाएँ रहती हैं। द्वितीयों पर सार्वजनिक विद्युत-गन्धर्व, चौथेपर विद्याधर, पाँचवेंपर नागराज और छठेपर विनतानन्दन गरुडजी विराजमान हैं। सातवेंपर दिव्य पितृगण, आठवेंपर धर्मराज, नववेंपर दक्ष और दसवें मार्गपर आदित्यकी स्थिति है ॥ ४६—४८ ॥

भूलोकसे एक लाख दो हजार योजनकी कैंचाईपर सूर्यदेव विचरते हैं। उस कैंचाईपर सब और उनके रुक्नेके लिये आधार हैं

त्रिगुणं परिणाहेन सूर्यविम्बं प्रमाणतः।
सोमपूर्या विभावर्या मध्याह्ने चार्यमा यदा।
महेन्द्रस्यामरावत्यां तदा तिष्ठति भास्करः ॥ ५०

मध्याह्ने त्वमरावत्यां यदा भवति भास्करः।
तदा संयमने याम्ये तत्रोद्यांस्तु प्रदृश्यते ॥ ५१

में प्रदक्षिणं कुर्वन् भात्येव सविता सदा।
ध्रुवाधारस्तथोत्तिष्ठन् बालखिल्यादिभिः स्तुतः ॥ ५२

तथा उस ऊचाईसे तीन गुने प्रमाणमें सूर्यमण्डलका दीर्घ विस्तार है। जिस समय सूर्य चन्द्रमाकी विभावरीपुरीमें दोपहरके समय रहते हैं, उस समय इन्द्रकी अमरावतीमें उदय होते-से प्रतीत होते हैं। जिस समय अमरावतीपुरीमें मध्याह्नके समय सूर्य रहते हैं, उस समय यमकी संयमनी पुरीमें उदित होते दोख पड़ते हैं। भगवान् सूर्य सदा मेरुगिरिकी परिक्रमा करते हुए ही सुशोभित होते हैं। वे ध्रुवके आधारपर स्थित हैं। उनके उदय होते समय बालखिल्यादि ऋषि उनकी सुति करते हैं ॥ ४९—५२ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे भूगोलकर्णने विश्वेऽध्यायः ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'भूगोलवर्णन' विषयक तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३० ॥

इकतीसवाँ अध्याय

ध्रुव-चरित्र तथा ग्रह, नक्षत्र एवं पातालका संक्षिप्त वर्णन

भरद्वाज उवाच

कोऽसौ ध्रुवः कस्य सुतः सूर्याधारोऽभवत् कथम्।
विचिन्त्य कथयाशु त्वं सूत जीव समाः शतम् ॥ १

सूत उवाच

मनोः स्वायम्भूवस्यासीदुत्तानचरणः सुतः।
तस्य क्षितिपतेर्विप्र द्वौ सुती सम्बभूवतुः ॥ २
सुरुच्यामुत्तमो ज्येष्ठः सुनीत्यां तु ध्रुवोऽपरः।
मध्येसभं नरपतेरुपविष्टस्य चैकदा ॥ ३
सुनीत्या राजसेवायै नियुक्तोऽलङ्कृतः सुतः।
ध्रुवो धात्रेयिकापुत्रैः समं विनयतत्परः ॥ ४
म गत्वोत्तानचरणं क्षोणीशं प्रणनाम हु।
दृष्टोत्तमं तदुत्सङ्गे निविष्टं जनकस्य चै ॥ ५
प्राप्य सिंहासनस्थं च नृपतिं बालचापलात्।
आरुरुक्षुमवेक्ष्यामुं सुरुचिर्धूवमङ्गवीत् ॥ ६

भरद्वाजजीने पूछा — सूतजी ! ध्रुव कौन है ? किसके पुत्र हैं ? तथा वे सूर्यके आधार कैसे हुए ? ये सब बातें भलीभांति सोच-विचारकर बताइये । हमारी यह कामना है कि आप हमें कथा सुनाते हुए सैकड़ों वर्षोंतक जीवित रहें ॥ १ ॥

सूतजी ओले — विप्रवर ! स्वायम्भूव मनुके एक पुत्र थे राजा उत्तानपाद । उन धूपालके दो पुत्र हुए । एक तो सुरुचिके गर्भसे उत्पन्न हुआ था, जिसका नाम उत्तम था । वह ज्येष्ठ था और दूसरा पुत्र 'ध्रुव' था, जो सुनीतिके गर्भसे उत्पन्न हुआ था । एक दिन जब राजा राजसभामें बैठे हुए थे, सुनीतिने अपने पुत्र ध्रुवको वस्त्राभूषणसे विभूषित करके राजाकी सेवाके लिये भेजा । विनयशील ध्रुवने धायके पुत्रोंके साथ राजसभामें जाकर राजा उत्तानपादको प्रणाम किया । वहाँ उत्तमको पिताकी गोदमें बैठा देख ध्रुव सिंहासनपर आसीन राजाके पास जा पहुँचा और बालोंचित चपलताके कारण राजाकी गोदमें चढ़नेकी इच्छा करने लगा । यह देख सुरुचिने ध्रुवसे कहा ॥ २—६ ॥

सुरुचिरवाच

दीर्घेरेय किमारोहुमिच्छेरङ्गे महीपते: ।
बाल बालिशाबुद्धित्वादभाग्याजाठरोद्भवः ॥ ७
अस्मिन् सिंहासने स्थातुं सुकृतं किं त्वया कृतम् ॥ ८
यदि स्यात् सुकृतं तत्किं दुर्भाग्योदरगोऽभवः ।
अनेनैवानुमानेन बुद्ध्यस्व स्वल्पपुण्यताम् ॥ ९
भूत्वा राजकुमारोऽपि नालंकुर्या ममोदरम् ।
सुकृक्षिजममुं पश्य त्वमुत्तममनुत्तमम् ॥ १०
अधिजानु धराजान्वोमानेन परिबृहितम् ।

सूत उक्तवाच

मध्येराजसभं बालस्तयेति परिभर्त्सितः ॥ ११
नियतनेत्रवाप्याम्बुद्धीयति किंचित्त्र चोक्तवान् ।
उचितं नोचितं किंचित्त्रोचित्वान् सोऽपि पार्थिवः ॥ १२
नियन्तितो महिष्याशु तस्याः सौभाग्यगौरवात् ।
विसर्जितसभालोकं शोकं संहत्य चेष्टितः ॥ १३
शैशवैः स शिशुर्नत्वा नृपं स्वसदनं यथो ।
सुनीतिर्नीतिनिलयमवलोक्याथ बालकम् ॥ १४
मुखलक्ष्म्येव चाज्ञासीद् धूवं राजापमानितम् ।
अथ दृष्टा सुनीतिं तु रहोऽन्तःपुरवासिनीम् ॥ १५
आलिङ्ग्य दीर्घं निःश्वस्य मुक्तकण्ठं रुरोद ह ।
सान्त्वयित्वा सुनीतिस्तं बदने परिमार्ज्य च ॥ १६
दुकूलाङ्गलसप्तकैर्वीज्य तं मृदुपाणिना ।
पप्रच्छ तनयं माता बद रोदनकारणम् ॥ १७
विद्यमाने नरपती शिशो केनापमानितः ।

धूव उक्तवाच

सप्तृच्छे जननि त्वाहं सप्त्वक् शंस ममाग्रतः ॥ १८
भार्यात्वेऽपि च सामान्ये कथं सा सुरुचिः प्रिया ।
कथं न भवती मातः प्रिया क्षितिपतेरसि ॥ १९

सुरुचि बोली—अभागिनीके बच्चे! क्या तू भी महाराजकी गोदमें चढ़ना चाहता है? बालक! मूर्खतावश ही ऐसी चेष्टा कर रहा है। तू इसके योग्य कदापि नहीं है; क्योंकि तू एक भाग्यहीना स्त्रीके गर्भसे पैदा हुआ है। बता तो सही, तूने इस सिंहासनपर बैठनेके लिये कौन—सा पुण्यकर्म किया है? यदि पुण्य ही किया होता तो क्या अभागिनीके गर्भसे जन्म लेता? राजकुमार होनेपर भी तू मेरे उदरकी शोभा नहीं बढ़ा सका है। इसी बातसे जान लो कि तेरा पुण्य बहुत कम है। उत्तम कोखसे पैदा हुआ है—कुमार 'उत्तम' जो सर्वश्रेष्ठ है; देखो, वह कितने सम्मानके साथ पृथ्वीनाथ महाराजके दोनों घुटनोंपर बैठा है ॥ ७—१०%, ॥

सूतजी कहते हैं—राजसभाके बीच सुरुचिके हाथ इस प्रकार झिड़के जानेपर बालक धूवकी आँखोंसे अशुब्दिन्दु झारने लगे; किंतु वह धैर्यपूर्वक कुछ भी न बोला। इधर राजा भी रानीके सौभाग्य-गौरवसे आवद्ध हो, उसका कार्य उचित था या अनुचित, कुछ भी न कह सके। जब सभासदगण बिदा हुए, तब अपनी शैशवोचित चेष्टाओंसे शोकको दबाकर वह बालक राजाको प्रणाम करके अपने घरकी गया ॥ ११—१३%, ॥

सुनीतिने अपने नीतिके खजाने बालकको देखकर उसके मुखकी कान्तिसे ही जान लिया कि धूवका राजाके हाथ अपमान किया गया है। माता सुनीतिको अन्तःपुरके एकान्त स्थानमें देखकर धूव अपने दुःखके आवेगको न रोक सका। वह माताके गलेसे लगकर लम्बी सौंस खींचता हुआ फूट-फूटकर रोने लगा। सुनीतिने उसे सान्त्वना देकर कोमल हाथसे उसका मुख पोछा और साढ़ीके अञ्जलिसे हथा करती हुई माता अपने लालसे पूछने लगी—'बेटा! अपने रोनेका कारण चताओ। राजाके रहते हुए किसने तुम्हारा अपमान किया है?' ॥ १४—१७%, ॥

धूव बोला—मौं! मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ, मेरे आगे तुम ठीक-ठीक बताओ। जैसे सुरुचि राजाकी धर्मपत्नी है, वैसे ही तुम भी हो; फिर उन्हें सुरुचि ही क्यों आरी है? माता, तुम उन नरेशको क्यों प्रिय नहीं

कथमुत्तमतां प्राप्त उत्तमः सुरुचेः सुतः ।
कुमारत्वेऽपि सामान्ये कथं चाहमनुत्तमः ॥ २०
कथं त्वं मन्दभाग्यासि सुकुशिः सुरुचिः कथम् ।
कथं नृपासनं योग्यमुत्तमस्य कथं न मे ॥ २१
कथं मे सुकृतं तुच्छमुत्तमस्योत्तमं कथम् ।
इति श्रुत्वा बचस्तस्य सुनीतिनीतिमच्छिशोः ॥ २२
किंचिदुच्छस्य शनकैः शिशुशोकोपशान्तये ।
स्वभावमधुरां वाणीं बक्तुं समुपचक्रमे ॥ २३

सुनीतिरूप

अयि तात महाबुद्धे विशुद्धेनान्तरात्मना ।
निवेदयामि ते सर्वं मावमाने मतिं कृथाः ॥ २४
तथा यदुक्तं तत्सर्वं तथ्यमेव न चान्यथा ।
यदि सा पहिषी राज्ञो राज्ञीनामतिवल्लभा ॥ २५
महासुकृतसम्भारैरुत्तमश्चोत्तमोदरे ।
उवास तस्याः पुण्याया नृपसिंहासनोचितः ॥ २६
आतपत्रं च चन्द्राभं शुभे चापि हि चामरे ।
भद्रासनं तथोच्चं च सिन्धुराश्च मदोत्कटाः ॥ २७
तुरंगमाश्च तुरगा अनाधिव्याधि जीवितम् ।
निःसपलं शुभं राज्यं प्राप्य विष्णुप्रसादतः ॥ २८

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य सुनीत्यास्तन्मातुर्वाक्यमनिन्दितम् ।
सौनीतेयो धूवो वाचमाददे बक्तुमुत्तरम् ॥ २९

धूव उवाच

जनयित्रि सुनीते मे शृणु वाक्यमनाकुलम् ।
उत्तानचरणादन्यन्नास्तीति मे मतिः शुभे ॥ ३०
सिद्धार्थोऽस्याम्ब यद्यस्ति कक्षिदाश्रितकामधुक् ।
अद्यैव सकलाराध्यं तमाराध्यं जगत्पतिम् ॥ ३१
तत्तदासादितं विद्धि पदमन्यैरुरासदम् ।
एकमेव हि साहाय्यं मातर्म कर्तुमर्हसि ॥ ३२
अनुज्ञां देहि मे विष्णुं यथा चाराध्याम्यहम् ।

हो ? सुरुचिका मुत्र उत्तम क्यों श्रेष्ठ है ? राजकुमार होनेमें तो हम दोनों एक समान हैं । फिर क्या कारण है कि मैं उत्तम नहीं हूँ ? तुम क्यों मन्दभागिनी हो और सुरुचि क्यों उत्तम कोखबाली है ? राजसिंहासन क्यों उत्तमके ही योग्य है ? मेरे योग्य क्यों नहीं है ? मेरा पुण्य तुच्छ और उत्तमका पुण्य उत्तम कैसे है ? ॥ २८—२१ ॥

सुनीति अपने पुत्रके इस नीतियुक्त बचनको सुनकर धीरेसे थोड़ी लम्बी सौंस खींच बालकका दुःख शान्त करनेके लिये स्वभावतः मधुर वाणीमें बोलने लगी ॥ २२—२३ ॥

सुनीति बोली—तात ! तुम बड़े बुद्धिमान् हो । तुमने जो कुछ पूछा है, वह सब शुद्ध हृदयसे मैं निवेदन करती हूँ; तुम अथमानकी बात मनमें न लाओ । सुरुचिने जो कुछ कहा है, वह सब ठीक ही है, अन्यथा नहीं है । यदि वह पटरानी है तो सभी रानियोंसे बढ़कर राजाकी प्यारी है ही । राजकुमार उत्तमने बहुत बड़े पुण्योंका संग्रह करके उस पुण्यवती रानीके उत्तम गर्भमें निवास किया था, अतः वही राजसिंहासनपर बैठनेके योग्य है । चन्द्रमाके समान निर्मल श्वेत छत्र, सुन्दर युगल चैवर, उच्च सिंहासन, मदमत गजराज, शीघ्रगामी तुरग, आधि-व्याधियोंसे रहित जीवन, शत्रुरहित सुन्दर राज्य—ये वस्तुएँ भगवान् विष्णुकी कृपासे प्राप्त होती हैं ॥ २४—२८ ॥

सूतजी बोले—माता सुनीतिके इस उत्तम बचनको सुनकर सुनीतिकुमार धूवने उन्हें उत्तर देनेके लिये बोलना आरम्भ किया ॥ २९ ॥

धूव बोला—जन्मदायिनी माता सुनीते ! आज मेरे शान्तिपूर्वक कहे हुए बचन सुनो । शुभे ! आजतक मैं यही समझता था कि पिता उत्तानपादसे बढ़कर और कुछ नहीं है । परंतु अम्ब ! यदि अपने आश्रितजनोंकी कामना पूर्ण करनेवाला कोई और भी है तो यह जानकर आज मैं कृतार्थ हो गया । मौ ! तुम ऐसा समझो कि उन सर्वाराध्य जगदीक्षरकी आराधना करके जो-जो स्थान दूसरोंके लिये दुर्लभ है, वह सब मैंने आज ही प्राप्त कर लिया । माता ! तुम्हें मेरी एक ही सहायता करनी चाहिये । केवल आज्ञा दे दो, जिससे मैं भगवान् विष्णुकी आराधना करूँ ॥ ३०—३२ ॥

सुनीतिरकाच

अनुजातुं न शब्दोमि त्वामुत्तानशायाङ्गज ॥ ३३
 सप्ताष्टवर्षदेशीयः क्रीडायोग्योऽसि पुत्रक ।
 त्वदेकतनया तात त्वदाधारैकजीविता ॥ ३४
 लब्धोऽसि कतिभिः कष्टैरिष्टाः सम्प्राश्य देवताः ।
 यदा यदा बहिर्यासि रन्तुं त्रिचतुरं पदम् ।
 तदा तदा मम प्राणस्तात त्वामुपगच्छति ॥ ३५

ध्रुव उवाच

अद्य यावत् पिता माता त्वं द्योत्तानपदो विभुः ।
 अद्य प्रभृति मे माता पिता विष्णुर्न संशयः ॥ ३६

सुनीतिरकाच

विष्णोराराधने नाहं द्यारये त्वां सुपुत्रक ।
 जिह्वा मे शतधा यातु यदि त्वां द्यारयामि भोः ॥ ३७
 इत्यनुज्ञामिव प्राप्य जननीचरणाम्बुजौ ।
 परिक्षम्य प्रणम्याथ तपसे च ध्रुवो ययौ ॥ ३८
 तथापि धैर्यसूत्रेण सुनीत्या परिगुप्त्य च ।
 तत्रेन्दीवरजा माला ध्रुवस्योपायनीकृता ॥ ३९
 मात्रा तन्मार्गरक्षार्थं तदा तदनुगीकृताः ।
 परेवार्यप्रसरा: स्वाशीर्वादाः परेष्ठताः ॥ ४०
 सर्वत्रावत् ते पुत्र शङ्खचक्रगदाधरः ।
 नारायणो जगद्गुणापि प्रभुः कारुण्यवारिधिः ॥ ४१

सृत उवाच

स्वसौधात् स विनिर्गत्य बालो बालपराक्रमः ।
 अनुकूलेन मरुता दर्शिताध्वाविशद्वनम् ॥ ४२
 स मातृदेवतोऽभिज्ञः केवलं राजवर्त्मनि ।
 न वेद काननाध्वानं क्षणं दद्यौ नृपात्मजः ॥ ४३
 पुरोपवनमासाद्य चिन्तयामास सोऽर्थकः ।
 किं करोमि वृत्तगच्छामि को मे साहाय्यदो भवेत् ॥ ४४
 एवमुन्मील्य नयने यावत् पश्यति स ध्रुवः ।
 तावहदर्श सप्तर्षीन् अतर्कितगतीन् वने ॥ ४५
 अथ दृष्ट्वा स सप्तर्षीन् सप्तसप्ततितेजसः ।
 भाग्यसूत्रैरिवाक्ष्योपनीतान् प्रमुमोद ह ॥ ४६

सुनीति बोली—बेटा ! उत्तानपादनन्दन ! मैं तुम्हें आज्ञा नहीं दे सकती । मेरे बच्चे ! इस समय तुम्हारी सात-आठ वर्षकी अवस्था है । अभी तो तुम खेलने-कूटनेके योग्य हो । तात ! एकमात्र तुम्हों मेरी संतान हो ; मेरा जीवन एक तुम्हारे ही आधारपर टिका हुआ है । कितने ही कष्ट उठाकर, अनेक इष्ट देवी-देवताओंकी प्रार्थना करके मैंने तुम्हें पाया है । तात ! तुम जब-जब खेलनेके लिये भी तीन-चार कदम बाहर जाते हो, तब-तब मेरे प्राण तुम्हारे पीछे-ही-पीछे लगे रहते हैं ॥ ३३—३५ ॥

ध्रुव बोला—मौ ! अबतक तो तुम और राजा उत्तानपाद ही मेरे माता-पिता थे; परंतु आजसे मेरे माता और पिता दोनों भगवान् विष्णु ही हैं, इसमें संदेह नहीं है ॥ ३६ ॥

सुनीति बोली—मेरे सुयोग्य पुत्र ! मैं भगवान् विष्णुकी आराधना करनेसे तुम्हें रोकती नहीं । यदि रोकती मेरी जिह्वाके सैकड़ों टुकड़े हो जायें ॥ ३७ ॥

इस प्रकार आज्ञा-सी पाकर ध्रुव माताके चरणकमलोंकी परिक्रमा और उन्हें प्रणाम करके तपस्याके लिये प्रसिद्ध हुआ । सुनीतिने धैर्यपूर्वक सूत्रमें नील कमलको माला गैरूंकर पुत्रको उपहार दिया । मार्गमें पुत्रकी रक्षाके लिये माताने अपने शत-शत आशीर्वाद, जिनका प्रभाव शत्रु भी नहीं रोक सकते थे, उसके पीछे लगा दिये ॥ ३८—४० ॥

[वह बोली—] ‘पुत्र ! शहू, चक्र और गदा धारण करनेवाले दयासागर जगद्गुणापी भगवान् नारायण सर्वत्र तुम्हारी रक्षा करें’ ॥ ४१ ॥

सृतजी बोले—बालोचित पराक्रम करनेवाले बालक ध्रुवने अपने महलसे निकलकर अनुकूल वायुके द्वारा दिखायी हुई राह पकड़कर उपवनमें प्रवेश किया । माताको ही देवता माननेवाला और केवल राजमार्गको ही जाननेवाला वह राजकुमार बनके मार्गको नहीं जानता था, अतः एक क्षणतक आँखें बंद करके कुछ सोचने लगा ॥ ४२-४३ ॥

नगरके उपवनमें आकर बालक ध्रुव इस प्रकार चिन्ता करने लगा—‘क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? कौन मुझे सहायता देनेवाला होगा ?’ ऐसा विचार करते हुए उसने ज्यों ही आँखें खोलकर देखा, ज्यों ही उस उपवनमें अप्रत्याशित गतिवाले सप्तर्षि उसे दिखायी दिये । उन सूर्यतुल्य तेजस्वी सप्तर्षियोंको, जो मानो भाग्यसूत्रसे ही खिंचकर ले आये गये थे, देखकर ध्रुव बहुत प्रसन्न

तिलकाङ्कितसद्गालान् कुशोपग्रहिताङ्गुलीन्।
कृष्णाजिनोपविष्टांशु ब्रह्मसूत्ररलंकृतान्॥ ४७

उपगम्य विनामासः प्रबद्धकरसम्पुटः।
ध्रुवो विज्ञापयांचके प्रणम्य ललितं वचः॥ ४८

ध्रुव उवाच

अवैत मां मुनिवरा: सुनीत्युदरसम्भवम्।
उत्तानपादतनयं ध्रुवं निर्विण्णमानसम्॥ ४९

सूत उवाच

तं दृष्टोर्जस्वलं बालं स्वभावमधुराकृतिम्।
अनर्थ्यनयनेपश्यं मृदुगम्भीरभाविणम्॥ ५०

उपोपवेश्य शिशुकं प्रोचुस्ते विस्मिता भृशम्।
तवाद्यापि न जानीमो बत्स निर्वेदकारणम्॥ ५१

अनवासाभिलाषाणां वैराग्यं जायते नृणाम्।
समद्वीपपते राज्ञः कुमारस्त्वं तथा कथम्॥ ५२
किमस्माभिरहो कार्यं कस्तवास्ति मनोरथः।

ध्रुव उवाच

मुनयो मम यो बन्धुरुत्तमश्वोत्तमोत्तमः॥ ५३

पित्रा प्रदत्तं तस्यास्तु तद्दद्रासनमुत्तमम्।
भवत्कृतं हि साहाय्यं एतदिच्छामि सुव्रताः॥ ५४

अनन्यनुपभुक्तं यद् यदन्येभ्यः समुच्छृतम्।
इन्द्रादिदुरवापं यत् कर्थं लभ्येत तत्पदम्॥ ५५

इति श्रुत्वा वचस्तस्य मुनयो बालकस्य तु।
यथार्थमेव प्रत्यूचुर्मीच्याद्यास्तदा ध्रुवम्॥ ५६

मरीचित्वकच

अनास्वादितगोविन्दपदाम्बुजरजोरसः ।
मनोरथपथातीतं स्फीतं नाकलयेत् फलम्॥ ५७

हुआ। उनके सुन्दर ललाटमें तिलक लगे थे। उन्होंने अँगुलियोंमें कुशकी पवित्री पहन रखी थी तथा यज्ञोपवीतोंसे विभूषित होकर वे काले मृगचर्मपर बैठे हुए थे। उनके पास जाकर ध्रुवने गर्दन झुका दी, दोनों हाथ जोड़ लिये और प्रणाम करके मधुर बाणीमें उन्हें अपना अभिग्राय निवेदित किया ॥ ४४—४८ ॥

ध्रुव बोला—मुनिवरो! आप मुझे सुनीतिके गर्भसे उत्पन्न राजा उत्तानपादका पुत्र ध्रुव जानें। इस समय मेरा चित्त जगत्की ओरसे विरक्त है ॥ ४९ ॥

सूतजी कहते हैं—अमूल्य नीति ही जिसका भूषण है—ऐसे मधुर और गम्भीर भावण करनेवाले एवं स्वभावतः मनोहर आकृतिवाले उस तेजस्वी बालकको देखकर ऋषियोंने अत्यन्त विस्मित हो उसे अपने पास बिठाया और कहा—‘बत्स! अभीतक तुम्हारे वैराग्य या निर्वेदका कारण हम नहीं जान सके। वैराग्य तो उन मनुष्योंको होता है, जिनकी मनःकामनाएँ पूर्ण नहीं हो पातीं। तुम तो सातों द्वीपोंके अधीक्षर सप्तरात्के पुत्र हो; तुम अपूर्णमनोरथ कैसे हो सकते हो? हमसे तुम्हें क्या काम है? तुम्हारी मनोबान्धा क्या है’॥ ५०—५२ ॥

ध्रुव बोला—‘मुनिगण! मेरे जो उत्तमोत्तम बन्धु उत्तमकुमार हैं—उनके ही लिये पिताका दिवा हुआ शुभ सिंहासन रहे। उत्तम द्वितका पालन करनेवाले मुनीक्षरो! मैं आपलोगोंसे इतनी ही सहायता चाहता हूँ कि जिस स्थानका किसी दूसरे राजाने उपभोग न किया हो, जो अन्य सभी स्थानोंसे उत्कृष्ट हो और इन्द्रादि देवताओंके लिये भी दुर्लभ हो, वह स्थान मुझे किस उपायसे प्राप्त हो सकता है, यह बता दें।’ उस समय उस बालककी ये बातें सुनकर मरीचि आदि ऋषियोंने उसे यथार्थ ही उत्तर दिया ॥ ५३—५६ ॥

मरीचि बोले—जिसने गोविन्द-चरणारविन्दोंके परागके रसका आस्वादन नहीं किया, वह मनोरथ-पथसे अतीत (ध्यानमें भी न आ सकनेवाले) परमोज्जवल फलको नहीं प्राप्त कर सकता ॥ ५७ ॥

अत्रिरुचाच

अनचिताच्युतपदः पदमासादयेत् कथम्।
इन्द्रादिदुरवापं यन्मानवैः सुदुरासदम्॥ ५८

अङ्गिरा उवाच

न हि दूरे पदं तस्य सर्वासां सम्पदामिह।
कमलाकान्ताकान्ताइषिकमलं यः सुशीलयेत्॥ ५९

पुलस्त्य उवाच

यस्य स्मरणमात्रेण महापातकसंततिः।
परमान्तकमाप्नोति स विष्णुः सर्वदो ध्रुव॥ ६०

पुलह उवाच

यदाहुः परमं द्वज्ञा प्रधानपुरुषात् परम्।
यन्मायया कृतं सर्वं स विष्णुः कीर्तितोऽर्थदः॥ ६१

क्रतुरुक्ताच

यो यज्ञपुरुषो विष्णुर्वेदवेद्यो जनार्दनः।
अन्तरात्मास्य जगतः संतुष्टः किं न यच्छ्रुतिः॥ ६२

वसिष्ठ उवाच

यद्भूनर्तनवर्तिन्यः सिद्धयोऽष्टौ नृपात्मज।
तपाराध्य हृषीकेशं चतुर्वर्गो न दूरतः॥ ६३

ध्रुव उवाच

सत्यमुक्तं द्विजेन्द्रा वो विष्णोराराधनं प्रति।
कथं स भगवानिन्यः स विधिक्षोपदिश्यताम्॥ ६४

प्रभूतदो भवेद्यो वै दुराराध्यतमो भवेत्।
बालोऽहं राजपुत्रोऽहं दुःखं नैव मया क्षमम्॥ ६५

मुनय ऋचुः

तिषुता गच्छता वापि स्वपता जाग्रता तथा।
शयानेनोपविष्टेन वेद्यो नारायणः सदा॥ ६६

पुत्रान् कलत्रं मित्राणि राज्यं स्वर्गापवर्गकम्।
वासुदेवं जपन् मर्त्यः सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम्॥ ६७

अत्रि बोले—जिसने अच्युतके चरणोंकी अर्चना नहीं की है, वह पुरुष उस पदको, जो इन्द्रादि देवताओंके लिये भी दुर्लभ और मनुष्योंके लिये तो अत्यन्त दुष्प्राप्य है, कैसे पा सकता है ?॥ ५८॥

अङ्गिरा बोले—जो भगवान् कमलाकान्तके कमनीय चरणकमलोंका अनुशीलन (चिन्तन) करता है, उसके लिये त्रिभुवनकी सारी सम्पदाओंका स्थान दूर (दुर्लभ) नहीं है ॥ ५९॥

पुलस्त्य बोले—ध्रुव ! जिनके स्मरणमात्रसे महापातकोंकी परम्परा अत्यन्त नाशको प्राप्त हो जाती है, वे भगवान् विष्णु ही सब कुछ देनेवाले हैं ॥ ६०॥

पुलह बोले—जिन्हें प्रधान (प्रकृति) और पुरुष (जीव)-से विलक्षण परमद्वज्ञा कहते हैं, जिनकी मायासे समस्त प्रपञ्च रचा गया है, उन भगवान् विष्णुका यदि कीर्तन किया जाय तो वे अपने भक्तके अभीष्ट मनोरथको पूर्ण कर देते हैं ॥ ६१॥

क्रतु बोले—जो यज्ञपुरुष भगवान् विष्णु वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य हैं तथा जो जनार्दन इस समस्त जगत्के अन्तरात्मा हैं, वे प्रसन्न हों तो क्या नहीं दे सकते ?॥ ६२॥

वसिष्ठ बोले—राजकुमार ! जिनकी भीहोंके नर्तनमात्रमें आठों सिद्धियों वर्तमान हैं, उन भगवान् हृषीकेशकी आराधना करनेसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ दूर नहीं रहते ॥ ६३॥

ध्रुव बोले—द्विजवरो ! भगवान् विष्णुकी आराधनाके सम्बन्धमें आपलोगोंने जो विचार प्रकट किया, वह सत्य है । अब मुझे यह बताइये कि उन भगवान्की पूजा कैसे करनी चाहिये ? उसकी विधिका मुझे उपदेश कीजिये । जो बहुत कुछ दे सकते हैं, उनकी आराधना भी कठिन ही होगी । मैं राजकुमार हूँ और बालक हूँ; मुझसे विशेष कष्ट नहीं सहा जा सकता ॥ ६४-६५॥

मुनिगण बोले—खड़े होते, चलते, सोते-जागते, लेटते और बैठते हुए प्रतिक्षण भगवान् नारायणका स्मरण करता चाहिये । भगवान् वासुदेवके नामका जप करनेवाला मनुष्य पुत्र, स्त्री, मित्र, राज्य, स्वर्ग तथा मोक्ष—सब कुछ

द्वादशाक्षरमन्त्रेण वासुदेवात्मकेन च।
ध्यायंश्शुतुर्भुजं विष्णुं जप्त्वा सिद्धिं न को गतः ॥ ६८
पितामहेन चाप्येष महामन्त्र उपासितः।
मनुना राज्यकामेन वैष्णवेन नृपात्मज ॥ ६९
त्वमप्येतेन मन्त्रेण वासुदेवपरो भव।
यथाभिलिपितामृद्धिं क्षिप्रं प्राप्त्यसि सत्तम ॥ ७०

सूत उक्तव

इत्युक्त्वान्तर्हिताः सर्वे महात्मानो मुनीश्वराः।
वासुदेवमना भूत्वा धूबोऽपि तपसे यदी ॥ ७१
धूबः सर्वार्थदं मन्त्रं जपन् मधुवने तपः।
स चक्रे यमुनातीरे मुनिदिष्टेन चर्त्यना ॥ ७२
श्रद्धान्वितेन जपता च तपःप्रभावात्
साक्षादिवाव्यनयनं दृशो हृदीशम्।
दिव्याकृतिं सपदि तेन ततः स एव
हर्षात् पुनः स प्रजजाप नृपात्मभूतः ॥ ७३

क्षुत्तर्षवर्षधनवात्महोष्णातादि-

शारीरदुःखकुलमस्य न किञ्चनाभूत्।
प्रग्ने मनस्यनुपमेयसुखाम्बुराशी
राज्ञः शिशुर्न च विवेद शरीरवार्ताम् ॥ ७४
विज्ञाश्च तस्य किल शङ्खितदेवसृष्टा
बालस्य तीव्रतपसो विफला बभूवुः।
शीतातपादिरिव विष्णुमयं मुनिं हि
प्रादेशिका न खलु धर्षयितुं क्षमन्तो ॥ ७५

अथ भक्तजनप्रियः प्रभुः
शिशुना ध्यानबलेन तोषितः।
वरदः पतगेन्द्रवाहनो
हरिरागात् स्वजनं तमीक्षितुम् ॥ ७६

मणिपिण्डकमौलिराजितो
विलसद्रलमहाघनच्छविः ।
स बभावुदयाद्रिमत्सरा-
द्वत्तबालार्क इवासिताचलः ॥ ७७

पा लेता है—इसमें संशय नहीं है। वासुदेवस्वरूप द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) के द्वारा चार भुजाधारी भगवान् विष्णुका ध्यान और जप करके किसने सिद्धि नहीं प्राप्त कर ली ? राजकुमार ! पितामह (ब्रह्माजी) —ने भी इस महामन्त्रकी उपासना की थी । विष्णुभक्त मनुने भी राज्यकी कामनासे इस मन्त्रद्वारा भगवान् की आराधना की थी । सत्युरुषशिरोमणे ! तुम भी इस मन्त्रद्वारा भगवान् वासुदेवकी आराधनामें लग जाओ । इससे बहुत शीघ्र ही अपनी मनोवाच्चित समृद्धि प्राप्त कर लीगे ॥ ६६—७० ॥

सूतजी कहते हैं—यों कहकर वे सभी महात्मा मुनीश्वर वहीं अन्तर्हित हो गये और धूब भी भगवान् वासुदेवमें मन लगाकर तपस्याके लिये चला गया । द्वादशाक्षर मन्त्र सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है । धूब मधुवनमें यमुनाके टटपर मुनियोंकी बतायी हुई पढ़तिसे उस मन्त्रका जप करने लगा । श्रद्धापूर्वक उस मन्त्रका जप करते हुए राजकुमार धूबने तपके प्रभावसे तल्काल ही हृदयमें भगवान् कमलनयनको प्रकट प्रत्यक्षवत् देखा । उनकी आकृति लझी दिव्य थी । भगवान्के दर्शनसे उसका हर्ष बढ़ गया । अब तो वह राजपुत्र पुनः बड़े उत्साहसे उस मन्त्रका जप करने लगा । उस समय धूख, प्यास, वर्षा, औंधी और अधिक गर्भी आदि दैहिक दुःखोंमेंसे कोई भी उसे नहीं व्यापा । उस राजकुमारका मन अनुपम आनन्द-महासागरमें गोता लगा रहा था । अतः उस समय उसे अपने शरीरकी भी सुध नहीं रह गयी थी । कहते हैं, उसको तपस्यासे शङ्खित हुए देवताओंने कितने ही विज्ञ खाड़े किये; परंतु उस तीव्र तपस्यी बालकके लिये वे सभी निष्कल ही सिद्ध हुए । शीत और धूप आदिकी ही तरह ये एकदेशीय विज्ञ भी उस विष्णुस्वरूप मुनिको व्यथित नहीं कर पाते थे ॥ ७१—७५ ॥

कुछ समयके बाद भक्तजनोंके प्रियतम वरदाता भगवान् विष्णु बालक धूबके ध्यान-बलसे संतुष्ट होकर पक्षिराज गुरुङपर सवार हो, अपने उस भक्तको देखनेके लिये आये । मणिसमूहद्वारा निर्मित मुकुटसे मणिषत और शोभाशाली कौस्तुभरलसे समलंकृत, महामेघके समान श्यामकान्तिवाले वे भगवान् श्रीहरि ऐसी शोभा पा रहे थे, मानो उदयाचलके प्रति ढाह रखनेके कारण अपने शृङ्खपर बालरचिको धारण किये साक्षात् कञ्जलगिरि प्रकाशित हो

स राजसूतं तपसि स्थितं तं
धूबं धूवस्नाग्धदगित्युवाच।
दन्तांशुसंज्ञैरमितप्रवाहैः
प्रक्षालयन् रेणुभिवास्य गात्रे ॥ ७८

वरं वरं वत्स वृणीष्व यस्ते
मनोगतस्त्वत्पसासिम तुष्टः।
श्यानेन ते चेन्द्रियनिग्रहेण
मनोनिरोधेन च दुष्करेण ॥ ७९

भृष्णवन् वचस्तत्सकलं गभीर-
मुन्मीलिताक्षः सहसा ददर्श।
स्वे चिन्त्यमाने त्विदमेव मूर्ति
पुरस्थितं ब्रह्म चतुर्भुजं सः ॥ ८०

दृष्टा क्षणं राजसुतः सुपूर्ज्यं
पुरस्त्रयीशं किमिह ब्रवीमि।
किं वा करोमीति ससम्भ्रमः स तु
न चाद्वीत् किंचन नो चकार ॥ ८१

हर्षश्शुपूर्णः पुलकाङ्गिताङ्ग-
स्त्रिलोकनाथेति बदन्धथोच्चैः।
दण्डप्रणामाय पपात भूमी
प्रवेषमानभू हरेः पुरः स हि ॥ ८२

दण्डवत् प्रणिपत्याथ परितः परिलुण्ठ्य च।
रुरोद हर्षेण चिरं दृष्टा तं जगतो गुरुम् ॥ ८३

नारदेन सनन्देन सनकेन च संश्रुतम्।
अन्यैः सनत्कुमाराद्यौर्योगिभिर्योगिनां वरम् ॥ ८४

कारुण्यबास्त्रनीराद्रै पुण्डरीकविलोचनम्।
धूबमुत्थापयोचके चक्री धृत्वा करेण तप् ॥ ८५

हरिस्तु परिपस्यर्श तदङ्गं धूलिधूसरम्।
कराभ्यां कोमलाभ्यां स परिष्वज्याह तं हरिः ॥ ८६

वरं वरय भो बाल यत्ते मनसि वर्तते।
तददामि न संदेहो नादेयं विद्यते तव ॥ ८७

रहा हो। निश्चल और स्नेहपूर्ण हृषिवाले वे भगवान् अपने दौतींकी किरणरूप जलके अमित प्रवाहद्वारा तपस्यामें लगे हुए राजकुमार धूबके शरीरकी धूलिकी धोते हुए-से उससे इस प्रकार बोले ॥ ७६—७८ ॥

'वत्स ! मैं तुम्हारी तपस्या, ध्यान, इन्द्रिय-निग्रह और दुस्साध्य मनःसंयमसे तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। अतः तुम्हारे मनमें जो अभीष्ट हो, वह उत्तम वर मुझसे माँग लो' ॥ ७९ ॥

भगवान् की वह सम्पूर्ण गम्भीर वाणी सुनते हो धूबने सहसा आँखें खोल दीं। उस समय उन्होंने चतुर्भुज ब्रह्मको, जिनका वह अपने हृदयमें चिन्तन कर रहा था, उसने सामने मूर्तिमान् होकर खड़ा देखा ॥ ८० ॥

उन परम पूजनीय त्रिभुवनपतिको सहसा सामने देख वह राजकुमार सकपका गया और 'मैं यहाँ इनसे क्या कहूँ ? क्या कहूँ ?' इत्यादि बातें सोचता हुआ क्षणभर न तो कुछ बोला और न कुछ कर ही सका। उसके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू भरे थे, शरीरके रोएँ छढ़े हो गये थे। वह भगवान् के सामने उच्चस्वरसे 'हे त्रिभुवननाथ !' यों कहता हुआ दण्डवत्-प्रणाम करनेके लिये पृथ्वीपर पड़ गया। उस समय उसकी भाँहें कौप रही थीं। दण्डकी भाँति प्रणाम करके जगदगुरु भगवान् की ओर एकटक दृष्टि लगाये वह आनन्दातिरिक्तसे चारों ओर लोट-पोट होकर देरतक रोता रहा। नारद, सनन्दन, सनक और सनत्कुमार आदि तथा अन्य योगी जिन योगीश्वरका ब्रवण-कीर्तन एवं स्तवन किया करते हैं और जिनके नेत्र करुणाके आँसुओंसे भीरे हुए थे, उन्होंने कमललोचन भगवान् को आज धूबने प्रत्यक्ष देखा। उस समय चक्रधर भगवान् ने अपने हाथसे पकड़कर धूबको उठा लिया। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने दोनों कोमल हाथोंसे उसके धूलिधूसरित शरीरको सब ओरसे पौछा और उसे हृदयसे लगाकर कहा ॥ ८१—८६ ॥

'चच्चा ! तुम्हारे मनमें जो भी इच्छा है, उसके अनुसार वर माँग लो। मैं निस्सदेह वह सब तुम्हें दे दूँगा। तुम्हारे लिये कोई भी वस्तु अदेय नहीं है' ॥ ८७ ॥

ततो वरं राजशिशुर्यथाचे
विष्णुं वरं ते स्तवशक्तिमेव।
तं मूर्तविज्ञाननिभेन देवः
पस्पर्शं शह्वेन मुखेऽमलेन॥८८

अथ सुरमुनिदत्तज्ञानचन्द्रेण सम्यग्
विमलितमिव चित्तं पूर्णमेव धूवस्य।
त्रिभुवनगुरुशह्वस्पर्शज्ञानभाना-
नुदयति नितरान्तः साधु तुष्टाव हृष्टः॥८९

धूव उवाच

अखिलमुनिजननिवहनमितचरणः। खरकदन-
करः। चपलचरितः। देवाराधितपादजलः।
समलजलधरश्यामः शमितसीभपतिशाल्वधामा।
अभिरामरामातिविनयकृतनवरसरसापहतेन्द्रिय-
सुररमणीविहितान्तःकरणानन्दः। अनादिनिधनः।
अधननिजद्विजमित्रोद्धरणधीरः। अवधीरितसुरनाथ-
नाथितविपक्षपक्षः। ऋक्षराजबिलप्रवेशापहृत-
स्यमन्तकापमार्जितनिजापवादुरितहृतवैलोक्यभारः।
द्वारकावासनिरतः। स्वरितमधुरवेणुवादनश्रवणामृत-
प्रकटितातीन्द्रियज्ञानः। यमुनातटचरः। द्विजधेनुभूङ्ग-
गण्ठस्त्यक्तनिजनिजाहारः। संसारदुस्तरपारावार-
समुत्तारणाङ्गधिपोतः। स्वप्रतापानलहृतकालयवनः।
वनमालाधरवरमणिकुण्डलालंकृतश्रवणः। नाना-
प्रसिद्धाभिधानः। निगमविबुधमुनिजनवचन-
मनोऽगोचरः। कनकपिशङ्गकौशेयवासोभगवान्
भृगुपदकौस्तुभविभूषितोरःस्थलः। स्वदयिता-

तय राजकुमारने भगवान् विष्णुसे यही वर माँगा कि 'मुझे आपकी स्तुति करनेकी शक्ति प्राप्त हो।' यह सुनकर भगवान् मूर्तिमान् विज्ञानके समान निर्मल शह्वसे धूवके मुखको छुआ दिया। मरीचि आदि देवर्षियोंकि दिये हुए ज्ञानरूपी चन्द्रमाकी किरणोंसे कालित होकर धूवका चित्त पूर्णतया निर्मल हो गया था। फिर त्रिभुवनगुरु भगवान्के शह्व-स्पर्शसे उसके अन्तःकरणमें ज्ञानरूपी सूर्यका उदय हो जानेपर उसमें पूर्ण प्रकाश हो गया। इससे वह आनन्दित होकर भगवान्की सुन्दर स्तुति करने लगा॥८८-८९॥

धूव ओला—समस्त मुनिगण जिनके चरणकमलोंकी बन्दना करते हैं, जो खर राक्षस अथवा गर्दभरूपधारी धेनुकासुरका संहार करनेवाले हैं, जिनकी बाललीलाएँ चपलतासे पूर्ण हैं, देवगण जिनके चरणोदक (गङ्गाजी) -की आराधना करते हैं, सजल मेघके समान जिनका श्याम वर्ण है, सौभ विमानके अधिष्ठित शाल्वके धाम (तेज) -को जिन्होंने सदाके लिये शान्त कर दिया है, जिन्होंने सुन्दर गोपवनिताओंके अत्यन्त विनयवश नूतन प्रेमरसमय रासलीलाको प्रकट किया और उससे मोहित होनेवाली देववनिताओंके अन्तःकरणमें भी आनन्दका संचार किया, जिनका आदि और अन्त नहीं है, जिन्होंने अपने निर्धन मित्र सुदामा नामक द्वाष्टाणका धीरतापूर्वक दैन्यदुःखसे उद्धार किया, देवराज इन्द्रकी प्रार्थनासे जिन्होंने उनके शत्रुपक्षको पराजित किया, ऋक्षराज जाम्बवान्की गुहामें प्रवेश करके खोयी हुई स्यमन्तक मणिको लाकर जिन्होंने अपने ऊपर लगे हुए कलङ्गरूप दुरितको दूर करके त्रिभुवनका भार हल्का किया है, जो द्वारकापुरीमें नित्य निवास करते हैं, जो अपनी मधुर मुरली बजाकर श्रुतिमधुर अतीन्द्रिय-ज्ञानको प्रकट करते तथा यमुनातटपर विचरते हैं, जिनके बंशीनादको सुननेके लिये पक्षी, गौ और भृङ्गगण अपना-अपना आहार स्थान देते हैं, जिनके चरणकमल दुस्तर संसार-सागरसे पार करनेके लिये जहाजरूप हैं, जिन्होंने अपनी प्रतापाग्निमें कालयवनको होम दिया है, जो वनमालाधारी हैं, जिनके ब्रह्मण सुन्दर मणिमय कुण्डलोंसे अलंकृत हैं, जिनके अनेक प्रसिद्ध नाम हैं, जो वेदवाणी तथा देवता और मुनियोंके भी मन-बाणीके अगोचर हैं, जो भगवान् सुवर्णके समान पीत रेशमी वस्त्र धारण करते हैं, जिनका वक्षःस्थल भृगुजीके चरण-चिह्न तथा कौस्तुभमणिसे अलंकृत है,

कूरनिजजननीगोकुलपालक चतुर्भुजशङ्कु चक्र-
गदापद्मतुलसीनवदलदामहारकेयूरकटकमुकुटा-
लंकृतः । सुनन्दनादिभागवतोपासितविश्वरूपः ।
पुराणपुरुषोत्तमः । उत्तमश्लोकः । लोकावासो
वासुदेवः । श्रीदेवकीजठरसम्भूतः । भूतपतिविरच्छि-
नतचरणारविन्दः । वृन्दावनकृतकेलिगोपिकाजन-
श्रमापहः । सततं सम्पादितसुजनकामः । कुन्दनिभ-
शङ्कुधरमिन्दुनिभवक्त्रं सुन्दरसुदर्शनमुदारतरहासं
विद्वज्जनवन्दितमिदं ते रूपमतिहृदयमखिलेश्वरं
नतोऽस्मि ।

स्थानाभिकामी तपसि स्थितोऽहं
त्वां दृष्टवान् साधुमुनीन्द्रगुह्यम् ।
काचं विचिन्वत्रिव दिव्यरत्नं
स्वामिन् कृतार्थोऽस्मि वरान्न याचे ॥ १० ॥

अपूर्वदृष्टे तव पादपद्मे
दृष्टा दृढं नाथ नहि त्यजामि ।
कामान् न याचे स हि कोऽपि मूढो
यः कल्पवृक्षात् तुष्मात्रमिच्छेत् ॥ ११ ॥

त्वां मोक्षबीजं शरणं प्रपञ्चः
शक्नोमि भोक्तुं न अहिःसुखानि ।
रत्नाकरे देव सति स्वनाथे
विभूषणं काचमयं न युक्तम् ॥ १२ ॥

अतो न याचे वरमीश युष्मात्-
पादाव्यभक्तिं सततं ममास्तु ।
इमं वरं देववर प्रयच्छ
पुनः पुनस्त्वामिदमेव याचे ॥ १३ ॥

श्रीसूतउकाच
इत्यात्मसंदर्शनलब्ध्यदिव्य-
ज्ञानं गदन्तं भगवाञ्चगाद ॥ १४ ॥

जो अपने प्रिय भक्त अङ्गूर, माता देवकी और गोकुलके
पालक हैं तथा जो अपनी चारों भुजाओंमें शङ्कु, चक्र,
गदा, पद्म धारण किये नृतन तुलसीदलकी माला, मुकुटाहार,
केयूर, कड़ा और मुकुट आदिसे विभूषित हैं, सुनन्दन
आदि भगवद्गत जिन विश्वरूप हरिको उपासना करते
हैं, जो पुराण-पुरुषोत्तम हैं, पुण्यशब्दाले हैं तथा समस्त
लोकोंके आवास-स्थान वासुदेव हैं, जो देवकीके उदरसे
प्रकट हुए हैं, भूतनाथ शिव तथा ब्रह्मजीने जिनके
चरणारविन्दोंपर मस्तक हूकाया है, जो वृन्दावनमें की
गयी लीलासे थकी हुई गोपियोंके ब्रह्मको दूर करनेवाले
हैं, सज्जनोंके मनोरथोंको जो सर्वदा पूर्ण किया करते हैं,
ऐसी महिमावाले हैं सर्वेश्वर ! जो कुन्दके समान उज्ज्वल
शङ्कु धारण करते हैं, जिसका चन्द्रमाके समान सुन्दर
मुख है, सुन्दर नेत्र हैं तथा अत्यन्त मनोहर मुस्कान है,
ऐसे अत्यन्त हृदयहारी आपके इस रूपको, जो ज्ञानियोंद्वारा
वन्दित है, मैं प्रणाम करता हूँ।

मैं उत्तम स्थान प्राप्त करनेकी इच्छासे तपस्यामें
प्रवृत्त हुआ और बड़े-बड़े मुनीशरोंके लिये भी जिनका
दर्शन पाना असम्भव है, उन्हीं आप परमेश्वरका दर्शन
पा गया—ठीक उसी तरह, जैसे कौचकी खोज करनेवाला
कोई मनुष्य भाग्यवश दिव्य रत्न हस्तगत कर ले । स्वामिन् ।
मैं कृतार्थ हो गया, अब मैं कोई वर नहीं माँगता । हे
नाथ ! जिनका दर्शन अपूर्व है—यहले कभी उपलब्ध
नहीं हुआ है, उन आपके चरणकमलोंका दर्शन पाकर
अब मैं इन्हें छोड़ नहीं सकता । मैं अब भोगोंकी याचना
नहीं करूँगा; ऐसा कोई मूर्ख ही होगा, जो कल्पवृक्षसे
केवल भूसी पाना चाहेगा ? देव ! आज मैं मोक्षके कारणभूत
आप परमेश्वरकी शरणमें आ पड़ा हूँ, अब बाह्य विषय-
सुखोंको मैं नहीं भोग सकता । जब रत्नोंकी खान समुद्र
अपना मालिक हो जाय, तब कौचका भूषण पहनना
कभी उचित नहीं हो सकता । अतः ईश ! अब मैं दूसरा
कोई वर नहीं माँगता; आपके चरण-कमलोंमें मेरी सदा
भक्ति बनी रहे, देववर ! मुझे यही वर दीजिये । मैं
बारंबार आपसे यही प्रार्थना करता हूँ ॥ १०—१३ ॥

श्रीसूतजी कहते हैं—इस प्रकार अपने दर्शनमात्रसे
दिव्य ज्ञान प्राप्त करके सुति करते हुए ध्रुवको देखकर
भगवान् उससे कहा ॥ १४ ॥

श्रीभगवानुवाच

आराध्य विष्णुं किमनेन लक्ष्यं
मा भूजनेऽपीत्थमसाधुवादः।

स्थानं परं प्राप्नुहि यन्मतं ते
कालेन मां प्राप्यसि शुद्धभावः ॥ १५

आधारभूतः सकलप्रहाणां
कल्पद्रुमः सर्वजनैष्ठ्य चन्द्रः।

मम प्रसादान्तव सा च माता
ममान्तिके या च सुनीतिरार्था ॥ १६

श्रीसूत उवाच

तं साधयित्वेति वर्मुकुन्दः
स्वमालयं दृश्यवपुर्जगाम।

त्यक्त्वा शनैर्दिव्यवपुः स्वभक्तं
मुहुः परावृत्य समीक्षमाणः ॥ १७

तावच्य सद्यः सुरसिद्धसंघः
श्रीविष्णुतद्वक्तसमागमं तम्।

दृष्टाथ वर्षन् सुरपृष्ठवृष्टिं
तुष्टाव हर्षाद् ध्रुवमव्ययं च ॥ १८

श्रियाभिमत्या च सुनीतिसूनु-
र्विभाति देवैरपि चन्द्रमानः।

योऽयं नृणां कीर्तनदर्शनाभ्या-
मायुर्यशो वर्धयति श्रियं च ॥ १९

इत्थं ध्रुवः प्राप पदं दुरापं
हरे: प्रसादात्र च चित्रमेतत्।

तस्मिन् प्रसन्ने द्विजराजपत्रे
न दुर्लभं भक्तजनेषु किञ्चित् ॥ २००

सूर्यमण्डलमानात् द्विगुणं सोममण्डलम्।

पूर्णे शतसहस्रे द्वे तस्मान्नक्षत्रमण्डलम् ॥ २०१

द्वे लक्षेऽपि बृहस्यापि स्थानं नक्षत्रमण्डलात्।

तावत्प्रमाणभागे तु बृहस्याप्युशना स्थितः ॥ २०२

अङ्गारकोऽपि शुक्रस्य तावन्माने व्यवस्थितः।

लक्षद्वयं तु भीमस्य स्थितो देवपुरोहितः ॥ २०३

सौरिर्बृहस्पतेश्चोर्ध्वं द्विलक्षे तु व्यवस्थितः।

तस्माच्छनैश्चरादूर्ध्वं लक्षे सप्तर्षिमण्डलम् ॥ २०४

सप्तर्षिमण्डलादूर्ध्वमेकं लक्षं ध्रुवः स्थितः।

मेहीभूतः समस्तस्य ज्योतिश्चक्षस्य सत्तम ॥ २०५

श्रीभगवान् बोले—‘ध्रुवने विष्णुकी आराधना करके क्या पा लिया?’ इस तरहका अपवाद लोगोंमें न फैल जाय। इसके लिये तुम अपने अभीष्ट सर्वोत्तम स्थानको प्रहण करो, पुनः समय आनेपर शुद्धभाव हो तुम मुझे प्राप्त कर लोगे। मेरे प्रसादसे समस्त ग्रहोंकि आधारभूत, कल्पबृक्ष और सब लोगोंके बन्दनीय होकर तुम और तुम्हारी माता आर्या सुनीति मेरे निकट निवास करोगे ॥ १५—१६ ॥

श्रीसूतजी कहते हैं—इस प्रकार प्रत्यक्ष प्रकट हो, उपर्युक्त वरदानोंसे ध्रुवका मनोरथ पूर्ण करके, भगवान् मुकुन्द धीरेसे अपना वह दिव्य रूप छिपा, बारंबार धूमकर उस भक्तकी ओर देखते हुए अपने वैकुण्ठधामको चले गये। इसी बीचमें देवताओंका समुदाय भगवान् विष्णु और उनके भक्तके उस समागमको देख हर्षके मारे तत्काल दिव्य पुष्प बरसाने और उस अविनाशी ध्रुवका स्तवन भी करने लगा। सुनीतिकुमार ध्रुव आज श्री और समान—दोनोंसे सम्पन्न होकर देवताओंका भी बन्दनीय हो, शोभा पा रहा है। यह अपने दर्शन तथा गुणकोर्तनसे मनुष्योंकी आशु, यश तथा लक्ष्मीकी भी वृद्धि करता रहेगा ॥ १७—१९ ॥

इस प्रकार ध्रुव भगवान् विष्णुके प्रसादसे दुर्लभ पद पा गया—यह कोई आक्षर्यकी बात नहीं है। उन गरुडवाहन भगवान्तके प्रसन्न हो जानेपर भक्तोंके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता। सूर्यमण्डलका जितना मान है, उससे दूना चन्द्रमण्डलका मान है। चन्द्रमण्डलसे पूरे दो लाख योजन दूर ऊपर नक्षत्रमण्डल है, नक्षत्रमण्डलसे भी दो लाख योजन कैंचि बृहका स्थान है और बृहके भी स्थानसे उतनी ही दूरीपर शुक्रकी स्थिति है। शुक्रसे भी दो लाख योजन दूर मङ्गल है और मङ्गलसे दो लाख योजनपर देवपुरोहित बृहस्पतिका निवास है। बृहस्पतिसे भी दो लाख योजन ऊपर शनैश्चरका स्थान है। उन शनैश्चरसे दो लाख योजन ऊपर सप्तर्षियोंका मण्डल है। सप्तर्षि-मण्डलसे एक लाख योजन ऊपर ध्रुव स्थित है। साधुशिरोमणे! वह समस्त ज्योतिर्मण्डलका केन्द्र है ॥ २००—२०५ ॥

स्वभावात् तपति विषेन्द्र अधर्घोर्खं च रशिपभिः ।
 कालसंख्यां त्रिलोकस्य स करोति युगे युगे ॥ १०६
 जनस्तपस्तथा सत्यमेतांल्लोकान् द्विजोत्तम ।
 ब्रह्मणा मुनिशार्दूलं विष्णुभक्तिविवर्धितः ॥ १०७
 कर्धव्यगतैर्द्विजश्रेष्ठ रशिमभिस्तपते रविः ।
 अधोगतैश्च भूलोकं द्योतते दीर्घदीधितः ॥ १०८
 सर्वपापहरः सूर्यः कर्ता त्रिभुवनस्य च ।
 छत्रवत् प्रतिपश्येत मण्डलान्मण्डलं परम् ॥ १०९
 आदित्यमण्डलाधस्ताद् भुवलोकं प्रतिष्ठितम् ।
 त्रैलोक्यस्येश्वरत्वं च विष्णुदत्तं शतक्रतोः ॥ ११०
 लोकपालैः स सहितो लोकान् रक्षति धर्मतः ।
 वसेत् स्वर्गं महाभाग देवेन्द्रः स तु कीर्तिमान् ॥ १११
 ततोऽधस्तान्मुने चेदं पातालं विद्धि सप्रभम् ।
 न तत्र तपते सूर्यो न रात्रिर्न निशाकरः ॥ ११२
 दिव्यस्वरूपमास्थाय तपन्ति सततं जनाः ।
 पातालस्था द्विजश्रेष्ठ दीप्यमानाः स्वतेजसा ॥ ११३
 स्वलोकात् महलोकः कोटिमात्रे व्यवस्थितः ।
 ततो योजनमात्रेण द्विगुणो मण्डलेन तु ॥ ११४
 जनलोकः स्थितो विष्र पञ्चमो मुनिसेवितः ।
 तत्रोपरि तपोलोकक्षतुर्भिः कोटिभिः स्थितः ॥ ११५
 सत्यलोकोऽष्टकोटीभिस्तपोलोकोपरिस्थितः ।
 सर्वे छत्राकृतिज्ञेया भुवनोपरिसंस्थिताः ॥ ११६
 ब्रह्मलोकाद्विष्णुलोको द्विगुणश्च व्यवस्थितः ।
 वाराहे तस्य माहात्म्यं कथितं लोकचिन्तकैः ॥ ११७
 ततः परं द्विजश्रेष्ठ स्थितः परमपूरुषः ।
 ब्रह्मायडात् परमः साक्षात्रिलेपः पुरुषः स्थितः ॥ ११८
 पशुपाशैर्विमुच्येत तपोज्ञानसमन्वितः ।
 इति ते संस्थितिः प्रोक्ता भूगोलस्य मयानध ।
 यस्तु सम्यगिमां वेत्ति स याति परमां गतिम् ॥ ११९
 लोकस्य संस्थानकरोऽप्रयेयो
 विष्णुनृसिंहो नरदेवपूजितः ।
 युगे युगे विष्णुरनादिमूर्तिमा-
 नास्थाय विश्वं परिपाति दुष्टहा ॥ १२०

विप्रवर ! सूर्यदेव स्वभावतः अपनी किरणोद्भाव नीचे तथा उपरके लोकोंमें ताप पहुँचाते हैं । वे ही प्रत्येक युगमें विभूतनको कालसंख्या निश्चित करते हैं । द्विजोत्तम ! मुनिश्रेष्ठ ! ब्रह्माजीके द्वारा विष्णुभक्तिसे अभ्युदयको प्राप्त होकर सूर्य अपनी ऊर्ध्वगत किरणोंसे उपरके जन, तप तथा सत्य लोकोंमें गम्भीर पहुँचाते हैं और अधोगत किरणोंसे भूलोकको प्रकाशित करते हैं ॥ १०६—१०८ ॥

समस्त पापोंको हरनेवाले सूर्यदेव विभूतनकी सृष्टि करते हैं । वे छत्रकी भौति स्थित हो एक मण्डलसे दूसरे मण्डलको दर्शन देते और प्रकाशित करते हैं । सूर्यमण्डलके नीचे भुवलोक प्रतिष्ठित है । तीनों भुवनोंका आधिपत्य भगवान् विष्णुने शतब्दन्तु इन्द्रको दे रखा है । वे समस्त लोकपालोंके साथ धर्मपूर्वक लोकोंकी रक्षा करते हैं । महाभाग ! वे यशस्वी देवेन्द्र स्वर्गलोकमें निवास करते हैं । मुने ! इन सात लोकोंसे नीचे यह प्रभापूर्ण पाताललोक स्थित है, ऐसा आप जानें । वहाँ न सूर्यका ताप है, न चन्द्रमाका प्रकाश, [न दिन है] न रात । द्विजश्रेष्ठ ! पातालवासी जन दिव्यरूप धारण करके सदा अपने तेजसे प्रकाशित होते हुए तपते हैं । स्वर्गलोकसे करोड़ योजन ऊपर भुवलोक स्थित है । हे विप्र ! उससे दूने दो करोड़ योजनपर मुनिसेवित जनलोक, जो पाँचवाँ लोक है, स्थित है । उससे चार करोड़ योजन ऊपर तपोलोककी स्थिति है । तपोलोकसे ऊपर आठ करोड़ योजनपर सत्यलोक (ब्रह्मलोक) स्थित है । ये सभी भुवन एक-दूसरेके ऊपर छत्रकी भौति स्थित हैं । ब्रह्मलोकसे सोलह करोड़ योजनपर विष्णुलोककी स्थिति है । लोकचिन्तकोने वाराहपुराणमें उसके माहात्म्यका वर्णन किया है । द्विजश्रेष्ठ ! इसके आगे परम पुरुषकी स्थिति है, जो ब्रह्माण्डसे विलक्षण साक्षात् परमात्मा है । इस प्रकार जाननेवाला मनुष्य तप और ज्ञानसे युक्त होकर पशुपाश (अविद्या-बन्धन)-से मुक्त हो जाता है ॥ १०९—११८ ॥

अनध ! इस प्रकार मैंने तुम्हें भूगोलकी स्थिति बतलायी । जो मुरुष सम्यक् प्रकारसे इसका ज्ञान रखता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है । मनुष्यों और देवताओंसे पूजित नृसिंहस्वरूप अप्रमेय भगवान् विष्णु लोककी रक्षा करनेवाले हैं । वे अनादि मूर्तिमान् परमेश्वर प्रत्येक युगमें शरीर धारणकर दुष्टोंका वध करके विश्वका पालन करते हैं ॥ ११९—१२० ॥

बत्तीसवाँ अध्याय

सहस्रानीक-चरित्र; श्रीनृसिंह-पूजनका माहात्म्य

भरद्वाज उकाच

सहस्रानीकस्य हरेरवतारांशु शार्ङ्गिणः।
साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि तन्मे वद महामते॥ १

सूत उकाच

हन्त ते कथयिष्यामि चरितं तस्य धीमतः।
सहस्रानीकस्य हरेरवतारांशु मे शृणु॥ २
सहस्रानीकोऽभिषिक्तो निजराज्ये द्विजोत्तमैः।
पालयामास धर्मेण राज्यं स तु नृपात्मजः॥ ३
तस्य पालयतो राज्यं राजपुत्रस्य धीमतः।
भक्तिर्बभूव देवेशो नरसिंहे सुरोत्तमे॥ ४
तं द्रष्टुमागतः साक्षाद्विष्णुभक्तं भृगुः पुरा।
अर्घ्यपाद्यासनै राजा तमभ्यच्याद्विवीदिदम्॥ ५
पावितोऽहं मुनिश्रेष्ठं साम्प्रतं तव दर्शनात्।
त्वदर्शनमपुण्यानां कलावस्मिन् सुदुर्लभम्॥ ६
नरसिंहं प्रतिष्ठाप्य देवदेवं सनातनम्।
आराधयितुमिच्छामि विधानं तत्र मे वद॥ ७
अवतारानशेषांशु देवदेवस्य चक्रिणः।
श्रोतुमिच्छामि सकलांस्तान् पुण्यानपि मे वद॥ ८

भृगुस्तक

शृणु भूपालपुत्र त्वं न हि कक्षित् कलौ युगो।
हरी भक्तिं करोत्यत्र नृसिंहे चातिभक्तिमान्॥ ९
स्वभावाद्यस्य भक्तिः स्यान्नरसिंहे सुरोत्तमे।
तस्यारयः प्रणश्यन्ति कार्यसिद्धिशु जायते॥ १०
त्वमतीव हरेभक्तः पाण्डुवंशेऽपि सत्तमः।
तेन ते निखिलं वक्ष्ये शृणुष्वैकाग्रमानसः॥ ११
यः कुर्याच्छोभनं वेशम नरसिंहस्य भक्तिमान्।
स सर्वपापनिर्मुक्तो विष्णुलोकमवाप्नुयात्॥ १२
प्रतिमां लक्षणोपेतां नरसिंहस्य कारयेत्।
स सर्वपापनिर्मुक्तो विष्णुलोकमवाप्नुयात्॥ १३

भरद्वाजजी बोले—सूतजी! अब मैं सहस्रानीकका चरित्र और भगवान् विष्णुके अवतारोंकी कथा सुनना चाहता हूँ; महामते! कृपा करके वह मुझसे कहिये॥ १॥

सूतजीने कहा—ब्रह्मन्! बहुत अच्छा, अब मैं बुद्धिमान् सहस्रानीकके चरित्रका और भगवान् के अवतारोंका वर्णन करूँगा, सुनिये॥ २॥

राजकुमार सहस्रानीकको जब उत्तम ब्राह्मणोंने उसके राज्यपर अधिष्ठित कर दिया, तब वे धर्मपूर्वक राज्यका पालन करने लगे। राज्यके पालनमें लगे हुए बुद्धिमान् राजकुमारकी देवेशर, देवश्रेष्ठ भगवान् नृसिंहमें भक्ति हो गयी। पूर्वकालमें एक बार उन विष्णुभक्त नरेशका दर्शन करनेके लिये स्वयं भृगुजी आये। राजाने अर्घ्य, पाद्य और आसनादिके द्वारा भृगुजीका सम्मान करके उनसे यह कहा—‘मुनिश्रेष्ठ! इस समय मैं आपके दर्शनसे पवित्र हो गया। जिन्होंने पुण्य नहीं किया है, ऐसे मनुष्योंके लिये इस कलियुगमें आपका दर्शन परम दुर्लभ है। मैं सनातन देवदेव नरसिंहकी स्थापना करके उनकी आराधना करना चाहता हूँ। आप कृपया मुझे इसका विधान बतायें। तथा मैं देवदेव श्रीहरिके सम्पूर्ण अवतारोंको भी सुनना चाहता हूँ; अतः आप उन सभी पुण्यावतारोंकी कथा मुझसे कहिये’॥ ३—८॥

भृगुजी बोले—राजकुमार! सुनो; इस कलियुगमें कोई भी भगवान् नृसिंहके प्रति अत्यन्त भक्तिभाव रखकर उनकी आराधना नहीं कर रहा है। देवेशर भगवान् नृसिंहमें जिसकी स्वभावतः भक्ति हो जाती है, उसके सारे शत्रु नष्ट हो जाते हैं और उसे प्रत्येक कार्यमें सिद्ध प्राप्त होती है। इस पाण्डुवंशमें तुम ही श्रेष्ठ पुरुष और भगवान् के अत्यन्त भक्त हो; अतः तुमसे मैं तुम्हारी पूछी हुई सब बातें बताऊँगा; एकाग्रचित्त होकर सुनो॥ ९—११॥

जो भक्तिपूर्वक नृसिंहदेवका सुन्दर मन्दिर निर्माण कराता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुके लोकमें स्थान पाता है। जो भगवान् नृसिंहकी सुन्दर लक्षणोंसे युक्त प्रतिमा बनवाता है, वह सब पापोंसे छुटकारा पाकर विष्णुलोकको जाता है।

प्रतिष्ठां नरसिंहस्य यः करोति यथाविधि ।
निष्कामो नरशार्दूल देहबाधात् प्रमुच्यते ॥ १४
नरसिंहं प्रतिष्ठाप्य यः पूजामाचोत्तरः ।
तस्य कामाः प्रसिद्ध्यन्ति परमं पदमाप्नुयात् ॥ १५
ब्रह्मादयः सुराः सर्वे विष्णुमाराध्य ते पुरा ।
स्वं स्वं पदमनुप्राप्ताः केशवस्य प्रसादतः ॥ १६
ये ये नृपवरा राजन् मांधारुप्रमुखा नृपाः ।
ते ते विष्णुं समाराध्य स्वर्गलोकमितो गताः ॥ १७
यस्तु पूजयते नित्यं नरसिंहं सुरेश्वरम् ।
स स्वर्गमोक्षभागी स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ १८
तस्मादेकमना भूत्वा यावन्जीवं प्रतिज्ञया ।
अर्चनान्नाद्वरसिंहस्य प्राप्त्यसे स्वाभिवाज्जितम् ॥ १९
विधिवत्स्थापयेद्यस्तु कारयित्वा जनादैनम् ।
न तु निर्गमनं तस्य विष्णुलोकाद् भवेत्तुप ॥ २०
नरो नृसिंहं तमनन्तविक्रमं
सुरासुरर्वितपादपद्मजम् ।
संस्थाप्य भवत्या विधिवच्च पूजयेत्
प्रयाति साक्षात् परमेश्वरं हरिम् ॥ २१

इति श्रीनरसिंहपुराणे सहस्रानीकचरिते द्वारित्रिशतोऽध्यायः ॥ ३२ ॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें सहस्रानीक-चरित्रके अन्तर्गत वर्तोंसर्वाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३२ ॥

तौंतीसवाँ अध्याय

भगवान्‌के मन्दिरमें झाड़ू देने और उसको लीपनेका महान् फल—राजा जयध्वजकी कथा

राजोचाच

हेरर्चाविधि पुण्यां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।
त्वत्प्रसादाद्विशेषेण भगवन् प्रदद्यतीहि मे ॥ १
सम्मार्जनकरो यश्च नरसिंहस्य मन्दिरे ।
यत्पुण्यं लभते तद्वृपतेपनकृत्रः ॥ २
शुद्धोदकेन यत्पुण्यं स्नापिते केशवे भवेत् ।

नरशेष्ट ! जो निष्कामभावसे नृसिंहदेवकी विधिवत् प्रतिष्ठा करता है, वह दैहिक दुःखोंमें मुक्त हो जाता है। जो भगवान् नृसिंहकी स्थापना करके सदा उनकी पूजा करता है, उसके सब मनोरथ धूर्ण होते हैं तथा वह परम पदको प्राप्त कर लेता है। ब्रह्मादि सभी देवता पूर्वकालमें भगवान् विष्णुकी आराधना करके उनके प्रसादसे अपने-अपने लोकको प्राप्त हुए थे। राजन् ! मांधारा आदि जो-जो प्रधान नरेश हो गये हैं, वे सभी भगवान् विष्णुकी आराधना करके यहाँसे स्वर्गलोकको चले गये। जो सुरेश्वर नृसिंहका प्रतिदिन पूजन करता है, वह स्वर्ग और मोक्षका भागी होता है—इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। इसलिये तुम भी प्रतिज्ञापूर्वक एकचित्त होकर जीवनपर्यन्त भगवान् नृसिंहकी पूजा करते हुए अपना मनोरथ प्राप्त करोगे। नृप ! जो भगवान् जनादेनकी प्रतिमा बनवाकर विधिवत् उसकी स्थापना करता है, उसका विष्णुलोकसे कभी निष्कर्मण नहीं होता। यदि मनुष्य उन अनन्त विक्रमशाली भगवान् नरसिंहकी, जिनके चरण-कमलोंकी देवता तथा अमूर दोनों ही पूजा करते हैं, विधिवत् स्थापना करके भक्तिपूर्वक पूजा करे तो वह साक्षात् परमेश्वर भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेता है ॥ १२—२१ ॥

राजा ओले—भगवन् ! मैं आपके प्रसादसे भगवान्‌के पूजनकी पावन विधिको विशेषरूपसे यथावत् सुनना चाहता हूँ; कृपया आप मुझे विस्तारसे बतायें। भगवान् नृसिंहके मन्दिरमें जो झाड़ू देता है वह तथा जो उसे लीपता-पोतता है, वह पुरुष किस पुण्यको प्राप्त करता है ? केशवको शुद्ध जलसे स्नान करानेपर कौन-सा पुण्य

क्षीरस्तानेन यत्पुण्यं दध्ना च मधुना तथा ।
घृतस्तानेन यत्पुण्यं पञ्चगव्येन यद्वेत् ॥ ३
क्षालिते चोष्णातोयेन प्रतिमायां च भक्तिः ।
कर्घूरागुरुतोयेन मिश्रेण स्नापितेन च ॥ ४
अर्धदानेन यत्पुण्यं पाद्याचमनदानके ।
मन्त्रेण स्नापिते यच्च वस्त्रदानेन यद्वेत् ॥ ५
श्रीखण्डकुङ्माभ्यां तु अर्चिते किं फलं भवेत् ।
पुष्टिरभ्यर्थिते यच्च यत्फलं धूपदीपयोः ॥ ६
नैवेद्यर्थत्फलं प्रोक्तं प्रदक्षिणकृते तु यत् ।
नमस्कारकृते यच्च फलं यत्स्तोत्रगीतयोः ॥ ७
तालवृन्तप्रदानेन चामरस्य च यद्वेत् ।
ध्वजप्रदाने यद्विष्णोः शङ्खदानेन यद्वेत् ॥ ८
एतच्चान्यच्च यत्किंचिदज्ञानात्र प्रचोदितम् ।
तत्सर्वं कथय ब्रह्मन् भक्तस्य मम केशवे ॥ ९

सूत उवाच

इति सम्प्रेरितो विप्रस्तेन राजा भृगुस्तदा ।
मार्कण्डेयं नियुज्याथ कथने स गतो मुनिः ॥ १०
सोऽपि तस्मिन् मुदायुक्तो हरिभक्त्या विशेषतः ।
राजे प्रबन्धुमारेभे भृगुणा चोदितो मुनिः ॥ ११

मार्कण्डेय उवाच

राजपुत्र शृणुष्वेदं हरिपूजाविधिं क्रमात् ।
विष्णुभक्तस्य वक्ष्यामि तवाहं पाण्डुवंशज ॥ १२
नरसिंहस्य नित्यं च यः सम्मार्जनमारभेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके स मोदते ॥ १३
गोमयेन मृदा तोयैर्यः करोत्युपलेपनम् ।
स चाक्षयफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते ॥ १४
अत्रार्थे यत्पुरावृत्तमितिहासं पुरातनम् ।
यच्छुत्वा सर्वपापेभ्यो मुक्तिर्भवति सत्तम् ॥ १५
पुरा युधिष्ठिरो राजा पञ्चभिर्भातुभिर्युतः ।
द्रौपद्या सह राजेन्द्र काननं विचरान् ह ॥ १६

प्राप्त होता है तथा दूध, दही, मधु, घी एवं पञ्चगव्यद्वारा स्नान करानेसे क्या पुण्य होता है? भगवान्‌की प्रतिमाको गर्म जलसे भक्तिपूर्वक स्नान करानेपर तथा कर्पूर और अगुरु मिले हुए जलसे स्नान करानेपर कौन-सा पुण्य प्राप्त होता है? भगवान्‌को अर्थ देनेसे, पाद्य और आचमन अर्पण करनेसे, मन्त्रोच्चारणपूर्वक नहलानेसे और वस्त्र-दान करनेसे क्या पुण्य होता है? ॥ १—५ ॥

चन्दन और केसरद्वारा पूजा करनेपर तथा फूलोंसे पूजा करनेपर क्या फल होता है? तथा धूप और दीप देनेका क्या फल है? नैवेद्य निवेदन करनेका और प्रदक्षिणा करनेका क्या फल है? इसी प्रकार नमस्कार करनेसे एवं स्तुति और यशोगान करनेसे कौन-सा फल प्राप्त होता है? भगवान् विष्णुके लिये पंखा दान करने, चैवर प्रदान करने, ध्वजाका दान करने और शङ्ख-दान करनेसे क्या फल होता है? ब्रह्मन्! मैंने जो कुछ पूछा है, वह तथा अज्ञानवश मैंने जो नहीं पूछा है, वह सब भी मुझसे कहिये; क्योंकि भगवान् केशवके प्रति मेरी हार्दिक भक्ति है ॥ ६—९ ॥

सूतजी बोले—राजाके इस प्रकार पूछनेपर वे ब्रह्मिं पृणु मुनि मार्कण्डेयजीको उत्तर देनेके लिये नियुक्त करके स्वयं चले गये। पृणुजीको प्रेरणासे मुनिवर मार्कण्डेयजीने राजापर उनकी हरिभक्तिसे विशेष प्रसन्न होकर उनके प्रति इस प्रकार कहना आरम्भ किया ॥ १०—११ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—पाण्डुकुलनन्दन राजकुमार! भगवान् विष्णुकी इस पूजा-विधिको क्रमशः सुनो; तुम विष्णुके भक्त हो, अतः मैं तुम्हें यह सब बताऊँगा। जो भगवान् नरसिंहके मन्दिरमें नित्य झाड़ लगाता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें आनन्दित होता है। जो गोबर, मिट्टी तथा जलसे बहाँकी भूमि लीपता है, वह अक्षय फल प्राप्त करके विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। सत्तम! इस विषयमें एक प्राचीन सत्य इतिहास है, जिसे सुनकर सब पापोंसे मुक्ति मिल जाती है ॥ १२—१५ ॥

राजेन्द्र! पूर्वकालमें राजा युधिष्ठिर द्वौपदी तथा अपने पाँच भाइयोंके साथ बनमें विचरते थे। धूमते-

शूलकण्टकनिष्ठान्तास्ततस्ते पञ्च पाण्डवाः।
नारदोऽपि गतो नाकं जुष्टेदं तीर्थमुत्तमम्॥ १७
ततो युधिष्ठिरो राजा प्रस्थितस्तीर्थमुत्तमम्।
दर्शनं मुनिमुख्यस्य तीर्थधर्मोपदेशिनः॥ १८
चिन्तयति च धर्मात्मा क्रोधपैशुन्यवर्जितः।
दानबो बहुरोमा च तथा स्थूलशिरा नृप॥ १९
पाण्डवान् गच्छतो वीक्ष्य दानबो द्रीपदीच्छया।
कृत्वा भूप मुने रूपं बहुरोमाऽगतस्तदा॥ २०
प्रणिधानं विधायाथ आसीनः कुशविष्ट्रे।
विभृत् कमण्डलं पार्श्वं दर्भसूचीं तथा करे॥ २१
अक्षमालां जपन्मन्त्रं स्वनासाग्रं निरीक्षयन्।
स दृष्टः पाण्डवैस्तत्र रेवायां वनचारिभिः॥ २२
ततो युधिष्ठिरो राजा तं प्रणाम्य सहानुजः।
जगाद बचनं दृष्ट्वा भाग्येनासि महामुने॥ २३
तीर्थानि रुद्रदेहायाः सुगोप्यानि निवेदय।
मुनीनां दर्शनं नाथ श्रुतं धर्मोपदेशकम्॥ २४
यावन्मुनिमुवाचेदं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
तावत्स्थूलशिराः प्राप्तो मुनिरूपधरोऽपरः॥ २५
जल्पत्रित्यातुरं वाक्यं को नामास्त्यत्र रक्षकः।
भयातुरं नरो जीवं यो रक्षेच्छरणागतम्॥ २६
तस्यानन्तफलं स्थाद्वं किं पुनर्मा द्विजोत्तमम्।
एकतो मेदिनीदानं मेरुभूधरदक्षिणम्॥ २७
अन्यतो ह्यात्मजीवानां प्राणसंशयवारणम्।
द्विजं धेनुं स्त्रियं बालं पीड्यमानं च दुर्जनैः॥ २८
उपेक्षेत नरो यस्तु स च गच्छति रीरवम्।
अथ मां हृतसर्वस्वं प्राणत्यागपरायणम्॥ २९
को रक्षति नरो वीरः पराभूतं हि दानवैः।
गृहीत्वा चाक्षमालां मे तथा शुभकमण्डलम्॥ ३०
निहतोऽहं कराधातैस्तथा खाटो मनोहरम्।
गृहीतं मम सर्वस्वं दानवेन दुरात्मना॥ ३१

घूमते वे पाँचों पाण्डव शूल और कण्टकमय मार्गको पार करके एक उत्तम तीर्थकी ओर प्रस्थित हुए। उसके पहले भगवान् नारदजी भी उस उत्तम तीर्थका सेवन करके स्वर्गलोकको लौट गये थे। क्रोध और पशुनतासे रहित धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर उस उत्तम तीर्थकी ओर प्रस्थान करके तीर्थधर्मका उपदेश करनेवाले किसी मुनिवरके दर्शनकी बात सोच रहे थे, इसी बीचमें बहुरोमा तथा स्थूलशिरा नामक दानव बहाँ आये। भूपाल! पाण्डवोंको जाते देख द्रीपदीका अपहरण करनेकी इच्छासे बहुरोमा नामक दानव मुनिका रूप धारण करके बहाँ आया। वह कुशके आसनपर बैठकर ध्यानमग्न हो गया। उसके पार्श्वमें कमण्डल था और हाथमें उसने कुशकी पवित्री पहन रखी थी। वह नासिकाके अग्रभागका अवलोकन करता हुआ रुद्राक्षकी मालासे मन्त्र-जप कर रहा था। नर्मदा-तटवर्ती बनमें भ्रमण करते हुए पाण्डवोंने बहाँ उसे देखा॥ १६—२२॥

तदनन्तर उसे देखकर राजा युधिष्ठिरने भाइयोंसहित प्रणाम करके उससे यह बात कही—महामुने! भाग्यसे आप यहाँ विद्यमान हैं। इस प्रदेहा (रेवा)-के समीपवर्ती परम गोपनीय तीर्थोंको हमें बताइये। नाथ! हमने सुना है कि मुनियोंका दर्शन धर्मका उपदेश करनेवाला होता है॥ २३-२४॥

धर्मपुत्र युधिष्ठिर जबतक उस मायावी मुनिसे बात कर ही रहे थे, तबतक ही स्थूलशिरा नामक दूसरा दानव मुनिरूप धारण किये वहाँ आ पहुँचा। वह बड़े ही आतुरभावसे इस प्रकार पुकार रहा था—अहो! यहाँ कौन हमारी रक्षा करनेवाला है? जो मनुष्य शरणमें आये हुए किसी भी भयपीड़ितकी रक्षा करता है, वह अनन्त पुण्यफलका भागी होता है; फिर जो मुझ उत्तम ज्ञाहणकी रक्षा करेगा, उसके पुण्यफलका तो कहना ही क्या है। एक और मेरुपर्वतकी दक्षिणापूर्वक सम्पूर्ण पृथिवीका दान और दूसरी ओर पीड़ित प्राणियोंके प्राण-संकटका निवारण—दोनों बगवर हैं। जो पुरुष दुष्टोंद्वारा सताये जाते हुए ज्ञाहण, गी, स्त्री और बालकोंकी उपेक्षा करता है, वह रीत नरकमें पड़ता है। मेरा सर्वस्व लूट लिया गया है। मैं दानवोंसे अपमानित होकर प्राण त्याग देनेको उद्यत हूँ। इस समय कौन ऐसा वीर पुरुष है, जो मेरी रक्षा कर सके? दुष्ट दानवने मेरी सफटिककी माला, सुन्दर कमण्डल और मनोहर खाट छीनकर मुझे थप्पड़से मारा है और सर्वस्व लूट लिया है॥ २५—३१॥

इत्याकरण्य वचः कस्तीवं पाण्डवा जातसप्तमा�।
यान्ति रोमाञ्चिता भूयो विधायाग्नि च तं मुनिम्॥ ३२

विमुच्य द्रौपदीं तत्र मुनेः पाश्च महात्मनः।
ततो दूरतरं प्राप्ताः संरम्भात्ते च पाण्डवाः॥ ३३

ततो युधिष्ठिरोऽबोचत् किं च नो नात्र दृश्यते।
कृष्णासंरक्षणार्थाय द्रज व्यावर्त्य चार्जुन॥ ३४

ततोऽर्जुनो विनिष्कान्तो वन्धुवाक्यप्रणोदितः।
ततो युधिष्ठिरो राजा सत्यां वाचमकल्पयत्॥ ३५

निरीक्ष्य मण्डलं भानोस्तदा सुगहने वने।
मम सत्याच्च सुकृताद् धर्मसम्भाषणात् प्रभो॥ ३६

तथ्यं शंसन्तु त्रिदशा मम संशयभाजिनः।
ततोऽम्बरेऽभवद्वाणी तदा भूपाशरीरिणी॥ ३७

दानवोऽयं महाराज मुनिः स्थूलशिराः स्थितः।
नासाद्वुपद्वृतः केन मायैषास्य दुरात्मनः॥ ३८

ततो भीमः कराधातैर्नश्यमानं हि दानवम्।
संरम्भात्कुपितोऽत्यर्थी मौलिदेशो जघान तम्॥ ३९

सोऽपि रूपं निजं प्राप्य रौद्रं भीममताडयत्।
तत्र युद्धं प्रवद्यते दारुणं भीमदैत्ययोः॥ ४०

कष्टाद्वभङ्गं भीमोऽपि तस्य स्थूलं शिरो वने।
अर्जुनोऽपि समायातो नैव पश्यति तं मुनिम्॥ ४१

तथा च द्रौपदीं भूयः सार्थीं कान्तां च वल्लभाम्।
ततो वृक्षं समारह्य यावत्पश्यति चार्जुनः॥ ४२

तावद्विधाय तां स्कन्धे शीघ्रं धावति दानवः।
संहता याति दुष्टेन रुदती कुररी यथा॥ ४३

कुर्वती भीमभीमेति धर्मपुत्रेति वादिनी।
तां दृष्ट्वा स ययौ वीरः शब्दैः संनादयन् दिशः॥ ४४

इस प्रकारके कातर वचन सुनकर पाण्डव हड्डवड़ा गये। वे रोमाञ्चित हो, आग जलाकर उस मुनिके पीछे चले। द्रौपदीको उन लोगोंने पहलेवाले महात्मा मुनिके पास ही छोड़ दिया और स्वयं रोषसे भरकर वहाँसे बहुत दूर निकल गये॥ ३२-३३॥

तदनन्तर युधिष्ठिरने कहा—हमें तो यहाँ कुछ भी दिखायी नहीं देता। अर्जुन! तुम द्रौपदीकी रक्षाके लिये यहाँसे लौट जाओ। तब भाइके वचनसे प्रेरित होकर अर्जुन वहाँसे चल दिये। राजन्! फिर राजा युधिष्ठिरने उस गहन चनके भीतर सूर्यमण्डलकी ओर देखकर यह सत्य वचन कहा—मेरी सत्यवादिता, पुण्यकर्म तथा धर्मपूर्वक भाषण करनेसे संतुष्ट होकर देवगण संशयमें पढ़े हुए मुझको सत्य बात बतला दें॥ ३४-३६॥

राजन्! युधिष्ठिरके यों कहनेपर आकाशमें इस प्रकारका शब्द हुआ, यद्यपि वहाँ बोलनेवाला कोई व्यक्ति नहीं था—महाराज! यह (जो आपके पास खड़ा है, वह मुनि नहीं) दानव है। स्थूलशिरा नामक मुनि तो सुखपूर्वक हैं, उनपर किसीके द्वारा कोई उपद्रव नहीं है। यह तो इस दुष्टकी माया है॥ ३७-३८॥

तब भीमने अत्यन्त ऋोधसे युक्त हो उस भागते हुए दानवके मस्तकपर बड़े थेगसे मुष्टिप्रहार किया। फिर तो दानवने भी अपना रोद्रूप धारण किया और भीमको मुक्का मारा। इस प्रकार भीम और दानवमें वहाँ दारुण संग्राम छिड़ गया। भीमने उस चनमें बड़े कष्टसे उसके स्थूल मस्तकका छेदन किया॥ ३९-४०॥

इधर अर्जुन भी जब मुनिके आश्रमपर पहुँचे, तब वहाँ उन्हें न तो वह मुनि दिखायी दिया और न प्राणप्रिया साध्वी भार्या द्रौपदी ही दीख पड़ी। तब अर्जुनने बृक्षपर चढ़कर ज्यों ही इधर-उधर दृष्टि डाली, ज्यों ही देखा कि एक दानव द्रौपदीको अपने कंधेपर छिटाकर बड़ी शीघ्रतासे भागा जा रहा है और उस दुष्टके द्वारा हरी गयी द्रौपदी कुररीकी भौति 'हा धर्मपुत्र! हा भीम!' इत्यादि रटती हुई विलाप कर रही है। द्रौपदीको उस अवस्थामें देखकर वीर अर्जुन अपनी आवाजसे दिशाओंको गुंजाते हुए चले।

पादन्यासोरुवेगेन प्रभग्नः पादपा भृशम्।
ततो दैत्योऽपि तां तन्वीं विहायाशु पलायितः ॥ ४५
तथापि चार्जुनो तस्य कोपामुक्ष्मति नासुरम्।
पतितो मेदिनीपृष्ठे तावदेव चतुर्भुजः ॥ ४६
पीते च वाससी विभृत् शङ्खचक्रायुधानि च।
ततः स विस्मयाक्रान्तो नत्वा पार्थो ब्रह्मवदत् ॥ ४७

अर्जुन उकाच

कथं कृतैषा भगवंस्त्वया मायात्र वैष्णवी।
मयाप्यपकृतं नाथ तत् क्षमस्व नमोऽस्तु ते ॥ ४८
नूनमज्ञानभावेन कर्मतदारुणं मया।
तत्क्षन्तव्यं जगद्राथ चैतन्यं मानवे कुतः ॥ ४९

चतुर्भुज उकाच

नाहं कृष्णो महाबाहो बहुरोमास्मि दानवः।
उपयातो हरेदेहं पूर्वकर्मप्रभावतः ॥ ५०

अर्जुन उकाच

बहुरोमन् पूर्वजातिं कर्म मे शांस तत्त्वतः।
केन कर्मविपाकेन विष्णोः सारूप्यमाप्नान् ॥ ५१

चतुर्भुज उकाच

शृणवर्जुन महाभाग सहितो भातृभिर्मम।
चरितं चित्रमत्यर्थं शृणवतां मुदवर्धनम् ॥ ५२
अहमासं पुरा राजा सोमवंशसमुद्घवः।
जयध्वज इति ख्यातो नारायणपरायणः ॥ ५३
विष्णोर्देवालये नित्यं सम्पार्जनपरायणः।
उपलेपरतश्चैव दीपदाने समुद्घातः ॥ ५४
बीतिहोत्र इति ख्यात आसीत् साधुपुरोहितः।
मम तत्त्वरितं दृष्ट्वा विग्रो विस्मयमागतः ॥ ५५

मार्कण्डेय उकाच

कदाचिदुपविष्टं तं राजानं विष्णुतत्परम्।
अपृच्छद्वीतिहोत्रस्तं वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ५६
राजन् परमधर्मज्ञ हरिभक्तिपरायण।
विष्णुभक्तिमतां पुंसां श्रेष्ठोऽसि पुरुषर्थभ ॥ ५७
सम्पार्जनपरो नित्यं उपलेपरतस्तथा।
तत्त्वे वद महाभाग त्वया किं विदितं फलम् ॥ ५८

उस समय उनके बड़े बेगसे पैर रखनेके कारण अनेकानेक बुक्ष गिर गये। तब वह दैत्य भी उस तन्वंशीको छोड़कर अकेला ही बेगसे भागा; तथापि अर्जुनने छोधके कारण उस असुरका पीछा न छोड़ा। भागते-भागते वह दानव एक जगह पृथ्वीपर गिर पड़ा और गिरते ही चार भुजाओंसे युक्त हो, शङ्ख तथा चक्र आदि धारण किये पीताम्बरधारी विष्णुके रूपमें दीख पड़ा। तब कुन्तीनन्दन अर्जुन बड़े ही विस्मित हुए और प्रणाम करके बोले ॥ ४१—४७ ॥

अर्जुनने कहा—भगवन्! आपने यहाँ वैष्णवी माया क्यों फेला रखी थी? मैंने भी जो आपका अपकार किया है, उसके लिये हे नाथ! मेरे अपराधको क्षमा करें; आपको नमस्कार है। हे जगन्नाथ! अज्ञानके कारण ही मैंने यह दारुण कर्म किया है; इसलिये इसे क्षमा कर दें। भला, एक साधारण मनुष्यमें इतनी समझ कहाँ हो सकती है, जिससे आपको अन्य वेष्टमें भी पहचान ले ॥ ४८-४९ ॥

चतुर्भुज बोला—महाबाहो! मैं विष्णु नहीं, बहुरोम नामक दानव हूँ। मैंने अपने पूर्वकर्मके प्रभावसे भगवान् विष्णुका सारूप्य प्राप्त किया है ॥ ५० ॥

अर्जुन बोले—बहुरोमन्! तुम अपने पूर्वजन्म और कर्मका ठीक-ठीक बर्णन करो। तुमने किस कर्मके परिणामसे विष्णुका सारूप्य प्राप्त किया है? ॥ ५१ ॥

चतुर्भुज बोला—महाभाग अर्जुन! आप अपने भाइयोंके साथ मेरे अत्यन्त विचित्र चरित्रको सुनिये; यह श्रोताओंके आनन्दको बढ़ानेवाला है। मैं पूर्वजन्ममें चन्द्रवंशमें उत्पन्न जयध्वज नामसे विष्णुत राजा था। उस समय सदा ही मैं भगवान् नारायणके भजनमें लगा रहता और उनके मन्दिरमें झाड़ लगाया करता था। प्रतिदिन उस मन्दिरको लीपता और [रात्रिमें] वहाँ दीप जलाया करता था। उन दिनों बीतिहोत्र नामक एक साधु ब्राह्मण मेरे यहाँ पुरोहित थे। प्रभो! वे मेरे इस कार्यको देखकर बहुत विस्मित हुए ॥ ५२—५५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—एक दिन वेद-वेदाङ्गोंके पूर्ण विद्वान् पुरोहित बीतिहोत्रजीने बैठे हुए उन विष्णुभक्त राजासे इस प्रकार प्रश्न किया—परम धर्मज्ञ भूपाल! हरिभक्तिपरायण नरश्रेष्ठ! आप विष्णुभक्त पुरुषोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं; क्योंकि आप भगवान्‌के मन्दिरमें प्रतिदिन झाड़ तथा लेप दिया करते हैं। अतः महाभाग! आप मुझे बताइये कि भगवान्‌के मन्दिरमें झाड़ देने और वहाँ लीपने-पोतनेका कौन-सा उत्तम फल आप जानते हैं।

कर्माण्यन्यानि सन्त्येव विष्णोः प्रियतराणि वै ।
तथापि त्वं महाभाग एतयोः सततोद्यतः ॥ ५९
सर्वात्मना महापुण्यं जनेश विदितं तद्व ।
तद्वूहि यद्यगुह्यं च प्रीतिर्मयि तवास्ति चेत् ॥ ६०

जयध्वज उकाच

शृणुच्च विप्रशार्दूल ममैव चरितं पुरा ॥ ६१
जातिस्मरत्वाऽज्ञानामि श्रोतृणां विस्मयावहम् ।
पूर्वजन्मनि विप्रेन्द्र रैवतो नाम चाङ्गवः ॥ ६२
अयाऽन्याजकोऽहं वै सदैव ग्रामयाजकः ।
पिशुनो निष्ठुरश्चेव अपण्यानां च विक्रयी ॥ ६३
निधिद्वकर्माच्चरणात् परित्यक्तः स्वबन्धुभिः ।
महापापरतो नित्यं ब्रह्मद्वेषरतस्तथा ॥ ६४
परदारपरद्व्यलोलुपो जनुहिंसकः ।
मद्यपानरतो नित्यं ब्रह्मद्वेषरतस्तथा ॥ ६५
एवं पापरतो नित्यं बहुशो मार्गरोधकृत् ।
कदाचित् कामचारोऽहं गृहीत्वा ब्राह्मणस्त्रियः ॥ ६६
शून्यं पूजादिभिर्विष्णोर्मन्दिरं प्राप्तवाच्रिशि ।
स्ववस्त्रप्रान्ततो ब्रह्मन् कियदंशः स मार्जितः ॥ ६७
प्रदीपः स्थापितस्तत्र सुरतार्थाद् द्विजोत्तम् ।
तेनापि मम दुष्कर्म निःशेषं क्षयमागतम् ॥ ६८
एवं स्थितं विष्णुग्रहे मया भोगेच्छया द्विज ।
तदैव दीपकं दृष्ट्वा आगताः पुरपालकाः ॥ ६९
चौर्यार्थं परदूतोऽयमित्युक्त्वा मामपातयन् ।
खड्गेन तीक्ष्णाधारेण शिरश्छित्त्वा च ते गताः ॥ ७०
दिव्यं विमानमारुह्य प्रभुदाससमन्वितम् ।
गन्धर्वैर्गीयमानोऽहं स्वर्गलोकं तदा गतः ॥ ७१

यद्यपि भगवान्‌को अत्यन्त प्रिय लगनेवाले अन्य कर्म भी हैं ही, तथापि महाभाग ! आप इन्हीं दो कर्मोंमें सदा सर्वथा लगे रहते हैं । नोरेश ! यदि आपको इनसे होनेवाला महान् पुण्यरूप फल जात हो और वह छिपानेयोग्य न हो तथा यदि आपका मुझपर प्रेम हो तो अवश्य ही उस फलको मुझे बताइये ॥ ५६—६० ॥

जयध्वज ओले—विप्रवर ! इस विषयमें आप मेरा ही पूर्वजन्मका चरित्र सुनें । मुझे पूर्वजन्मकी बासोंका स्मरण है, इसीसे मैं सब जानता हूँ । मेरा चरित्र श्रोताओंको आश्रयमें ढालनेवाला है । विप्रेन्द्र ! पूर्वजन्ममें मैं ऐवत नामका ब्राह्मण था । जिनको यज्ञ करनेका अधिकार नहीं है, उनसे भी मैं सदा ही यज्ञ कराता था और अनेकों गाँधींका पुरोहित था । इतना ही नहीं, मैं दूसरोंकी बुगली खानेवाला, निर्दय और नहीं बेचने योग्य बस्तुओंका विक्रय करनेवाला था । निषिद्ध कर्मोंका आचरण करनेके कारण मेरे बान्धवोंने मुझे त्याग दिया था । मैं महान् पापी और सदा ही ब्राह्मणोंसे द्वेष रखनेवाला था । परायी स्त्री और पराये धनका लोभी था, प्राणियोंकी हिंसा किया करता था । सदा ही मद्य पीता और ब्राह्मणोंसे द्वेष रखता था । इस प्रकार मैं प्रतिदिन पापमें लगा रहता और बहुधा लूटपाट भी करता था ॥ ६१—६५ ॥

एक दिन रातमें स्वेच्छाचारिताके कारण मैं कुछ ब्राह्मण-पत्रियोंको पकड़कर एक सूने ठाकुर-मन्दिरमें ले गया । उस मन्दिरमें कभी पूजा नहीं होती थी । [यों ही खण्डहर-सा पढ़ा रहता था ।] वहाँ स्त्रियोंके साथ रमण करनेकी इच्छासे मैंने अपने बस्त्रके किनारोंसे उस मन्दिरका कुछ भाग बुहारकर साफ किया और हे द्विजोत्तम ! [प्रकाशके लिये] दीप जलाकर रख दिया । [यद्यपि मैंने अपनी पाप-वासना पूर्ण करनेके लिये ही मन्दिरमें झाड़ू लगायी और दीप जलाया था, तथापि] उससे भी मेरा सारा पापकर्म नष्ट हो गया । ब्राह्मण ! इस प्रकार जब मैं उस विष्णुमन्दिरमें भोगकी इच्छासे उहरा हुआ था, उसी समय वहाँ दीपक देखकर नगरके रक्षक आ पहुँचे और वह कहकर कि 'यह किसी शत्रुका दूत है, यहाँ चोरी करने आया है', उन्होंने मुझे पृथ्वीपर गिरा दिया तथा तीखी धारवाली तलवारासे मेरा मस्तक काटकर बे चले गये । तब मैं भगवान्‌के पार्षदोंसे युक्त दिव्य विमानपर आरूढ़ हो, गन्धर्वैंहारा अपना यशोगान सुनता हुआ स्वर्गलोकको चला गया ॥ ६६—७१ ॥

चतुर्भुज उकाच

तत्र स्थित्वा च्छ्राकल्पं प्रातं सायं द्विजोत्तमाः ।
दिव्यभोगसमायुक्तो दिव्यरूपसमन्वितः ॥ ७२
जातोऽहं पुण्ययोगाद्वि सोमवंशसमुद्घवः ।
जयध्वज इति ख्यातो राजा राजीवलोचनः ॥ ७३
तत्रापि कालवशतो मृतः स्वर्गमवासवान् ।
इन्द्रलोकमनुप्राप्य रुद्रलोकं ततो गतः ॥ ७४
रुद्रलोकाद्ब्रह्मलोकं गच्छता नारदो मुनिः ।
दृष्टश्च नमितो नैव गर्वान्मे हसितश्च सः ॥ ७५
कुपितः शासवान् मां स राक्षसो भव भूपते ।
इति शायं समाकर्ण्य दत्तं तेन द्विजन्मना ॥ ७६
प्रसादितो मया भूप प्रसादं कृतवान् मुनिः ।
यदा रेवामठे राजन् धर्मपुत्रस्य धीमतः ॥ ७७
भार्यापहारं नयतः शापमोक्षो भविष्यति ।
सोऽहमर्जुन भूपाल धर्मपुत्र युधिष्ठिर ॥ ७८
विष्णोः साहस्र्यमगमं यापि वैकुण्ठमद्य वै ।

मार्कण्डेय उकाच

इत्युक्त्वा गरुडारुद्धो धर्मपुत्रस्य पश्यतः ॥ ७९
गतवान् विष्णुभवनं यत्र विष्णुः श्रिया सह ।
सम्मार्जनोपलेपाभ्यां प्रहिमा तेन वर्णितः ॥ ८०
अवशेनापि यत्कर्म कृत्वेमां श्रियमागतः ।
धक्षिपद्धिः प्रशान्तेश्च किं पुनः सम्यगर्वनात् ॥ ८१

सूत उकाच

मार्कण्डेयवचः श्रुत्वा पापद्वंशसमुद्घवः ।
सहस्रानीकभूपालो हरिपूजारतोऽभवत् ॥ ८२
तस्माच्छृणुत विप्रेन्द्रा देवो नारायणोऽव्ययः ।
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि पूजकानां विमुक्तिदः ॥ ८३
अर्चयध्वं जगन्नाथं भूयो भूयो वदाम्यहम् ।
ततु यदीच्छथ द्विजा दुस्तरं भवसागरम् ॥ ८४
येऽर्चयन्ति हरिं भक्ताः प्रणतार्तिहरं हरिम् ।
ते बन्धास्ते प्रपूज्याश्च नमस्याश्च विशेषतः ॥ ८५

इति श्रीनरसिंहपुराणे सहस्रानीकवचिते मार्कण्डेयेनोपदिष्टसम्मार्जनोपकलं नाम त्रयस्तिंज्ञोऽव्ययः ॥ ३३ ॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणके अन्तर्गत सहस्रानीक-चरित्रके प्रसङ्गमें मार्कण्डेयमुनिद्वारा उपदिष्ट 'मन्दिरमें झाड़ देने और उसके तीपनेवाले महिमाका वर्णन' नामक तीतोसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३३ ॥

चतुर्भुज बोला—इस प्रकार मैंने दिव्यरूप धारणकर, दिव्य भौगोंसे सम्पन्न होकर स्वर्गलोकमें सौं कल्पोंसे भी अधिक कालतक निवास किया। फिर उसी पुण्यके भौगसे चन्द्रवंशमें उत्पन्न जयध्वज नामसे विष्णवात् कमलके समान नैवेंवाला राजा हुआ। उस जन्ममें भी कालवश मृत्युको प्राप्त होनेपर मैं स्वर्गलोकमें आया। फिर यहाँसे रुद्रलोकको प्राप्त हुआ। एक बार रुद्रलोकसे ब्रह्मलोकको जाते समय मैंने नारदमुनिको देखा, परंतु देखनेपर भी उन्हें प्रणाम नहीं किया और उनकी हँसी उडाने लगा। इससे कुपित होकर उन्होंने शाप दिया—‘राजन्! तू राक्षस हो जा।’ उन ब्राह्मणके दिये हुए इस शापको सुनकर मैंने क्षमा माँगकर (किसी तरह) उन्हें प्रसन्न किया। तब मुनिने मुझपर शापानुयाहके रूपमें कृपा की। [उन्होंने कहा—] राजन्! जिस समय बुद्धिमान् धर्मपुत्र युधिष्ठिरकी भार्याका हरण करके तुम रेखा-तटवती मरुमें चले जाओगे, उस समय तुम्हें शापसे मुक्ति मिल जायगी। भूपाल! धर्मपुत्र युधिष्ठिर! अर्जुन! मैं वही राजा जयध्वज हूँ। इस समय भगवान् विष्णुके साल्प्यको प्राप्त हुआ हूँ। अब मैं निष्ठय ही वैकुण्ठधामको जाऊँगा ॥ ७२—७८ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—यह कहकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरके देखते-ही-देखते वे राजा जयध्वज गरुडपर आरूढ हो विष्णुधामको चले गये, जहाँ लक्ष्मीजीके साथ भगवान् विष्णु सदा विराजमान रहते हैं। इसीसे विष्णुमन्दिरके बुहारने और लोपनेसे बड़ी महता प्राप्त होनेका वर्णन किया गया है। [राजा जयध्वजने पूर्वजन्ममें] कामके वशीभूत होकर भी जिस कर्मको करनेसे ऐसी दिव्य सम्पत्ति प्राप्त कर ली, उसीको यदि भक्तिमान् और शान्त पुरुष करे तथा भलीभांति भगवान्का पूजन करे तो उनको प्राप्त होनेवाले फलके विषयमें क्या कहना है? ॥ ७९—८१ ॥

सूतजी बोले—मार्कण्डेयजीके उपर्युक्त वचन सुनकर पाण्डुवशमें उत्पन्न राजा सहस्रानीक भगवान्के पूजनमें संलग्न हो गये। इसलिये विप्रवृन्द! आपलोग यह सुन लें कि अविनाशी भगवान् नारायण जानकर अथवा अनजानमें पी पूजा करनेवाले अपने भक्तोंको मुक्ति प्रदान करते हैं। द्विजो! मैं यह बारंबार कहता हूँ कि यदि आपलोग दुस्तर भवसागरके पार जाना चाहते हैं तो भगवान् जगन्नाथकी पूजा करें। जो भक्त प्रणतजनोंका कट्ट दूर करनेवाले भगवान् विष्णुका पूजन करते हैं, वे वन्दनोय, पूजनोय और विशेषरूपसे नमस्कार करनेयोग्य हैं ॥ ८२—८५ ॥

चौंतीसवाँ अध्याय

भगवान् विष्णुके पूजनका फल

श्रीमहाभागवत उकाच

पुनरेव द्विजश्रेष्ठ मार्कण्डेय महामते।
निर्मात्यापनयाद्विष्णोर्थत्पुण्यं तद्वदस्व मे॥ १

मार्कण्डेय उकाच

निर्मात्यमपनीवाथ तोयेन स्नाप्य केशवम्।
नरसिंहाकृतिं राजन् सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ २
सर्वतीर्थफलं प्राप्य यानास्त्रहो दिवं द्वजेत्।
श्रीविष्णोः सदनं प्राप्य मोदते कालमक्षयम्॥ ३
आगच्छ नरसिंहेति आवाह्याक्षतपुण्यकैः।
एतावतापि राजेन्द्र सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ४
दत्त्वाऽऽसनमथार्घ्यं च पाद्यमाचमनीयकम्।
देवदेवस्य विधिना सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ५
स्नाप्य तोयेन पयसा नरसिंहं नराधिप।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते॥ ६
स्नाप्य दृष्टा सकृद्यस्तु निर्मलः प्रियदर्शनः।
विष्णुलोकमवान्नोति पूज्यमानः सुरोत्तमैः॥ ७
यः करोति हरेचाँ मधुना स्नापयन्नः।
अग्रिलोके स्त्र मोदित्या पुनर्विष्णुपुरे वसेत्॥ ८
घुतेन स्वपनं यस्तु स्वानकाले विशेषतः।
नरसिंहाकृतेः कुर्याच्छ्रुभरीनिनादितम्॥ ९
पापकश्चकमुन्मुच्य यथा जीर्णामिहस्तवचम्।
दिव्यं विमानमास्थाय विष्णुलोके महीयते॥ १०
पञ्चगव्येन देवेशं यः स्नापयति भक्तिः।
मन्त्रपूर्वं महाराज तस्य पुण्यमनन्तकम्॥ ११
यश्च गोधूमकैश्चूर्णैरुद्धत्यौष्णोन वारिणा।
प्रक्षाल्य देवदेवेशं वारुणं लोकमानुयात्॥ १२

श्रीसहस्रानीकने पूछा—महामते द्विजवर मार्कण्डेयजी! अब पुनः यह बताइये कि भगवान् विष्णुके निर्मात्य (चन्दन-पुण्य आदि)-को हटानेसे कौन-सा पुण्य प्राप्त होता है॥ १॥

मार्कण्डेयजी बोले—राजन्! नृसिंहस्वरूप भगवान् केशवको निर्मात्य हटाकर जलसे ज्ञान करानेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा सम्पूर्ण तीर्थोंके सेवनका फल प्राप्तकर, विमानपर आरूढ हो स्वर्गको चला जाता है और वहाँसे श्रीविष्णुधामको प्राप्त होकर अक्षयकालपर्यन्त आनन्दका उपभोग करता है। ‘भगवान् नरसिंह! आप यहाँ पधारें’—इस प्रकार अक्षत और पुण्योंके द्वारा यदि भगवान्का आवाहन करे तो राजेन्द्र! इतनेसे भी वह मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। देवदेव नृसिंहको विधिपूर्वक आसन, पाद्य (पैर धोनेके लिये जल), अर्घ्य (हाथ धोनेके लिये जल) और आचमनीय (कुल्ला करनेके लिये जल) अर्पण करनेसे भी सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो एक बार भी भगवान्को दहीसे ज्ञान कराता है, वह निर्मल एवं सुन्दर शरीर धारणकर सुरवरोंसे पूजित होता हुआ विष्णुलोकको जाता है। जो मनुष्य मधुसे भगवान्को नहलाता हुआ उनकी पूजा करता है, वह अग्रिलोकमें आनन्दोपभोग करके पुनः विष्णुपुर (वैकुण्ठधाम)-में निवास करता है। जो ज्ञानकालमें श्रीनरसिंहके विष्णुहको श्रुति और नगरेका शब्द करते हुए विशेषरूपसे धीसे ज्ञान कराता है, वह पुरुष पुरानी केंचुलको छोड़नेवाले साँपकी भाँति पाप-कञ्चुकको त्यागकर दिव्य विमानपर आरूढ हो, विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ २—१०॥

महाराज! जो देवेशर भगवान्को भक्तिपूर्वक मन्त्रपाठ करते हुए पञ्चगव्यसे ज्ञान कराता है, उसका पुण्य अक्षय होता है। जो गेहूँके आटेसे देवदेवेशवर भगवान्को उबटन लगाकर गरम जलसे उन्हें

पादपीठं तु यो भक्त्या विल्वपत्रैर्निर्घर्षितम् ।
 उष्णाम्बुना च प्रक्षात्य सर्वपापे: प्रमुच्यते ॥ १३
 कुशपुष्पोदकैः स्नात्वा ब्रह्मलोकमवान्यात् ।
 रत्नोदकेन सावित्रं कौबेरं हेमवारिणा ।
 नरसिंहं तु संस्नाप्य कर्पूरागुरुवारिणा ॥ १४
 इन्द्रलोके स मोदित्वा पञ्चाद्विष्टुपुरे वसेत् ।
 पुण्योदकेन गोविन्दं स्नाप्य भक्त्या नरोत्तम ॥ १५
 सावित्रं लोकमासाद्य विष्णुलोके महीयते ।
 वस्त्राभ्यामर्चनं भक्त्या परिधाप्य हरि हरे ॥ १६
 सोमलोके रमित्वा च विष्णुलोके महीयते ।
 कुहुमागुरुश्रीखण्डकर्दमैरच्युताकृतिम् ॥ १७
 आलिष्य भक्त्या राजेन्द्र कल्पकोटि वसेद्विवि ।
 मल्लिकामालतीजातिकेतव्यशोकचप्पकैः ॥ १८
 पुनागनागवकुलैः पद्मीरुत्पलजातिभिः ।
 तुलसीकरवीरेश्वरं पालाशैः सानुकुम्बकैः ॥ १९
 एतैरन्यैश्व्रं कुसुमैः प्रशस्तैरच्युतं नरः ।
 अर्चयेष्वासुवर्णस्य प्रत्येकं फलमान्यात् ॥ २०
 मालां कृत्वा यथालाभमेतेषां विष्णुपर्मर्चयेत् ।
 कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥ २१
 दिव्यं विमानमास्थाय विष्णुलोके स मोदते ।
 नरसिंहं तु यो भक्त्या विल्वपत्रैरखण्डतैः ॥ २२
 निश्छिरैः पूजयेद्यस्तु तुलसीभिः समन्वितम् ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वभूषणभूषितः ॥ २३
 काञ्छनेन विमानेन विष्णुलोके महीयते ।
 माहिषाख्यं गुग्गुलं च आम्यसुक्तं सशर्करम् ॥ २४
 धूपं ददाति राजेन्द्र नरसिंहस्य भक्तिमान् ।
 धूषितैः सर्वदिग्भ्यस्तु सर्वपापविवर्जितः ॥ २५
 अप्सरोगणसंकीर्णविमानेन विराजते ।
 व्यायुलोके स मोदित्वा पञ्चाद्विष्टुपुरं वजेत् ॥ २६

नहलाता है, वह वरुणलोकको प्राप्त होता है। जो भगवान्‌के पादपीठ (पैर रखनेके पीछे, चौकी या चरणपादुक)-को भक्तिपूर्वक विल्वपत्रसे राङडकर गरम जलसे धोता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। कुश और पुष्पमिश्रित जलसे भगवान्‌को स्नान कराकर मनुष्य ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है, रत्नयुक्त जलसे स्नान करानेपर सूर्यलोकको और सुवर्णयुक्त जलसे नहलानेपर कुबेरलोकको प्राप्त करता है। जो कपूर और अगुरुमिश्रित जलसे भगवान् नृसिंहको नहलाता है, वह पहले इन्द्रलोकमें सुखोपभोग करके फिर विष्णुधाममें निवास करता है। जो पुरुषश्रेष्ठ तीर्थोंके पवित्र जलसे गोविन्दको भक्तिपूर्वक स्नान कराता है, वह आदित्यलोकको प्राप्त करके पुनः विष्णुलोकमें पूजित होता है। जो भक्तिपूर्वक भगवान्‌को युगल वस्त्र पहनाकर उनकी पूजा करता है, वह चन्द्रलोकमें सुखभोग करके पुनः विष्णुधाममें सम्मानित होता है ॥ ११—१६%, ॥

राजेन्द्र! जो कुहुकुम (केसर), अगुह और चन्दनके अनुलेपनसे भगवान्‌के विग्रहको भक्तिपूर्वक अनुलिप्त करता है, वह करोड़ों कल्पोतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। जो मनुष्य मल्लिका, मालती, जाती, केतवी, अशोक, चम्पा, पुनाग, नागकेसर, बकुल (मौलसिरी), उत्पल जातिके कमल, तुलसी, कनेर, पलाश—इनसे तथा अन्य उत्तम पुष्पोंसे भगवान्‌की पूजा करता है, वह प्रत्येक पुष्पके बदले दस सुवर्ण मुद्रा दान करनेका फल प्राप्त करता है। जो यथाप्राप्त उपर्युक्त पुष्पोंकी माला बनाकर उससे भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, वह सैकड़ों और हजारों करोड़ कल्पोतक दिव्य विमानपर आरूढ हो विष्णुलोकमें आनन्दित होता है। जो छिद्रहित आखण्डत विल्वपत्रों और तुलसीदलोंसे भक्तिपूर्वक श्रीनृसिंहका पूजन करता है, वह सब पापोंसे सर्वथा मुक्त हो, सब प्रकारके भूषणोंसे भूषित होकर सोनेके विमानपर आरूढ हो विष्णुलोकमें सम्मान पाता है ॥ १७—२३%, ॥

राजेन्द्र! जो माहिष गुग्गुल, धी और शक्करसे तैयार की हुई धूपको भगवान् नरसिंहके लिये भक्तिपूर्वक अर्पित करता है, वह सब दिशाओंमें धूप करनेसे सब पापोंसे रहित हो अप्सराओंसे पूर्ण विमानद्वारा वायुलोकमें विराजमान होता है और वहीं आनन्दोपभोगके पश्चात् पुनः विष्णुधाममें जाता

घृतेन वाथ तैलेन दीपं प्रञ्चालयेन्नरः।
विष्णवे विधिवद्वक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु॥ २७
विहाय पापकलिलं सहस्रादित्यसप्रभः।
ज्योतिष्ठता विमानेन विष्णुलोकं स गच्छति॥ २८
हविः शास्त्रोदनं विद्वानाज्ययुक्तं सशक्तरम्।
निवेद्य नरसिंहाय यावकं पायसं तथा॥ २९
समास्तन्दुलसंख्याय यावतीस्तावतीर्नुप।
विष्णुलोके महाभोगान् भुज्ञन्नास्ते स वैष्णवः॥ ३०
बलिना वैष्णवेनाथ त्रृप्ताः सन्तो दिवीकसः।
शान्तिं तस्य प्रयच्छन्ति श्रियमारोग्यमेव च॥ ३१
प्रदक्षिणोन चैकेन देवदेवस्य भक्तिः।
कृतेन यत्फलं नृणां तच्छृणुष्व नुपात्पञ्ज॥ ३२
पृथ्वीप्रदक्षिणफलं प्राप्य विष्णुपुरे वसेत्।
नमस्कारः कृतो येन भक्त्या वै माधवस्य च॥ ३३
धर्मार्थकाममोक्षाख्यं फलं तेनासमझसा।
स्तोत्रैर्जपेश्व देवाग्ने यः स्तीति मधुसूदनम्॥ ३४
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते।
गीतवाद्यादिकं नाट्यं शङ्खतूर्यादिनिःस्वनैः॥ ३५
यः कारयति वै विष्णोः स याति मन्दिरं नरः।
पर्वकाले विशेषेण कामगः कामरूपवान्॥ ३६
सुसंगीतविदैश्वैव सेव्यमानोऽप्सरोगणैः।
महार्हमणिचित्रेण विमानेन विराजता॥ ३७
स्वर्गात् स्वर्गमनुप्राप्य विष्णुलोके महीयते।
अ्यजं तु विष्णवे यस्तु गरुडेन समन्वितम्॥ ३८
दद्यात्मोऽपि द्वजाकीर्णविमानेन विराजता।
विष्णुलोकमवाजोति सेव्यमानोऽप्सरोगणैः॥ ३९
सुवर्णभरणीर्दिव्यैर्हरकेयूरकुण्डलैः।
मुकुटाभरणादैश्व यो विष्णुं पूजयेन्नृप॥ ४०
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वभूषणभूषितः।
इन्द्रलोके वसेद्वीमान् यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ ४१

है। जो मनुष्य विधिपूर्वक भक्तिके साथ घी अथवा तेलसे भगवान् विष्णुके लिये दीप प्रञ्चलित करता है, उस पुण्यका फल सुनिये। वह पाप-पद्मसे मुक्त होकर हजारों सूर्यके समान कान्ति धारणकर ज्योतिर्मय विमानसे विष्णुलोकको जाता है। जो विद्वान् हविष्य, घी-शब्दकरसे युक्त अगहनीका चावल, जौको लपसी और खीर भगवान् नरसिंहको निवेदन करता है, वह वैष्णव चावलोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक विष्णुलोकमें महान् भोगोंका उपभोग करता है। भगवान् विष्णुसम्बन्धी वलिसे सम्पूर्ण देवता तृप्त होकर पूजा करनेवालेको शान्ति, लक्ष्मी तथा आरोग्य प्रदान करते हैं॥ २४—३१॥

राजकुमार! भक्तिपूर्वक देवदेव विष्णुकी एक बार प्रदक्षिणा करनेसे मनुष्योंको जो फल मिलता है, उसे सुनिये। वह सारी पृथ्वीकी परिक्रमा करनेका फल प्राप्त करके वैकुण्ठधारमें निवास करता है। जिसने कभी भक्तिभावसे भगवान् लक्ष्मीपतिको नमस्कार किया है, उसने अनायास ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप फल प्राप्त कर लिया। जो स्तोत्र और जपके द्वारा मधुसूदनकी उनके समक्ष होकर स्तुति करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें पूजित होता है। जो भगवान्के मन्दिरमें शङ्ख, तुरही आदि बाजोंके शब्दसे युक्त गाना-बजाना और नाटक करता है, वह मनुष्य विष्णुधामको प्राप्त होता है। विशेषतः पर्वके समय उक्त उत्सव करनेसे मनुष्य कामरूप होकर सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त होता है और सुन्दर संगीत जानेवाली अप्सराओंसे शोभायमान बहुमूल्य मणियोंसे जड़े हुए देवीप्रामाण विमानके द्वारा एक स्वर्गसे दूसरे स्वर्गको प्राप्त होकर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो भगवान् विष्णुके लिये गहडचिह्नसे युक्त ध्वजा अर्पण करता है, वह भी ध्वजामणिङ्गत जगमगाते हुए विमानपर आरूढ़ हो, अप्सराओंसे सेवित होकर विष्णुलोकको प्राप्त होता है॥ ३२—३९॥

नरेश्वर! जो सुवर्णके बने हुए दिव्य हार, केयूर, कुण्डल और मुकुट आदि आभरणोंसे भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, वह बुद्धिमान् सब पापोंसे मुक्त और सब आभूषणोंसे भूषित होकर जबतक चौदह इन्द्र राज्य करते हैं, तबतक (अर्थात् मूरे एक कल्पतक) इन्द्रलोकमें निवास करता है।

यो गां पर्यस्तिवनीं विष्णोः कपिलां सम्प्रयच्छति ।
 आराध्य तमथाये तु यत्किंचिहुग्धमुत्तमम् ॥ ४२
 तदत्त्वा नरसिंहाय विष्णुलोके महीयते ।
 पितरस्तस्य मोदन्ते शेतद्वीषे चिरं नृप ॥ ४३
 एवं यः पूजयेद्राजन् नरसिंहं नरोत्तमः ।
 तस्य स्वर्गपिवर्गो तु भवतो नात्र संशयः ॥ ४४
 यत्रैवं पूज्यते विष्णुर्नरसिंहो नैरनृप ।
 न तत्र व्याधिदुर्भिक्षराजचौरादिकं भयम् ॥ ४५
 नरसिंहं समाराध्य विधिनानेन माधवम् ।
 नानास्वर्गसुखं भुक्त्वा न भूयः स्तनपो भवेत् ॥ ४६
 नित्यं सर्विस्तिलौहोमो ग्रामे यस्मिन् प्रवर्तते ।
 न भवेत्तस्य ग्रामस्य भयं वा तत्र कुत्रचित् ॥ ४७
 अनावृष्टिर्महामारी दोषा नो दाहका नृप ।
 नरसिंहं समाराध्य आह्वाणीर्वेदपारगैः ॥ ४८
 कारयेत्तलक्षहोमं तु ग्रामे यत्र पुराधिपः ।
 कृते तस्मिन्मयोक्ते तु आगच्छति न तद्वयम् ॥ ४९
 दृष्टोपसर्गमरणं प्रजानामात्मनश्च हि ।
 सम्यगाराधनीयं तु नरसिंहस्य मन्दिरे ॥ ५०
 शङ्खरायतने चापि कोटिहोमं नराधिप ।
 कारयेत् संयतैर्विष्णैः सभोजनसदक्षिणैः ॥ ५१
 कृते तस्मिन्ब्रूपश्रेष्ठं नरसिंहप्रसादतः ।
 उपसर्गादिमरणं प्रजानामुपशास्यति ॥ ५२
 दुःस्वप्नदर्शने घोरे ग्रहपीडासु चात्मनः ।
 होमं च भोजनं चैव तस्य दोषः प्रणश्यति ॥ ५३
 अयने विषुवे चैव चन्द्रसूर्यग्रहे तथा ।
 नरसिंहं समाराध्य लक्षहोमं तु कारयेत् ॥ ५४
 शान्तिर्भवति राजेन्द्र तस्य तत्स्थानवासिनाम् ।
 एवमादिफलोपेतं नरसिंहाचीनं नृप ॥ ५५
 कुरु त्वं भूपते: पुत्र यदि वाञ्छसि सद्गतिम् ।
 अतः परतरं नास्ति स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ॥ ५६

जो विष्णुकी आराधना करके उनके लिये दुधार कपिला गी दान करता है और उन भगवान् नरसिंहके समक्ष उसका उत्तम दूध थोड़ा-सा भी अर्पण करता है, वह विष्णुलोकमें सम्मानित होता है तथा राजन् ! उसके पितर चिरकालतक शेतद्वीषमें आनन्द भोगते हैं । भूपाल ! इस प्रकार जो नरशेष नरसिंहस्वरूप भगवान् विष्णुका पूजन करता है, उसे स्वर्ग और मोक्ष दोनों ही प्राप्त होते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ ४०—४४ ॥

नृप ! जहाँ मनुष्योंद्वारा इस प्रकार भगवान् नरसिंहका पूजन होता है, वहाँ रोग, अकाल और राजा तथा चौर आदिका भय नहीं होता । इस विधिसे लक्ष्मीपति नरसिंहकी आराधना करके मनुष्य नाना प्रकारके स्वर्ग-सुख भोगता है और पुनः उसे [संसारमें जन्म लेकर] माताका दूध नहीं पीना पड़ता [वह मुक्त हो जाता है] । जिस गाँवमें [भगवान् के मन्दिरके निकट] प्रतिदिन धी और तिलसे होम होता है, उस गाँवमें अनावृष्टि, महामारी आदि दोष तथा अग्निदाह आदि किसी प्रकारका भय नहीं होता । जिस गाँवमें गाँवका मालिक वैदवेता आह्वाणोंद्वारा नरसिंहकी आराधना कराकर एक लक्ष होम करता है, वहाँ मेरे कथनानुसार यह कार्य सम्पन्न होनेपर महामारी आदि प्रत्यक्ष उपद्रवसे कर्ताका तथा उस गाँवमें रहनेवाली प्रजाका अकालमरण नहीं होता । इसलिये भगवान् नरसिंहके मन्दिरमें भली प्रकारसे आराधना करनी चाहिये ॥ ४५—५० ॥

नरेश ! इसी प्रकार शङ्खरजीके मन्दिरमें भी संयमशील आह्वाणोंके द्वारा उन्हें भोजन और दक्षिणा देकर एक करोड़की संख्यामें हवन कराना चाहिये । नृपशेष ! उसके करनेपर भगवान् नरसिंहके प्रसादसे प्रजावर्गका आकस्मिक उपद्रव तथा मृत्युभय शान्त हो जाता है । घोर दुःखप्रदेखनेपर और अपने ऊपर ग्रहजन्य कष्ट आनेपर होम और आह्वाणभोजन करनेसे उसका दोष भिट जाता है । दक्षिणायन या उत्तरायण आरम्भ होनेपर, विषुवकालमें*, अथवा चन्द्रमा तथा सूर्यका ग्रहण होनेपर भगवान् नरसिंहकी आराधना करके लक्षहोम कराना चाहिये । राजेन्द्र ! यों करनेसे उस स्थानके निवासियोंके विद्रोकी शान्ति हो जाती है । नरेश ! भगवान् नरसिंहकी पूजाके ऐसे अनेकों फल हैं । भूपालनन्दन ! यदि तुम सद्गति चाहते हो तो नरसिंहका पूजन करो । इससे बढ़कर कोई भी कार्य ऐसा नहीं है, जो स्वर्ग और मोक्षरूप फल देनेवाला हो ।

* जिस दिन दिन-रात यरावर हों, वह विषुवकाल कहा गया है । ऐसा समय सालमें दो बार आता है ।

नरेन्द्रः सुकरं कर्तुं देवदेवस्य पूजनम्।
सन्त्यरण्ये ह्यमूल्यानि पञ्चपुष्पाणि शाखिनाम्॥ ५७

तोयं नदीतडागेषु देवः साधारणः स्थितः।
मनो नियमयेदेकं विद्यासाधनकर्मणि॥ ५८
मनो नियमितं येन मुक्तिस्तस्य करे स्थिता॥ ५९

मार्कण्डेय उकाच

इत्येवमुक्तं	भृगुचोदितेन
मया	तवेहार्चनमच्युतस्य।
दिने दिने त्वं कुरु विष्णुपूजां	
बदस्य चान्यत्कथयामि किं ते॥ ६०	

इति श्रीनरसिंहपुराणे सहस्रानीक चरिते श्रीविष्ण्वोः पूजाविधिनाम चतुर्सिंहशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणके अन्तर्गत सहस्रानीक-चरितके प्रसङ्गमें 'श्रीविष्णुके पूजनकी विधि' नामक चतुर्सिंहां अध्याय पूरा हुआ ॥ ३४ ॥

पैंतीसवाँ अध्याय

लक्ष्मोम और कोटिहोमकी विधि तथा फल

उकाच

अहो महत्त्वया प्रोक्तं विष्णवाराधनजं फलम्।
सुमास्ते मुनिशार्दूल ये विष्णुं नार्चयन्ति वै॥ १
त्वत्प्रसादाच्युतं ह्येतत्ररसिंहार्चनक्रमम्।
भक्त्या तं पूजयिष्यामि कोटिहोमफलं वद॥ २

मार्कण्डेय उकाच

इममर्थं पुरा पृष्ठः शौनको गुरुणा नृप।
यत्तस्मै कथयामास शौनकस्तद्वदामि ते॥ ३
शौनकं तु सुखासीनं पर्यपृच्छद् ब्रह्म्यतिः।

ब्रह्म्यतिलकाच

लक्ष्मोमस्य या भूमिः कोटिहोमस्य या शुभा॥ ४
तां मे कथय विप्रेन्द्र होमस्य चरिते विधिम्।

मार्कण्डेय उकाच

इत्युक्तो गुरुणा सोऽथ लक्ष्मोमादिकं विधिम्॥ ५
शौनको बक्तुमारेभे यथावत्रूपसत्तम्।

देवदेव नृसिंहका पूजन राजाओंके लिये तो बहुत ही सुकर है। परंतु जो अरण्यमें रहते हैं, उन्हें भी भगवान्‌की पूजाके लिये वृक्षोंके पत्र-पुष्प बिना मूल्य प्राप्त हो सकते हैं। जल नदी और तडाग आदिमें सुलभ है ही और भगवान् नृसिंह भी सबके लिये समान है, केवल उन उपासनाके साधनभूत कर्ममें मनकी एकाग्रता चाहिये। जिसने मनका नियमन कर लिया है, मुक्ति उसके हाथमें ही है ॥ ५१—५९ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—इस प्रकार भृगुजीकी आज्ञासे मैंने तुमसे यहाँ भगवान् विष्णुके पूजनका वर्णन किया है। तुम प्रतिदिन भगवान् विष्णुका पूजन करो और बोलो, अब मैं तुम्हें और क्या बताऊँ? ॥ ६० ॥

राजा बोले—अहो! आपने श्रीविष्णुकी आराधनासे होनेवाले बहुत बड़े फलका वर्णन किया। मुनिशेष! जो भगवान् विष्णुकी पूजा नहीं करते, वे अवश्य ही [मोहनिद्रामें] सोये हुए हैं। मैंने आपकी कृपासे भगवान् नृसिंहके पूजनका यह क्रम सुना; अब मैं भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करूँगा। आप कृपा करके (लक्ष्मोम तथा) कोटिहोमका फल बताइये ॥ १-२ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—नप! पूर्वकालमें इसी विषयको ब्रह्म्यतिजीने शौनक ऋषिसे पूछा था, इसके उत्तरमें उनसे शौनकजीने जो कुछ बताया, वही मैं तुमसे कह रहा हूँ। सुखपूर्वक बैठे हुए शौनकजीसे ब्रह्म्यतिजीने इस प्रकार प्रश्न किया ॥ ३ ॥, ॥

ब्रह्म्यतिजी बोले—विश्रेन्द्र! लक्ष्मोम और कोटिहोम-के लिये जो भूमि प्रशस्त हो, उसको मुझे बताइये और होमकर्मकी विधिका भी वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥, ॥

मार्कण्डेयजी बोले—नपवर! ब्रह्म्यतिजीके इस प्रकार कहनेपर शौनकजीने लक्ष्मोम आदिकी विधिका यथावत् वर्णन आरम्भ किया ॥ ५ ॥, ॥

शौनक उत्तम

प्रवक्ष्यामि यथावते शृणु देवपुरोहित ॥ ६

लक्ष्मोममहाभूमिं तद्विशुद्धिं विशेषतः ।
यज्ञकर्मणि शास्ताया भूमेलक्षणमुत्तमम् ॥ ७

सुसंस्कृतां समां स्त्रिगां पूर्वपूर्वमधोत्तमाम् ।
ऊरुमात्रं खनित्वा च शोधयेत्तां विशेषतः ॥ ८

बहिरच्छतया तत्र मृदाच्छाद्य प्रलेपयेत् ।
प्रमाणं बाहुमात्रं तु सर्वतः कुण्डलक्षणम् ॥ ९

चतुरस्त्रं चतुष्कोणं तुल्यसूत्रेण कारयेत् ।
उपरि मेखलां कुर्याच्चतुरस्त्रां सुविस्तराम् ॥ १०

चतुरहूलमात्रं तु उच्छ्रितां सूत्रसूत्रिताम् ।
ब्रह्मणान् वेदसम्पन्नान् ब्रह्मकर्मसमन्वितान् ॥ ११

आमन्त्रयेद् यथान्यायं यजमानो विशेषतः ।
ब्रह्मचर्यवतं कुर्युस्त्रिरात्रं ते द्विजातयः ॥ १२

अहोरात्रपुष्पव्याथ गायत्रीमयुतं जपेत् ।
ते शुक्लवाससः स्नाता गन्धस्त्रक्षुपुष्पव्यधारिणः ॥ १३

शुचयश्च निराहाराः संतुष्टाः संयतेन्द्रियाः ।
कौशमासनमासीना एकाग्रमनसः पुनः ॥ १४

आरभेयुक्तं ते यत्नात्ततो होममतन्द्रिताः ।
भूमिमालिष्य चाभ्युक्त्य यत्नादग्निं निधापयेत् ॥ १५

गृह्णोक्तेन विधानेन होमं तत्र च होमयेत् ।
आधारावान्यभागौ च जुहुयात्पूर्वमेव तु ॥ १६

यवधान्यतिलैर्मिश्रां गायत्र्या प्रथमाहुतिम् ।
जुहुयादेकचित्तेन स्वाहाकारान्वितां चुधः ॥ १७

गायत्री छन्दसां माता ब्रह्मयोनिः प्रतिष्ठिता ।
सविता देवता तस्या विश्वामित्रस्तथा ऋषिः ॥ १८

श्रीनकजी बोले—देवपुरोहित ! मैं लक्ष्मोमके उपयुक्त विस्तृत भूमि और उसकी शुद्धिका विशेषरूपसे यथावत् वर्णन करूँगा, आप सुनें। यज्ञकर्मके लिये प्रशस्त भूमिका उत्तम लक्षण (संस्कार) इस प्रकार है ॥ ६-७ ॥

जो भूमि अच्छी तरह संस्कार की हुई हो, बगवर हो और चिकनी हो [ये सभी बातें हों तो परम उत्तम भूमि है; सभी बातें न संघटित हों तो] पूर्व-पूर्वकी भूमि उत्तम है। [अर्थात् चिकनीको अपेक्षा बगवर भूमि अच्छी है और उससे भी सुसंस्कृत भूमि उत्तम है।] ऐसी उत्तम भूमिको ऊँ (कमर)-पर्यन्त खोदकर उसका विशेषरूपसे [गङ्गाजल एवं पञ्चगव्यादि छिड़ककर] शोधन करे और कुण्डके बाहर स्वच्छताके लिये मिट्टी [तथा गोवर] खलकर लिपाये। कुण्ड सब औरसे एक हाथ लम्बा और उतना ही चौड़ा होना चाहिये—यही कुण्डका लक्षण है। एक हाथका सूत लेकर उसीसे माप करके चारों ओरसे बगवर और चौकोरा कुण्ड बनाना चाहिये। कुण्डके ऊपर सब ओरसे बगवर और स्वृ विस्तृत मेखला बनवाये। उसकी ऊंचाई भी चार अंगुलकी ही हो और वह सूतसे परिषेष्टित हो ॥ ८—१० ॥

इसके बाद यजमानको चाहिये कि वह ब्राह्मणोंचित् कर्मका पालन करनेवाले वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको शास्त्रोक्त रीतिसे आमन्वित करे। यजमान और उन ब्राह्मणोंको तीन रात्रिका विशेषरूपसे ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करना चाहिये ॥ ११—१२ ॥

यजमान एक दिन और एक रात्रि उपवास करके इस हजार गायत्रीका जप करे। [हवन आरम्भ होनेके दिन] विप्रगण भी स्नान करके शुद्ध एवं श्वेत वस्त्र धारण करें। फिर गन्ध, पुष्प और माला धारण करके पवित्र, संतुष्ट और जितेन्द्रिय होकर, भोजन किये बिना ही कुशके बने हुए आसनपर एकाग्रचित्तसे बैठें। तदनन्तर वे यत्नपूर्वक निरालस्यभावसे हवन आरम्भ करें। पहले गृह्णसूत्रोक्त विधिसे भूमिपर [कुशोंसे] रेखा करके उसे सौंचे और वहाँ यत्नसे अग्नि-स्थापन करे। फिर उस अग्निमें हवनीय पदार्थोंका होम करे। सर्वप्रथम आधार और आज्ञ्यभाग—ये दो होम करने चाहिये। विद्वान् पुरुष जी, चावल और तिल [एवं धूत आदिसे] मिश्रित प्रथम आहुतिका गायत्री-मन्त्रद्वारा [अन्तर्में] स्वाहाके उच्चारणपूर्वक एकाग्रचित्तसे हवन करे। गायत्री छन्दोंकी माता और ब्रह्म (वेद)-की योनिरूपसे प्रतिष्ठित है। उसके देवता सविता हैं और ऋषि विश्वामित्रजी हैं। (इस प्रकार गायत्रीका विनियोग बताया गया ।) ॥ १३—१८ ॥

ततो व्याहृतिभिः पश्चाज्जुयाच्य तिलान्वितम्।
यावत्प्रपूर्यते संख्या लक्षं वा कोटिरेव वा॥ १९
तावद्वोमं तिलैः कुर्यादच्युतार्चनपूर्वकम्।
दीनानाथजनेभ्यस्तु यजमानः प्रयत्नतः॥ २०
तावच्य भोजनं दद्याद् यावद्वोमं समाचरेत्।
समाप्तेदक्षिणां दद्याद् ऋत्विभ्यः अद्वयान्वितः॥ २१
यथार्हता न लोभेन ततः शान्त्युदकेन च।
प्रोक्षयेद् ग्राममध्ये तु व्याधितास्तु विशेषतः॥ २२
एवं कृते तु होमस्य पुरस्य नगरस्य च।
राष्ट्रस्य च महाभाग राज्ञो जनपदस्य च।
सर्वबाधाप्रशामनी शान्तिर्भवति सर्वदा॥ २३

मार्कण्डेय उक्ताच

इत्येतच्छाँनकप्रोक्तं कथितं नृपनन्दन।
लक्षहोमादिकविधिं कार्यं राष्ट्रे सुशान्तिदम्॥ २४
ग्रामे गृहे वा पुरबाह्यदेशे
द्विजैरयं चलकृतः पुरोविधिः।
तत्रापि शान्तिर्भविता नराणां
गवां च भृत्यैः सह भूपतेश्च॥ २५

इति श्रीनरसिंहपुराणे लक्षहोमविधिनामि पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'लक्षहोमविधिका वर्णन' नामक पैतौरांको अध्याय पूरा हुआ ॥ ३५ ॥

छत्तीसवाँ अध्याय

अवतार-कथाका उपक्रम

मार्कण्डेय उक्ताच

अवतारानहं वक्ष्ये देवदेवस्य चक्रिणः।
ताऽशृणुष्व महीपाल पवित्रान् पापनाशनान्॥ १
यथा मत्स्येन रूपेण दत्ता वेदाः स्वयम्भुवे।
मधुकैटभी च निधनं प्रापितौ च महात्मना॥ २
यथा कौमोण रूपेण विष्णुना मन्दरो धृतः।
तथा पृथ्वी धृता राजन् वाराहेण महात्मना॥ ३

केवल गायत्रीसे हवन कर लेनेके पश्चात् ['भूर्भुवः स्वः'—इन] तीन व्याहृतियोंसहित गायत्री-मन्त्रसे केवल तिलका हवन करे। जबतक हवनकी संख्या एक लाख या एक करोड़ न हो जाय, तबतक भगवान् विष्णुके पूजनपूर्वक तिलद्वारा हवन करते रहना चाहिये और जबतक हवन करे, तबतक यजमानको चाहिये कि वह यत्रपूर्वक दीनों और अनाधींको भोजन दे। हवन समाप्त होनेपर ऋत्विजोंको ब्रह्मपूर्वक लोभ त्यागकर यथोचित दक्षिणा दे। तत्पश्चात् [प्रथम स्थापित किये हुए] शान्ति-कलशके जलसे उस ग्राममें रहनेवाले सभी मनुष्यों—विशेषतः शोगियोंको अभिषेक करे। महाभाग ! इस प्रकार विधिवत् होमका अनुष्ठान करनेपर पुर (गौवी), नगर, जनपद (प्रान्त) और समस्त राष्ट्रकी सारी बाधाको दूर करनेवाली शान्ति निरन्तर बनी रहती है ॥ १९—२३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—नृपनन्दन ! इस प्रकार शौनक मुनिका बताया हुआ लक्षहोम-विधिका अनुष्ठान जो समस्त राष्ट्रमें शुभ शान्ति प्रदान करनेवाला है, मैंने तुम्हें बताया । यदि ब्राह्मणोंद्वारा यह पूर्वोक्त होम-विधि ग्राममें, घरमें अथवा पुरके बाहर प्रयत्नपूर्वक करायी जाय तो वहाँ भी मनुष्योंको, गौओंको और अनुचरोंसहित राजाको पूर्णतया शान्ति प्राप्त हो सकती है ॥ २४-२५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—महीपाल ! अब मैं देवदेव भगवान् विष्णुके पवित्र एवं पापनाशक अवतारोंका वर्णन करूँगा; उन्हें सुनो ॥ १ ॥

महात्मा भगवान् विष्णुने जिस प्रकार मत्स्यरूप धारणकर [प्रलयकालीन समुद्रमें खोये हुए] वेद लाकर ब्रह्माजीको अपित किये और मधु तथा कैटभ नामक दैत्योंको मौतके घाट उतार; फिर उन भगवान् विष्णुने जिस प्रकार कूर्मरूपसे मन्दराचल पर्वत धारण किया और

तेनैव निधनं प्राप्तो यथा राजन् महाबलः ।
हिरण्याक्षो महाबीर्यो दितिपुत्रो महात्मनः ॥ ४

यथा हिरण्यकशिपुस्त्रिदशानामरिः पुरा ।
नरसिंहेन देवेन प्रापितो निधनं नुप ॥ ५

यथा बुद्धो बलिः पूर्वं वामनेन महात्म्यना ।
इन्द्रस्त्रिभुवनाध्यक्षः कृतस्तेन नृपात्मज ॥ ६

रामेण भूत्वा च यथा विष्णुना रावणो हतः ।
सगणाश्चाद्भुता राजन् राक्षसा देवकण्टकाः ॥ ७

यथा परशुरामेण क्षत्रमुत्सादितं पुरा ।
बलभद्रेण रामेण यथा दैत्यः पुरा हतः ॥ ८

यथा कृष्णोन कंसाद्या हता दैत्याः सुरद्विषः ।
कलौ प्राप्ते यथा बुद्धो भवेन्नारायणः प्रभुः ॥ ९

कलिकर्त्तुं समास्थाय यथा म्लेच्छा निपातिताः ।
समाप्ते तु कलौ भूयस्तथा ते कथयाम्यहम् ॥ १०

हेरेनन्तस्य पराक्रमं यः
शृणोति भूपाल समाहितात्मा ।
मयोच्यमानं स विमुच्य पापं
प्रव्याति विष्णोः पदमत्युदारम् ॥ ११

इति श्रीनरसिंहपुराणे हरे: प्राणुभावानुक्रमणे पट्टिङ्गोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'श्रीहरिके अवतारोंको अनुक्रमणिका' (गणना) विषयक छातीसवाँ अध्याय पुरा हुआ ॥ ३६ ॥

महाकाय वराह-अवतार लेकर [अपनी दाढ़ोंपर] इस पृथ्वीको उठाया तथा राजन्। उन्होंके हाथसे जिस प्रकार महाबली, महापराक्रमी और महाकाय दितिकुमार हिरण्याक्ष मारा गया; राजन्। फिर उन भगवान्‌ने नृसिंहरूप धारणकर पूर्वकालमें जिस प्रकार देवताओंके शत्रु हिरण्यकशिपुका वध किया; और राजकुमार! जिस प्रकार उन महात्माने वामनरूप होकर पूर्वकालमें राजा बलिको बाँधा तथा इन्द्रको (फिरसे) विभुवनका अधीश्वर बना दिया; और राजन्! भगवान् विष्णुने श्रीरामचन्द्रका अवतार धारणकर जिस प्रकार रावणको मारा एवं देवताओंके लिये कण्टकरूप अद्भुत रक्षसोंका उनके गणोंसहित संहार कर दिया; फिर पूर्वकालमें परशुराम-अवतार ले, जिस प्रकार क्षत्रियकुलकर्म उच्छेद किया तथा बलभद्ररूपसे जिस प्रकार प्रलम्बादि दैत्योंका वध किया; कृष्णरूप होकर कंस आदि देवशत्रु दैत्योंका जिस तरह संहार किया; इसी प्रकार कलियुग प्राप्त होनेपर जिस प्रकार भगवान् नारायण बुद्धरूप धारण करेंगे; फिर कलियुग समाप्त होनेपर जिस प्रकार वे कलिकर्त्तुं समाप्त होनेपर जिस प्रकार वे कलिकर्त्तुं धारणकर म्लेच्छोंका नाश करेंगे, वह सब चृतान्त उसी प्रकार में तुमसे कहूँगा ॥ २—१० ॥

भूपाल! जो एकाग्रचित्त होकर भेरे द्वारा बताये जानेवाले अनन्त भगवान् विष्णुके इन पराक्रमोंका श्रवण करेंगा, वह सब पापोंसे मुक्त होकर भगवान्‌के अत्यन्त उदार परमपदको प्राप्त होगा ॥ ११ ॥

सैंतीसवाँ अध्याय

मत्स्यावतार तथा मधु-कैटभ-वध

मार्कण्डेय उकाच
नानात्वादवताराणामच्युतस्य महात्मनः ।
न शक्यं विस्तराद् वकुं तान् ब्रवीभि समाप्तः ॥ १
पुरा किल जगत्स्वष्टा भगवान् पुरुषोत्तमः ।
अनन्तभोगशायने योगनिद्रां समाप्तः ॥ २

मार्कण्डेयजी खोले—महात्मा भगवान् अच्युतके बहुत-से अवतार हैं, सुतां उनका विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया जा सकता; इसलिये मैं उन्हें संक्षेपसे ही कहता हूँ। यह प्रसिद्ध है कि पूर्वकालमें जगत्की सृष्टि करनेवाले भगवान् पुरुषोत्तम 'अनन्त' नामक शैषनागके शरीरकी

अथ तस्य प्रसुप्तस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः।
श्रोत्राभ्यामपतत् तोये स्वेदबिन्दुद्वयं नृप॥ ३
मधुकैटभनामानी तस्माज्ञाती महाबली।
महाकायौ महावीर्यौ महाबलपराक्रमौ॥ ४
अच्युतस्य प्रसुप्तस्य महत्प्रणामजायत।
नाभिमध्ये नृपश्रेष्ठ तस्मिन् ब्रह्माभ्यजायत॥ ५
स चोक्तो विष्णुना राजन् प्रजाः सूज महामते।
तथेत्युक्त्वा जगन्नाथं ब्रह्मापि कमलोद्धवः॥ ६
वेदशास्त्रवशाद्यावत् प्रजाः स्वष्टुं समुद्यतः।
तावत्तत्र समायाती तावुभौ मधुकैटभौ॥ ७
आगत्य वेदशास्त्रार्थविज्ञानं ब्रह्मणः क्षणात्।
अपहृत्य गती घोरी दानवी बलदर्पितौ॥ ८
ततः पश्योद्धवो राजन् ज्ञानहीनोऽभवत् क्षणात्।
दुःखितश्चिन्तयामास कथं स्वक्षयामि वै प्रजाः॥ ९
चोदितस्त्वं सूजस्वेति प्रजा देवेन तत्कथम्।
स्वक्ष्येऽहं ज्ञानहीनस्तु अहो कष्टमुपस्थितम्॥ १०
इति संचिन्त्य दुःखार्तो ब्रह्मा लोकपितामहः।
यत्कर्तो वेदशास्त्राणि स्मरत्रपि न दृष्टवान्॥ ११
ततो विष्णणचित्तस्तु तं देवं पुरुषोक्तमम्।
एकाग्रमनसा सम्यक् शास्त्रेण स्तोतुमारभत्॥ १२

ब्रह्मोक्तव्य

ॐ नमो वेदनिधये शास्त्राणां निधये नमः।
विज्ञाननिधये नित्यं कर्मणां निधये नमः॥ १३
विद्याधराय देवाय वागीशाय नमो नमः।
अचिन्त्याय नमो नित्यं सर्वज्ञाय नमो नमः॥ १४
अमूर्तिस्त्वं महाबाहो यज्ञमूर्तिरथोक्तज।
सामां मूर्तिस्त्वमेवाद्य सर्वदा सर्वरूपवान्॥ १५
सर्वज्ञानमयोऽसि त्वं हृदि ज्ञानमयोऽच्युत।
देहि मे त्वं सर्वज्ञानं देवदेव नमो नमः॥ १६

शब्दापर योगनिद्राका आश्रय लेकर सोये हुए थे। नृप! कुछ कालके बाद उन गहरी नीदमें सोये हुए देवदेव शार्ङ्गधन्वा विष्णुके कानोंसे पसीनेकी दो बूँद निकलकर जलमें गिरी। उन दोनों बूँदोंसे मधु और कैटभ नामके दो दैत्य उत्पन्न हुए, जो महाबली, महान् शक्तिशाली, महापराक्रमी और महाकाय थे। नृपश्रेष्ठ! इसी समय उन सोये हुए भगवान्की नाभिके बीचमें महान् कमल प्रकट हुआ और उससे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए॥ १—५॥

राजन्! भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीसे कहा—‘महामते! तुम प्रजाजनोंकी सुष्ठि करो।’ यह सुन उन कमलोद्धव ब्रह्माजीने ‘तथास्तु’ कहकर भगवान् जगन्नाथकी आज्ञा स्वीकार कर ली तथा ऐदों और शास्त्रोंकी सहायतासे वे ज्यों ही सुष्ठि-रचनाके लिये उद्यत हुए, त्यों ही उनके पास वे दोनों दैत्य—मधु और कैटभ आये। आते ही वे बलाभिमानी घोर दानव क्षणभरमें ब्रह्माजीके वेद और शास्त्र-ज्ञानको लेकर चले गये। राजन्! तब ब्रह्माजी एक ही क्षणमें ज्ञानशून्य हो दुःखी हो गये और सोचने लगे—“हाय! अब मैं कैसे प्रजाकी सुष्ठि करूँगा? भगवान्ने मुझे आज्ञा दी कि ‘तुम प्रजाकी सुष्ठि करो।’ परंतु अब तो मैं सुष्ठिविज्ञानसे रहित हो गया, अतः किस प्रकार सुष्ठिरचना करूँगा? अहो! मुझपर यह बहुत बड़ा कष्ट आ पहुँचा।” लोकपितामह ब्रह्माजी इस प्रकार चिन्ता करते-करते शोकसे कातर हो गये। वे प्रयत्नपूर्वक वेद-शास्त्रोंका स्मरण करने लगे, तथापि उन्हें उनकी स्मृति नहीं हुई। तब वे मन-ही-मन अत्यन्त दुःखी हो, एकाग्रचित्तसे भगवान् पुरुषोक्तमकी शास्त्रानुकूल विधिसे स्तुति करने लगे॥ ६—१२॥

ब्रह्माजी बोले—जो वेद, शास्त्र, विज्ञान और कर्मोंकी निधि है, उन ३५कार-प्रतिषाद्य परमेश्वरको मेरा बार-बार नमस्कार है। समस्त विद्याओंको धारण करनेवाले वाणीपति भगवान्को प्रणाम है। अचिन्त्य एवं सर्वज्ञ परमेश्वरको नित्य बारंबार नमस्कार है। महाबाहो! अधोक्षण! आप निराकार एवं यज्ञस्वरूप हैं। आप ही सामूर्ति एवं सदा सर्वरूपधारी हैं। अच्युत! आप सर्वज्ञनमय हैं; आप सबके हृदयमें ज्ञानरूपसे विराजमान हैं। देवदेव! आप मुझे सब प्रकारका ज्ञान दीजिये; आपको बारंबार नमस्कार है॥ १३—१६॥

मार्कंण्डेय उक्ताच

इत्यं स्तुतस्तदा तेन शङ्खचक्रगदाधरः।
ब्रह्माणपाह देवेशो दास्ये ते ज्ञानमुत्तमम्॥ १७
इत्युक्त्वा तु तदा विष्णुश्चिन्तयामास पार्थिव।
केनास्य नीतं विज्ञानं केन रूपेण चादधे॥ १८
मधुकैटभकृतं सर्वमिति ज्ञात्वा जनार्दनः।
मात्स्यं रूपं समास्थाय बहुयोजनमायतम्।
बहुयोजनविस्तीर्णं सर्वज्ञानमयं नृप॥ १९
स प्रविश्य जलं तूर्णं क्षोभयामास तद्वरिः।
प्रविश्य च स पातालं दृष्ट्वान्मधुकैटभी॥ २०
तौ मोहयित्वा तुमुलं तन्ज्ञानं जगुहे हरिः।
वेदशास्त्राणि मुनिभिः संस्तुतो मधुसूदनः॥ २१
आनीय ब्रह्मणो दत्त्वा त्यक्त्वा तन्मात्स्यकं नृप।
जगद्विताय स पुनर्योगनिद्रावशं गतः॥ २२
ततः प्रबुद्धौ संकुद्धौ तावुभौ मधुकैटभौ।
आगत्य ददृशाते तु शयानं देवमव्ययम्॥ २३
अयं स पुरुषो धूर्तं आवां सम्मोहु मायथा।
आनीय वेदशास्त्राणि दत्त्वा शेतेऽत्र साधुवत्॥ २४
इत्युक्त्वा तौ महाघोरौ दानवौ मधुकैटभौ।
बोधयामासतुस्तूर्णं शयानं केशवं नृप॥ २५
युद्धार्थमागतावत्र त्वया सह महापते।
आवयोर्देहि संग्रामं युद्धस्वोत्थाय साप्ततम्॥ २६
इत्युक्तो भगवांस्ताभ्यां देवदेवो नृपोत्तम।
तथेति चोक्त्वा तौ देवः शाङ्कं सञ्यमथाकरोत्॥ २७
ज्याधोषतलघोषेण शङ्खशब्देन माधवः।
खं दिशः प्रदिशश्चैव पूरयामास लीलया॥ २८
तौ च राजन् महावीर्यो ज्याधोषं चक्रतुस्तदा।
युयुधाते महाघोरौ हरिणा मधुकैटभौ॥ २९
कृष्णश्च युयुधे ताभ्यां लीलया जगतः पतिः।
समं युद्धमधूदेवं तेषामस्त्राणि मुञ्चताम्॥ ३०

मार्कंण्डेयजी बोले—ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले देवेशर विष्णुने उनसे कहा—‘मैं तुम्हें उत्तम ज्ञान प्रदान करूँगा।’ राजन्! भगवान् विष्णु यों कहकर तब सोचने लगे—‘जौन इसका विज्ञान हर ले गया और किस रूपसे उसने उसे धारण कर रखा है?’ भूपाल! अन्तमें यह जानकर कि यह सब मधु और कैटभकी करतूत है, भगवान् जनार्दनने अनेकों योजन लंबा-चौड़ा पूर्णज्ञानमय मत्स्यरूप धारण किया। फिर मत्स्यरूपधारी हरिने तुरंत ही जलमें प्रविष्ट होकर उसे क्षुब्ध कर छाला और भीतर-ही-भीतर पाताललोकमें पहुँचकर मधु तथा कैटभकी देखा। तब भुनियोंद्वारा स्तवन किये जानेपर भगवान् मधुसूदनने मधु और कैटभ—दोनोंको मोहितकर वह वेदशास्त्रमय ज्ञान ले लिया और उसे ले आकर ब्रह्माजीको दे दिया। राजन्! तत्पश्चात् वे भगवान् उस मत्स्यरूपको त्यागकर जगत्के हितके लिये पुनः योगनिद्रामें स्थित हो गये॥ १७—२२॥

तदनन्तर मोह निवृत्त होनेपर [वेद-शास्त्रको न देख] मधु तथा कैटभ—दोनों ही बहुत कुपित हुए और वहाँसे आकर उन्होंने अविनाशी भगवान् विष्णुको सोते देखा। तब वे परस्पर कहने लगे—‘यह वही धूर्तं पुरुष है, जिसने हम दोनोंको मायासे मोहित करके वेद-शास्त्रोंको ले आकर ब्रह्माको दे दिया और अब वही साधुकी भाँति सो रहा है।’ राजन्! यों कहकर उन महाघोर दानव मधु और कैटभने वहाँ सोये हुए भगवान् केशवको तत्काल जगाया और कहा—‘महामते! हम दोनों यहाँ तुम्हारे साथ युद्ध करने आये हैं; तुम हमें संग्रामकी भिक्षा दो और अभी उठकर हमसे युद्ध करो।’ २३—२६॥

नृपवर! उनके इस प्रकार कहनेपर देवदेव भगवान्-‘बहुत अच्छा’ कहकर अपने शाङ्कं धनुषपर प्रत्यक्षा चढ़ायो। उस समय भगवान् माधवने लीलापूर्वक धनुषकी टंकार और शङ्खनादसे आकाश, दिशाओं और अवान्तर-दिशाओं (कोणों)-को भर दिया॥ २७-२८॥

राजन्! फिर उन महापराक्रमी महाभयानक मधु और कैटभने भी उस समय अपनी प्रत्यक्षाको टंकार दी और वे भगवान् विष्णुके साथ युद्ध करने लगे। जगत्यति भगवान् विष्णु भी लीलासे ही उनके साथ युद्ध करने

केशवः शार्ङ्गनिर्मुक्ते� शैरराशीविद्वोपमैः ।
तानि शास्त्राणि सर्वाणि चिच्छेद तिलशस्तदा ॥ ३१

तौ युद्धवा सुचिरं तेन दानवौ मधुकेटभौ ।
हती शार्ङ्गविनिर्मुक्ते� शैरः कृष्णोन दुर्भदी ॥ ३२

तयोस्तु मेदसा राजन् विष्णुना कल्पिता मही ।
मेदिनीति ततः संज्ञामवापेयं वसुंधरा ॥ ३३

एवं कृष्णप्रसादेन वेदाँल्लक्ष्या प्रजापतिः ।
प्रजाः सप्तर्ज भूपाल वेददृष्टेन कर्मणा ॥ ३४

य इदं शृणुयात्रित्यं प्रादुर्भविं हरेन्द्रप ।
उपित्वा चन्द्रसदने वेदविद्वाह्याणो भवेत् ॥ ३५

मात्यं वपुस्तन्महद्वितुल्यं
विद्यामयं लोकहिताय विष्णुः ।
आस्थाय भीमं जनलोकसंस्थैः
स्तुतोऽथ यस्तं स्मर भूमिपाल ॥ ३६

इति श्रीनरसिंहपुण्ये मत्स्याकाशुभार्त्त्वो नाम सप्तविंश्लोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुण्यमें 'मत्स्याकाशार' नामक सैतीसर्वां अध्याय पूरा हुआ ॥ ३७ ॥

अड़तीसबाँ अध्याय

कूर्मवितार; समुद्रमन्थन और मोहिनी-अवतार

मार्कण्डेय उक्ताच

पुरा देवासुरे युद्धे देवा दैत्यैः पराजिताः ।
सर्वे ते शरणं जग्मुः क्षीराविघ्नतनयापतिम् ॥ १

स्तोत्रेण तुष्टुः सर्वे समाराध्य जगत्पतिम् ।
कृताञ्चलिपुटा राजन् ब्रह्माद्या देवतागणाः ॥ २

देवा उक्तुः

नमस्ते पद्मनाभाय लोकनाथाय शार्ङ्गिणो ।
नमस्ते पद्मनाभाय सर्वदुःखापहारिणो ॥ ३

लगे । इस प्रकार परस्पर अस्त्र-शस्त्रका प्रहार करते हुए उन दोनों पक्षोंमें समानरूपसे युद्ध हुआ । भगवान् विष्णुने अपने शार्ङ्ग धनुषद्वारा छोड़े हुए सप्तके समान तीखे बाणोंसे उन दैत्योंके समस्त अस्त्र-शस्त्र तिलकी भौति दुकड़े-दुकड़े कर डाले । वे दोनों उम्मत दानव—मधु और कैटभ चिरकालतक भगवान्के साथ लड़कर अन्तमें उनके शार्ङ्ग धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा मारे गये । राजन् तब श्रीविष्णुभगवान् ने उन दोनों दैत्योंके मेदेसे इस पृथ्वीका निर्माण किया । इसीसे इस वसुंधराका नाम 'मेदिनी' हुआ ॥ २९—३३ ॥

भूपाल ! इस प्रकार भगवान् विष्णुकी कृपासे वेदोंको प्राप्तकर प्रजापति ब्रह्माजीने वेदोक्त विधिसे प्रजाकी सृष्टि की । नृप ! जो भगवान्की इस अवतार-कथाका प्रतिदिन श्रवण करता है, वह [शरीर-त्यागके बाद] चन्द्रलोकमें निवास करके [पुनः इस लोकमें] वेदवेत्ता आहण होता है । भूमिपाल ! जो भगवान् विष्णु लोकहितके लिये पर्वतके समान भीमकाय मत्स्यरूप धारणकर जनलोक-निवासियोंद्वारा सुन्त हुए थे, उनका ही तुम सदा स्मरण करो ॥ ३४—३६ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—पूर्वकालमें देवासुर-संग्राममें जब देवगण दैत्योंद्वारा पराजित हो गये, तब वे सभी मिलकर क्षीरसागरनदिनी श्रीलक्ष्मीजीके पति भगवान् विष्णुकी शरणमें गये । राजन् ! वहाँ ब्रह्मा आदि सभी देवता जगदीश्वरकी आराधना करके हाथ जोड़े निष्ठाकृत स्तोत्रसे उनकी सुन्ति करने लगे ॥ १-२ ॥

देवगण बोले—जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है, जो समस्त लोकोंके स्वामी है, उन शार्ङ्ग धनुषधारी आप परमेश्वरको नमस्कार है ।

नमस्ते विश्वरूपाय सर्वदेवमयाय च ।
मधुकैटभनाशाय केशवाय नमो नमः ॥ ४
दैत्यैः पराजिता देव वर्यं युद्धे बलान्वितैः ।
जयोपायं हि नो बूहि करुणाकर ते नमः ॥ ५

मार्कण्डेय उकाच

इति स्तुतो तदा देवैर्देवदेवो जनार्दनः ।
तानश्च वीद्धरिदेवांस्तेषामेवाग्रतः स्थितः ॥ ६

श्रीभगवानुकाच

गत्वा तत्र सुराः सर्वे संधिं कुरुत दानवैः ।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा च वासुकिम् ॥ ७

सर्वीषधीः समानीय प्रक्षिप्याव्यौ त्वरान्विताः ।
दानवैः सहिता भूत्वा मण्ड्यं क्षीरसागरम् ॥ ८

अहं च तत्र साहाय्यं करिष्यामि दिवौकसः ।
भविष्यत्यमृतं तत्र तत्पानाद्वलवत्तराः ॥ ९

भविष्यन्ति क्षणादेवा अमृतस्य प्रभावतः ।
यूयं सर्वे महाभागास्तेजिष्ठा रणविक्रमाः ॥ १०

इन्द्राद्यास्तु महोत्साहास्तल्लक्ष्वामृतमुत्तमम् ।
ततो हि दानवाङ्मेतुं समर्था नात्र संशयः ॥ ११

इत्युक्ता देवदेवेन देवाः सर्वे जगत्पतिम् ।
प्रणाम्यागत्य निलयं संधिं कृत्वाथ दानवैः ॥ १२

क्षीराव्योर्मन्थने सर्वे चकुरुद्योगमुत्तमम् ।
बलिना चोद्दतो राजन् मन्दराख्यो महागिरिः ॥ १३

क्षीराव्यौ क्षेपितक्षेत्रं तेनैकेन नृपोत्तम ।
सर्वीषधीश्च प्रक्षिप्य देवदैत्यैः पर्यनिधी ॥ १४

वासुकिक्षागतस्तत्र राजत्रारायणाञ्चया ।
सर्वदेवहितार्थाय विष्णुश्च स्वयमागतः ॥ १५

तत्र विष्णुं समासाद्य ततः सर्वे सुरासुराः ।
सर्वे ते मैत्रभावेन क्षीराव्योस्तमाग्निता: ॥ १६

मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वाथ वासुकिम् ।
ततो मथितुमारव्यं नृपते तरसामृतम् ॥ १७

सम्पूर्ण विश्व और सभे देवता जिनके स्वरूप हैं, उन मधुकैटभनाशक केशवको बारंबार प्रणाम है। करुणाकर! भगवन्! हम सभी देवता बलवान् दैत्योद्वारा युद्धमें हरा दिये गये हैं, हमें विजय प्राप्त करनेका कोई उपाय बतलाइये; आपको नमस्कार है ॥ ३—५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—देवताओंद्वारा इस प्रकार स्तवन किये जानेपर देवदेव भगवान् जनार्दनने उनके समक्ष प्रकट होकर कहा ॥ ६ ॥

श्रीभगवान् बोले—देवगण! तुम सब लोग वहाँ (समुद्र-तटपर) आकर दानवोंके साथ संधि कर लो और मन्दराचलको मथानी बनाकर वासुकि नागसे रस्सीका काम लो। फिर शीश्रतापूर्वक समस्त ओषधियोंको लाकर समुद्रमें डालो और दानवोंके साथ मिलकर ही क्षीरसागरका मन्थन करो। देवताओं! इस कार्यमें मैं भी तुम लोगोंकी सहायता करूँगा। समुद्रसे अमृत प्रकट होगा, जिसको पान करके उसके प्रभावसे देवता क्षणभरमें ही अत्यन्त बलशाली हो जायेंगे। महाभागो! उस उत्तम अमृतको प्राप्तकर इन्द्रादि तुम सभी देवता अत्यन्त तेजस्वी, रणमें पराक्रम दिखानेवाले और महान् उत्साहसे सम्पन्न हो जाओगे। तदनन्तर तुम लोग दानवोंको जीतनेमें समर्थ हो सकोगे—इसमें संशय नहीं है ॥ ७—११ ॥

देवदेव भगवान्के द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर सभी देवता उन जगदीश्वरको प्रणाम करके अपने स्थानपर आये और दानवोंके साथ संधि करके क्षीरसागरके मन्थनके लिये उत्तम उद्योग करने लगे। राजन्! बलिने अकेले ही 'मन्दर' नामक महान् पर्वतको उखाड़कर समुद्रमें डाल दिया तथा नृपोत्तम! देवता और दैत्योंने समस्त ओषधियोंको लाकर समुद्रमें डाला। राजन्! भगवान् नारायणकी आज्ञासे वासुकि नाग वहाँ आये और समस्त देवताओंका हित-साधन करनेके लिये स्वयं भगवान् विष्णु भी वहाँ पधारे ॥ १२—१५ ॥

तदनन्तर सभी देवता और असुरगण वहाँ भगवान् विष्णुके पास आये और सब लोग मित्रभावसे एकत्र होकर क्षीरसागरके तटपर उपस्थित हुए। नृप! उस समय मन्दराचलको मथानी और वासुकि नागको रस्सी बनाकर अमृत निकालनेके उद्देश्यसे अत्यन्त वेगपूर्वक समुद्रका मन्थन आरम्भ

विष्णुना मुखभागे तु योजिता दानवास्तदा ।
देवता: पुच्छभागे तु मथनाय नियोजिता: ॥ १८

एवं च मथनात्तत्र मन्दरोऽधः प्रविश्य च ।
आधारेण विना राजन् तं दृष्ट्वा सहसा हरिः ॥ १९

सर्वलोकहितार्थाय कूर्मरूपमधारयत् ।
आत्मानं सम्प्रवेश्याथ मन्दरस्य गिरेऽधः ॥ २०

प्रविश्य धृतवान् शैलं मन्दरं मधुसूदनः ।
उपर्याकान्तवाञ्छैलं पृथगूपेण केशवः ॥ २१

चकर्ष नागराजं च देवैः सार्थं जनार्दनः ।
ततस्ते त्वरया युक्ता ममन्थुः क्षीरसागरम् ॥ २२

यावच्छक्त्या नृपश्चेष्ठ बलवन्तः सुरासुराः ।
मथ्यमानात्ततस्तस्मात् क्षीराव्येरभवन्नृप ॥ २३

कालकूटमिति ख्यातं विषमत्यनादुस्सहम् ।
तं नागा जग्नुः सर्वे तच्छेष्ठ शङ्करोऽप्यहीत् ॥ २४

नारायणाज्ञया तेन नीलकण्ठत्वयामवान् ।
ऐरावतश्च नागेन्द्रो हरिश्चोच्चैःश्रवाः पुनः ॥ २५

द्वितीयावर्तनाद्राजन्त्रुत्पत्राविति नः श्रुतम् ।
तृतीयावर्तनाद् राजन्त्रप्सराश्च सुशोभना ॥ २६

चतुर्थात् पारिजातश्च उत्पन्नः स महाद्रुमः ।
पञ्चमाद्वि हिमांशुस्तु प्रोत्थितः क्षीरसागरात् ॥ २७

तं भवः शिरसा धत्ते नारीवत् स्वस्तिकं नृप ।
नानाविधानि दिव्यानि रत्नान्याभरणानि च ॥ २८

क्षीरोदधेरुत्थिताश्च गच्छर्वाक्षं सहस्रशः ।
एतान् दृष्ट्वा तथोत्पत्रानत्याश्र्यसमन्वितान् ॥ २९

अभवङ्गातहर्षास्ते तत्र सर्वे सुरासुराः ।
देवपक्षे ततो मेष्ठाः स्वल्पं वर्धन्ति संस्थिताः ॥ ३०

कृष्णाज्ञया च वायुश्च सुखं वाति सुरान् प्रति ।
विषनिःश्वासवातेन वासुकेश्वापरे हताः ॥ ३१

हुआ। भगवान् विष्णुने उस समय समुद्रमन्थनके लिये दानवोंको वासुकिके मुखकी ओर और देवताओंको पुच्छ भागकी ओर नियुक्त किया। राजन्! इस प्रकार मन्थन आरम्भ होनेपर नीचे कोई आधार न होनेके कारण मन्दराचल जलके भीतर प्रविष्ट होकर ढूब गया। पर्वतको ढूबा देख भगवान् मधुसूदन विष्णुने समस्त लोकोंके हितके लिये सहसा कूर्मरूप धारण किया और उस रूपमें अपनेको मन्दराचलके नीचे प्रविष्ट करके, आधाररूप हो, उस मन्दर पर्वतको धारण किया तथा दूसरे रूपसे वे भगवान् केशव पर्वतको ऊपरसे भी दबाये रहे और एक अन्यरूपसे वे भगवान् जनार्दन देवताओंके साथ रहकर नागराज वासुकिको खींचते भी रहे। तब वे बलवान् देवता तथा असुर पूर्णशक्ति लगाकर बड़े बैगसे क्षीरसागरका मन्थन करने लगे ॥ १६—२२ ॥

नृपश्चेष्ठ! तदनन्तर उस मध्ये जाते हुए क्षीरसागरसे अत्यन्त दुस्सह 'कालकूट' नामक विष प्रकट हुआ। उस विषको सभी सप्तोने ग्रहण कर लिया। उनसे बचे हुए विषको भगवान् विष्णुकी आज्ञासे शङ्करजीने पी लिया। इससे कण्ठमें काला दाग पड़ जानेके कारण उनकी 'नीलकण्ठ' संज्ञा हुई। इसके बाद द्वितीय बारके मन्थनसे ऐरावत गजराज और उच्चैःश्रवा घोड़ा—ये दोनों प्रकट हुए, यह बात हमारे मुननेमें आयी है। तृतीय आवृत्तिसे परमसुन्दरी अप्सरा (उर्वशी)-का आविर्भाव हुआ और चौथी बार महान् वृक्ष परिजात प्रकट हुआ। पाँचवीं आवृत्तिमें क्षीरसागरसे चन्द्रमा प्रकट हुए। नरेश्वर! चन्द्रमाको भगवान् शिव अपने मस्तकपर धारण करते हैं; उक्त उसी तरह जैसे नारी ललाटमें स्वस्तिक (चेंदी या आभूषण) धारण करती है। इसी प्रकार क्षीरसागरसे नाना प्रकारके दिव्य रत्न, आभूषण और हजारों गन्धर्व प्रकट हुए। इन अत्यन्त विस्मयजनक वस्तुओंको उस प्रकार उत्पन्न देख सभी देवता और असुर बहुत प्रसन्न हुए ॥ २३—२९ ॥

तदनन्तर भगवान् विष्णुकी आज्ञासे मेघगण देवताओंके दलमें स्थित हो मन्द-मन्द वर्षा करने लगे और देव-वृन्दको सुख देनेवाली वायु बहने लगी। [इस कारण देवता थके नहीं।] किंतु महामते! वासुकिके विषमित्रित शासकी वायुसे कितने ही दैत्य मर गये और जो बचे,

निस्तेजसोऽभवन् दैत्या निर्वीर्याश्च महामते ।
 ततः श्रीरुत्थिता तस्मात् क्षीरोदाङ्कुतपद्मजा ॥ ३२
 विभाजमाना राजेन्द्र दिशः सर्वाः स्वतेजसा ।
 ततस्तीर्थोदकैः स्नाता दिव्यवस्त्रैरलंकृता ॥ ३३
 दिव्यगन्धानुलिपाङ्गी सुमनोभिः सुभूषणैः ।
 देवपक्षं समासाद्य स्थित्वा क्षणमर्दिम् ॥ ३४
 हनिवक्षः स्थलं प्राप्ता ततः सा कमलालया ।
 ततोऽमृतघटं पूर्णं दुग्धवा तु पयसो निधेः ॥ ३५
 धन्वन्तरि समुत्तस्थी ततः प्रीताः सुरा नृप ।
 दैत्या: श्रिया परित्यक्ता दुःखितास्तेऽभवन्त्रृप ॥ ३६
 नीत्वामृतघटं पूर्णं ते च जगमुर्यथासुखम् ।
 ततः स्त्रीरूपमकरोद् विष्णुर्देवहिताय वै ॥ ३७
 आत्मानं नृपशार्दूलं सर्वलक्षणसंयुतम् ।
 ततो जगाम भगवान् स्त्रीरूपेणासुरान् प्रति ॥ ३८
 दिव्यरूपां तु तां दृष्ट्वा मोहितास्ते सुरद्विषः ।
 सुधापूर्णघटं ते तु मोहैः संस्थाप्य सत्तम ॥ ३९
 कामेन पीडिता ह्यासत्रसुरास्त्र तत्क्षणात् ।
 मोहयित्वा तु तानेवमसुरानवनीपते ॥ ४०
 अमृतं तु समादाय देवेभ्यः प्रददौ हरिः ।
 तत्पीत्वा तु ततो देवा देवदेवप्रसादतः ॥ ४१
 बलवन्तो महावीर्या रणे जगमुस्ततोऽसुरान् ।
 जित्वा रणेऽसुरान् देवाः स्वानि राज्यानि चक्रिरे ॥ ४२
 एतत्ते कथितं राजन् प्रादुर्भावो हरेयम् ।
 कूर्माख्यः पुण्यदो नृणां शृण्वतां पठतामपि ॥ ४३
 आविष्कृतं कौर्ममनन्तवर्चसं
 नारायणेनाङ्कुतकर्मकारिणा ।
 दिवीकसानां तु हिताय केवलं
 रूपं परं पावनमेव कीर्तिम् ॥ ४४

इति श्रीनरसिंहपुराणे कूर्मप्रादुर्भावो नामाहृतिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥
 इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'कूर्मवितार' नामक अङ्गतीसका अध्याय पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

वे भी तेज एवं पराक्रमसे हीन हो गये ॥ ३०—३१ ॥
 तत्पश्चात् उस समुद्रसे हाथमें कमल धारण किये हुए श्रीलक्ष्मीजी प्रकट हुई । राजेन्द्र ! वे अपने तेजसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशमान कर रही थीं । शत्रुसूदन ! उन्होंने तीर्थके जलसे स्नान किया, शरीरमें दिव्य गन्धका अनुलेप लगाया और वे कमलालया लक्ष्मी दिव्य वस्त्र, पुष्पहार और सुन्दर भूषणोंसे विभूषित हो देवपक्षमें जाकर क्षणभर खड़ी रहीं; फिर भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें विशब्दमान हुई ॥ ३२—३४ ॥

नरेश्वर ! इसके बाद श्रीरसागरसे अमृतपूर्ण घटका दोहन करके हाथमें लिये भगवान् धन्वन्तरि प्रकट हुए । उनके ग्राकट्ट्यसे देवता बहुत प्रसन्न हुए । किंतु राजन् ! लक्ष्मीद्वारा त्याग दिये जानेके कारण असुरगण बहुत दुःखी हुए और उस भरे हुए अमृतघटको लेकर इच्छानुसार चल दिये । नृपवर ! तब भगवान् विष्णुने देवताओंका हित करनेके लिये अपनेको सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे युक्त स्त्रीरूपमें प्रकट किया । इसके बाद भगवान् उस नारीरूपसे ही असुरोंकी ओर गये । उस दिव्य रूपवाली नारीको देख दैत्यगण मोहित हो गये । साधुशिरोमणे ! वे असुर तत्काल मोहके वशीभूत हो कामपीडित हो गये और उन्होंने मोहवश वह अमृतका घड़ा भूमिपर रख दिया । अवनीपते ! इस प्रकार असुरोंको मोहित करके भगवान् वह अमृत ले देवताओंको दे दिया । देवदेव भगवान्की कृपासे अमृत पीकर असुरी और महावीर्यवान् हो देवता संग्राममें आ डटे और असुरोंको युद्धमें जीतकर उन्होंने अपने राज्यपर अधिकार कर लिया । राजन् ! भगवान्के इस 'कूर्म' नामक अवतारकी कथा मैंने तुमसे कह दी । यह पढ़ने और सुननेवाले मनुष्योंको पुण्य देनेवाली है ॥ ३५—४३ ॥

अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् नारायणने केवल देवताओंके हितके लिये अनन्त तेजस्वी परमपावन कूर्मरूप प्रकट किया था, सो इस प्रसङ्गका वर्णन मैंने तुमसे कर दिया ॥ ४४ ॥

उन्तालीसवाँ अध्याय

बाराह-अवतार;

हिरण्याक्षवध

मार्कंडेय उक्ताच

अतः परं हरे: पुण्यं प्रादुर्भावं नराधिप।
बाराहं ते प्रब्रह्मामि समाहितमनाः शृणु ॥ १

अवान्तरलये प्राप्ते ब्रह्मणस्तु दिनक्षये।
त्रैलोक्यमखिलं व्याप्य तिषुन्त्यम्भांसि सत्तम ॥ २

त्रैलोक्येऽखिलसत्त्वानि यानि राजेन्द्र तानि वै।
ग्रस्त्वा विष्णुस्ततः शोते तस्मिन्नेकार्णवे जले ॥ ३

अनन्तभोगशायने सहस्रफणाशोभिते।
रात्रिं युगसहस्रान्तां ब्रह्मरूपी जगत्पतिः ॥ ४

दितेः पुत्रो महानासीत् कश्यपादिति नः श्रुतम्।
हिरण्याक्ष इति ख्यातो महाबलपराक्रमः ॥ ५

पाताले निवसन् दैत्यो देवानुपरुरोध सः।
चन्द्रिनामपकाराय यतते स तु भूतले ॥ ६

अथ भूष्युपरि स्थित्वा मर्त्या यक्ष्यन्ति देवताः।
तेन तेषां बलं वीर्यं तेजश्चापि भविष्यति ॥ ७

इति मत्वा हिरण्याक्षः कृते सर्गे तु ब्रह्मणा।
भूमेया धारणाशक्तिस्तां नीत्वा स महासुरः ॥ ८

विवेश तोयमध्ये तु रसातलतलं नृप।
विना शक्त्या च जगती प्रविवेश रसातलम् ॥ ९

निद्रावसाने सर्वात्मा छङ्ग स्थिता भेदिनीति वै।
संचिन्त्य ज्ञात्वा योगेन रसातलतलं गताम् ॥ १०

अथ वेदमयं रूपं बाराहं वपुरास्थितम्।
वेदपादं यूपदंष्ट्रं चितिववक्रं नराधिप ॥ ११

मार्कंडेयजी कहते हैं—नरेश्वर। इसके बाद मैं भगवान् विष्णुके 'बाराह' नामक पावन अवतारका वर्णन करूँगा—तुम एकाग्रचित् होकर सुनो ॥ १ ॥

सत्तम्! ब्रह्माजीका दिन बीत जानेपर जब अवान्तर प्रलय होता है, तब सम्पूर्ण त्रिलोकीको व्यास करके केवल जल-ही-जल रह जाता है। राजेन्द्र! उस समय त्रिभुवनमें जो भी प्राणी हैं, उन सबका ग्रास करके ब्रह्मस्वरूप जगदीश्वर भगवान् विष्णु उस एकार्णव जलके भीतर सहस्रों फणोंसे सुशोभित शेषनागकी शव्यापर सहस्र युगोंतक चलनेवाली रात्रिमें शयन करते हैं। पूर्वकालमें कश्यपजीसे दितिके पुत्ररूपमें 'हिरण्याक्ष' नामक महान् दैत्य उत्पन्न हुआ था, ऐसी बात हमने सुनी है। वह महान् बलवान् और पराक्रमी था। वह दैत्य पातालमें निवास करता था और स्वर्गके देवताओंपर आक्रमण करके उनकी पुरीपर धेरा ढाल देता था। इतना ही नहीं, वह पृथ्वीपर यज्ञ करनेवाले मनुष्योंका भी अपकार करनेके लिये सदा प्रयत्नशील रहता था ॥ २—६ ॥

एक बार उसने सोचा—'मर्त्यलोकमें रहनेवाले पुरुष पृथ्वीपर रहकर देवताओंका यजन करेंगे, इससे उनका बल, वीर्य और तेज बढ़ जायगा।' यह सोचकर महान् असुर हिरण्याक्षने ब्रह्माजीहारा सृष्टि-रचना की जानेपर उसे धारण करनेके लिये भूमिकी जो धारणा-शक्ति थी, उसे लेकर जलके भीतर-ही-भीतर रसातलमें चला गया। आधारशक्तिसे रहित होकर यह पृथ्वी भी रसातलमें ही चली गयी ॥ ७—९ ॥

योगनिद्राका अन्त होनेपर जब सर्वात्मा श्रीहरिने विचार किया कि 'पृथ्वी कहाँ है?', तब उन्होंने योगबलसे यह जान लिया कि 'वह रसातलको चली गयी है'। नराधिप! तब उन्होंने वेदमय लम्बा-चौड़ा दिव्य बाराह-शरीर धारण किया, जिसके चारों वेद ही चरण थे, यूप (पशु-वन्धनके लिये बना हुआ काष्ठस्तम्भ) ही दाढ़ था और चिति (श्येनचित् आदि) मुख।

व्यूढोरसकं महाबाहुं पृथुवक्त्रं नराधिप।
अग्निजिहुं स्तुचं तुण्डं चन्द्राकं नयनं महत् ॥ २२

पूर्तेष्टिधर्मश्रवणं दिव्यं तं सामनिः स्वनम्।
प्राग्वर्णशकायं हविर्नासि कुशदर्भतनूरुहम् ॥ २३

सर्वं वेदमयं तच्च पुण्यसूक्तमहासटम्।
नक्षत्रताराहारं च प्रलयावर्तभूषणम् ॥ २४

इत्यं कृत्वा तु वाराहं प्रविवेश वृषाकपिः।
रसातलं नृपश्रेष्ठं सनकादीरभिष्टुतः ॥ २५

प्रविश्य च हिरण्याक्षं युद्धे जित्वा वृषाकपिः।
दंष्ट्राग्रेण ततः पृथ्वीं समुद्धृत्य रसातलात् ॥ २६

स्तूपमानोऽमरगणैः स्थापयामास पूर्ववत्।
संस्थाप्य पर्वतान् सर्वान् यथास्थानमकल्पयत् ॥ २७

विहाय रूपं वाराहं तीर्थं कोकेतिविश्रुते।
वैष्णवानां हितार्थाय क्षेत्रं तदगुप्तमुत्तमम् ॥ २८

ब्रह्मरूपं समास्थाय पुनः सृष्टं चकार सः।
विष्णुः पाति जगत्सर्वमेवम्भूतो युगे युगे।
हन्ति चान्ते जगत्सर्वं रुद्ररूपी जनार्दनः ॥ २९

वेदान्तवेद्यस्य हरेर्वृषाकपे:
कथामिमां यश्च शृणोति मानवः।
दृढां मतिं यज्ञतनीं विवेश्य च
विहाय पापं च नरो हरि च्छजेत् ॥ २०

इति श्रीनरसिंहपुराणे वाराहप्रादुर्भावो नाम एकत्रेन चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'वाराहावतार' नामक उत्तरालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३१ ॥

मुखमण्डल स्थूल और छाती चौड़ी थी, भुजाएं बड़ी-बड़ी थीं, अग्नि ही जिहा और सुक (सुवा) ही थृथुन थी। चन्द्रमा और सूर्य विशाल नेत्र थे, पूर्त (बाबली आदि खुदवाना) और इष्ट-धर्म (यज्ञ-यागादि) उनके कान थे, साम ही स्वर था। प्रावंश (पत्रीशाला या यजमान-गृह) ही शरीर था, हवि ही नासिका था, कुश-दर्भ ही रोमावलियाँ थे। इस प्रकार उनका सम्पूर्ण शरीर वेदमय था, पवित्र वैदिक सूक्त ही उनके बड़े-बड़े अयाल थे। नक्षत्र और तारे उनके हार थे तथा प्रलयकालीन आवर्त (भैंवरे) ही उनके लिये भूषणका काम दे रहे थे ॥ १०—१४ ॥

नृपश्रेष्ठ ! भगवान् विष्णुने ऐसे वाराहरूपको धारणकर रसातलमें प्रवेश किया। उस समय सनकादि योगीजन उनकी स्तुति करते थे। वहाँ जाकर भगवान् ने सुदृढ़में हिरण्याक्षको मारकर उसपर विजय पायो और अपनी दाढ़ीके अग्रभागसे पृथ्वीको उठाकर वे रसातलसे ऊपर से आये। फिर देवगण उनकी स्तुति करने लगे और उन्होंने पूर्ववत् पृथ्वीको स्थापित किया। पृथ्वीको स्थिर करनेके पक्षात् उसपर यथास्थान पर्वतोंका संनिवेश किया। तदनन्तर वैष्णवोंके हितके लिये कोकामुख तीर्थमें वाराहरूपका त्याग किया। वह वाराह-क्षेत्र उत्तम एवं गुप्त तीर्थ है। फिर ब्रह्माजीका रूप धारणकर उन्होंने सुष्टि-रचना की। इस प्रकार भगवान् विष्णु युग-युगमें अवतार लेकर सम्पूर्ण जगत्की रक्षा करते हैं। फिर वे जनादीन रुद्ररूप धारणकर अन्तकालमें समस्त लोकोंका संहार करते हैं ॥ १५—१९ ॥

जो मनुष्य वेदान्तवेद्य भगवान् विष्णुको इस कथाको श्रवण करता है, वह भगवान् यज्ञमूर्तिमें अपनी सुदृढ़ बुद्धि लगाकर समस्त पापोंसे मुक्त हो, उन भगवान् हरिको ही प्राप्त करता है ॥ २० ॥

चालीसवाँ अध्याय

नृसिंहावतार; हिरण्यकशिपुकी वरदान-प्राप्ति और उससे सताये हुए देवोंद्वारा भगवान् की स्तुति

मार्कण्डेय उकाव

वाराहः कथितो हुएवं प्रादुर्भावो होरेस्तव।
साम्प्रतं नारसिंहं तु प्रवक्ष्यामि निबोध मे ॥ १

मार्कण्डेयजी बोले—राजन्! इस प्रकार मैंने तुमसे भगवान् विष्णुके वराह-अवतारका वर्णन किया। अब 'नृसिंहावतार' का वर्णन करूँगा; सुनो ॥ १ ॥

दितेः पुत्रो महानासीद्विरण्यकशिपुः पुरा ।
तपस्तेषे निराहारो बहुर्यसहस्रकम् ॥ २
तपतस्तस्य संतुष्टो ब्रह्मा तं प्राह दानवम् ।
बरं वरय दैत्येन्द्र यस्ते मनसि वर्तते ॥ ३
इत्युक्तो ब्रह्मणा दैत्यो हिरण्यकशिपुः पुरा ।
उवाच नत्वा देवेशं ब्रह्मणं विनयान्वितः ॥ ४

हिरण्यकशिपुरुच

यदि त्वं वरदानाय प्रवृत्तो भगवन्मम ।
यद्यद्वृणोम्यहं ब्रह्मस्तत्त्वे दातुर्महसि ॥ ५
न शुष्केण न चार्द्रेण न जलेन न वह्निना ।
न काष्ठेन न कीटेन पाषाणेन न वायुना ॥ ६
नायुधेन न शूलेन न शैलेन न मानुषैः ।
न सुरसुरीर्वापि न गन्धर्वैर्न राक्षसैः ॥ ७
न किनरैर्न यक्षेस्तु विद्याधरभुजंगमैः ।
न वानरमृगीर्वापि नैव मातृगणैरपि ॥ ८
नाभ्यन्तरे न वाहो तु नान्यैर्परणहेतुभिः ।
न दिने न च नक्ते मे त्वत्यसादाद् भवेन्मृतिः ॥ ९
इति वै देवदेवेशं बरं त्वत्तो वृणोम्यहम् ।

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तो दैत्यराजेन ब्रह्मा तं प्राह पार्थिव ॥ १०
तपसा तव तुष्टोऽहं महता तु वरानिमान् ।
दुर्लभानपि दैत्येन्द्र ददामि परमाद्वतान् ॥ ११
अन्येषां नेदूशं दत्तं न तैरित्यं तपः कृतम् ।
त्वत्प्रार्थितं मया दत्तं सर्वं ते चास्तु दैत्यप ॥ १२
गच्छ भुद्दक्षव महाबाहो तपसामूर्जितं फलम् ।
इत्येवं दैत्यराजस्य हिरण्यकशिपोः पुरा ॥ १३
दत्त्वा वरान् यद्यौ ब्रह्मा ब्रह्मलोकमनुज्ञमम् ।
सोऽपि लब्धवरो दैत्यो बलवान् बलदर्पितः ॥ १४
देवान् सिंहान् रणे जित्वा दिवः प्राच्यावयद् भुवि ।
दिवि राज्यं स्वयं चक्रं सर्वशक्तिसमन्वितम् ॥ १५

पूर्वकालमें दितिका पुत्र हिरण्यकशिपु महान् प्रतापी हुआ। उसने अनेक सहस्र वर्षोंतक निराहार रहते हुए तपस्या की। उसकी तपस्यासे संतुष्ट हो ब्रह्माजीने उस दानवसे कहा—‘दैत्येन्द्र! तुम्हारे मनको जो प्रिय लगे, वही वर माँग लो।’ दैत्य हिरण्यकशिपुने ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेपर उन देवेशवरसे विनयपूर्वक प्रणाम करके कहा ॥ २—४ ॥

हिरण्यकशिपु बोला—ब्रह्मान्! भगवन्! यदि आप मुझे वर देनेको उद्यत हैं तो मैं जो-जो माँगता हूँ वह सब देनेकी कृपा करें। मैं न सूखी वसुसे मर्है न गीलीसे; न जलसे न आगसे; न काठसे न कीड़ेसे और न पत्थर या हवासे ही मेरी मृत्यु हो। न शूल अथवा किसी और शस्त्रसे न पर्वतसे; न मनुष्योंसे न देवता, असुर, गन्धर्व अथवा राक्षसोंसे ही मर्है। न किनरोंसे न यक्ष, खिद्याधर अथवा भुजंगोंसे; न बानर तथा अन्य पशुओंसे और न दुर्गा आदि मातृगणोंसे ही मेरी मृत्यु हो। मैं न घरके भीतर मर्है न बाहर; न दिनमें मर्है न रातमें तथा आपकी कृपासे मृत्युके हेतु भूत अन्य कारणोंसे भी मेरी मृत्यु न हो। देवदेवेशवर! मैं आपसे यही वर माँगता हूँ ॥ ५—९ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! दैत्यराज हिरण्यकशिपुके यों कहनेपर ब्रह्माजीने उससे कहा—‘दैत्येन्द्र! तुम्हारे महान् तपसे संतुष्ट होकर मैं इन परम अनुहृत वरोंको दुर्लभ होनेपर भी तुम्हें दे रहा हूँ। दूसरे किसीको मैंने ऐसा वर नहीं दिया है और न दूसरोंने ऐसी तपस्या ही की है। दैत्यपते! तुम्हारे माँगे हुए सभी वर मैंने तुम्हें दे दिये; वे सब तुम्हें प्राप्त हों। महाबाहो! अब जाओ और अपने तपके बढ़े हुए उत्कृष्ट फलको भोगो।’ इस प्रकार पूर्वकालमें दैत्यराज हिरण्यकशिपुको अभीष्ट वर देकर ब्रह्माजी अपने परम उत्तम लोकको चले गये। उस बलवान् दैत्यने भी वर पाकर बलसे उन्मत हो श्रेष्ठ देवताओंको युद्धमें जीतकर उन्हें स्वर्गसे पृथ्वीपर गिरा दिया तथा वह स्वयं स्वर्गलोकमें रहकर वहाँका सर्वशक्तिसम्पन्न राज्य भोगने लगा ॥ १०—१५ ॥

देवा अपि भयात्तस्य रुद्राश्चैवर्षयो नृप ।
 विचेरुरवनौ सर्वे विभाणा मानुषीं तनुम् ॥ १६
 प्राप्तत्रैलोक्यराज्योऽसौ हिरण्यकशिषुः प्रजाः ।
 आहूय सर्वा राजेन्द्र वाक्यं चेदमभाषत ॥ १७
 न यष्टव्यं न होतव्यं न दातव्यं सुरान् प्रति ।
 युष्माभिरहमेवाद्य त्रैलोक्याधिपतिः प्रजाः ॥ १८
 मर्यैव पूजां कुरुत यज्ञदानादिकर्मणा ।
 ताश्च सर्वास्तथा चकुर्दैत्येन्द्रस्य भयानृप ॥ १९
 यत्रैव क्रियमाणेषु त्रैलोक्यं सच्चराचरम् ।
 अर्थर्मयुक्तं सकलं वभूव नृपसत्तम् ॥ २०
 स्वधर्मलोपात् सर्वेषां पापे मतिरजायत ।
 गते काले तु महति देवाः सेन्द्रा वृहस्पतिम् ॥ २१
 नीतिज्ञं सर्वशास्त्रज्ञं पप्रच्छुर्विनयान्विताः ।
 हिरण्यकशिषोरस्य विनाशं मुनिसत्तम् ॥ २२
 त्रैलोक्यहारिणः शीघ्रं वधोपायं वदस्व नः ।

वृहस्पतिरुक्ताच

शृणुच्चं मम वाक्यानि स्वपदप्राप्तये सुराः ॥ २३
 प्रायो हिरण्यकशिषुः क्षीणभागो महासुरः ।
 शोको नाशयति प्रज्ञां शोको नाशयति श्रुतम् ॥ २४
 शोको मतिं नाशयति नास्ति शोकसमो रिषुः ।
 सोऽुं शक्योऽग्निसम्बन्धः शास्त्रस्पर्शश्च दारुणः ॥ २५
 न तु शोकभवं दुःखं संसोऽुं नृप शक्यते ।
 कालाद्विमित्ताच्च वयं लक्ष्यामस्तत्क्षयं सुराः ॥ २६
 बुधाश्च सर्वे सर्वत्र स्थिता वक्ष्यन्ति नित्यशः ।
 अचिरादेव दुष्टोऽसौ नश्यत्येव परस्परम् ॥ २७
 देवानां तु परामुद्दिं स्वपदप्राप्तिलक्षणाम् ।
 हिरण्यकशिषोर्नाशं शकुनानि वदन्ति मे ॥ २८
 यत एवमतो देवाः सर्वे गच्छत माचिरम् ।
 क्षीरोदस्योत्तरं तीरं प्रसुप्तो यत्र केशवः ॥ २९
 युष्माभिः संस्तुतो देवः प्रसन्नो भवति क्षणात् ।
 स हि प्रसन्नो देत्यस्य वधोपायं चदिष्यति ॥ ३०

नरेश्वर ! इन्द्रादि देवता, रुद्र तथा ऋषिगण भी उसके भयसे मनुष्यरूप धारणकर पृथ्वीपर विचरते थे । राजेन्द्र ! त्रिभुवनका राज्य प्राप्त कर लेनेपर हिरण्यकशिषुने समस्त प्रजाओंको बुलाकर उनसे यह वाक्य कहा—'प्रजागण ! तुम लोग देवताओंके लिये यज्ञ, होम और दान न करो । अब मैं ही त्रिभुवनका अधीश्वर हूँ; अतः यज्ञ और दानादि कर्मोंद्वारा मेरी ही पूजा करो ।' राजन् ! यह सुनकर वे सभी प्रजाएँ उसके भयसे बैसा ही करने लगीं । नृपश्रेष्ठ ! वहाँ ऐसा व्यवहार चालू होनेपर चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिभुवन अधर्मपरायण हो गया । स्वधर्मका लोप हो जानेसे सबको बुद्धि पापमें प्रवृत्त हो गयी । इस तरह बहुत समय बीतनेपर इन्द्रसहित सब देवताओंने मिलकर समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता तथा नीतिवेत्ता वृहस्पतिजीसे विनयपूर्वक पूछा—'मुनिश्रेष्ठ ! त्रिलोकीका राज्य छोड़नेवाले इस हिरण्यकशिषुके विनाशका समय और उसका उपाय हमें शीघ्र बताइये' ॥ १६—२२ ॥

वृहस्पतिजी बोले—देवताओ ! तुम लोग अपने स्थानकी प्राप्तिके लिये मेरे ये वाक्य सुनो—'इस महान् असुर हिरण्यकशिषुके पुण्यका अंश प्रायः क्षीण हो चुका है । [इसे अपने भाई हिरण्याक्षको मृत्युसे बहुत शोक हुआ है ।] यह शोक बुद्धिको नष्ट और शास्त्रज्ञानको चौपट कर देता है, विचारशक्तिको भी क्षीण कर डालता है; अतः शोकके समान कोई शान्त नहीं है । नरेश्वर ! अपने शरीरपर अग्रिका स्पर्श और दारुण शास्त्र-प्रहार भी सहा जा सकता है, परंतु शोकजन्य दुःखका सहन नहीं किया जा सकता । देवताओ ! इस शोकसे और कालरूप निमित्तसे हम हिरण्यकशिषुका नाश निकट देख रहे हैं । इसके अतिरिक्त सभी विद्वान् सर्वत्र परस्पर यही कहा करते हैं कि दुष्ट हिरण्यकशिषु अब शीघ्र ही नष्ट होनेवाला है । मैं भक्तुन भी यही बताते हैं कि देवताओंको अपने पद—स्वर्ग-साम्राज्यकी प्राप्तिरूप महती समृद्धि मिलनेवाली है और हिरण्यकशिषुका नाश होना चाहता है । चूंकि ऐसा ही होनेवाला है, इसलिये तुम सभी देवता क्षीरसागरके उत्तरतटपर, जहाँ भगवान् विष्णु शयन करते हैं, शीघ्र ही जाओ । तुम लोगोंके भलीभांति स्तवन करनेपर वे भगवान् क्षणभरमें ही प्रसन्न हो जायेंगी और प्रसन्न होनेपर वे ही उस दैत्यके वधका उपाय बतायेंगे ॥ २३—३० ॥

इत्युक्तास्तेन देवास्ते साधु साधिवत्यथाक्षुवन्।
 प्रीत्या च परया युक्ता गन्तुं चकुरथोद्यमम्॥ ३१
 पुण्ये तिथीं शुभे लग्ने पुण्यं स्वस्ति च मङ्गलम्।
 कारणित्वा मुनिवरैः प्रस्थितास्ते दिवौकसः॥ ३२
 नाशाय दुष्टदैत्यस्य स्वभूत्यै च नृपोत्तम्।
 ते शर्वमग्रतः कृत्वा क्षीराभ्योरुत्तरं तटम्॥ ३३
 तत्र गत्वा सुराः सर्वे विष्णुं जिष्णुं जनार्दनम्।
 अस्तुवन् विविधैः स्तोत्रैः पूजयन्तः प्रतस्थिरे॥ ३४
 भवोऽपि भगवान् भक्त्या भगवन्तं जनार्दनम्।
 अस्तुवत्रामभिः पुण्यैरेकाग्रमनसा हरिम्॥ ३५

श्रीमहादेव उवाच

विष्णुजिष्णुविभुदेवो यज्ञेशो यज्ञपालकः।
 प्रभविष्णुर्ग्रसिष्णुश्च लोकात्मा लोकपालकः॥ ३६
 केशवः केशिहा कल्पः सर्वकारणकारणम्।
 कर्मकृद् वामनाधीशो वासुदेवः पुरुषुतः॥ ३७
 आदिकर्ता वराहश्च माधवो मधुसूदनः।
 नारायणो नरो हंसो विष्णुसेनो हुताशनः॥ ३८
 ज्योतिष्मान् हुतिमान् श्रीमानायुष्मान् पुरुषोत्तमः।
 वैकुण्ठः पुण्डरीकाक्षः कृष्णः सूर्यः सुरार्चितः॥ ३९
 नरसिंहो महाभीमो वच्रदंष्ट्रो नखायुधः।
 आदिदेवो जगत्कर्ता योगेशो गरुडध्वजः॥ ४०
 गोविन्दो गोपतिगोपा भूपतिर्भुवनेश्वरः।
 पद्मनाभो हृषीकेशो विभुदीमोदरो हरिः॥ ४१
 त्रिविक्रमस्त्रिवलोकेशो ब्रह्मेशः प्रीतिवर्धनः।
 वामनो दुष्टदमनो गोविन्दो गोपवल्लभः॥ ४२
 भक्तिप्रियोऽच्युतः सत्यः सत्यकीर्तिर्घुवः शुचिः।
 कारुण्यः करुणो व्यासः पापहा शान्तिवर्धनः॥ ४३
 संन्यासी शास्त्रतत्त्वज्ञो मन्दारगिरिकेतनः।
 बद्रीनिलयः शान्तस्तपस्वी वैद्युतप्रभः॥ ४४
 भूतावासो गुहावासः श्रीनिवासः श्रियःपतिः।
 तपोवासो दमो वासः सत्यवासः सनातनः॥ ४५
 पुरुषः पुष्कलः पुण्यः पुष्कराक्षो महेश्वरः।
 पूर्णः पूर्तिः पुराणजः पुण्यजः पुण्यवर्द्धनः॥ ४६
 शङ्खी चक्री गदी शाङ्खी लाङ्खली मुशली हली।
 किरीटी कुण्डली हारी मेखली कबची ध्वजी॥ ४७
 जिष्णुर्जेता महावीरः शत्रुघ्नः शत्रुतापनः।
 शान्तः शान्तिकरः शास्त्रा शङ्खः शांतनुस्तुतः॥ ४८

श्रीबृहस्पतिजीके इस प्रकार कहनेपर सभी देवता कहने लगे—‘भगवन्! आपने अहुत अच्छा कहा, अहुत अच्छा कहा।’ और वे अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक वहाँ जानेका उद्योग करने लगे। नृपवर! वे देवगण किसी पुण्यतिथिको शुभ लग्नमें मुनिवरोद्वारा पुण्याहवाचन, स्वस्तिवाचन और मङ्गलपाठ कराकर दुष्ट दैत्य (हिरण्यकशिष्य) -के विनाश और अपनी ऐश्वर्य-वृद्धिके लिये महादेवजीको आगे करके क्षीरसागरके ठत्तर तटकी ओर प्रस्थित हुए। वहाँ पहुँचकर सभी देवता विजयशील जनार्दन भगवान् विष्णुका नाना प्रकारके स्तोत्रोद्वारा स्तवन-पूजन करते हुए वहाँ खड़े रहे। भगवान् शङ्खर भी भक्तिपूर्वक एकाग्रधितसे भगवान् जनार्दनके पवित्र नामोद्वारा उनकी स्तुति करने लगे॥ ३१—३५॥

श्रीमहादेवजी बोले—विष्णुं जिष्णुं विभुं देवं, यज्ञेशं, यज्ञपालकं, प्रभविष्णुं, ग्रसिष्णुं, लोकात्मा, लोकपालकं, केशवं, केशिहा, कल्पं, सर्वकारणकारणं, कर्मकृतं, वामनाधीशं, वासुदेवं, पुरुषुतः, आदिकर्ता, वराहं, माधवं, मधुसूदनं, नारायणं, नरं, हंसं, विष्णुसेनं, हुताशनं, ज्योतिष्मान्, हुतिमान्, श्रीमान्, आयुष्मान्, पुरुषोत्तमं, वैकुण्ठं, पुण्डरीकाक्षं, कृष्णं, सूर्यं, सुरार्चितं, नरसिंहं, महाभीमं, वच्रदंष्ट्रं, नखायुधं, आदिदेवं, जगत्कर्ता, योगेशं, गरुडध्वजं, गोविन्दं, गोपति, गोपा, भूपति, भुवनेश्वरं, पद्मनाभं, हृषीकेशं, विभुं, दामोदरं, हरिं, त्रिविक्रमं, त्रिलोकेशं, ब्रह्मेशं, प्रीतिवर्धनं, वामनं, दुष्टदमनं, गोविन्दं, गोपवल्लभं, भक्तिप्रियं, अच्युतं, सत्यं, सत्यकीर्तिं, भूवं, शुचिं, कारुण्यं, करुणं, व्यासं, पापहा, शान्तिवर्धनं, संन्यासी, शास्त्रतत्त्वज्ञं, मन्दारगिरिकेतनं, बद्रीनिलयं, शान्तं, तपस्वी, वैद्युतप्रभं, भूतावासं, गुहावासं, श्रीनिवासं, श्रियःपतिः, तपोवासं, दमं, वासं, सत्यवासं, सनातनं पुरुषं, पुष्कलं, पुण्यं, पुष्कराक्षं, महेश्वरं, पूर्णं, पूर्तिः, पुराणजः, पुण्यजः, पुण्यवर्द्धनं, शङ्खी, चक्री, गदी, शाङ्खी, लाङ्खली, मुशली, हली, किरीटी, कुण्डली, हारी, मेखली, कबची, ध्वजी, जिष्णु, जेता, महावीर, शत्रुघ्न, शत्रुतापन, शान्त, शान्तिकर, शास्त्रा,

सारथि: सात्त्विकः स्वामी सामवेदप्रियः समः ।
 सावनः साहस्री सत्त्वः सम्पूर्णाशः समृद्धिमान् ॥ ४९
 स्वर्गदः कामदः श्रीदः कीर्तिदः कीर्तिनाशनः ।
 मोक्षदः पुण्डरीकाक्षः क्षीराभ्युकृतकेतनः ॥ ५०
 स्तुतः सुरासुरीशः प्रेरकः पापनाशनः ।
 त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोकारस्त्वमग्रयः ॥ ५१
 त्वं स्वाहा त्वं स्वधा देव त्वं सुधा पुरुषोत्तम ।
 नमो देवादिदेवाय विष्णवे शाश्वताय च ॥ ५२
 अनन्तायाप्रमेयाय नमस्ते गरुडध्वज ।

मार्कण्डेय उचाच

इत्येतैर्नामभिर्दिव्यैः संस्तुतो मधुसूदनः ॥ ५३
 उचाच प्रकटीभूत्वा देवान् सर्वानिदं चचः ।

श्रीभगवानुकाच

युष्माभिः संस्तुतो देवा नामभिः केवलैः शुभैः ॥ ५४
 अत एव प्रसन्नोऽस्मि किमर्थं करवाणि च ।

देवा ऊरुः

देवदेव हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव ॥ ५५
 त्वमेव जानासि हरे किं तस्मात् परिपृच्छसि ।

श्रीभगवानुकाच

युष्मदागमनं सर्वं जानाम्यसुरसूदनाः ॥ ५६
 हिरण्यकशिनाशार्थं स्तुतोऽहं शङ्करेण तु ।
 पुण्यनामशतैर्नैव संस्तुतोऽहं भवेन च ॥ ५७
 एतेन यस्तु मां नित्यं त्वयोक्तेन महामते ।
 तेनाहं पूजितो नित्यं भवामीह त्वया यथा ॥ ५८
 प्रीतोऽहं गच्छ देव त्वं कैलासशिखारं शुभम् ।
 त्वया स्तुतो हनिष्यामि हिरण्यकशिपुं भव ॥ ५९
 गच्छ वमधुना देवाः कालं कंचित् प्रतीक्षताम् ।
 यदास्य तनयो धीमान् प्रह्लादो नाम वैष्णवः ॥ ६०
 तस्य द्वोहं यदा दैत्यः करिष्यति सुरांस्तदा ।
 हनिष्यामि वैर्गुप्तमजेयं देवदानवैः ।
 इत्युक्त्वा विष्णुना देवा नत्वा विष्णुं यथुर्नृप ॥ ६१

इति श्रीनरसिंहपुराणे विष्णोनभिस्तोऽध्यायः ॥ ५० ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'विष्णुका नाममय स्तोत्र' नामक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५० ॥

शंकर, शंतनुस्तुत, सारथि, सात्त्विक, स्वामी, सामवेदप्रिय, सम, सावन, साहस्री, सत्त्व, सम्पूर्णाश, समृद्धिमान्, स्वर्गद, कामद, श्रीद, कीर्तिद, कीर्तिनाशन, मोक्षद, पुण्डरीकाक्ष, क्षीराभ्युकृतकेतन, सुरासुरःस्तुत, प्रेरक और पापनाशन आदि नामोंसे कहे जानेवाले परमेश्वर ! आप ही यज्ञ, वषट्कार, ॐकार तथा आहवनीयादि अग्रिम्य हैं । पुरुषोत्तम ! देव ! आप ही स्वाहा, स्वधा और सुधा हैं, आप सनातन देवदेव भगवान् विष्णुको नमस्कार है । गरुडध्वज ! आप प्रमाणोंकि अविषय तथा अनन्त हैं ॥ ३६—५२ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—इन दिव्य नामोंद्वारा स्तुति किये जानेपर भगवान् मधुसूदनने प्रत्यक्ष प्रकट होकर सम्पूर्ण देवताओंसे यह वचन कहा ॥ ५३ ॥

श्रीभगवान् बोले—देवगण ! तुम लोगोंने केवल कल्याणकारी नामोंद्वारा मेरा स्तबन किया है, अतः मैं तुमपर प्रसन्न हूँ; कहो, तुम्हारा क्या कार्य सिद्ध करूँ ? ॥ ५४ ॥

देवता बोले—हे देवदेव ! हे हृषीकेश ! हे कमलनयन ! हे लक्ष्मीपते ! हे हरे ! आप तो सब कुछ जानते हैं; फिर हमसे क्यों पूछ रहे हैं ? ॥ ५५ ॥

श्रीभगवान् बोले—असुरनाशक देवताओं ! तुम लोगोंके आनेका सारा कारण मुझे ज्ञात है । जगत्का कल्याण करनेवाले महादेवजीने तथा तुमने हिरण्यकशिपु दैत्यका नाश करानेके लिये मेरे एक सौ पुण्यनामोंद्वारा मेरा स्तबन किया है । महामते शिव ! तुम्हारे कहे हुए इन सौ नामोंसे जो मेरा नित्य स्तबन करेगा, उस पुरुषद्वारा मैं उसी प्रकार प्रतिदिन पूजित होऊँगा, जैसे इस समय तुम्हारे द्वारा हुआ हूँ । देव शम्भो ! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, अब तुम अपने शुभ कैलासशिखरको जाओ । तुमने मेरी स्तुति की है, अतः तुम्हारी प्रसन्नताके लिये मैं हिरण्यकशिपुका वध करूँगा । देवताओं ! अब तुम भी जाओ और कुछ कालतक प्रतीक्षा करो । जब इस हिरण्यकशिपुके प्रह्लाद नामक चूर्द्धिमान् विष्णुभक्त पुत्र होगा और जिस समय यह दैत्य प्रह्लादसे द्वोह करेगा, उस समय वरोंसे रक्षित होकर देवताओं और दानवोंसे भी नहीं जीते जा सकनेवाले इस असुरका मैं अवश्य वध कर डालूँगा । राजन् ! भगवान् विष्णुके इस प्रकार कहनेपर देवगण उन्हें प्रणाय करके चले गये ॥ ५६—६१ ॥

इकतालीसवाँ अध्याय

प्रह्लादकी उत्पत्ति और उनकी हरि-भक्तिसे हिरण्यकशिपुकी उद्धिग्रता

सहस्रानीक उकाच

मार्कण्डेय महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
प्रादुर्भावं नृसिंहस्य यथावद्वकुमर्हसि ॥ १
वद प्रह्लादचरितं विस्तरेण ममानघ ।
धन्या वयं महायोगिंस्त्वत्प्रसादान्महामुने ॥ २
सुधां पिलामो दुर्लभ्यां धन्याः श्रीशक्ताभिधाम् ।

श्रीमार्कण्डेय उकाच

पुरा हिरण्यकशिपोस्तपोऽर्थं गच्छतो वनम् ॥ ३
दिग्दाहो भूमिकम्पश्च जातस्तस्य महात्मनः ।
वारितो बन्धुभिर्भृत्यर्मित्रश्च हितकारिभिः ॥ ४
शकुना विगुणा राजझातास्तच्च न शोभनम् ।
त्रैलोक्याधिपतिस्त्वं हि सर्वे देवाः पशजिताः ॥ ५
तवास्ति न भयं सौम्य किमर्थं तप्यते तपः ।
प्रयोजनं न पश्यामो वयं बुद्ध्या समन्विताः ॥ ६
यो भवेत्यूनकामो हि तपश्चार्यां करोति सः ।
एवं तैर्वर्यमाणोऽपि दुर्मिदो मदमोहितः ॥ ७
यातः कैलासशिखरं द्वित्रैर्मित्रैः परीवृतः ।
तस्य संतप्यमानस्य तपः परमदुष्करम् ॥ ८
चिन्ता जाता महीपाल विरिङ्ग्नेः पद्यजन्मनः ।
किं करोमि कथं दैत्यस्तपसो विनिवर्तते ॥ ९
इति चिन्ताकुलस्यैव ब्रह्मणोऽङ्गसमुद्दवः ।
प्रणाम्य प्राह भूपाल नारदो मुनिसत्तमः ॥ १०

नारद उकाच

किमर्थं खिद्यते तात नारायणपरायण ।
येषां पनसि गोविन्दस्ते वै नार्हन्ति शोचितुम् ॥ ११
अहं तं वारयिष्यामि तप्यन्तं दितिनन्दनम् ।
नारायणो जगत्स्वामी मतिं मे सम्प्रदास्यति ॥ १२

सहस्रानीकने कहा — सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता महाप्राज्ञ मार्कण्डेयजी ! आप भगवान् नृसिंहके प्रादुर्भावकी कथा यथोचितरूपसे कहें । अनथ ! भक्तवर प्रह्लादजीका चरित्र मुझे विस्तारपूर्वक सुनायें । महायोगिन् ! महामुने ! हम लोग धन्य हैं; क्योंकि आपको कृपासे हमें भगवान् विष्णुकी कथारूप दुर्लभ सुधाका पान करनेका अवसर मिला है ॥ १—२ ॥

श्रीमार्कण्डेयजी बोले — पूर्वकालमें एक समय वह महाकाय हिरण्यकशिपु जब तपस्या करनेके लिये बनमें जानेको उद्घत हुआ, उस समय समस्त दिशाओंमें दाह और भूकम्प होने लगा । यह देखकर उसके हितकारी बन्धुओं, मित्रों और भूत्योंने उसे मना किया— ‘राजन् ! इस समय चुरे शकुन हो रहे हैं । इनका फल अच्छा नहीं है । सौम्य ! आप त्रिभुवनके एकचतुर स्वामी हैं, समस्त देवताओंपर आपने विजय प्राप्त की है, आपको किसीसे भय भी नहीं है; फिर किसलिये तप करना चाहते हैं ? हम सभी लोग जब अपनी बुद्धिसे विचारते हैं, तब कोई भी प्रयोजन नहीं दिखायी देता [जिसके लिये आपको तप करनेकी आवश्यकता हो]; क्योंकि जिसकी कामना अपूर्ण होती है, वही तपस्या करता है’ ॥ ३—६ ॥

अपने बन्धुजनोंके इस प्रकार मना करनेपर भी वह दुर्मद एवं मदमत दैत्य अपने दो-तीन मित्रोंको साथ लेकर (तपके लिये) कैलास-शिखरको चला ही गया । महीपाल ! वहाँ जाकर जब वह परम दुष्कर तपस्या करने लगा, तब पद्ययोनि ब्रह्माजीको उसके कारण बड़ी चिन्ता हो गयी । वे सोचने लगे—‘अहो ! अब क्या करूँ ? वह दैत्य कैसे तपसे निवृत हो ?’ भूपाल ! इस चिन्तासे ब्रह्माजी जब व्याकुल हो रहे थे, उसी समय उनके अङ्गसे उत्पन्न मुनिवर नारदजीने उन्हें प्रणाम करके कहा— ॥ ७—१० ॥

नारदजी बोले — पिताजी ! आप तो भगवान् नारायणके आश्रित हैं, फिर आप क्यों खेद कर रहे हैं ? जिनके हृदयमें भगवान् गोविन्द विराजमान हैं, उन्हें इस प्रकार सोच नहीं करना चाहिये । तपस्यामें प्रवृत्त हुए उस दैत्य हिरण्यकशिपुको मैं उससे निवृत करूँगा । जगदीक्षर भगवान् नारायण मुझे इसके लिये सुबुद्धि देंगे ॥ ११—१२ ॥

मार्कण्डेय उक्तव्य

इत्युक्त्वाऽनन्यं पितरं वासुदेवं हृदि स्मरन् ।
प्रयातः पर्वतेनैव सार्थं स मुनिपुङ्गवः ॥ १३
कलविद्वां तु तौ भूत्वा कैलासं पर्वतोत्तमम् ।
यत्रास्ते दितिजश्रेष्ठो द्वित्रैर्मित्रैः परीबृतः ॥ १४
कृतस्नानो मुनिस्तत्र वृक्षशाखासमाञ्चितः ।
शृणवतस्तस्य दैत्यस्य प्राह गम्भीरया गिरा ॥ १५
नमो नारायणायेति पुनः पुनरुदारथीः ।
त्रिवारं प्रजपित्वा वै नारदो मौनमाञ्चितः ॥ १६
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कलविद्वस्य सादरम् ।
हिरण्यकशिपुदैत्यः कुद्धक्षापं समाददे ॥ १७
बाणं धनुषि संधाय यावन्मुञ्चति तौ प्रति ।
तावदुद्धीय तौ भूय गतौ नारदपर्वतौ ॥ १८
सोऽपि क्रोधपरीताङ्गो हिरण्यकशिपुस्तदा ।
त्यक्त्वा तमाश्रमं भूयो नगरं स्वं महीपते ॥ १९
तस्यापि भावा सुश्रोणी कथाधूर्नाम नामतः ।
तदा रजस्वला भूत्वा स्नाताभूदेवयोगतः ॥ २०
रात्रावेकान्तसमये तथा पृष्ठः स दैत्यराद् ।
स्वामिन् यदा तपश्चर्या कर्तुं गोहाद्वनं गतः ॥ २१
तदा त्वयोक्तं वर्षणामयुतं मे तपस्त्विदम् ।
तत्क्रमर्थं महाराज साम्प्रतं त्यक्तवान् व्रतम् ॥ २२
तथ्यं कथय मे नाथ स्नेहात्पुच्छामि दैत्यप ।

हिरण्यकशिपुरुच

शृणु चार्वद्विं मे तथ्यां वाचं ऋतविनाशिनीम् ॥ २३
क्रोधस्थातीव जननीं देवानां मुदवर्द्धनीम् ।
कैलासशिखरे देवि महदानन्दकानने ॥ २४
व्याहरन्ती शुभां वाणीं नमो नारायणोति च ।
वारदुयं त्रयं चेति व्याहृतं वचनं शुभे ॥ २५

मार्कण्डेयजी बोले—अपने पितासे इस प्रकार कहकर मुनिक्रेष्ट नारदजीने उन्हें प्रणाम किया और मन-ही-मन भगवान् वासुदेवका स्मरण करते हुए वे पर्वतमुनिके साथ बहाँसे चल दिये। वे दोनों मुनि कलविद्व पक्षीका रूप धारणकर उस उत्तम कैलास पर्वतपर आये, जहाँ दैत्यश्रेष्ठ हिरण्यकशिपु अपने दो-तीन मित्रोंके साथ रहता था। बहाँ स्नान करके नारदमुनि वृक्षकी शाखापर बैठ गये और उस दैत्यके सुनते-सुनते गम्भीर चाणीमें भगवत्प्राप्तका उच्चारण करने लगे। उदारबुद्धि नारद लगातार तीन बार 'ॐ नमो नारायणाय'—इस मन्त्रका उच्च स्वरसे उच्चारण कर भीन हो गये। भूपाल! कलविद्वके हाथ किये गये उस आदरयुक्त नामकीर्तनको सुनकर हिरण्यकशिपुने कुपित हो धनुष उठाया और उसपर वाणिका संधान करके ज्यों ही उन दोनों पक्षियोंके प्रति छोड़ने लगा, त्यों ही नारद और पर्वतमुनि उड़कर अन्यत्र चले गये। महीपते! तब हिरण्यकशिपु भी क्रोधसे भर गया और उसी समय वह उस आश्रमको त्यागकर अपने नगरको चला आया ॥ १३—१९ ॥

बहाँ उसी समय उसकी कथाधू नामकी सुन्दरी पली दैवयोगसे रजस्वला होकर झलु-स्नाता हुई थी। रात्रिमें एकान्तवासके समय कथाधूने दैत्याजसे पूछा— 'स्वामिन्! आप जिस समय तप करनेके लिये घरसे बनको गये थे, उस समय तो आपने यह कहा था कि 'मेरी यह तपस्या दस हजार वर्षोंतक चलेगी।' फिर महाराज! आपने अभी क्यों उस व्रतको त्याग दिया? स्वामिन्! दैत्यराज! मैं प्रेमपूर्वक आपसे यह प्रश्न करती हूँ, कृपया मुझे सच-सच बताइये' ॥ २०—२२ ॥

हिरण्यकशिपु बोला—सुन्दरि! सुनो, मैं वह बत्त तुम्हें सच-सच सुनाता हूँ, जिसके कारण मेरे व्रतका भङ्ग हुआ है। वह बात मेरे क्रोधको अत्यन्त बढ़ानेवाली और देवताओंको आनन्द देनेवाली थी। दैवि! कैलासशिखरपर जो महान् आनन्द-कानन है, उसमें दो पक्षी 'ॐ नमो नारायणाय'—इस शुभवाणीका उच्चारण करते हुए आ गये। सुधे! उन्होंने [मुझे सुना-सुनाकर] दो बार, तीन बार उक्त वचनको दुहराया।

तेन मे मनसि क्रोधो जातोऽतीव चरानने ।
कोदण्डे शरमाधाय यावन्मुच्छामि भामिनि ॥ २६

तावत्ती पक्षिणीं भीतीं गतीं देशान्तरं त्वहम् ।
त्यक्त्वा द्वतं समायातो भाविकार्यवलेन वै ॥ २७

मार्कण्डेय उक्ताव

इत्युच्यमाने वचने वीर्यद्वाबोऽभवत्तदा ।
ऋतुकाले तु सम्प्राप्ते जातो गर्भस्तदैव हि ॥ २८

पुनः प्रवर्धमानस्य गर्भे गर्भस्य धीमतः ।
नारदस्योपदेशोन वैष्णवः समजायत ॥ २९

तदग्रे कथयिष्यामि भूष श्रद्धापरो भव ।
तस्य सूनुरभूद्धकः प्रह्लादो जन्मवैष्णवः ॥ ३०

सोऽवर्धतासुरकुले निर्मलो मलिनाश्रये ।
यथा कलौ हरेभक्तिः पाशसंसारमोचनी ॥ ३१

स बद्धमानो विरराज बालैः
सह त्रयीनाथपदेषु भवत्या ।
बालोऽल्पदेहो महतीं महात्मा
विस्तारयन् भाति स विष्णु भक्तिम् ॥ ३२

यथा चतुर्थं युगमासधर्म-
कामार्थमोक्षं किल कीर्तिदं हि ।

स बाललीलासु सहान्युडिष्टैः
प्रहेलिकाक्रीडनकेषु नित्यम् ॥ ३३

कथाप्रसङ्गेषु च कृष्णमेव
प्रोवाच यस्मात् स हि तत्त्वभावः ।
इत्थं शिशुत्वेऽपि विचित्रकारी
व्यवद्धतेशास्मरणामृताशः ॥ ३४

तं पश्यवक्त्रं दैत्येन्द्रः कदाचित्त्रीवृतः खलः ।
बालं गुरुगृहायातं ददर्श स्वायतेक्षणम् ॥ ३५

वरानने! पक्षियोंके उस शब्दको सुनकर मेरे मनमें बड़ा क्रोध हुआ और भामिनि! उन्हें मारनेके लिये धनुषपर बाण चढ़ाकर ज्यों ही मैंने छोड़ना चाहा, त्यों ही वे दोनों पक्षी भयभीत हो उड़कर अन्यत्र चले गये। तब मैं भी भावीकी प्रवलतासे अपना द्वत त्यागकर यहाँ चला आया ॥ २३—२७ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—[हिरण्यकशिषु अपनी पत्नीके साथ] जब इस प्रकार चाते कर रहा था, उसी समय उसका बीर्य सखलित हुआ; पत्नीका ऋतुकाल तो प्राप्त था ही, तत्काल गर्भ स्थापित हो गया। माताके ठदरमें बढ़ते हुए उस गर्भसे बुद्धिमान् नारदजीके उपदेशके कारण विष्णुभक्त पुत्र उत्पन्न हुआ। भूष! इस प्रसङ्गको आगे कहूँगा; इस समय जो प्रसङ्ग चल रहा है, उसे ब्रह्मपूर्वक सुनो। हिरण्यकशिषुका वह भक्त पुत्र प्रह्लाद जन्मसे ही वैष्णव हुआ। जैसे पापपूर्ण कलियुगमें संसार-बन्धनसे मुक्त करनेवाली भगवान् श्रीहरिकी भक्ति बढ़ती रहती है, उसी प्रकार उस मलिन कर्म करनेवाले असुर-वंशमें भी प्रह्लाद निर्मल भावसे रहकर दिनोंदिन बढ़ने लगा। वह बालक त्रिलोकीनाथ भगवान् विष्णुके चरणोंमें बढ़ती हुई भक्तिके साथ ही स्वयं भी बढ़ता हुआ शोभा पा रहा था। शरीर छोटा होनेपर भी उस बालकका हृदय महान् था; वह विष्णुभक्तिका प्रसार करता हुआ उसी तरह शोभा पाता था, जैसे चौथा युग (कलियुग) [महत्वमें सब युगोंसे छोटा होकर भी] भगवद्भजनसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको देनेवाला तथा यशका विस्तार करनेवाला होता है। प्रह्लाद अन्य बालकोंके साथ खेलते, पहेली बुझते और खिलौने आदिसे मनोरञ्जन करते समय तथा बातचीतके प्रसङ्गमें भी सदा भगवान् विष्णुकी ही चर्चा करता था; क्योंकि उसका स्वभाव भगवन्यय हो गया था। इस प्रकार शैशव-कालमें भी विचित्र कार्य करनेवाला वह प्रह्लाद भगवत्समरणरूपी अमृतका पान करता हुआ दिन-दिन बढ़ने लगा ॥ २८—३४ ॥

एक दिन बहुत-सी स्त्रियोंके बीचमें थेठे हुए दुष्ट दैत्यराज हिरण्यकशिषुने गुरुजीके घरसे आये हुए कमल-से मुखबाले अपने बालक पुत्र प्रह्लादको देखा; उसकी

गृहीत्वा तु करे पुत्रं पट्टिका या सुशोभना ।
मूर्जिन चक्राङ्गिता पट्टी कृष्णानामाङ्गिताऽऽदरात् ॥ ३६

तमाहूय मुदाविष्टो लालयन् प्राह पुत्रकम् ।
पुत्रं ते जननी नित्यं सुधीर्में त्वा प्रशंसति ॥ ३७

अथ तद्वद् यत्किञ्चिद् गुरुवेशमनि शिक्षितम् ।
विचार्यानिन्दजननं सम्यगायाति तद्वद् ॥ ३८

अथाह पितरं हर्षात् प्रह्लादो जन्मवैष्णवः ।
गोविन्दं त्रिजगद्वन्द्यं प्रभुं नत्वा छवीमि ते ॥ ३९

इति शत्रोः स्तवं श्रुत्वा पुत्रोक्तं स्वीकृतः खलः ।
कुद्धोऽपि तं वज्ञयितुं जहासोच्चैः प्रहृष्टवत् ॥ ४०

आलिङ्ग्य तनयं प्राह शृणु बाल हितं वचः ।
राम गोविन्द कृष्णोति विष्णो माधव श्रीपते ॥ ४१

एवं वदन्ति ये सर्वे ते पुत्रं मम वैरिणः ।
शासितास्तु मयेदानीं त्वयेदं क्व श्रुतं वचः ॥ ४२

पितुर्वचनमाकर्ण्य धीमानभयसंयुतः ।
प्रह्लादः प्राह हे आर्य यैवं द्वयाः कदाचन ॥ ४३

सर्वेष्वर्थप्रदं भन्तं शर्मादिपरिवर्धनम् ।
कृष्णोति यो जरो द्वयात् याः भयं विन्दने पदम् ॥ ४४

कृष्णानिन्दासाम्न्यम् अभ्यासः न च द्वयन् ।
राम भाधव द्वयात् याः भयाः न द्वयन् ॥ ४५

गृह्णेतुमि विष्णुम् विष्णुम् ॥ ४६
द्वयाः भयाः भयाः भयाः भयाः ॥ ४७

ओखें बड़ी-बड़ी और सुन्दर थीं तथा वह हाथमें पट्टी लिये हुए था। उसकी पट्टी बड़ी सुन्दर थी, उसके सिरेपर चक्रका चिह्न बना हुआ था और पट्टीपर आदरपूर्वक श्रीकृष्णका नाम लिखा गया था। उसे देख हिरण्यकशिपुको बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने पुत्रको पास बुलाकर उसे प्यार करते हुए कहा—'बेटा! तुम्हारी बुद्धिमती माता मुझसे तुम्हारी बड़ी प्रशंसा किया करती है। अतः तुमने गुरुजीके घर जो कुछ सीखा है, वह मुझसे कहो। पहले सोच लो, जो तुम्हें बहुत आनन्ददायी प्रतीत होता हो और भलीभांति याद हो, वही पाठ सुनाओ'॥ ३५—३८॥

यह सुनकर जन्मसे ही विष्णुकी भक्ति करनेवाले प्रह्लादने प्रसन्नतापूर्वक पितासे कहा—'त्रिपुत्रनके बन्दनीय भगवान् गोविन्दको प्रणाम करके मैं अपना पढ़ा हुआ पाठ आपको सुनाता हूँ।' अपने पुत्रके मुख्यसे इस प्रकार शत्रुकी स्तुति सुनकर स्त्रियोंसे द्विरा हुआ वह दुष्ट दैत्य यद्यपि बहुत कुद्ध हुआ, तथापि प्रह्लादसे उस क्रोधको छिपानेके लिये वह प्रसन्न पुरुषको भाँति जोर-जोरसे हँसने लगा। फिर पुत्रको गलेसे लगाकर बोला—''वचा! मेरा हितकर वचन सुनो—बेटा! जो लोग 'राम, कृष्ण, गोविन्द, विष्णो, माधव, श्रीपते!' इस प्रकार कहते हैं, वे सभी मेरे शत्रु हैं; ऐसे लोग मेरे द्वारा शासित—दण्डित हुए हैं। तुमने यह हरिनामकीर्तन इस अवस्थामें कहाँ सुन लिया ?'' ॥ ३९—४२॥

पिताकी बात सुनकर बुद्धिमान् प्रह्लाद निर्भय होकर बोला—आर्य! आपको कभी ऐसी चात नहीं कहनी चाहिये। जो मनुष्य सम्पूर्ण ऐश्वर्योंको देनेवाले तथा भर्म आदिकी वृद्धि करनेवाले 'कृष्ण' इस मन्त्रका उच्चारण करता है, वह अभय पदको प्राप्त कर लेता है। भगवान् कृष्णकी निन्दासे होनेवाले पापका कहीं अन्त नहीं है; अतः अब आप अपनी शुद्धिके लिये भक्तिपूर्वक 'राम, माधव और कृष्ण' इत्यादि नाम लेते हुए भगवान्का स्मरण करें। जो बात मैं आपसे कह रहा हूँ वह सबसे बहुकर हितसाधक है, इसीलिये मेरे गुरुजन दोनोंपर भी आपसे मैं निवेदन करता हूँ कि आप समस्त गुणोंका क्षय करनेवाले सर्वेश्वर भगवान् विष्णुकी शरणमें रहें ॥ ४३—४६॥

अथाह प्रकटक्रोधः सुरारिर्भर्तस्यन् सुतम्।
केनायं बालको नीतो दशामेतां सुमध्यमाम्॥ ४७

धिग् धिग्धाहेति दुष्पुत्र किं मे कृतमधं महत्।
याहि याहि दुराचार पापिष्ठु पुरुषाधम्।
उक्तवेति परितो वीक्ष्य पुनराह शिशोर्गुरुम्॥ ४८
बद्ध्वा चानीयतां दैत्यैः कूरैः कूरपराक्रमैः।

इति श्रुत्वा ततो दैत्यास्तमानीय न्यवेदयन्।
धीमानूचे खलं भूपं देवान्तक परीक्षताम्॥ ४९

लीलयैव जितं देव त्रैलोक्यं निखिलं त्वया।
असकृत्र हि रोषेण किं कुद्धस्यात्यके मयि॥ ५०

इति सामवचः श्रुत्वा द्विजोक्तं प्राह दैत्यराद्।
विष्णुस्तवं मम सुतं पाप बालमपीपठः॥ ५१

उक्तवेति तनयं प्राह राजा साम्नामलं सुतम्।
पमात्मजस्य किं जाङ्गं तव चैतद्विजैः कृतम्॥ ५२

विष्णुपक्षैर्धुवं धूतैर्घृद नित्यं परित्यज।
त्यज द्विजप्रसङ्गं हि द्विजसङ्गो हृशोभनः॥ ५३

अस्मत्कुलोचितं तेजो धैर्द्विजैस्तु तिरोहितम्।
यस्य यत्संगतिः पुंसो मणिवत्प्यात्स तदगुणः॥ ५४

स्वकुलद्वयै ततो धीमान् स्वयूथानेव संश्रयेत्।
पत्सुतस्योचितं त्यक्त्वा विष्णुपक्षीयनाशनम्॥ ५५

स्वयमेव भजन् विष्णुं पन्द किं त्वं न लम्जसे।
विश्वनाथस्य मे सूनुभूत्वान्यं नाथभिच्छसि॥ ५६

भृणु वत्स जगत्तत्त्वं कश्चिवास्ति निजः प्रभुः।
यः शूरः स श्रियं भुइत्ते स प्रभुः स महेश्वरः॥ ५७

प्रह्लादके यों कहनेपर देवशब्दु हिरण्यकशिषु अपने क्रोधको रोक न सका, उसने रोषको प्रकट करके पुत्रको फटकारते हुए कहा—‘हाय! हाय! किसने इस बालकको अत्यन्त मध्यम कौटिकी अवस्थाको पहुँचा दिया? रे दुष्ट पुत्र! तुझे धिक्कार है, धिक्कार है! तूने क्यों मेरा महान् अपराध किया? ओ दुराचारी नीच पुरुष! और पापिष्ठ! तू यहाँसे चला जा, चला जा।’ यों कहकर उसने अपने चारों और निहारकर फिर कहा—‘नृशंस पराक्रमी कूर दैत्य जाये और इसके गुरुको बाँधकर यहाँ ले आये’॥ ४७-४८॥, ॥

यह सुन दैत्योंने प्रह्लादके गुरुको वहाँ लाकर उपस्थित कर दिया। बुद्धिमान् गुरुने उस दुष्ट दैत्यराजसे विनयपूर्वक कहा—‘देवान्तक! थोड़ा विचार तो कीजिये। आपने समस्त त्रिभुवनको अनायास ही अनेकों बार पराजित किया है, खेल-खेलमें ही सबको जीता है, रोषसे कभी काम नहीं लिया। फिर मुझ-जैसे तुच्छ प्राणीपर क्रोध करनेसे क्या लाभ होगा?॥ ४९-५०॥

ब्राह्मणके इस शान्त वचनको सुनकर दैत्यराज बोला—‘अरे पापी! तूने मेरे बालक पुत्रको विष्णुका स्तोत्र पढ़ा दिया है।’ गुरुसे यों कहकर राजा हिरण्यकशिषुने अपने निर्दोष पुत्रके प्रति सान्त्वनापूर्वक कहा—“बेटा! तू मेरा आत्मज है, तुझमें यह जड़-बुद्धि कैसे आ सकती है? यह तो इन ब्राह्मणोंकी ही करतूत है। मूर्ख बालक! आजसे तू सदा विष्णुके पक्षमें रहनेवाले धूर्त ब्राह्मणोंका साथ छोड़ दे, ब्राह्मणमात्रका सङ्ग त्याग दे; ब्राह्मणोंकी संगति अच्छी नहीं होती; क्योंकि इन ब्राह्मणोंने ही तेरे उस तेजको छिपा दिया, जो हमारे कुलके लिये सर्वथा उचित था। जिस पुरुषको जिसकी संगति मिल जाती है, उसमें उसीके गुण आने लगते हैं—ठीक उसी तरह, जैसे मणि कीचड़में पड़ी हो तो उसमें उसके दुर्गम्य आदि दोष आ जाते हैं। अतः बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि वह अपने कुलकी समृद्धिके लिये आत्मीय जनाँका ही आश्रय ले। बुद्धीमूल बालक! मेरे पुत्रके लिये तो उचित कर्तव्य यह है कि वह विष्णुके पक्षमें रहनेवाले लोगोंका नाश करे; परंतु तू इस उचित कार्यको त्यागकर इसके विपरीत स्वयं ही विष्णुका भजन कर रहा है! बता तो सही, क्या यों करते हुए तुझे लज्जा नहीं आती? और! मुझ सम्पूर्ण जगत्के सप्ताश्वका पुत्र होकर तू दूसरेको अपना स्वामी बनाना चाहता है? बेटा! मैं तुझे संसारका तत्त्व बताता हूँ, मून, यहाँ कोई भी अपना स्वामी नहीं है। जो शूरवीर है, वही लक्ष्मीका उपभोग करता है तथा वही प्रभु है, वही महेश्वर है॥ ५१-५७॥

स देवः सकलाध्यक्षो यथाहं त्रिजगजयी ।
त्यज जाङ्गमतः शीर्य भजस्व स्वकुलोचितम् ॥ ५८

अन्येऽपि त्वां हनिष्वन्ति वदिष्वन्ति जनास्त्वदम् ।
असुरोऽयं सुरान् स्तौति मार्जार इव मूषकान् ॥ ५९

द्वेष्यान् शिखीव फणिनो दुर्निमित्तमिदं धूवम् ।
लब्ध्वापि महदेश्वर्यं लाघवं यान्त्यबुद्ध्यः ॥ ६०

यथायं मत्सुतः स्तुत्यः स्तावकान् स्तौति नीचवत् ।
रे मूढ दृष्टाप्यैश्चर्यं मम दूषे पुरो हरिम् ॥ ६१

असदूशस्य तु हरेः स्तुतिरेषा विडम्बना ।
इत्युक्त्वा तनयं भूप जातक्रोधो भयानकः ॥ ६२

जिह्वा निरीक्ष्य च प्राह तदगुरुं कम्पयन् रुषा ।
याहि याहि द्विजपशो साधु शाधि सुतं मम ॥ ६३

प्रसाद इत्येष वदन् स विप्रो
जगाम गेहं खलराजसेवी ।
विष्णुं विसुज्यान्वसरच्य दैत्यं
किं वा न कुर्युर्भरणाय लुभ्याः ॥ ६४

इति श्रीनरसिंहपुराणे नृसिंहप्राकुर्भवे एकचत्वारि शीर्यस्यायः ॥ ४१ ॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणे 'नरसिंहावतार' नामक इकतालौसर्वाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४१ ॥

बयालीसवाँ अध्याय

प्रह्लादपर हिरण्यकशिपुका कोप और प्रह्लादका वध करनेके लिये उसके द्वारा किये गये अनेक प्रथल

मार्कण्डेय उचाच

सोऽप्याशु नीतो गुरुवेशम् दैत्य-
दैत्येन्द्रसूनुर्हरिभक्तिभूषणः ।
अशेषविद्यानिवहेन साकं
कालेन कौमारमवाप्य योगी ॥ १

"बही सबका अध्यक्ष देवता है, जैसा कि तीनों लोकोंपर विजय पानेवाला मैं हूँ। इसलिये तू अपनी यह जड़ता त्याग दे और अपने कुलके लिये उचित वीरताका आश्रय ले। तेरी यह कायरता देखकर दूसरे लोग भी तुम्हे मारेंगे और कहेंगे कि 'अरे! यह असुर होकर भी देवताओंकी उसी प्रकार स्तुति करता है, जैसे बिल्ली चूहेकी स्तुति करे और मोर अपने द्वेषपात्र सर्पोंकी प्रार्थना करे। ऐसा करना अवश्य ही अनिष्टका सूचक है। मूर्ख प्राणी महान् ऐश्वर्य पाकर भी [अपने खोटे कमरोंके द्वारा] नीचे गिर जाते हैं, जैसे मेरा पुत्र प्रह्लाद, जो स्वयं स्तुतिके योग्य था, आज नीच जनोंकी भौति उन लोगोंकी स्तुति कर रहा है, जो स्वयं हमारी स्तुति करनेवाले हैं। रे मूर्ख! तू मेरा ऐश्वर्य देखकर भी मेरे सामने ही हरिका नाम से रहा है? वह हरि इस सम्मानके योग्य नहीं है, उसकी स्तुति विडम्बनामात्र है" ॥ ५८—६१ ॥

भूप! अपने पुत्रसे इस प्रकार कहकर वह इतना कुपित हुआ कि उसका स्वरूप भयानक ही गया; फिर प्रह्लादके गुरुको टेढ़ी नजरसे देखकर उन्हें अपने रोपसे कैपाता हुआ बोला—'मूर्ख ब्राह्मण! यहाँसे चला जा, चला जा। अबकी बार मेरे पुत्रको अच्छी शिक्षा देना।' दुष्ट राजाकी सेवा करनेवाला वह ब्राह्मण 'बड़ी कृपा हुई' वों कहता हुआ घर चला गया और विष्णुका भयन त्यागकर दैत्यराज (हिरण्यकशिपु)-का अनुसरण करने लगा। सच है, लोभी मनुष्य अपना खेट पालनेके लिये क्या नहीं कर सकते? ॥ ६२—६४ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—भगवान् विष्णुकी भक्ति ही जिनका भूषण है, वे दैत्यराजकुमार योगी प्रह्लादजी शीघ्र ही सारथिके साथ गुरुके घर भेजे गये। वहाँ वे कालक्रमसे सम्पूर्ण विद्याओंके ज्ञानके साथ कुमारवस्थाको प्राप्त

प्रायेण कौमारमवाप्य लोकः
पुण्याति नास्तिक्यमसद्गतिं च ।

तस्मिन् वयःस्थस्य बहिर्विरक्ति-
र्भवत्यभूच्छित्रमजे च भक्तिः ॥ २

अथ सम्पूर्णविद्यं तं कदाचिद्वितिजेश्वरः ।
आनाद्य प्रणतं प्राह प्रह्लादं विदितेश्वरम् ॥ ३

साध्यज्ञाननिधेवाल्यान्मुक्तोऽसि सुरसूदन ।
इदानीं भाजसे भास्वान् नीहारादिव निर्गतः ॥ ४

बाल्ये वयं च त्वमिव द्विजैर्जाङ्घाय मोहिताः ।
वयसा वर्धमानेन पुत्रकैवं सुशिक्षिताः ॥ ५

तदद्य त्वयि धुर्येऽहं संसकण्टकताधुरम् ।
विन्यस्य स्वां चिरधृतां सुखी पश्यन् श्रियं तव ॥ ६

यदा यदा हि नैपुण्यं पिता पुत्रस्य पश्यति ।
तदा तदाऽऽधिं त्यक्त्वा नु महत्सौख्यमवाञ्यात् ॥ ७

गुरुश्वातीव नैपुण्यं ममाग्रेऽवर्णयत्तव ।
न चित्रं पुत्र तच्छोतुं किं नु मे वाञ्छतः श्रुती ॥ ८

नेत्रयोः शत्रुदारिक्रमं श्रोत्रयोः सुतसूक्तयः ।
युद्धव्रणं च गात्रेषु मायिनां च महोत्सवः ॥ ९

श्रुत्वेति निकृतिप्रज्ञं देत्याधिपवचस्ततः ।
जगाद योगी निशशङ्कं प्रह्लादः प्रणातो गुरुम् ॥ १०

सूक्तयः श्रोत्रयोः सत्यं महाराज महोत्सवः ।
किंतु ता वैष्णवीर्वाचो मुक्त्वा नान्या विचारयेत् ॥ ११

नीतिःसूक्तिःकथा:श्राव्या:श्राव्यं काव्यं च तद्वचः ।
यत्र संसृतिदुःखोधकक्षाग्निर्गीयते हरिः ॥ १२

हुए। संसारके अन्य लोग कौमार अवस्थाको पाकर प्राप्त: नास्तिक विचार और बुरे आचार-व्यवहारके पोषक बन जाते हैं, परंतु उसी उप्रमें प्रह्लादको बाह्य विषयोंसे वैराग्य हुआ और भगवान्‌में उनकी भक्ति हो गयी—यह अद्भुत बात है। तदनन्तर जब प्रह्लादने गुरुके यहाँ अपनी पढ़ाई समाप्त कर ली, तब एक दिन दैत्यराजने उन्हें अपने पास बुलवाया और ईश्वर-तत्त्वके ज्ञाता प्रह्लादको अपने सामने प्रणाम करके खड़े देखा उनसे कहा— ॥ १—३ ॥

सुरसूदन! तुम अज्ञानकी निधिरूपा बाल्यावस्थासे मुक्त हो गये—यह बहुत अच्छा हुआ। इस समय तुम कुहिरेसे निकले हुए सूर्यकी भौति अपने तेजसे प्रकाशित हो रहे हो। पुत्र! वयपनमें तुम्हारी ही तरह हमें भी जडबुद्धि सिखानेके लिये द्वाष्टाणोंने भोहित कर रखा था; किंतु अवस्था बढ़नेपर जब हम समझदार हुए, तब इस प्रकार अपने कुलके अनुरूप सुन्दर शिक्षा ग्रहण कर सके थे। अतः शत्रुरूपी कोटीोंसे युक्त इस राज्य-शासनके भारको, जिसे मैंने बहुत दिनोंसे धारण कर रखा है, अब तुझ सामर्थ्यवान् पुत्रपर रखकर मैं तुम्हारी राज्य-लक्ष्मीको देखते हुए सुखी होना चाहता हूँ। पिता जब-जब अपने पुत्रकी निपुणता देखता है, तब-तब अपनी मानसिक चिन्ता त्यागकर महान् सुखका अनुभव करता है। तुम्हारे गुरुने भी मैरे समक्ष तुम्हारी योग्यताका बड़ा बखान किया है। यह तुम्हारे लिये कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। आज मैरे कान तुम्हारी कुछ बातें सुनना चाहते हैं। नेत्रोंके सामने शत्रुकी दरिद्रता देखना, कानोंमें पुत्रकी सुन्दर वाणीका पड़ना और अङ्गोंमें युद्धके आघातसे घाव होना—यह सब ऐश्वर्यवान् वीरों अथवा मायायी दैत्योंके लिये महान् उत्सवके समान हैं ॥ ४—९ ॥

उस समय दैत्यराजके ये शरदतापूर्ण चचन सुनकर योगी प्रह्लादने पिताको प्रणाम करके निर्भीकतापूर्वक कहा— ॥ १० ॥

‘महाराज! आपका यह कथन सत्य है कि अच्छी बातें सुनना कानोंके लिये महान् उत्सवके समान है; किंतु वे बातें भगवान् विष्णुसे सम्बन्ध रखनेवाली हों, तभी ऐसा होता है। उनको छोड़कर दूसरी बातें सुननेका विचार भी नहीं करना चाहिये। जो संसारके दुःखसमुदायलूपी तृष्णोंको भस्म करनेके लिये अग्निके समान हैं, उन भगवान् विष्णुका जिसमें गुणगान किया जाता हो, वही चचन नीतियुक्त है, वही सूक्त (सुन्दर वाक्य) है, वही सुनने योग्य कथा

अचिन्त्यः स्तूयते यत्र भक्त्या भक्तेष्मितप्रदः ।
 अर्थशास्त्रेण किं तात यत्र संसुतिसंततिः ॥ १३
 शास्त्रश्रमेण किं तात येनात्मैव विहृस्यते ।
 वैष्णवं वाइमयं तस्माच्छाव्यं सेव्यं च सर्वदा ॥ १४
 मुमुक्षुभिर्भवक्लेशात्रो देवैव सुखी भवेत् ।
 इति तस्य वचः शृण्वन् हिरण्यकशिपुस्तदा ॥ १५
 जन्माल दैत्यराद् तस्मर्पिरद्विरिवाधिकम् ।
 प्रह्लादस्य गिरं पुण्यां जनसंसुतिनाशिनीम् ॥ १६
 नामृत्यतासुरः क्षुद्रो घूको भानुप्रभापिव ।
 परितो वीक्ष्य सम्प्राह क्षुद्रो दैत्यभटानिदम् ॥ १७
 हन्यतामेष कुटिलः शास्त्रपातैः सुभीषणैः ।
 उक्तायोत्कृत्य मर्माणि रक्षितास्तु हरिः स्वयम् ॥ १८
 पश्यत्विदानीमेवैष हरिसंस्तवजं फलम् ।
 काकोलकङ्गगृथेभ्यो ह्यस्याङ्गं संविभन्यताम् ॥ १९
 अथोद्दृतास्त्रा दैतेयास्तर्जयन्तः प्रगर्जितैः ।
 अच्युतस्य प्रियं भक्तं तं जन्मुः पतिनोदिताः ॥ २०
 प्रह्लादोऽपि प्रभुं नत्वा ध्यानवत्तं समाददे ।
 अकृत्रिपरसं भक्तं तमित्यं ध्याननिश्चलम् ॥ २१
 रक्ष भगवान् विष्णुः प्रह्लादं भक्तदुःखहत् ।
 अथालब्धपदान्यस्य गात्रे शस्त्राणि रक्षसाम् ॥ २२
 नीलाल्बजशकलानीव पेतुशिष्ठनान्वनेकधा ।
 किं प्राकृतानि शस्त्राणि करिष्यन्ति हरिप्रिये ॥ २३
 तापत्रयमहास्त्रौषः सर्वोऽप्यस्माद् विभेति वै ।
 पीडयन्ति जनांस्तावद् व्याधयो राक्षसा ग्रहाः ॥ २४
 यावद् गुहाशयं विष्णुं सूक्ष्मं चेतो न विन्दति ।
 ते तु भग्नास्त्रशक्लैः प्रतीपोत्थैरितस्ततः ॥ २५
 हन्यमाना न्यवर्तन्त सद्यः फलदैरिव ।
 न चित्रं विद्युधानां तद्ग्रानां विस्मयावहम् ॥ २६

और श्रवण करने योग्य काव्य है। जिसमें भक्तोंको अपीष्ट वस्तु देनेवाले अचिन्त्य परमेश्वरका भक्तिपूर्वक स्तवन किया जाता हो, वही शास्त्र है। तात। उस अर्थशास्त्रसे क्या लाभ, जिसमें संसार-चक्रमें डालनेवाली ही बातें कही गयी हैं। पिताजी! उस शास्त्रमें परिश्रम करनेसे क्या सिद्ध होगा, जिससे आत्माका ही हनन होता है; इसलिये मुमुक्षु पुरुषोंको सदा वैष्णव शास्त्रोंका ही व्रतण और सेवन करना चाहिये। अन्यथा सांसारिक कष्टसे छुटकारा नहीं मिलता और न मनुष्य सुखी ही हो पाता है ॥ ११—१४॥ ॥

जिस प्रकार तपाया हुआ घो जलके छंटि पड़नेसे और अधिक प्रज्वलित हो उठता है, वैसे ही दैत्यराज हिरण्यकशिपु प्रह्लादकी उपर्युक्त बातें सुनकर ब्रोधसे जल उठा। जैसे उल्लू सूर्यकी प्रभा नहीं देख सकता, उसी प्रकार वह क्षुद्र असुर जीवके संसार-बन्धनको नष्ट करनेवाली प्रह्लादकी पवित्र वाणी न सह सकता। उस ब्रोधीने चारों ओर देखकर दैत्य चीरोंसे कहा— ॥ १५—१७ ॥

'ओर। इस कुटिलको शास्त्रोंके भयंकर आधातसे मार डालो, इसके मर्मस्थानोंके दुकड़े-दुकड़े कर दो; आज इसका भगवान् स्वयं आकर इसकी रक्षा करे। विष्णुको सुन्ति करनेका फल यह आज इसी समय अपनी आँखोंसे देखो। इसका अङ्ग-अङ्ग काटकर कौआं, कौंकों और गिर्दोंको बाँट दो' ॥ १८—१९ ॥

तब अपने स्वामी हिरण्यकशिपुद्वारा प्रेरित दैत्यगम अपनी विकट गर्जनासे डराते हुए हाथमें शास्त्र लेकर भगवान्के प्रिय भक्त उन प्रह्लादजीको मारने लगे। प्रह्लादने भी भगवान्को नमस्कार करके ध्यानरूपी वत्र ग्रहण किया। तब भक्तोंके दुःख दूर करनेवाले भगवान् विष्णु स्वभावतः प्रेम करनेवाले भक्त प्रह्लादको इस प्रकार ध्यानमें स्थिर देख उसको रक्षा करने लगे। फिर तो रुक्षसोंके चलाये हुए अस्त्र-शस्त्र प्रह्लादके शरीरमें सर्व किये बिना ही नील-कमलके दुकड़ोंकी भौति खण्ड-खण्ड होकर गिर जाने लगे। भला, ये प्राकृत शस्त्र भगवान्के प्रिय भक्तका क्या कर सकते हैं। उससे तो सम्पूर्ण त्रितापरूपी महान् अस्त्रसमूह भी भय मानता है। व्याधि, राक्षस और ग्रह—ये तभीतक मनुष्योंको पीड़ पहुँचाते हैं, जबतक उनका चित्र हृदय-गुहामें सूक्ष्मरूपसे स्थित भगवान् विष्णुको नहीं प्राप्त कर लेता। भक्तें अपमानका मानो तत्काल फल देनेवाले वे भग्न अस्त्रखण्ड उलटे चलकर दैत्योंका संहार करने लगे। इनसे पीड़ित होनेके कारण वे दैत्य इधर-उधर भाग गये। विद्वानोंकी दृष्टिमें ऐसा होना कोई आश्वर्यकी बात नहीं है, अज्ञानीजनोंको ही इस घटनासे विस्मय हो सकता है ॥ २०—२६ ॥

वैष्णवं बलमालोक्य राजा नूनं भयं दधीं।
 पुनस्तस्य वधोपायं चिन्तयन् स सुदुर्मतिः ॥ २७
 समादिशत् समाहूय दंदशूकान् सुदुर्विषान्।
 अशस्त्रवधयोग्योऽयमस्मयो हरितोपकृत् ॥ २८
 तर ाद् भवद्विरचिराद् हन्यतां गरलायुधाः।
 हि ग्र्यकशिपोः श्रुत्वा वचनं ते भुजंगमाः।
 तस्माज्ञां जगृहूर्मूर्ध्ना प्रहृष्टिशवर्तिनः ॥ २९
 अथ च्छलदृशनकरालदंष्ट्रिण
 स्फुटस्फुरदृशनसहस्रभीषणाः ।
 अकर्षका हरिमहिस्वकर्षका
 हरिप्रियं द्रुततरमापतनुषा ॥ ३०
 गरायुधास्त्वचमपि भेत्तुमल्पिकां
 वपुष्यजस्मृतिवलदुर्भिदाकृतेः ।
 अलं न ते हरिवपुषं तु केवलं
 विदश्य तं निजदशनैर्विना कृताः ॥ ३१
 ततः स्ववक्षतजविषण्णमूर्तयो
 द्विधाकृताद्रुतदशनां भुजंगमाः।
 समेत्य ते दितिजपतिं व्यजिज्ञपन्
 विनिःश्वस्त्वचलफणा भुजंगमाः ॥ ३२
 प्रभो महीधानपि भस्मशेषां-
 स्तस्मिन्नशक्तास्तु तदैव वध्याः।
 महानुभावस्य तवात्मजस्य
 वधे नियुक्त्वा दशनैर्विना कृताः ॥ ३३
 इत्थं द्विजिह्वाः कठिनं निवेद्य
 ययुर्विसृष्टाः प्रभुणाकृतार्थाः।
 विचिन्तयन्तः पृथुविस्मयेन
 प्रह्लादसामर्थ्यनिदानमेव ॥ ३४
 मार्कण्डेय उवाच
 अथासुरेशः सचिवैर्विचार्य
 निश्चित्य सूनुं तमदण्डसाध्यम्।
 आहूय साम्ना प्रणतं जगाद्
 वाक्यं सदा निर्मलपुण्यचित्तम्।
 प्रह्लाद दुष्टोऽपि निजाङ्गजातो
 न वध्य इत्यद्य कृपा ममाभूत् ॥ ३५

वैष्णवोंका बल देखकर राजा हिरण्यकशिपुको अवश्य ही महान् भय हुआ; किन्तु उस दुर्बुद्धिने पुनः प्रह्लादके वधका उपाय सोचते हुए अत्यन्त भयंकर विषवाले सपोंको बुलाकर उन्हें आदेश दिया—‘गरलायुधो*’! विष्णुको संतुष्ट करनेवाला यह निशशङ्क बालक किसी शास्त्रसे नहीं मारा जा सकता; अतः तुम सभी मिलकर इसे अति शोष्ण मार डालो।’ हिरण्यकशिपुकी यह बात सुनकर उसकी आज्ञा माननेवाले सभी सपोंने उसके आदेशको हर्षपूर्वक शिरोधार्य किया ॥ २७—२९ ॥

तदनन्तर जिनके दौत विषसे जल रहे हैं तथा जिनकी दाढ़े विकराल हैं, जो स्फुट दिखायी देनेवाले हजारों चमकीले दौतोंके कारण भयानक जान पड़ते हैं, ऐसे सर्पण त्रोधसे फुफकारते हुए बड़े वैगसे उस हरिभक्तके ऊपर टूट पड़े। भगवान्‌के स्मरणके बलसे जिनका आकार दुर्भय हो गया था, उन प्रह्लादजीके शरीरका थोड़ा-सा चमड़ा भी काटनेमें वे विषधर सर्प समर्थ न हो सके। इतना ही नहीं, जिनका शरीर भगवन्नय हो गया था, उन प्रह्लादजीको केवल छैसनेमात्रसे वे सर्प अपने सारे दौत खो बैठे। तदनन्तर रक्तकी धारा बहनेसे जिनका आकार विषादग्रस्त हो रहा है, जिनके अद्भुत दौतोंके दो-दो टुकड़े हो गये हैं तथा बार-बार उच्छ्वास लेनेके कारण जिनके फन चड्ठल हो रहे हैं, उन भुजंगमोंने परस्पर मिलकर दैत्यराज हिरण्यकशिपुको सूचित किया— ॥ ३०-३२ ॥

‘प्रभो! हम पर्वतोंको भी भस्म करनेमें समर्थ हैं, यदि उनमें हमारी शक्ति न चले तो आप तत्काल हमारो वध कर सकते हैं। परंतु आपके महानुभाव पुत्रका वध करनेमें लगाये जाकर तो हम अपने दौतोंसे भी हाथ थो बैठे।’ इस प्रकार बड़ी कठिनाईसे निवेदन करके स्वामी हिरण्यकशिपुके आदेश देनेपर भी अपने कार्यमें असफल हुए वे सर्प अत्यन्त आश्वयकि साथ प्रह्लादके अद्भुत सामर्थ्यका व्या कारण है, इसका विचार करते हुए चले गये ॥ ३३-३४ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—इसके बाद असुरराज हिरण्यकशिपुने मन्त्रियोंके साथ विचारकर अपने पुत्रको दण्डसे अजेय मानकर उसे शान्तिपूर्वक अपने पास बुलाया और जब वह आकर प्रणाम करके खड़ा हो गया, तब उस निर्मल एवं पवित्र हृदयवाले अपने पुत्रसे कहा—‘प्रह्लाद! अपने शरीरसे यदि दुष्ट पुत्र भी उत्पन्न हो जाय तो वह वधके योग्य नहीं है, यह सोचकर अब तुझपर मुझे दया आ गयी है’ ॥ ३५ ॥

* विष ही जिनका शस्त्र है, उन्हें ‘गरलायुध’ (सर्प) कहा है।

ततस्तूर्णं समागत्य दैत्यराजपुरोहिताः ।
मृदा: प्राञ्जलयः प्राहुर्द्विजाः शास्त्रविशारदाः ॥ ३६
त्रैलोक्यं कम्पते देव भूशं त्वय्यभिकाङ्क्षिणि ।
प्रह्लादस्त्वां न जानाति कुद्धं स्वल्पो महाबलम् ॥ ३७
तदलं देव रोषेण दयां कर्तुं त्वर्महसि ।
पुत्रः कुपुत्रतामेति न मातापितरी कदा ॥ ३८
उक्त्वेति कुटिलप्रज्ञं दैत्यं दैत्यपुरोहिताः ।
आदाय तदनुज्ञातं प्रह्लादं धीधनं ययुः ॥ ३९

इति श्रीनरसिंहपुराणे नरसिंहप्रानुभावे द्विजतारतिशेषध्यायः ॥ ४२ ॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'नरसिंहावतारविषयक' बगवान्सर्वाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४२ ॥

तत्पश्चात् तुरंत ही वहाँ दैत्यराजके पुरोहित आये। शास्त्रविशारद होनेपर भी वे मृढ़ ही रह गये थे। उन ब्राह्मणोंने हाथ जोड़कर कहा—'देव! तुम्हारी युद्धविषयक इच्छा होते ही सारा त्रिभुवन थरथर काँपने लगता है। यह अल्प बलबाला प्रह्लाद कुपित हुए आप महान् बलशालीको नहीं जानता। अतः देव! आपको ओषधका परित्याग करके इसपर दया करनी चाहिये; क्योंकि पुत्र भले ही कुपुत्र हो जाय, परंतु माता-पिता कभी कुमाता अथवा कुपिता नहीं होते' ॥ ३६—३८ ॥

दैत्यराजके पुरोहितोंने उस दुर्बुद्धि दैत्य हिरण्यकशिपुसे यों कहकर उसकी आज्ञासे प्रह्लादको साथ लेकर अपने भवनको चले गये ॥ ३९ ॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

प्रह्लादजीका दैत्यपुत्रोंको उपदेश देना; हिरण्यकशिपुकी आज्ञासे प्रह्लादका समुद्रमें डाला जाना तथा वहाँ उन्हें भगवान्‌का प्रत्यक्ष दर्शन होना

मार्कण्डेय उक्ताच

अथ स गुरुगुहेऽपि वर्तमानः	
सकलविद्युतसक्तपुण्यचेताः ।	
जड इव विच्चार बाह्यकृत्ये	
सततमनन्तमयं जगत्प्रपश्यन् ॥ १	
सहगुरुकुलवासिनः कदाचि-	
च्छ्रितिविरता ह्यवदन् समेत्य बालाः ।	
तव चरितमहो विचित्रमेतत्	
क्षितिपतिपुत्र यतोऽस्य भोगलुच्यः ।	
हृदि किमपि विचिन्त्य हष्टरोमा	
भवसि सदा च वदाङ्ग यद्यगुह्यम् ॥ २	
इति गदितवतः स मन्त्रिपुत्रा-	
नवददिदं नृप सर्ववत्सलत्वात् ।	
शृणुत सुमनसः सुरारिपुत्रा	
यदहमनन्यरतिर्वदामि पृष्ठः ॥ ३	

मार्कण्डेयजी बोले—तदनन्तर सकल शास्त्रोंके जाता प्रह्लादजी गुरुके घरमें रहकर भी अपने पवित्र मनको भगवान् विष्णुमें लगाये रहनेके कारण सम्पूर्ण जगत्को नारायणका स्वरूप समझकर बाह्य—लौकिक कर्मोंमें जड़की भौति व्यवहार करते हुए विचरते थे। एक दिन, उनके साथ ही गुरुकुलमें निवास करनेवाले छात्र-बालक पाठ-श्रवण बंद करके, एकत्र हो, प्रह्लादसे कहने लगे—'राजकुमार! अहो! आपका चरित्र बड़ा ही विचित्र है; क्योंकि आपने विषय-भोगोंका लोभ त्याग दिया है। प्रिय! आप अपने हृदयमें किसी अनिर्बचनीय वस्तुका चिनान करके सदा पुलकित रहते हैं। यदि वह वस्तु छिपानेयोग्य न हो तो हमें भी बताइये' ॥ १-२ ॥

नृप! प्रह्लादजी सबपर स्नेह करनेवाले थे, अतः इस प्रकार पूछते हुए मन्त्रिकुमारोंसे वे यों बोले—'हे दैत्यपुत्रो! एकमात्र भगवान्‌में अनुराग रखनेवाला मैं तुम्हारे पूछनेपर जो कुछ भी बता रहा हूँ उसे तुमलोंग प्रसन्नचित्त होकर

धनजनतरुणीविलासरम्यो

भवविभवः किल भाति यस्तमेनम् ।

विमृशत् सुबुधैरुतैष सेव्यो
दुतमथ वा परिवर्ज्य एव दूरात् ॥ ४

प्रथमपिह विचार्यतां यदम्बा-
जठरगतैरनुभूयते सुदुःखम् ।
सुकुटिलतनुभिस्तदग्नितमै-
विविधपुराजननानि संस्मरद्धिः ॥ ५

कारागुहे दस्युनिवासिम बद्धो
जरायुणा विट्कृमिमूत्रगुहे ।
पश्यामि गर्भेऽपि सकृन्मुकुन्द-
पादाब्जयोरस्मरणेन कष्टम् ॥ ६

तस्मात्सुखं गर्भशयस्य नास्ति
बाल्ये तथा यीवनवाद्धके वा ।
एवं भवो दुःखमयः सदैव
सेव्यः कथं दैत्यसुताः प्रबुद्धैः ।
एवं भवेऽस्मिन् परिमृग्यमाणा
वीक्षामहे नैव सुखांशलेशम् ॥ ७

यथा यथा साधु विचारयाम-
स्तथा तथा दुःखतरं च विद्याः ।
तस्माद्वेऽस्मिन् किल चारुरूपे
दुःखाकरे नैव पतन्ति सन्तः ॥ ८

पतन्त्यथोऽतत्त्वविदः सुमृद्धा
वह्नौ पतंगा इव दर्शनीये ।
यद्यस्ति नान्यच्छुरणं सुखाय
युक्तं तदैतत्पतनं सुखाभे ॥ ९

अविन्दतामत्रमहो कृशानां
युक्तं हि पिण्याकतुषादिभक्षणम् ।
अस्ति त्वजं श्रीपतिपादपद्म-
द्वन्द्वार्चनप्राप्यमनन्तमाद्यम् ॥ १०

सुनो । यह जो धन, जन और स्त्री-विलास आदिसे अत्यन्त रमणीय प्रतीत होनेवाला सांसारिक वैभव दृष्टिगोचर हो रहा है, इसपर विचार करो । क्या यह लोक-वैभव विद्वानोंके सेवन करने योग्य है या जल्दी-जल्दी दूरसे ही स्थाग देनेयोग्य ? अहो ! जिनके अङ्ग गर्भशयमें टेढ़े-मेढ़े पड़े हैं, जो जठरनलकी ज्वालासे संतप्त हो रहे हैं तथा जिन्हें अपने अनेक पूर्वजन्मोंका स्मरण हो रहा है, वे माताके गर्भमें पड़े हुए जीव जिस महान् कष्टका अनुभव करते हैं, पहले उसपर तो विचार करो ॥ ३—५ ॥

'गर्भमें पड़ा हुआ दुःखी जीव कहता है—'हाय ! कारागारमें बैधे हुए चोरकी भौति में विष्टा, कृमियों और मूत्रसे भरे हुए इस [देहरूपी] घरमें जरायु (झिल्ली)–से बैधा पड़ा है । मैंने जो एक बार भी भगवान् मुकुन्दके चरणारविन्दोंका स्मरण नहीं किया, उसीके कारण होनेवाले कष्टको आज मैं इस गर्भमें भोग रहा हूँ ।' अतः गर्भमें सोनेवाले जीवको बचपन, जवानी और बुढ़ापेमें भी सुख नहीं है । दैत्यकुमारो ! जब इस प्रकार यह संसार सदा दुःखमय है, तब विज्ञ पुरुष इसका सेवन कैसे कर सकते हैं ? इस तरह इस संसारमें दैद्यनेपर हमें सुखका लेशमात्र भी दिखायी नहीं देता । हम जैसे-जैसे इसपर ठोक विचार करते हैं, वैसे-ही-वैसे इस जगत्को अत्यन्त दुःखमय समझते हैं । इसलिये उपरसे सुन्दर दिखायी देनेवाले इस दुःखपूर्ण संसारमें साधु पुरुष आसक्त नहीं होते । जो तत्त्वज्ञानसे रहित अत्यन्त मूढ़ लोग हैं, वे ही देखनेमें सुन्दर दीपकपर गिरकर नष्ट होनेवाले पतंगोंकी भौति सांसारिक भोगोंमें आसक्त होते हैं । यदि सुखके लिये कोई दूसरा सहारा न होता, तब तो सुखमय-से प्रतीत होनेवाले इस जगत्में आसक्त होना डंचित था—जैसे अब न पानेके कारण जो अत्यन्त दुबले हो रहे हैं, उनके लिये खली-भूसी आदि खालेना ठीक हो सकता है; परंतु भगवान् लक्ष्मीपतिके युगल चरणारविन्दोंकी सेवासे प्राप्त होनेवाला आदि, अविनाशी, अजन्मा एवं नित्य सुख (परमात्मा) तो है ही, फिर इस क्षणिक संसारका आश्रय क्यों लिया जाय ? ॥ ६—१० ॥

अवलोक्तः प्राप्यमिदं विसृज्य
महासुखं योऽन्यसुखानि वाञ्छेत्।
राज्यं करस्थं स्वमसौ विसृज्य
भिक्षामटेहीनमनाः सुमूढः ॥ ११

तच्चार्यते श्रीपतिपादपद्मा-
द्वन्द्वं न वस्त्रैर्न धनैः श्रमैर्न।
अनन्यचित्तेन नरेण किंतु
उच्चार्यते केशव माधवेति ॥ १२

एवं भवं दुःखमयं विदित्वा
दैत्यात्मजाः साधु हरिं भजध्वम्।
एवं जनो जन्मफलं लभेत
नो चेद्वाव्यौ प्रपतेदधोऽधः ॥ १३

तस्माद्वेऽस्मिन् हृदि शङ्खचक्र-
गदाधरं देवमनन्तमीड्यम्।
स्मरन् नित्यं वरदं मुकुन्दं
सद्गतियोगेन निवृत्तकामाः ॥ १४

अनास्तिकत्वात् कृपया भवद्यो
बदामि गुह्यं भवसिन्धुसंस्थाः।
सर्वेषु भूतेषु च मित्रभावं
भजन्त्वयं सर्वंगतो हि विष्णुः ॥ १५

दैत्यपुत्र अनु:

प्रह्लाद त्वं चयं चापि बालभावान्महामते।
षण्डामकात्यरं मित्रं गुरुं चान्यं न विद्यहे ॥ १६

त्वयैतच्छिक्षितं कुत्र तथ्यं नो वद निस्तुष्टम्।

प्रह्लाद उक्तच

यदा तातः प्रयातो मे तपोऽर्थं काननं महत् ॥ १७

तदा चेन्द्रः समागत्य पुरं तस्य रुरोध ह ।
मृतं विज्ञाय दैत्येन्द्रं हिरण्यकशिपुं तदा ॥ १८

इन्द्रो मे जनर्नि गृह्य प्रयातो ममथाग्निना।
दहुमानो महाभागां मार्गे गच्छति सत्वरम् ॥ १९

तदा मां गर्भं ज्ञात्वा नारदो देवदर्शनः।
आगत्येन्द्रं जगादोच्चैर्मूढं मुञ्च पतिव्रताम् ॥ २०

“जो विना कष्टके ही प्राप्त होनेयोग्य इस महान् सुख (परमेश्वर) -को त्यागकर अन्य तुच्छ सुखोंकी इच्छा करता है, वह दीनहरदय मूर्ख पुरुष मानो हाथमें आये हुए अपने गुज्जको त्यागकर भीख भाँगता है। भगवान् लक्ष्मीपति के युगल-चरणरथविन्दोंका यथार्थ पूजन वस्त्र, धन और परिव्रमसे नहीं होता; किंतु मनुष्य यदि अनन्यचित्त होकर ‘केशव’, ‘माधव’ आदि भगवत्तामोंका उच्चारण करे तो वही उनकी वास्तविक पूजा है। दैत्यकुमारो ! इस प्रकार संसारकी दुःखमय जानकर भगवान् का ही भलीभीति भजन करो। इस प्रकार करनेसे ही मनुष्यका जन्म सफल हो सकता है; नहीं तो (भगवद्गुरु न करनेके कारण) अज्ञानी पुरुष भवसागरमें ही नीचेसे और नीचे स्तरमें ही गिरता रहता है। इसलिये इस संसारमें समस्त कामनाओंसे रहित हो तुम सभी लोग अपने हृदयके भीतर विराजमान शङ्ख-चक्र-गदाधारी, वरदाता, अविनाशी स्वर्वनीय भगवान् मुकुन्दका सच्चे भक्तिभावसे सदा चिन्तन करो। भवसागरमें पढ़े हुए दैत्यपुत्रो ! तुम लोग नास्तिक नहीं हो, इसलिये दयावश में तुमसे यह गोपनीय बात बतलाता है—समस्त प्राणियोंके प्रति मित्रभाव रखो; क्योंकि सबके भीतर भगवान् विष्णु ही विराजमान है” ॥ ११—१५ ॥

दैत्यपुत्र बोले—महाबुद्धिमान् प्रह्लादजी ! बचपनसे लेकर आजतक आप और हम भी शण्डामर्कके सिवा दूसरे किसी गुरु तथा मित्रको नहीं जान सके। किर आपने यह ज्ञान कहाँ सीखा ? हमसे पर्दा न रखकर सच्ची बात बताइये ॥ १६ ॥

प्रह्लादजी बोले—कहते हैं, जिस समय मेरे पिताजी तपस्या करनेके लिये महान् वनमें चले गये, उसी समय इन्द्रने यहाँ आकर पिता दैत्यराज हिरण्यकशिपुको मरा हुआ समझकर उनके इस नगरको धेर लिया। इदं कामाग्रिसे पीड़ित हो मेरी महाभागा माताजीको पकड़कर यहाँसे चल दिये। वे मार्गमें बड़ी तेजीसे पैर बढ़ाते हुए चले जा रहे थे। इसी समय देवदर्शन नारदजी मुझे माताके गर्भमें स्थित ज्ञान सहसा बहाँ पहुँचे और चिल्लाकर इन्द्रसे बोले—‘मूर्ख ! इस पतिव्रताको होइ

अस्या गर्भे स्थितो योऽसौ स वै भागवतोत्तमः ।
तच्छुत्वा नारदवचो मातरं प्रणिष्ठत्य मे ॥ २१
विष्णुभक्त्या प्रमुच्याथ गतः स्वं भुवनं हरिः ।
नारदस्तां समानीय आश्रमं स्वं शुभवतः ॥ २२
मामुद्दिश्य महाभागामेतद्दृ कथितं तदा ।
तथा मे विस्मृतं चैव बालाभ्यासाहनोः सुताः ॥ २३
विष्णोश्चानुग्रहेणैव नारदस्योपदेशातः ।
मार्कण्डेय उक्तव्य

एकदा गुपचर्यायां गतोऽसौ गाक्षसाधिपः ॥ २४
शृणोति रात्रौ नगरे जय रामेति कीर्तनम् ।
अवैत्युत्रकृतं सर्वं बलवान् दानवेश्वरः ॥ २५
अथाहूयाह दैत्येन्द्रः क्रोधात्मः स पुरोहितान् ।
रे रे क्षुद्रद्विजा यूयमतिमुमूर्षतां गताः ॥ २६
प्रह्लादोऽयं मृषालापान् वक्ष्यन्यान् पाठ्यत्ययि ।
इति निर्भत्य तान् विग्रान् श्वसन् राजाविशाद् गृहम् ॥ २७
न च पुत्रवधे चिन्तां जहो स्ववधकारिणीम् ।
आसन्नमरणोऽपर्वात्कृत्यमेकं विमृश्य सः ॥ २८
अकृत्यमेव दैत्यादीनाहूयोपादिशद्रहः ।
अद्य क्षपायां प्रह्लादं प्रसुमं दुष्टमुल्यणैः ॥ २९
नागपाशैर्दृढं बद्ध्वा मध्ये निक्षिपताम्बुधेः ।
तदाज्ञा शिरसाऽदाय ददृशुस्तमुपेत्य ते ॥ ३०
रात्रिप्रियं समाधिस्थं प्रबुद्धं सुमवत् स्थितम् ।
संछित्ररागलोभादिमहाबन्धं क्षपाचरा: ॥ ३१
बद्धमृस्तं महात्मानं फल्मुभिः सर्परज्जुभिः ।
गरुडध्वजभक्तं तं बद्ध्वाहिभिरबुद्धयः ॥ ३२
जलशायिप्रियं नीत्वा जलराशी निचिक्षिपुः ।
बलिनस्तेऽचलान् दैत्या तस्योपरि निधाय च ॥ ३३
शशंसुस्तं प्रियं राज्ञे हुतं तान् सोऽप्यमानयत् ।

दो । इसके गर्भमें जो बालक है, वह भगवद्गत्तमें ब्रेष्ट है ।' नारदजीका कथन सुनकर इन्द्रने विष्णुभक्तिके कारण मेरी माताको प्रणाम करके छोड़ दिया और वे अपने लोकको चले गये । फिर शुभ सङ्कल्पवाले नारदजी मेरी माताको अपने आश्रममें ले आये और मैं उद्देश्यसे मेरी महाभागा माताके प्रति इस पूर्वोक्त ज्ञानका वर्णन किया । दानवों ! बाल्यकालके अप्यास, भगवान्‌की कृपा तथा नारदजीका उपदेश होनेसे वह ज्ञान मुझे भूला नहीं है ॥ १७—२३ । ॥

मार्कण्डेयजी बोले—एक दिन राक्षसराज हिरण्यकशिपु रात्रिके समय गुपरूपसे नगरमें घूम रहा था । उस समय उसे 'जय राम' का कीर्तन सुनायी देने लगा । तब बलवान् दानवराजने यह सब अपने पुत्रकी ही करतूल सागङ्गी । तब उस दैत्यराजने ज्ञोधात्म होकर पुरोहितोंको चुलाया और कहा—'नौच ब्राह्मणो ! जान पड़ता है, तुमलोग मरनेके लिये अत्यधिक उत्सुक हो गये हो । तुम्हारे देखते-देखते यह प्रह्लाद स्वयं तो व्यर्थकी बातें बताता ही है, दूसरोंको भी यही सिखाता है ।' इस प्रकार उन ब्राह्मणोंको फटकारकर राजा हिरण्यकशिपु लम्बी सींसें खोंधता हुआ धरमें आया । उस समय भी वह पुत्रवधके विषयमें होनेवाली चिन्ताको, जो उसका ही नाश करनेवाली थी, नहीं छोड़ सका । उसकी मृत्यु निकट थी; अतः उसने अपर्वश एक ऐसा काम सोचा, जो वास्तवमें न करने योग्य ही था । हिरण्यकशिपुने दैत्यादिकोंको चुलाया और उनसे एकान्तमें कहा—'देखो, आज रातमें प्रह्लाद जब गाढ़ी नौदमें सो जाय, उस समय उस दुष्टको भयंकर नागपाशोंद्वारा खूब कसकर बाँध दो और बीच समुद्रमें फेंक आओ ॥ २४—२९ । ॥

उसकी आज्ञा शिरोधायं करके उन दैत्योंने प्रह्लादजीके पास जाकर उन्हें देखा । वे रात्रिके ही प्रेसी थे (क्योंकि रातमें ही उन्हें ध्यान लगानेकी सुविधा रहती थी) । प्रह्लादजी समाधिमें स्थित होकर जाग रहे थे, फिर भी खूब सोये हुएके समान स्थित थे । उन्होंने राग और लोभ आदिके महान् बन्धनोंको काट डाला था, तो भी उन महात्मा प्रह्लादको निशाचरोंने तुच्छ नागपाशोंसे बाँध दिया । जिनकी ध्वजायें साक्षात् गरुडजी विराजमान हैं, उन भगवान्‌के भक्त प्रह्लादको उन मूर्खोंने सपौद्वारा बाँधा और जलशायीके प्रियजनको ले जाकर जलराशि समुद्रमें डाला । तदनन्तर उन बली दैत्योंने प्रह्लादके ऊपर पर्वतकी चट्ठानें रख दीं और तुरंत ही जाकर राजा हिरण्यकशिपुको यह प्रिय संवाद कह सुनाया । उसे सुनकर उस दैत्यराजने भी उन सबका सम्पान किया ॥ ३०—३३ । ॥

प्रहादं चाविष्मध्यस्थं तमीवांगिमिवापरम् ॥ ३४
 ज्वलनं तेजसा विष्णोग्रहा भूरिभियात्यजन् ।
 स चाभिन्नचिदानन्दसिन्धुमध्ये समाहितः ॥ ३५
 न वेद चद्गमात्मानं लबणाम्बुधिमध्यगम् ।
 अथ ब्रह्मामृताभ्योधिमये स्वस्मिन् स्थिते मुनौ ॥ ३६
 यथो क्षोभं द्वितीयाविष्मप्रवेशादिव सागरः ।
 क्लेशात् क्लेशानिवोद्य प्रहादमध्य वीचयः ॥ ३७
 निन्युस्तीरुप्लवाभ्योधेः गुरुक्तय इवाम्बुधेः ।
 ध्यानेन विष्णुभूतं तं भगवान् वरुणालयः ॥ ३८
 विन्यस्य तीरे रत्नानि गृहीत्वा द्रष्टुमाद्ययौ ।
 तावद् भगवताऽऽदिष्टः प्रहृष्टः पञ्चगाशनः ॥ ३९
 बन्धनाहीन् समध्येत्य भक्षयित्वा पुनर्यद्यो ।
 अथावभाषे प्रहादं गम्भीरध्वनिरर्णवः ॥ ४०
 प्रणम्य दिव्यरूपः सन् समाधिस्थं हरेः प्रियम् ।
 प्रहाद भगवद्वक्तुं पुण्यात्मन्नर्णवोऽस्म्यहम् ॥ ४१
 चक्षुभ्यामिथ मां हृष्टा पावयार्थिनमागतम् ।
 इत्यम्बुधिगिरः श्रुत्वा स महात्मा हरेः प्रियः ॥ ४२
 उद्दीक्ष्य सहसा देवं तं नत्वा ऽहासुरात्मजः ।
 कदाऽऽगतं भगवता तमथाम्बुधिरद्वीत् ॥ ४३
 योगित्रज्ञातवृत्तस्त्वमपराद्वं तवासुरेः ।
 चद्गस्त्वमहिभिर्दीत्यर्थयि क्षितोऽद्य वैष्णवः ॥ ४४
 ततस्तूर्णी मया तीरे न्यस्तस्त्वं फणिनश्च तान् ।
 इदानीमेव गरुडो भक्षयित्वा गतो महान् ॥ ४५
 महात्मनुग्रहीष्व त्वं मां सत्संगमार्थिनम् ।
 गृहाणेमानि रत्नानि पूज्यस्त्वं मे हरिर्यथा ॥ ४६
 यद्युप्येतैर्न ते कृत्वं रत्नोद्यस्याम्बुधाप्यहम् ।
 दीपान्निवेदयत्येव भास्करस्यापि भक्तिमान् ॥ ४७

बीच समुद्रमें पढ़े हुए प्रहादको भगवान्‌के हैजसे दूसरे चहबानलकी भाँति प्रज्वलित देख अत्यन्त भयके कारण ग्राहोने उन्हें दूरसे ही त्याग दिया। प्रहाद भी अपनेसे अभिन्न चिदानन्दमय समुद्र (परमेश्वर) -में समाहित होनेके कारण यह न जान सके कि 'मैं बाँधकर खोर पानीके सागरमें डाल दिया गया हूँ।' मुनि (प्रहाद) जब ब्रह्मानन्दमृतके समुद्ररूप अपने आत्मामें स्थित हो गये, उस समय समुद्र इस प्रकार क्षुब्ध हो डठा, मानो उसमें दूसरे महासागरका प्रवेश हो गया हो। फिर समुद्रकी लहरें प्रहादको धीर-धीर कठिनाईसे टेलकर उस नीकारहित सागरके तटकी ओर ले गयी—ठीक उसी प्रकार, जैसे जानी गुरुके चबन क्लेशोंका उन्मूलन करके शिष्यको भवसागरसे पार पहुँचा देते हैं। ध्यानके द्वारा विष्णुस्वरूप हुए उन प्रहादजीको तीरपर पहुँचाकर भगवान् वरुणालय (समुद्र) बहुत-से रल ले उनका दर्शन करनेके लिये आये। इतनेमें ही भगवान्‌की आज्ञा पाकर सर्पभक्तों गरुडजी वहाँ आ पहुँचे और बन्धनभूत सर्पोंको अत्यन्त हर्षपूर्वक खाकर चले गये ॥ ३४—३९ ॥ ॥

तत्पक्षात् गम्भीर घोषवाला दिव्यरूपधारी समुद्र समाधिनिष्ठ भगवद्वक्तु प्रहादको प्रणाम करके यों बोला— 'भगवद्वक्तु प्रहाद! पुण्यात्मन्! मैं समुद्र हूँ। अपने पास आये हुए मुझ प्रार्थीको अपने नेत्रोंद्वारा देखकर पवित्र कीजिये।' समुद्रके ये चबन सुनकर भगवान्‌के प्रिय भक्त महात्मा असुर-नन्दन प्रहादने सहसा उनकी ओर देखकर प्रणाम किया और कहा—'श्रीमान् कब पधारे?' तब उनसे समुद्रने कहा— ॥ ४०—४३ ॥

'योगिन्! आपको यह बात जात नहीं है, असुरों आपका बड़ा अपराध किया है। वैष्णव! आपको सौंपेंसे बाँधकर दैत्योंने आज येरे भीतर फेंक दिया; तब मैं तुरंत ही आपको किनारे लगाया और उन सौंपेंसे अभी-अभी महात्मा गरुडजी भक्षण करके गये हैं। महात्मन्! मैं सत्सङ्गका अभिलाषी हूँ, आप मुझर अनुग्रह करें और इन रत्नोंको भेटरूपमें स्वीकार करें। मेरे लिये आप भगवान् विष्णुके समान ही पूज्य हैं। यद्यपि आपको इन रत्नोंकी कोई आवश्यकता नहीं है, तथापि मैं तो इन्हें आपको दूँगा ही; क्योंकि भगवान् सूर्यका भक्त उन्हें दीप निवेदन करता ही है।'

त्वमापत्त्वपि घोरासु विष्णुनैव हि रक्षितः ।
त्वादुशा निर्मलात्मानो न सन्ति बहुवोऽक्वत् ॥ ४८
बहुना किं कृतार्थोऽस्मि यज्ञिष्ठामि त्वया सह ।
आत्मपामि क्षणमपि नैक्षे ह्येतत्फलोपमाम् ॥ ४९
इत्यच्छिना स्तुतः श्रीशमाहात्म्यवच्चनैः स्वयम् ।
यद्यां लज्जां प्रहर्षं च प्रह्लादो भगवत्प्रियः ॥ ५०
प्रतिगृह्य स रत्नानि वत्सलः प्राह वारिधिम् ।
महात्मन् सुतरां धन्यः शोते त्वयि हि स प्रभुः ॥ ५१
कल्पान्तेऽपि जगत्कृत्स्नं ग्रसित्वा स जगन्मयः ।
त्वद्येवैकार्णवीभूते शोते किल महात्मनि ॥ ५२
लोचनाभ्यां जगन्नाथं द्रष्टुमिच्छामि वारिधे ।
त्वं पश्यसि सदा धन्यस्तत्रोपायं प्रयच्छ मे ॥ ५३
उक्त्वेति पादावनतं तूर्णमुत्थाप्य सागरः ।
प्रह्लादं प्राह योगीन् त्वं पश्यसि सदा हृदि ॥ ५४
द्रष्टुमिच्छस्यथाक्षिभ्यां स्तुहि तं भक्तवत्सलम् ।
उक्त्वेति सिद्धुः प्रह्लादमात्मनः स जलेऽविशत् ॥ ५५
गते नदीन्द्रे स्थित्वैको हरिं रात्रौ स दैत्यजः ।
भक्त्यास्तीदिति मन्वानस्तदर्शनमसाभवम् ॥ ५६

प्रह्लाद उवाच

वेदान्तवाक्यशतमारुतसम्प्रवृद्ध-

वैराग्यवह्निशिखया परिताप्य चित्तम् ।
संशोधयन्ति यदवेक्षणयोग्यतायै
धीरः सदैव स कथं पम गोचरः स्यात् ॥ ५७

पात्सर्यरोपस्मरलोभमोह-

मदादिभिर्बा सुदृढैः सुषदभिः ।
उपर्युपर्यावरणैः सुवद्ध-

मन्थं मनो मे क्ल हरिः क्ल वाहम् ॥ ५८
यं धातुमुख्या विवृथा भयेषु
शान्त्यर्थिनः क्षीरनिधेरुपान्तम् ।
गत्वोत्तमस्तोत्रकृतः कथंचित्
पश्यन्ति तं द्रष्टुमहो ममाशा ॥ ५९

घोर आपत्तियोंमें भी भगवान् विष्णुने ही आपकी रक्षा की है। सूर्यकी भाँति आप-जैसे शुद्धचित्त महात्मा संसारमें अधिक नहीं हैं। बहुत क्या कहूँ? आज मैं कृतार्थ हो गया; क्योंकि आज मुझे आपके साथ स्थित होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस समय आगभर भी जो आपके साथ बातचीत कर रहा है, इससे प्राप्त होनेवाले फलकी उपमा मैं कहीं नहीं देखता' ॥ ४४—४९ ॥

इस प्रकार समुद्रने साक्षात् भगवान् लक्ष्मीपतिके माहात्म्यसूचक वचनोद्घारा जब उनकी स्तुति की, तब भगवान्के प्रिय भक्त प्रह्लादजीको बड़ी लज्जा हुई और हर्ष भी। स्नेही प्रह्लादने समुद्रके दिये हुए रत्न ग्रहणकर उनसे कहा—'महात्मन्! आप विशेष धन्यवादके पात्र हैं; क्योंकि भगवान् आपके ही भीतर शयन करते हैं। यह प्रसिद्ध है कि जगन्मय प्रभु प्रलयकालमें भी सम्पूर्ण जगत्को अपनेमें लीन करके एकार्णवरूपमें स्थित आप महात्मा महासागरमें ही शयन करते हैं। समुद्र! मैं इन स्थूल नेत्रोंसे भगवान् जगन्नाथका दर्शन करना चाहता हूँ। आप धन्य हैं; क्योंकि सदा भगवान्का दर्शन करते रहते हैं। कृपया मुझे भी उनके दर्शनका उपाय बताइये' ॥ ५०—५३ ॥

यों कहकर प्रह्लादजी समुद्रके चरणोंपर गिर पड़े। तब समुद्रने उनको शीघ्र ही उठाकर कहा—'योगीन्! आप तो सदा ही अपने हृदयमें भगवान्का दर्शन करते हैं; तथापि यदि इन नेत्रोंसे भी देखना चाहते हैं तो उन भक्तवत्सल भगवान्का स्तवन कीजिये।' यों कहकर समुद्रदेव अपने जलमें प्रसिद्ध हो गये ॥ ५४—५५ ॥

समुद्रके चले जानेपर दैत्यनन्दन प्रह्लादजी रात्रिमें वहाँ अकेले ही रहकर भगवान्के दर्शनको एक असम्भव कार्य मानते हुए भक्तिपूर्वक श्रीहरिकी स्तुति करने लगे ॥ ५६ ॥

प्रह्लादजी बोले—धीर पुरुष जिनके दर्शनकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये सदा ही सैकड़ों वेदान्त-वाक्यरूप वायुद्धारा अत्यन्त बड़ी हुई वैराग्यरूप अग्रिकी ज्वालासे अपने चित्तको तपाकर भलीभाँति शुद्ध किया करते हैं, वे भगवान् विष्णु भला, मेरे दृष्टिपथमें कैसे आ सकते हैं। एकके ऊपर एकके क्रमसे ऊपर-ऊपर जिनका आवरण पड़ा हुआ है—ऐसे मात्सर्य, क्रोध, काम, लोभ, मोह, मद आदि छः सुदृढ़ बन्धनोंसे भलीभाँति यैं तो हुआ मेरा मन अंथा (विवेकशून्य) हो गया है। कहाँ भगवान् श्रीहरि और कहाँ मैं। भय उपस्थित होनेपर उसकी शान्तिके लिये श्रीरसागरके तटपर जाकर ऋषादि देवता उत्तम रीतिसे स्तवन करते हुए किसी प्रकार जिनका दर्शन कर पाते हैं, उन्हीं भगवान्के दर्शनकी मुझे-जैसा दैत्य आशा करे—यह कैसा आकृत्य है! ॥ ५७—५९ ॥

अयोग्यमात्मानभितीशदर्शने

स मन्यमानस्तदनासिकातरः ।

उद्गेगदुःखाणीवमग्रमानसः ।

स्तुताश्रुधारो नृप मूर्च्छ्लोऽपतत् ॥ ६०

अथ

क्षणात्सर्वगतश्चतुर्भुजः

शुभाकृतिर्भक्तजनैकवल्लभः ।

दुःस्थं

तमाश्लिष्य सुधामयैर्भुजै-
स्तत्रैव भूपाविरभूद्यानिधिः ॥ ६१

स

लब्धसंज्ञोऽथ तदङ्गसङ्गा-
दुमीलिताक्षः सहसा ददर्श ।

प्रसन्नवक्त्रं

कमलायताक्षं
सुदीर्घबाहुं यमुनासवर्णम् ॥ ६२

उदारतेजोमयमप्रमेयं

गदारिशङ्खाम्बुजचारुचिह्नितम् ।

स्थितं समालिङ्गय विभुं स दृष्टा
प्रकम्पितो विस्मयभीतिहृषेः ॥ ६३

तत्

स्वजन्मेवाथ स मन्यमानः
स्वज्ञेऽपि पश्यामि हरिं कृतार्थम् ।

इति

प्रहर्षाणीवमग्रचेता:
स्वानन्दमूर्च्छा स पुनश्च भेजे ॥ ६४

ततः क्षितावेष निविश्य नाथः
कृत्वा तमङ्गे स्वजनैकवल्लभः ।

शनैर्विद्युन्वन् करपल्लवेन
स्पृशन् मुहुर्मातृवदालिलिङ्ग ॥ ६५

ततश्चिरेण प्रह्लादः सम्मुखोन्मीलितेक्षणः ।
आलुलोके जगन्नार्थ विस्मयाविष्टचेतसा ॥ ६६

ततश्चिरात्तं सम्भाव्य धीरः श्रीशाङ्कशायिनम् ।
आत्मानं सहसोत्तस्थी सद्यः सभयसम्प्रभः ॥ ६७

प्रणामायापतञ्चोर्व्या प्रसीदेति वदन्मुहुः ।
सम्प्रमात् स बहुजोऽपि नान्यां पूजोक्तिमस्मरत् ॥ ६८

तमथाभयहस्तेन गदाशङ्खारिधृक् प्रभुः ।
गृहीत्वा स्थापयामास प्रह्लादं स दयानिधिः ॥ ६९

कराङ्गस्पर्शनाह्लादगलदश्रुं सवेपथ्यम् ।
भूयोऽथाह्लादयन् स्वामी तं जगादेति सान्त्वयन् ॥ ७०

राजन्! इस प्रकार अपनेको भगवान् का दर्शन पानेके योग्य न मानते हुए प्रह्लादजी उनको अप्राप्तिके दुःखसे कातर हो उठे। उनका चित्त उद्गुण और अनुभावके समुद्रम् दूब गया। वे नेत्रोंसे औंसुओंकी धारा बहाते हुए मूर्छित होकर गिर पड़े। भूप! फिर तो क्षणभरमें ही भक्तजनोंके एकमात्र प्रियतम सर्वव्यापी कृपानिधान भगवान् विष्णु सुन्दर चतुर्भुज रूप धारणकर दुःखी प्रह्लादको अपनके समान सुखद स्पर्शवाली अपनी भुजाओंसे उठाकर गोदमें लगाते हुए वहाँ प्रकट हो गये ॥ ६०—६१ ॥

उनके अङ्गस्पर्शसे होशमें आनेपर प्रह्लादने सहसा नेत्र खोलकर भगवान् को देखा। उनका मुख प्रसन्न था। नेत्र कमलके समान सुन्दर और विशाल थे। भुजाएँ बड़ी-बड़ी थीं और शरीर यमुनाजलके समान श्याम था। वे परम तेजस्वी और अपरिमित ऐश्वर्यशाली थे। गदा, शङ्ख, चक्र और पदा आदि सुन्दर चिह्नोंसे पहचाने जा रहे थे। इस प्रकार अपनेको अङ्गमें लगाये हुए भगवान् को खड़ा देख प्रह्लाद भय, विस्मय और हर्षसे कौप उठे, वे इस घटनाको स्वप्न ही समझते हुए सोचने लगे—'अहा! स्वप्नमें भी मुझे पूर्णकाम भगवान् का दर्शन तो मिल गया!' यह सोचकर उनका चित्त हर्षके महासागरमें गोता लगाने लगा और वे पुनः स्वरूपानन्दमयी मूर्च्छाको प्राप्त हो गये। तब अपने भक्तोंके एकमात्र बन्धु भगवान् पृथ्वीपर ही थिठ गये और पाणिपल्लवासे धीर-धीर उन्हें हिलाने लगे। लेहमयी माताको भाँति प्रह्लादके गात्रका स्पर्श करते हुए उन्हें बार-बार छातीसे लगाने लगे ॥ ६२—६५ ॥

कुछ देरके बाद प्रह्लादने भगवान् के सामने औंखें खोलकर विस्मितचित्तसे उन जगदीश्वरको देखा। फिर बहुत देरके बाद अपनेको भगवान् लक्ष्मीपतिकी गोदमें सोया हुआ अनुभवकर वे भय और आवेगसे युक्त हो सहसा उठ गये तथा 'भगवन्! प्रसन्न होइये' यों बार-बार कहते हुए उन्हें साषाङ्ग प्रणाम करनेके लिये पृथ्वीपर गिर पड़े। बहुत होनेपर भी उन्हें उस समय चबूहटके कारण अन्य स्तुतिवाक्योंका स्मरण न हुआ। तब गदा, शङ्ख और चक्र धारण करनेवाले दयानिधि भगवान् ने प्रह्लादको अपने भक्तभयहारी हाथसे पकड़कर खड़ा किया। भगवान् के कर-कमलोंका स्पर्श होनेसे अत्यन्त आनन्दके औंसु बहते और कौपते हुए प्रह्लादको और अधिक आनन्द देनेके लिये ग्रन्थुने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा ॥ ६६—७० ॥

सभयं सम्प्रमं वत्स मदौरवकृतं त्यज।
नैव प्रियो मे भक्तेषु स्वाधीनप्रणयी भव॥७१

नित्यं सम्पूर्णकामस्य जन्मानि विविधानि मे।
भक्तसर्वैष्टदानाय तस्मात् किं ते प्रियं वद॥७२

अथ व्यजिज्ञप्तिष्ठानुं प्रह्लादः प्राङ्गलिर्नमन्।
सलौल्यमुत्कुल्लदृशा पश्यन्नेवं च तन्मुखम्॥७३

नाप्ययं वरदानाय कालो नैष प्रसीद मे।
त्वदर्शनामृतास्वादादन्तरात्मा न तृप्यति॥७४

ग्रहादिदेवैर्दुर्लक्ष्यं त्वामेव पश्यतः प्रभो।
तृप्तिं नैष्यति मे चित्तं कल्पायुतशैरपि॥७५

नैवमेतद्वद्यतुमस्य त्वां दुष्टान्यद् वृणोति किम्।
ततः स्मितसुधापूरैः पूरयन् स प्रियं प्रियात्॥७६

योजयन् मोक्षलक्ष्म्यैव तं जगाद जगत्पतिः।
सत्यं महर्शनादन्यद् वत्स नैवास्ति ते प्रियम्॥७७

किंचित्ते दातुमिष्टे मे मतिप्रियार्थं वृणीष्व तत्।
प्रह्लादोऽथाद्वीद्वीमान् देव जन्मान्तरेष्वपि॥७८

दासस्तवाहं भूयासं गरुत्पानिव भक्तिमान्।
अथाह नाथः प्रह्लादं संकटं खल्विदं कृतम्॥७९

अहं तवात्पदानेच्छुस्त्वं तु भृत्यत्वमिच्छसि।
वरानन्यांश्च चरय धीमन् दैत्येश्वरात्मज॥८०

प्रह्लादोऽपि पुनः प्राह भक्तकामप्रदं हरिम्।
प्रसीद सास्तु मे नाथ त्वद्वक्तिः सात्त्विकी स्थिरा॥८१

‘वत्स! मेरे प्रति गौरव-बुद्धिसे होनेवाले इस भय और घबराहटको त्याग दो। मेरे भक्तोंमें तुम्हारे समान कोई भी मुझे प्रिय नहीं है, तुम स्वाधीनप्रणयी हो जाओ [अर्थात् यह समझो कि तुम्हारा प्रेमी मैं तुम्हारे वशमें हूँ]। मैं नित्य पूर्णकाम हूँ, तथापि भक्तोंकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेके लिये मेरे अनेक अवतार हुआ करते हैं; अतः तुम भी बताओ, तुम्हें कौन-सी वस्तु प्रिय है?’॥७१-७२॥

तदनन्तर खिले हुए नैवेंसे भगवान्के मुखको सरुषभावसे देखते हुए प्रह्लादने हाथ जोड़ नमस्कारपूर्वक उनसे यो निवेदन किया—‘भगवन्! यह वरदानका समय नहीं है, केवल मुझपर प्रसन्न होइये। इस समय मेरा मन आपके दर्शनस्थी अमृतका आस्वादन करनेसे तुम नहीं हो रहा है। प्रभो! ग्रहादि देवताओंके लिये भी जिनका दर्शन पाना कठिन है, ऐसे आपका दर्शन करते हुए मेरा मन इस लाख वर्षोंमें भी तुम न होगा। इस प्रकार आपके दर्शनसे अतृप्त रहनेवाले मुझ सेवकका चित्त आपके दर्शनके बाद और क्या माँग सकता है?’॥७३-७५॥

तब मुस्कानमयी सुधाका रूपोत बहाते हुए उन जगदीश्वरने अपने परम प्रिय भक्त प्रह्लादको मोक्षलक्ष्मीसे संयुक्त-सा करते हुए उससे कहा—‘वत्स! यह सत्य है कि तुम्हें मेरे दर्शनसे बढ़कर दूसरा कुछ भी प्रिय नहीं है; किंतु मेरी इच्छा तुम्हें कुछ देनेकी है। अतः तुम मेरा प्रिय करनेके लिये ही मुझसे कुछ माँग लो’॥७६-७७॥

तब बुद्धिमान् प्रह्लादने कहा—‘देव! मैं जन्मान्तरोंमें भी गङ्गजीकी धौति आपमें ही भक्ति रखनेवाला आपका दास होऊँ!’ यह सुनकर भगवान् ने कहा—‘यह तो तुमने मेरे लिये कठिन समस्या रख दी—मैं तो तुम्हें स्वयं अपने-आपको दे देना चाहता हूँ और तुम मेरी दासता चाहते हो! बुद्धिमान् दैत्यराजकुमार! दूसरे-दूसरे वर माँगो’॥७८-८०॥

तब प्रह्लादने भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले भगवान् विष्णुसे पुनः कहा—‘नाथ! आप प्रसन्न हों; मुझे तो यही चाहिये कि आपमें मेरी सात्त्विक भक्ति सदा स्थिर रहे।

अनयाथ च त्वां नौमि नृत्यामि त्वत्परः सदा ।
अथाभिनुष्टो भगवान् प्रियमाहु प्रियंवदम् ॥ ८२

बत्स यदादभीष्टे ते तत्तदस्तु सुखी भव ।
अन्तर्हिते च मव्यत्र मा खिद त्वं महामते ॥ ८३

त्वच्छित्तान्नापयास्यामि क्षीराव्योरिव सुप्रियात् ।
पुनर्द्वित्रिदिनैस्त्वं मां इष्टा दुष्टवयोद्यतम् ॥ ८४

अपूर्वाविष्कृताकारं नृसिंहं पापभीषणम् ।
उक्त्वेत्यतः प्रणमतः पश्यतश्चातिलालसम् ॥ ८५

अतुष्टस्यैव तस्येशो माययान्तर्दधे हरिः ।
ततो हठाददृष्टा तं सर्वतो भक्तवत्सलम् ॥ ८६

हाहेत्यशुप्लुतः प्रोच्य ववन्दे स चिरादिति ।
श्रूयमाणोऽथ परितः प्रतिबुद्धजनस्वने ॥ ८७

उत्थायाविष्टटाद्वीमान् प्रह्लादः स्वपुरं यथौ ॥ ८८

अथ दितिजसुतश्चिरं प्रह्लः
स्मृतिबलतः परितस्तमेव पश्यन् ।
हरिमनुजगतिं त्वलं च पश्यन् ।
गुरुगृहमुत्पुलकः शनैरवाप ॥ ८९

इति श्रीनरसिंहपुराणे नरसिंहप्रादुर्भावे त्रिवत्तारित्वेऽध्यायः ॥ ४३ ॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'नरसिंहावतारविषयक' तीतकीरती अध्याय पूरा हुआ ॥ ४३ ॥

चौबालीसवाँ अध्याय

नृसिंहका प्रादुर्भाव और हिरण्यकशिष्युका वध

मार्कण्डेय उक्ताच

अथागतं ते प्रह्लादं दृष्टा दैत्याः सुविस्मिताः ।
शशंसुदैत्यपतये यैः क्षिप्तः स महार्णवे ॥ ९
स्वस्थं तमागतं श्रुत्वा दैत्यराद्विष्मयाकुलः ।

यही नहीं, इस भक्तिसे युक्त होकर मैं आपका स्तवन किया करूँ और आपके ही परायण रहकर सदा नाचा करूँ' ॥ ८१ ॥

भगवान् ने संतुष्ट होकर प्रिय भाषण करनेवाले प्रिय भक्त प्रह्लादसे तब कहा—'बत्स ! तुम्हें जो-जो अपीष्ट हो, वह सब प्राप्त हो; तुम सुखी रहो। एक बात और है—महामते ! यहाँसे मेरे अन्तर्धान हो जानेपर भी तुम खेद न करना। मैं अपने परमप्रिय स्थान क्षीरसागरकी भौति तुम्हारे शुद्धचित्तसे कभी अलग न होऊँगा। तुम दो-ही-तीन दिनोंके बाद मुझे दुष्ट हिरण्यकशिष्युका वध करनेके लिये उद्यत अपूर्व शरीर धारण किये नृसिंहरूपमें, जो पापियोंके लिये भयानक है, पुनः प्रकट देखोगे।' यों कहकर भगवान् हरि, अपनेको प्रणाम करके अत्यन्त ललचायी हुई दृष्टिसे देखते रहनेपर भी तृप्त न होनेवाले उस भक्त प्रह्लादके सामने ही माशसे अन्तर्धान हो गये ॥ ८२—८५ ॥

तत्पश्चात् वे सहसा सब और दृष्टि डालनेपर भी जब भक्तवत्सल भगवान्को न देख सके, तब आँख बहाते हुए उच्चस्वरसे हाहाकार करके बड़ी देरतक भगवान्की चन्दना करते रहे। फिर जब प्रातःकाल जो हुए जन्मुओंकी वाणी सब और सुनायी देने लगी, तब बुद्धिमान् प्रह्लाद समुद्र-तटसे उठकर अपने नगरको छले गये। इसके बाद दैत्यनन्दन प्रह्लादजी परम प्रसन्न होकर अपने स्मरणबलसे संसारमें सब और भगवान्का ही दर्शन करते हुए तथा भगवान् एवं मनुष्यकी गतिको भलीभौति समझते हुए रोमाञ्चित होकर धीरे-धीरे गुरुके घर गये ॥ ८६—८९ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—तदनन्तर प्रह्लादको [कुशलपूर्वक समुद्रसे] लौटा देखकर, जिन्होंने उन्हें महासागरमें छला था, वे दैत्य बड़े विस्मित हुए और उन्होंने तुरंत यह समाचार दैत्यराज हिरण्यकशिष्युको दिया। उन्हें स्वस्थ

आहूयतां च इत्याह क्रोधान्मृत्युवशे स्थितः ॥ २
 तथासुरं दुरानीतः समासीनं स दिव्यदृक् ।
 आसन्नमृत्युं दैत्येन्द्रं ददर्शात्पूर्जितश्रियम् ॥ ३

नीलांशुमिश्रमाणिक्यद्युतिच्छ्रविभूषणम् ।
 सधूमाग्निपिंव व्यासमुच्चासनचितिस्थितम् ॥ ४

दंष्टोत्कटैर्घोरतैर्धनच्छ्रविभिरुद्धैः ।
 कुमार्गदर्शिभिर्दैत्यैर्यमदूतैरिवावृतम् ॥ ५

दूरात् प्रणम्य पितरं प्राञ्जलिस्तु व्यवस्थितः ।
 अथाहाकारणक्रोधः स खलो भर्त्सयन् सुतम् ॥ ६

भगवत्प्रियमत्युच्चैर्मृत्युमेवाश्रयज्ञिव ।
 मूढं रे शृणु मद्माक्यमेतदेवान्तिमं धूवम् ॥ ७

इतो न त्वां प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा कुरु यथेष्पितम् ।
 उक्तवेति हुतमाकृष्य चन्द्रहासासिमद्दूतम् ॥ ८

सम्प्राप्नीक्षितः सर्वशालयन्नाह तं पुनः ।
 क्वचास्ति मूढं ते विष्णुः स त्वामद्य प्ररक्षतु ॥ ९

त्वयोक्तं स हि सर्वत्र कस्मात्स्तम्भे न दृश्यते ।
 यदि पश्यामि तं विष्णुमधुना स्ताप्तमध्यगम् ॥ १०

तर्हि त्वां न वधिष्यामि भविष्यसि द्विधान्यथा ।
 प्रह्लादोऽपि तथा दृष्ट्वा दद्यौ तं परमेश्वरम् ॥ ११

पुरोक्तं तद्वचः स्मृत्वा प्रणामम कृताद्वलिः ।
 तावत्प्रस्फुटितस्तम्भो चीक्षितो दैत्यसूनुना ॥ १२

आदर्शरूपो दैत्यस्य खद्गतो यः प्रतिष्ठितः ।
 तन्मध्ये दृश्यते रूपं बहुयोजनमायतम् ॥ १३

अतिरौद्रं महाकार्यं दानवानां भयंकरम् ।
 महानेत्रं महावक्त्रं महादंष्ट्रं महाभुजम् ॥ १४

महानखं महापादं कालाग्निसदृशाननम् ।
 कणांतकृतविस्तारवदनं चातिभीषणम् ॥ १५

लौटा सुन दैत्यराज विस्मयसे व्याकुल हो उठा और क्रोधवश मृत्युके अधीन होकर बोला—'उसे यहाँ बुला लाओ।' असुरोंके द्वारा बुरी तरहसे पकड़कर लाये जानेपर दिव्यदृष्टिवाले प्रह्लादने सिंहासनपर बैठे हुए दैत्यराज हिरण्यकशिपुको देखा। उसकी मृत्यु निकट थी, उसका तेज बहुत बढ़ा हुआ था। उसके आभूषण नीलप्रभायुक्त माणिक्योंकी कानिसे आच्छन्न थे, अतएव वह धूमयुक्त फैली हुई अग्निके समान शोभित हो रहा था। वह कैसे सिंहासन-मञ्चपर विराजमान था और उसे मेघके समान काले दाढ़ोंके कारण विकराल, अत्यन्त भयानक, कुमार्गदर्शी एवं यमदूतोंके समान कूर दैत्य थे हुए थे ॥ १—५॥

प्रह्लादजीने दूरसे ही हाथ जोड़कर पिताको प्रणाम किया और खड़े हो गये। तब मृत्युके निकट पहुँचनेवालेकी भीत अकारण ही क्रोध करनेवाले उस दृष्टने भगवद्वक्त पुत्रको उच्चस्वरसे ढौंटते हुए कहा—'ओर मूर्ख! तू मेरा यह अन्तिम और अटल बचन सुन; इसके बाद मैं तुझसे कुछ न कहूँगा; इसे सुनकर तेरी जैसी इच्छा हो, वही करना।' यह कहकर उसने शीघ्र ही चन्द्रहास नामक अपनी अद्भुत तलवार खींच ली। उस समय सब लोग उसकी ओर आकर्ष्यपूर्वक देखने लगे। उसने तलवार चलाते हुए पुनः प्रह्लादसे कहा—'रे मूर्ख! तेरा विष्णु कहाँ है? आज वह तेरी रक्षा करे! तूने कहा था कि वह सर्वत्र है। फिर इस खंभें बयों नहीं दिखायी देता? यदि तेरे विष्णुको इस खंभेके भीतर देख लूँगा, तब तो तुझे नहीं मारँगा; यदि ऐसा न हुआ तो इस तलवारसे तेरे दो टुकड़े कर दिये जायेंगे' ॥ ६—१०॥ ॥

प्रह्लादने भी ऐसी बात देखकर उन परमेश्वरका ध्यान किया और पहले कहे हुए उनके बचनको याद करके हाथ जोड़ उन्हें प्रणाम किया। इतनेमें ही दैत्यनन्दन प्रह्लादने देखा कि वह दर्पणके समान स्वच्छ खंभा, जो अभीतक खड़ा था, दैत्यराजकी तलवारके आघातसे फट पड़ा तथा उसके भीतर अनेक योजन विस्तारवाला, अत्यन्त रौद्र एवं महाकाय नरसिंहरूप दिखायी दिया, जो दानवोंको भयभीत करनेवाला था। उसके बड़े-बड़े नेत्र, विशाल मुख, बड़ी-बड़ी दाढ़े और संबी-संबी भुजाएँ थीं। उसके नख बहुत बड़े और पैर विशाल थे। उसका मुख कालाग्निके समान देवीप्यमान था, जबड़े कानतक फैले हुए थे और वह बहुत भयानक दिखायी देता था ॥ ११—१५॥

कृत्वेत्यं नारसिंहं तु ययौ विष्णुस्त्रिविक्रमः।
 नरसिंहः स्त्राम्भप्रद्याद्विर्गत्य प्रणानाद च ॥ १६
 निनादश्वरणाहैत्या नरसिंहमवेष्ट्यन्।
 तान् हत्या सकलांस्तत्र स्वपीरुपपराक्रमात् ॥ १७
 बभद्रं च सभां दिव्यां हिरण्यकशिपोर्नुप ।
 वारयामासुरभ्येत्य नरसिंहं महाभट्टाः ॥ १८
 ते तु राजन् क्षणादेव नरसिंहेन वै हताः।
 ततः शस्त्राणि वर्षन्ति नरसिंहे प्रतापिनि ॥ १९
 स तु क्षणेन भगवान् हत्या तद्वलमोजसा।
 ननाद च महानादं दिशः शब्देन पूरयन् ॥ २०
 तान्मृतानपि विज्ञाय पुनरन्यान्महासुरः।
 अष्टाशीतिसहस्राणि हेतिहस्तान् समादिशत् ॥ २१
 तेऽप्यागत्य च तं देवं रुद्धुः सर्वतोदिशम्।
 हत्या तानखिलान् यद्द्वे युद्ध्यमानो ननाद सः ॥ २२
 पुनः सभां बभद्रासी हिरण्यकशिपोः शुभाम्।
 तान् हतानपि विज्ञाय क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २३
 ततो हिरण्यकशिपुर्निश्चक्राम महाबलः।
 उवाच च महीपाल दानवान् बलदर्पितान् ॥ २४
 हन्यतां हन्यतामेष गृह्णतां गृह्णतामयम्।
 इत्येवं वदतस्तस्य प्रमुखे तु महासुरान् ॥ २५
 युद्ध्यमानान् रणे हत्या नरसिंहो ननाद च।
 ततोऽतिद्वृद्धुदीत्या हतशोषा दिशो दश ॥ २६
 तावद्वत्ता युद्ध्यमाना दैत्याः कोटिसहस्रशः।
 नरसिंहेन यावच्च नभोभागं गतो रथिः ॥ २७
 शस्त्रास्ववर्षचतुरं हिरण्यकशिपुं जवात्।
 प्रगृह्ण तु बलाङ्गाजन् नरसिंहो महाबलः ॥ २८
 संघ्याकाले गृहद्वारि स्थित्वोरी स्थाप्य तं रिपुम्।
 चत्रतुल्यमहोरस्कं हिरण्यकशिपुं रुधा।
 नखैः किसलयमिव दारयत्याह सोऽसुरः ॥ २९

इस प्रकार नरसिंहरूप धारणकर त्रिविक्रम भगवान् विष्णु खंभेके भीतरसे निकल पड़े और लगे बड़े जो-जोरसे दहाड़ने। नरेश्वर! यह गर्जना सुनकर दैत्योंने भगवान् नरसिंहको धेर लिया। तब उन्होंने अपने पौरुष एवं पराक्रमसे उन सबको मौतके घाट उतारकर हिरण्यकशिपुका दिव्य सभाभवन नष्ट कर दिया। राजन्! उस समय जिन महाभट्टोंने निकट आकर नृसिंहजीको रोका, उन सबको उन्होंने क्षणभरमें मार डाला। तत्पश्चात् प्रतापी नरसिंहभगवान्पर असुर सैनिक अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे ॥ १६—१९ ॥

भगवान् नृसिंहने क्षणभरमें ही अपने तेजसे समस्त दैत्यसेनाका संहार कर दिया और दिशाओंको अपनी गर्जनासे गुंजाते हुए वे भयंकर सिंहनाद करने लगे। उपर्युक्त दैत्योंको मरा जान महासुर हिरण्यकशिपुने पुनः हाथमें शस्त्र लिये हुए अद्वासी हजार असुर सैनिकोंको नृसिंहदेवसे लड़नेकी आज्ञा दी। उन असुरोंने भी आकर भगवान्को सब ओरसे धेर लिया। तब युद्धमें लड़ते हुए भगवान् उन सभीका वध करके पुनः सिंहनाद करने लगे। उन्होंने हिरण्यकशिपुके दूसरे सुन्दर सभाभवनको भी पुनः छ कर दिया। राजन्! अपने भेजे हुए इन असुरोंको भी मारा गया जान क्रोधसे लाल-लाल अँखें करके महाबली हिरण्यकशिपु स्वर्यं बाहर निकला और बलाभिमानी दानवोंसे बोला—‘अे, इसे पकड़ो-पकड़ो; मार डालो, मार डालो। इस प्रकार कहते हुए हिरण्यकशिपुके सामने ही युद्ध करनेवाले उन सभी महान् असुरोंका रणमें संहार करके भगवान् नृसिंह गर्जने लगे। तब मरनेसे बचे हुए दैत्य दसों दिशाओंमें खेगपूर्वक भाग चले ॥ २०—२६ ॥

जबतक सूर्यदेव अस्ताचलको नहीं चले गये, तबतक भगवान् नृसिंह अपने साथ युद्ध करनेवाले हजारों कठोड़ दैत्योंका संहार करते रहे। राजन्! किंतु जब सूर्य ढूबने लगे, तब महाबली भगवान् नृसिंहने अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करनेमें कुशल हिरण्यकशिपुको बड़े केंद्रसे बलपूर्वक पकड़ लिया। फिर संध्याके समय घरके दरवाजेपर बैठकर, उस बज्रके समान कठोर विकल वक्षवाले शमु हिरण्यकशिपुको अपनी जाँधोपर गिराकर जब भगवान् नृसिंह रोषपूर्वक नखोंसे पतेकी भौंति उसे विदीर्घ करने लगे, तब उस महान् असुरने जीवनसे निराम होकर कहा— ॥ २७—२९ ॥

यत्राखण्डलदन्तमुसला-
न्याखण्डतान्याहवे
धारा यत्र पिनाकपाणिपरशो-
राकुण्ठतामागमत् ।

तच्चे तावदुरो नृसिंहकरजै-
व्यादीयते साम्राज्यं
देवे दुर्जनतां गते तुणमपि
प्रायोऽप्यवज्ञायते ॥ ३० ॥

एवं वदति दैत्येन्द्रे ददार नरकेसरी।
हृदयं दैत्यराजस्य पद्मप्रभिव द्विषः ॥ ३१ ॥

शकले द्वे तिरोभूते नखान्धे महात्मनः।
ततः क्षयातो दुष्टोऽसाधिति देवोऽतिविस्मितः ॥ ३२ ॥

निरीक्ष्य सर्वतो राजन् वृथैतत्कर्म मे उभवत्।
इति संचिन्त्य राजेन्द्र नरसिंहो महाबलः ॥ ३३ ॥

व्यथूनयत्करावुच्चैस्तातस्ते शकले नृप।
नखरन्धाविपतिते भूमी रेणुसमे हुरेः ॥ ३४ ॥

दृष्टा व्यतीतसंरोधो जहास परमेश्वरः।
पुर्ववर्षं च वर्षन्तो नरसिंहस्य मूर्धनि ॥ ३५ ॥

देवाः सब्रह्मकाः सर्वे आगताः प्रीतिसंयुताः।
आगत्य पूजयामासुरसिंहं परं प्रभुम् ॥ ३६ ॥

दृष्टा च दैत्यराजानं प्रह्लादमभिषेचयत्।
धर्मे रतिः समस्तानां जनानामभवत्तदा ॥ ३७ ॥

इन्द्रोऽपि सर्वदेवैस्तु हरिणा स्थापितो दिवि।
नरसिंहोऽपि भगवान् सर्वलोकहिताय वै ॥ ३८ ॥

श्रीशैलशिखरं प्राप्य विश्रुतः सुरपूजितः।
स्थितो भक्तहितार्थाय अभक्तानां क्षयाय च ॥ ३९ ॥

इत्येतत्ररसिंहस्य माहात्म्यं यः पठेद्वारः।
श्रृणोति वा नृपश्रेष्ठ मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ४० ॥

'हाय ! युद्धके समय देवराज इन्द्रके वाहन गजराज ऐरावतके मूसल-जैसे दौत जहाँ टकराकर दुकड़े-दुकड़े हो गये थे, जहाँ पिनाकपाणि महादेवके फरसेकी तीखी धार भी कुण्ठित हो गयी थी, वही मेरा वक्षःस्थल इस समय नृसिंहके नखोंड्डारा फाढ़ा जा रहा है । सच है, जब भाग्य खोटा हो जाता है, तब तिनका भी प्रायः अनादर करने लगता है' ॥ ३० ॥

दैत्यराज हिरण्यकशिपु इस प्रकार कह ही रहा था कि भगवान् नृसिंहने उसका हृदयदेश विदीर्घ कर दिया—ठीक उसी तरह, जैसे हाथी कमलके पत्तेको अनायास ही छिप-भिप कर देता है । उसके शरीरके दोनों दुकड़े महात्मा नृसिंहके नखोंके छेदमें छुसकर छिप गये । राजन् ! तब भगवान् सब और देखकर अत्यन्त विस्मित हो सोचने लगे—'अहो ! वह दुष्ट कहाँ चला गया ? जान पड़ता है, मेरा यह सारा उद्योग ही व्यर्थ हो गया' ॥ ३१-३२ ॥

राजेन्द्र ! महाबली नृसिंह इस प्रकार चिन्तामें पढ़कर अपने दोनों हाथोंको बड़े जोरसे झाड़ने लगे । राजन् ! फिर तो वे दोनों दुकड़े उन भगवान्के नख-छिद्रसे निकलकर भूमिपर गिर पड़े, वे कुचलकर भूलिकणके समान हो गये थे । यह देख रोषहीन हो वे परमेश्वर हैंसने लगे । इसी समय ब्रह्मादि सभी देवता अत्यन्त प्रसन्न हो वहाँ आये और भगवान् नरसिंहके मस्तकपर फूलोंकी वर्षा करने लगे । पास आकर उन सबने उन परम प्रभु नरसिंहदेवका पूजन किया ॥ ३३—३६ ॥

तदनन्तर ब्रह्माजीने प्रह्लादको दैत्योंके राजाके पदपर अभिषिक्त किया । उस समय समस्त प्राणिशोंका धर्ममें अनुराग हो गया । सम्पूर्ण देवताओंसहित भगवान् विष्णुने इन्द्रको स्वर्गके राज्यपर स्थापित किया । भगवान् नृसिंह भी सम्पूर्ण लोकोंका हित करनेके लिये श्रीशैलके शिखरपर आ पहुँचे । वहाँ देवताओंसे पूजित हो वे प्रसिद्धिको प्राप्त हुए । वे भक्तोंका हित और अभक्तोंका नाश करनेके लिये वहाँ रहने लगे ॥ ३७—३९ ॥

नृपत्रैषु ! जो मनुष्य भगवान् नरसिंहके इस माहात्म्यको पढ़ता अथवा सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता

नरो वा यदि वा नारी शृणोत्याख्यानमुत्तमम् ।
वैथव्याददुःखशोकाच्च दुष्टसज्जात्प्रमुच्यते ॥ ४१

दुशशीलोऽपि दुराचारो दुष्प्रजो दोषकर्मकृत् ।
अथर्मिष्ठोऽनभोगी च शृणवन् शुद्धो भवेन्नरः ॥ ४२

हरिः सुरेशो नरलोकपूजितो
हिताय लोकस्य चराचरस्य ।
कृत्वा विस्तुपं च पुराऽऽत्ममायया
हिरण्यकं दुःखकरं नखैश्चिन्तन् ॥ ४३

है । नर हो या नारी—जो भी इस उत्तम आख्यानको सुनता है, वह दुष्टोंका सज्ज करनेके दोषसे, दुःखसे, शोकसे एवं वैथव्यके कष्टसे छुटकारा पा जाता है । जो दुष्ट स्वभाववाला, दुरुचारी, दुष्ट संतानवाला, दूषित कर्मोंका आचरण करनेवाला, अधर्मात्मा और विषयभोगी हो, वह मनुष्य भी इसका श्रवण करनेसे शुद्ध हो जाता है ॥ ४०—४२ ॥

मनुष्यलोकपूजित देवेश्वर भगवान् हरिने पूर्वकालमें चराचर जगत्के हितके लिये अपनी मायासे भवानक आकारवाला नरसिंहरूप धारण करके दुःखदायी दैत्य हिरण्यकशिष्यको नखोंद्वारा नष्ट कर दिया था ॥ ४३ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे नरसिंहप्रादुर्भावे नाम चतुर्थांश्चारिङ्गोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'नरसिंहका प्रादुर्भाव' नामक चौकालीसर्वो अध्याय पूरा हुआ ॥ ४४ ॥

पैंतालीसबाँ अध्याय

वामन-अवतारकी कथा

मार्कंण्डेय उकाच
शृणु राजन् समासेन वामनस्य पराक्रमम् ।
बलियागे हता येन पुरा दैत्याः सहस्रशः ॥ १
विरोचनसुतः पूर्वं महाबलपराक्रमः ।
ब्रैलोक्यं बुभुजे जित्वा देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥ २
ततः कृशतरा देवा बभूवुस्तेन खण्डिताः ।
इन्द्रं कृशतरं दृष्ट्वा नष्टराज्यं नृपोत्तमः ॥ ३
अदितिर्देवमाता या सातप्यत्परमं तपः ।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः प्रणिपत्य जनार्दनम् ॥ ४
ततः स्तुत्याभिसंतुष्टो देवदेवो जनार्दनः ।
स्थित्वा तत्पुरतो वाचमुवाच मधुसूदनः ॥ ५
तव पुत्रो भविष्यामि सुभगे बलिवन्धनः ।
इत्युक्त्वा तां गतो विष्णुः स्वयृहं सा समाययी ॥ ६
ततः कालेन सा गर्भमवाप नृप कश्यपात् ।
अजायत स विश्वेशो भगवान् वामनाकृतिः ॥ ७

मार्कंण्डेयजी बोले—राजन्! जिन्होंने पूर्वकालमें राजा बलिके यज्ञमें सहस्रों दैत्योंका संहार किया था, उन भगवान् वामनका चरित्र संक्षेपसे सुनो ॥ १ ॥

पहलोकी बात है, विरोचनका पुत्र बलि महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न हो इन्द्र आदि समस्त देवताओंको जीतकर विभुवनका राज्य भोग रहा था । तृष्णवर! उसके द्वारा खण्डित हुए देवतालोग बहुत दुबले हो गये थे । राज्य नष्ट हो जानेसे इन्द्र और अधिक कृश हो गये थे । उन्हें इस दशामें देखकर देवमाता अदितिने बहुत बड़ी तपस्या की । उन्होंने भगवान् जनार्दनको प्रणाम करके अपीष्ट वाणीद्वारा उनका स्तवन किया । अदितिकी सुनिसर्गी प्रसन्न हो देवाधिदेव मधुसूदन जनार्दन उनके सम्मुख उपस्थित हो बोले—'सीधायशालिनि! मैं बलिको बाँधनेके लिये तुम्हारे पुत्र होऊँगा ।' उनसे यों कहकर भगवान् विष्णु अनन्धन हो गये और अदिति भी अपने घर चली गयी ॥ २—६ ॥

राजन्! तदनन्तर समय आनेपर अदितिने कश्यपजीसे गर्भ धारण किया । उस गर्भसे वामनरूपमें साक्षात् भगवान्

तस्मिन्द्वाते समागत्य ब्रह्मा लोकपितामहः ।
जातकर्मादिकाः सर्वाः क्रियास्तत्र चकार वै ॥ ८
कृतोपनयनो देवो ब्रह्मचारी सनातनः ।
अदितिं चाप्यनुजाप्य यज्ञशालां बलेर्यथौ ॥ ९
गच्छतः पादविक्षेपाच्यचाल सकला मही ।
यज्ञभागान् गृहन्ति दानवाश्च बलेर्यखात् ॥ १०
प्रशान्ताश्चाग्रयस्तत्र ऋत्विजो मन्त्रतश्च्युताः ।
विपरीतमिदं दृष्ट्वा शुक्रमाह महाबलः ॥ ११
न गृहन्ति मुने कस्माद्विभागं महासुराः ।
कस्माच्य वृद्ध्यः शान्ताः कस्माद्दूश्लति द्विज ॥ १२
कस्माच्य मन्त्रतो भृष्टा ऋत्विजः सकला अमी ।
इत्युक्तो बलिना शुक्रो दानवेन्द्रं वचोऽद्वितीत् ॥ १३

शुक्र उवाच

हे बले शृणु मे वाक्यं त्वया देवा निराकृताः ।
तेषां राज्यप्रदानाय अदित्यामच्युतोऽसुर ॥ १४
देवदेवो जगद्योनिः संजातो वामनाकृतिः ।
स त्वागच्छति ते यज्ञं तत्पादन्यासकमिता ॥ १५
चलतीयं मही सर्वा तेनाद्यासुरभूपते ।
तत्सनिधानादसुरा न गृहन्ति हविर्मुखे ॥ १६
तवाग्रयोऽपि वै शान्ता वामनागमनाद्धि भोः ।
ऋत्विजश्च न भासन्ते होममन्त्रो बलेऽथुना ॥ १७
असुराणां श्रियो हन्ति सुराणां भूतिरुक्तामा ।
इत्युक्तः स बलिः प्राह शुक्रं नीतिमतां वरम् ॥ १८
शृणु ब्रह्मन् वचो मे त्वमागते वामने मरुते ।
यन्मया चाद्य कर्तव्यं वामनस्यास्य धीमतः ॥ १९
तमे वद महाभाग त्वं हि नः परमो गुरुः ।

मार्कण्डेय उवाच

इति संचोदितः शुक्रः स राजा बलिना नृप ॥ २०
तमुवाच बलिं वाक्यं ममापि शृणु साम्प्रतम् ।
देवानामुपकाराय भवतां संक्षयाय च ॥ २१
स नूनमायाति बले तव यज्ञे न संशयः ।
आगते वामने देवे त्वया तस्य महात्मनः ॥ २२

जगत्त्राथ ही प्रकट हुए। वामनजीका अवतार होनेपर लोकपितामह ब्रह्माजी वही आये। उन्होंने उनके जातकर्मादि सम्पूर्ण समयोचित संस्कार सम्पन्न किये। उपनयन-संस्कारके बाद वे सनातन भगवान् ब्रह्मचारी होकर अदितिकी आज्ञा ले राजा बलिकी यज्ञशालामें गये। चलते समय उनके चरणोंके आधातसे पृथ्वी कौप उठती थी। दानवगण बलिके यज्ञसे हविष्य ग्रहण करनेमें असमर्थ हो गये। वहाँकी आग बुझ गयी। ऋत्विजकाण भन्नोच्चारणमें त्रुटि करने सारे। यह विपरीत कार्य देखकर महाबली बलिने शुक्राचार्यसे कहा—‘मुने! ये महान् असुरगण यज्ञका भाग क्यों नहीं ग्रहण कर रहे हैं? अग्रि क्यों शान्त हो रही है? विप्रवर! यह पृथ्वी क्यों डगमगा रही है तथा ये सम्पूर्ण ऋत्विज् मन्त्रभृष्ट क्यों हो रहे हैं?’ बलिके इस प्रकार पूछनेपर शुक्राचार्यने उस दानवराजसे कहा— ॥ ७—१३ ॥

शुक्र बोले—असुरराज बलि! तुम मेरी बात सुनो। तुमने देवताओंको जीतकर स्वर्गसे निकाल दिया है; उन्हें पुनः उनका राज्य देनेके लिये जगत्के उत्पत्तिस्थान देवदेव भगवान् विष्णु अदितिके गर्भसे वामनरूपमें प्रकट हुए हैं। असुरराज! वे ही तुम्हारे यज्ञमें आ रहे हैं, अतः उन्हींके पादविन्यास (पौव रखने)-से कम्पित हो यह सारी पृथ्वी आज हिलने लगी है तथा उन्हींके निकट आ जानेके कारण असुरगण आज यज्ञमें हविष्य ग्रहण नहीं कर रहे हैं। बले! वामनके आगमनसे ही तुम्हारे यज्ञकी आग भी बुझ गयी है और ऋत्विज् भी श्रीहीन हो गये हैं। इस समयका होममन्त्र असुरोंकी सम्पत्तिको नष्ट कर रहा है और देवताओंका उत्तम वैभव बढ़ रहा है ॥ १४—१७ ॥

उनके इस प्रकार कहनेपर बलिने नीतिज्ञोंमें श्रेष्ठ शुक्राचार्यजीसे कहा—‘ब्रह्मन्! महाभाग! आप मेरी बात सुनें। यज्ञमें वामनजीके पथानेपर उन बुद्धिमान् वामनजीके लिये मुझे क्या करना चाहिये, वह हमें बताइये; क्योंकि आप मेरे परम गुरु हैं’ ॥ १८—१९ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—नरेश्वर! राजा बलिके इस प्रकार पूछनेपर शुक्राचार्यजीने उनसे कहा—‘राजन्! अब मेरी भी राय सुनो। बले! ये देवताओंका हित करने और तुम लोगोंके विनाशके लिये ही तुम्हारे यज्ञमें पथार रहे हैं, इसमें संदेह नहीं है। अतः जब भगवान् वामन यहाँ आ जायें, तब उन महात्माके लिये

प्रतिज्ञा नैव कर्तव्या ददाम्येतत्तवेति वै।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य बलिर्बलवतां वरः ॥ २३

उवाच तां शुभां वाणीं शुक्रमात्मपुरोहितम्।
आगते वामने शुक्र यज्ञे मे मधुसूदने ॥ २४

न शक्यते प्रतिख्यातुं दानं प्रति मया गुरो।
अन्येषामपि जन्मनामित्युक्तं ते मयाधुना ॥ २५

किं पुनर्बासुदेवस्य आगतस्य तु शार्ङ्गिणः।
त्वया विश्वो न कर्तव्यो वामनेऽत्रागते द्विज ॥ २६

यद्यद्द्रव्यं प्रार्थयते तत्तद्द्रव्यं ददाम्यहम्।
कृतार्थोऽहं मुनिश्रेष्ठ यद्यागच्छति वामनः ॥ २७

इत्येवं वदतस्तस्य यज्ञशालां स वामनः।
आगत्य प्रविवेशाथ प्रशंसांस बलेर्मखम् ॥ २८

तं दृष्ट्वा सहसा राजन् राजा दैत्याधिपो बलिः।
उपचारेण सम्पूर्ण चाक्यमेतदुवाच ह ॥ २९

यद्यत्प्रार्थयसे मां त्वं देवदेव धनादिकम्।
तत्सर्वं तव दास्यामि मां याचस्वाद्य वामन ॥ ३०

इत्युक्तो वामनस्तत्र नृपेन्द्र बलिना तदा।
याचयामास देवेशो भूमेदेहि पदब्रयम् ॥ ३१

ममाग्निशरणार्थाय न मेऽर्थोऽस्ति प्रयोजनम्।
इत्युक्तो वामनेनाथ बलिः प्राह च वामनम् ॥ ३२

पदब्रयेण चेत्तुमिर्या दत्तं पदब्रयम्।
एवमुक्ते तु बलिना वामनो बलिमद्वीत ॥ ३३

दीयतां मे करे तोयं यदि दत्तं पदब्रयम्।
इत्युक्तो देवदेवेन तदा तत्र स्वयं बलिः ॥ ३४

'मैं आपको यह वस्तु देता हूँ' यों कहकर कुछ देनेकी प्रतिज्ञा न करना' ॥ २०—२२ ॥

उनकी यह बात सुनकर बलवानोंमें श्रेष्ठ बलिने अपने पुरोहित शुक्रचार्यजीसे यह सुन्दर बात कही—'गुरुदेव शुक्र! यज्ञमें मधुसूदन भगवान् वामनके पधारनेपर मैं उन्हें कुछ भी देनेसे इनकार नहीं कर सकता। अभी-अभी मैं आपसे कह चुका हूँ कि दूसरे प्राणी भी यदि मुझसे कुछ याचना करेंगे तो मैं उन्हें वह वस्तु देनेसे इनकार नहीं कर सकता; फिर शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले साक्षात् भगवान् विष्णु (वासुदेव) मेरे यज्ञमें पधारें और मैं उनकी मुहमाँगी वस्तु उन्हें देनेसे इनकार कर दूँ यह कैसे सम्भव होगा? द्वाहाणदेव! यहाँ भगवान् वामनके पदार्पण करनेपर आप उनके कार्यमें विष्णु न डालियेगा। वे जो-जो द्रव्य माँगें, वही-वही मैं उन्हें दूँगा। मुनिश्रेष्ठ! यदि सचमुच ही यहाँ भगवान् वामन पधार रहे हैं तो मैं कृतार्थ हो गया' ॥ २३—२७ ॥

राजा बलि जब इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय वामनजीने आकर यज्ञशालामें प्रवेश किया और वे उनके उस यज्ञकी प्रशंसा करने लगे। राजन् उन्हें देखते ही दैत्याधिपति राजा बलिने सहसा डठकर पूजन-सामग्रियोंसे उनकी पूजा की, फिर इस प्रकार कहा—'देवदेव! आप धन आदि जो-जो वस्तु माँगें, वह सब मैं आपको दूँगा; इसलिये वामनजी! आज आप मुझसे याचना कीजिये' ॥ २८—३० ॥

'नुपेन्द्र! बलिके यों कहनेपर उस समय देवेशर भगवान् वामनने उनसे यही याचना की कि मुझे अग्रिशालाके लिये केवल तीन पग भूमि दीजिये, मुझे धनकी आवश्यकता नहीं है' ॥ ३१ ॥

भगवान् वामनके यों कहनेपर बलिने उनसे कहा—'यदि तीन पग भूमिसे ही आपको संतोष है तो तीन पग भूमि मैंने आपको दे दी' ॥ ३२ ॥

बलिके द्वारा यों कहे जानेपर भगवान् वामन उनसे बोले—'यदि आपने मुझे तीन पग भूमि दे दी तो मेरे हाथमें संकल्पका जल दीजिये' ॥ ३३ ॥

कहते हैं, उस समय वहाँ देवदेव भगवान् वामनजीके

सजलं हेमकलशं गृहीत्योत्थाय भक्तिः ।
 यावत्स वामनकरे तोयं दातुमुपस्थितः ॥ ३५
 तावच्छुद्रः कलशगो जलधारां रुरोध ह ।
 ततश्च वामनः कुद्धः पवित्राग्रेण सत्तम् ॥ ३६
 उदके कलशद्वारि तच्छुक्राक्षिमवेधयत् ।
 ततो व्यपगतः शुक्रो विद्वैकाक्षो नरोत्तम् ॥ ३७
 तोयधारा निपतिता वामनस्य करे पुनः ।
 करे निपतिते तोये वामनो ववृथे क्षणात् ॥ ३८
 पादेनैकेन विक्रान्ता तेनैव सकला मही ।
 अन्तरिक्षं द्वितीयेन द्वौस्तुतीयेन सत्तम् ॥ ३९
 अनेकान् दानवान् हत्या हत्या त्रिभुवनं बलेः ।
 पुरंदराय त्रैलोक्यं दत्त्वा बलिमुवाच ह ॥ ४०
 यस्मात्ते भक्तितो दत्तं तोयमद्य करे मम ॥
 तस्मात्ते साम्यतं दत्तं पातालतलमुत्तमम् ॥ ४१
 तत्र गत्वा महाभाग भुद्दस्य त्वं मत्प्रसादतः ।
 वैवस्वतेऽन्तरेऽतीते पुनरिन्द्रो भविष्यसि ॥ ४२
 प्रणाम्य च ततो गत्वा तलं भोगमवासवान् ॥ ४३
 शुक्रोऽपि स्वर्गमारुह्य प्रसादाद्वामनस्य वै ।
 समागतस्त्रिभुवनं राजन् देवसमन्वितः ॥ ४४
 यः स्मरेत्प्रातरुत्थाय वामनस्य कथामिमाम् ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥ ४५
 इत्थं पुरा वामनरूपमास्थितो
 हरिर्बलेहत्य जगत्रयं त्रृप ।
 कृत्वा प्रसादं च दिवीकसाम्पते-
 दत्त्वा त्रिलोकं स यथी महोदधिम् ॥ ४६

इस प्रकार आज्ञा देनेपर स्वयं राजा बलि जलसे भरे हुए सुवर्णकलशको लेकर भक्तिपूर्वक खड़े हो गये और ज्यों ही वामनजीके हाथमें जल देनेको उद्घत हुए त्यों ही शुक्राचार्यने [योगबलसे] कलशमें घुसकर गिरती हुई जलधारा रोक दी । सत्तम् ! तब वामनजीने कुद्ध होकर पवित्र (कुश)-के अग्रभागसे कलशके छेदमें जल निकलनेके मार्गपर स्थित हुए शुक्राचार्यको एक आँख छेद डाली । नरोत्तम् ! एक आँख छिट जानेपर शुक्राचार्य उसमेंसे निकल भागे ॥ ३४—३७ ॥

तत्पश्चात् वामनजीके हाथमें जलकी धारा गिरी । हाथपर जल पड़ते ही वामनजी क्षणभारमें ही बहुत बड़े हो गये । सत्तम् ! उन्होंने एक पागसे यह सम्पूर्ण पृथ्वी नाप ली, द्वितीय पागसे अन्तरिक्षलोक तथा तृतीय पागसे स्वर्गलोकको आक्रान्त कर लिया । फिर अनेक दानवोंका संहार करके बलिसे त्रिभुवनका राज्य छीन लिया और यह त्रिलोकी इन्द्रको अर्पितकर पुनः बलिसे कहा— ‘तुमने भक्तिपूर्वक आज मेरे हाथमें संकल्पका जल अर्पित किया है, इसलिये इस समय मैंने तुम्हें उत्तम पाताललोकका राज्य दिया । महाभाग ! वहाँ जाकर तुम मेरे प्रसादसे राज्य भोगो; वैवस्वत मन्यवत्तर व्यतीत हो जानेपर तुम पुनः इन्द्रपदपर प्रतिष्ठित होओगे’ ॥ ३८—४२ ॥

तब बलिने भगवान्‌को प्रणाम करके पातालतलमें जाकर वहाँ उत्तम भोगोंको प्राप्त किया । राजन् ! शुक्राचार्य भी भगवान् वामनकी कृपासे त्रिभुवनकी राजधानी स्वर्गमें आकर सब देवताओंके साथ सुखपूर्वक रहने लगे । जो मनुष्य प्राप्तकाल उठकर भगवान् वामनकी इस कथाका स्मरण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है । नृप ! इस प्रकार पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने वामनरूप धारणकर त्रिभुवनका राज्य बलिसे ले लिया और उसे कृपापूर्वक देवराज इन्द्रको अर्पित कर दिया । तत्पश्चात् वे क्षीरसागरको चले गये ॥ ४३—४६ ॥

इति श्रीनरसिंहपुण्ये वामनश्रुत्याख्यायः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुण्यमें ‘वामनावत्तर’ विषयक पैतालीसर्वां अध्याय पूरा हुआ ॥ ४५ ॥

छियालीसवाँ अध्याय

परशुरामावतारकी कथा

मार्कण्डेय उक्ताच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रादुर्भावं हरे: शुभम्।
जामदग्न्यं पुरा येन क्षत्रमुत्सादितं शृणु॥ १
पुरा देवगणैर्विष्णुः स्तुतः क्षीरोदधौ नृप।
ऋषिभिर्भूमि महाभागैर्जमदग्ने: सुलोऽभवत्॥ २
पर्शुराम इति ख्यातः सर्वलोकेषु स प्रभुः।
दुष्टानां निश्चहं कर्तुमवतीणों महीतले॥ ३
कृतबीर्यसुतः श्रीमान् कार्तवीर्योऽभवत् पुरा।
दत्तात्रेयं समाराध्य चक्रवर्त्तित्वमास्त्रान्॥ ४
स कदाचिन्महाभागो जमदग्न्याश्रमं यथौ।
जमदग्निस्तु तं दृष्ट्वा चतुरङ्गबलान्वितम्॥ ५
उद्याव मधुरं वाक्यं कार्तवीर्यं नृपोत्तमम्।
मुच्यतामत्र ते सेना अतिथिस्त्वं समागतः।
वन्यादिकं मया दत्तं भुक्त्वा गच्छ महामते॥ ६
प्रमुच्य सेनां मुनिवाक्यगौरवात्
स्थितो नृपस्तत्र महानुभावः।
आपन्न राजानमलकृष्णकीर्ति-
मुनिः स धेनुं च दुदोह दोग्धीम्॥ ७
हस्त्यश्वशाला विविधा नराणां
गृहाणि चित्राणि च तोरणानि।
सामन्तयोग्यानि शुभानि राजन्
समिच्छतां यानि सुकाननानि॥ ८
गृहं चरिष्टं चहुभूमिकं पुनः
समन्वितं साधुगुणैरुपस्करैः।
दुग्धवा प्रकल्पन् मुनिराह पार्थिवं
गृहं कृतं ते प्रविशोह राजन्॥ ९
इमे च मन्त्रिप्रवरा जनास्ते
गृहेषु दिव्येषु विशन्तु शीघ्रम्।
हस्त्यश्वजात्यश्च विशन्तु शालां
भृत्याश्च नीचेषु गृहेषु सन्तु॥ १०

मार्कण्डेयजी बोले—राजन्! अब मैं भगवान् विष्णुके जामदग्न्य (परशुराम) नामक शुभ अवतारका वर्णन करता हूं, जिसने पूर्वकालमें क्षत्रियवंशका उच्छ्वेत किया था; उस प्रसङ्गको सुनो॥ १॥

नरेश! पहलेकी बात है, क्षीरसागरके तटपर देवताओं और महाभाग ऋषियोंने भगवान् विष्णुकी स्तुति की; इससे वे जमदग्नि मुनिके पुत्रके रूपमें अवतीर्ण हुए। वे भगवान् सम्पूर्ण लोकोंमें 'परशुराम' नामसे विख्यात थे और दुष्ट राजाओंका नाश करनेके लिये ही इस भूतलपर अवतीर्ण हुए थे। उनके अवतारसे पूर्व राजा कृतबीर्यका पुत्र 'कार्तवीर्य' हुआ था, जिसने दत्तात्रेयजीकी आराधना करके सार्वभौम राज्य प्राप्त कर लिया था। एक समय वह महाभाग नरेश जमदग्नि ऋषिके आश्रमपर गया। उसके साथ चतुरङ्गिणी सेना थी। उस राजाको चतुरङ्गिणी सेनाके साथ आश्रमपर आया देख जमदग्निने नृपवर कार्तवीर्यसे मधुर वाणीमें कहा—'महामते! आप मेरे अतिथि होकर यहाँ पथरे हैं; अतः आज अपनी सेनाका पड़ाव यहाँ ढालिये और मेरे दिये हुए वन्य फल आदिका भोजन करके कल यहाँसे जाइयेगा'॥ २—६॥

महानुभाव राजा कार्तवीर्य मुनिके वाक्यका गौरव मानकर अपनी सेनाको वहाँ ठहरनेका आदेश दे वहाँ रह गया। इधर अलङ्घ्य यशवाले मुनिने राजाको आमन्त्रित करके अपनी कामधेनु गौका दोहन किया। राजन्! उन्होंने अनेकानेक गजशाला, अश्वशाला, मनुष्योंके रहनेयोग्य विवित्र गृह और तोरण (द्वार) आदिका दोहन किया। सामन्त नरेशोंके रहनेयोग्य सुन्दर भवन, जिनमें बगीचे आदिकी इच्छा रखनेवालोंके लिये सुन्दर उद्यान थे, दोहनद्वार प्रस्तुत किये। फिर अनेक मंजिलोंका श्रेष्ठ महल, जिसमें सुन्दर एवं उपयोगी सामान संचित थे, गोदोहनके द्वारा उपलब्ध करके मुनिने भूपालसे कहा—'राजन्! आपके लिये महल तैयार है। आप इसमें प्रवेश कीजिये। आपके ये श्रेष्ठ मन्त्री तथा और लोग भी शीघ्र ही इन दिव्य गृहोंमें प्रवेश करें। विभिन्न जातियोंके हाथी और घोड़े आदि भी गजशाला और अश्वशालामें रहें तथा भृत्यगण भी इन छोटे घरोंमें निवास करें'॥ ७—१०॥

इत्युक्तमात्रे मुनिना नृपोऽसौ
गृहं वरिष्ठं प्रविवेश राजा।
अन्येषु चान्येषु गृहेषु सत्सु
मुनिः पुनः पार्थिवमावभाषे ॥ ११

स्वानप्रदानार्थमिदं मया ते
प्रकल्पितं स्त्रीशतमुत्तमं नृप।
स्वाहि त्वमद्यात्र यथाप्रकापं
यथा सुरेन्द्रो दिवि नृत्यगीतैः ॥ १२

स स्वातबांस्तत्र सुरेन्द्रवश्वपो
गीत्यादिशब्दैर्मधुरैश्च वाणैः।
स्वातस्य तस्याशु शुभे च वस्त्रे
ददौ मुनिर्भूप विभूषिते द्वे ॥ १३

परिधाय वस्त्रं च कृतोत्तरीयः
कृतक्रियो विष्णुपूजां चकार।
मुनिक्षु दुर्घान्नमयं महागिरिं
नृपाय भृत्याय च दत्तवानसौ ॥ १४

यावत्स राजा बुभुजे सभूत्य-
स्तावच्च सूर्यो गतवान् नृपास्तम्।
रात्री च गीतादिविनोदयुक्तः
शेते स राजा मुनिनिर्मिते गृहे ॥ १५

ततः प्रभाते विमले स्वप्रलब्धमिवाभवत्।
भूमिभागं ततः कंचिद् दृष्ट्वासी चिन्तयन्तुपः ॥ १६

किमियं तपसः शक्तिर्मुनेरस्य महात्मनः।
सुरभ्या वा महाभाग दूहि मे त्वं पुरोहित ॥ १७

इत्युक्तः कार्तवीर्येण तमुवाच पुरोहितः।
मुनेः सामर्थ्यमप्यस्ति सिद्धिश्चेयं हि गोर्नृप ॥ १८

तथापि सा न हर्तव्या त्वया लोभान्नराधिप।
यस्त्वेतां हर्तुमिच्छेद् वै तस्य नाशो धुवं भवेत् ॥ १९

मुनिके इस प्रकार कहते ही राजा कार्तवीर्यने उस उत्तम गृहमें प्रवेश किया। फिर दूसरे लोग दूसरे-दूसरे गृहोंमें प्रविष्ट हुए। इस प्रकार सबके यथास्थान स्थित हो जानेपर मुनिने पुनः राजा कार्तवीर्यसे कहा—'नरेश्वर! आपको स्वान करानेके लिये मैंने इन सौ उत्तम स्त्रियोंको नियत किया है। जैसे स्वर्गमें देवराज इन्द्र अप्सराओंके नृत्य-गीत सुनते हुए स्वान करते हैं, उसी प्रकार आप भी इन स्त्रियोंके नृत्य-गीतसे आनन्दित हो इच्छानुसार स्वान कीजिये' ॥ ११-१२ ॥

भूप। (मुनिकी आजासे) वहाँ राजा कार्तवीर्यने इन्द्रकी भाँति मधुर वाणीं और गीत आदिके शब्दोंसे आनन्दित होते हुए स्वान किया। स्वान कर लेनेपर मुनिने उन्हें दो सुन्दर सुशोभित वस्त्र दिये। धौतवस्त्र पहन और ऊपरसे चादर ओढ़कर राजाने नित्य-नियम करानेके बाद भगवान् विष्णुकी पूजा की। फिर उन मुनिवर्सने गीसे अस्त्रमय महान् पर्वतका दोहन करके राजा तथा राजसेवकवृन्दको अर्पित किया। नृप! राजा तथा उनके भूत्यगणोंने जबतक भोजनका कार्य सम्पन्न किया, तबतक सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये। तब उन्होंने रातको भी मुनिके बनाये हुए उस भवनमें गीत आदि विनोदोंसे आनन्दित हो शयन किया ॥ १३—१५ ॥

तदनन्तर निर्मल प्रभातकाल होते ही स्वप्रमें मिली हुई सम्पत्तिके समान सब कुछ लुप्त हो गया। फिर वहाँ केवल कोई भूभागमात्र ही अवशिष्ट देख राजाने मन-ही-मन विचार किया और अपने पुरोहितसे पूछा—'महाभाग पुरोहितजी! यह महात्मा जमदग्नि मुनिके तपकी शक्ति थी या कामधेनु गौकी? इसे आप मुझे बताइये।' कार्तवीर्यके इस प्रकार पूछनेपर पुरोहितने उससे कहा—'राजन! मुनिमें भी सामर्थ्य है, परंतु यह सिद्धि तो गौकी ही थी। तो भी नरेश्वर। आप लोभवश उस गौका अपहरण न करें; क्योंकि जो उसे हर लेनेकी इच्छा करता है, उसका निष्पत्ति ही विनाश हो जाता है' ॥ १६—१९ ॥

अथ मन्त्रिवरः प्राह ब्राह्मणो ब्राह्मणप्रियः।
राजकार्यं न पश्येद् वै स्वपक्षस्यैव पोषणात्॥ २०

हे राजंस्त्वयि तिष्ठन्ति गृहाणि विविधानि च।
तथा सुवर्णपात्राणि शयनादीनि च स्त्रियः॥ २१

तां धेनुं प्राप्य राजेन्द्र लीयमानानि तत्क्षणात्।
अस्माभिस्तत्र दृष्टानि नीयतां धेनुरुत्तमा॥ २२

तदेवं योग्या राजेन्द्र यदीच्छसि महामते।
गत्वाहमानयिष्यामि आज्ञां मे देहि भूभुज॥ २३

इत्युक्तो मन्त्रिणा राजा तथेत्याह नृपोत्तम।
सचिवस्तत्र गत्वाथ सुरभिं हर्तुमारभत्॥ २४

बारथामास सचिवं जपद्विः समन्ततः।
राजयोग्यामिमां ब्रह्मन् देहि राजे महामते॥ २५

त्वं तु शाकफलाहारी किं थेन्वा ते प्रयोजनम्।
इत्युक्त्वा तां बलाद्वत्वा नेतुं मन्त्री प्रचक्रमे॥ २६

पुनः सभार्यः स मुनिवरियामास तं नृपम्।
ततो मन्त्री सुदुष्टत्वा मुनिं हत्वा तु तं नृप॥ २७

ब्रह्महा नेतुमारेभे वायुमार्गेण सा गता।
राजा च क्षुब्धद्वयो यदी माहिष्मतीं पुरीम्॥ २८

मुनिपत्नी सुदुःखार्ता रोदयन्ती भृशां तदा।
त्रिस्समकृत्वः स्वां कुक्षिं ताङ्गयामास पार्थिव॥ २९

तद्वृपवत्रागतो रामो गृहीतपरशुस्तदा।
पुष्पादीनि गृहीत्वा तु वनान्मातरमन्नवीत्॥ ३०

अलमध्य प्रहारेण निमित्ताद् विदितं मया।
हनिष्यामि दुराचारमर्जुनं दुष्टमन्त्रिणाम्॥ ३१

त्वयीकविंशत्वारेण यस्यात्कुक्षिश्च ताङ्गिता।
त्रिस्समकृत्वस्तस्मात् हनिष्ये भुवि पार्थिवान्॥ ३२

यह सुनकर राजाके प्रधान मन्त्रीने कहा—‘महाराज! ब्राह्मण ब्राह्मणका ही प्रेमी होता है, वह अपने पक्षका पोषण करनेके कारण राजाके कार्यकी कोई परवाह नहीं करता। राजन्! उस गौको पाकर आपके पास तत्काल गुह हो जानेवाले नाना प्रकारके घर, सोनेके घाँट, शश्यादि तथा सुन्दरी स्त्रियाँ—ये सब सामान प्रस्तुत रहेंगे, जिन्हें हम लोगोंने वहाँ प्रत्यक्ष देखा है। इस उत्तम धेनुको आप अवश्य ले चलें। महामते राजेन्द्र! यह गौ आपके ही योग्य है। भूपाल! यदि आपकी इच्छा हो तो मैं स्वयं जाकर इसे ले आऊंगा। आप केवल मुझे आज्ञा दीजिये’॥ २०—२३॥

नृपवर! मन्त्रीके इस प्रकार कहनेपर राजाने ‘बहुत अच्छा’ कहकर अनुमति दे दी। फिर राजमन्त्री आश्रमपर जाकर गौका अपहरण करने लगा। तब जमदग्नि मुनिने उसे सब ओरसे मना किया, किन्तु उसने उनकी बात न मानते हुए कहा—‘महाबुद्धिमान् ब्राह्मण! यह गौ राजाके योग्य है; अतः इसे राजाको ही दे दीजिये। आप तो साग और फल खानेवाले हैं; आपको इस गायसे क्या काम है?’ यों कहकर मन्त्री उस गौको बलपूर्वक ले जाने लगा। राजन्! तब उस मुनिने स्त्रीसहित आकर उसे पुनः रोका। इसपर उस दुष्टत्वा और ब्रह्महत्यारे मन्त्रीने उस मुनिका चध करके गौको ज्यों ही ले जाना चाहा, त्यों ही वह दिव्य गौ आकाशमार्गसे चली गयी और राजा मन-ही-मन क्षुब्ध होकर माहिष्मती नगरीको लौट आया॥ २४—२८॥

राजन्! उस समय मुनिकी पत्नी दुःखसे पीड़ित होकर अत्यन्त विलाप करने लगी और प्राण त्याग देनेकी इच्छासे अपनी कुक्षि (उदर) में उसने इक्कीस बार मुक्का मारा। माताका विलाप सुनकर परशुरामजी बनसे फूल आदि लेकर हाथमें कुलहाड़ी लिये उसी समय आये और मातासे चोले—‘मा! इस प्रकार छाती पीटनेकी आवश्यकता नहीं है। मैं सब कुछ शकुनसे जान गया हूँ। उस दुष्ट मन्त्रीवाले दुराचारी राजा अर्जुनका मैं अवश्य वध करूँगा। मातः! चौंकि तुमने अपनी कुक्षिमें इक्कीस बार प्रहार किया है, इसलिये मैं इस भूमण्डलके क्षत्रियोंका इक्कीस बार संहार करूँगा’॥ २९—३२॥

इति कृत्वा प्रतिज्ञां स गृहीत्वा परशुं ययौ।
 माहिष्मतीं पुरीं प्राप्य कार्तवीर्यमथाहृयत् ॥ ३३
 युद्धार्थमागतः सोऽथ अनेकाक्षीहिणीयुतः ।
 तयोर्युद्धमभूत्तत्र भैरवं लोमहर्षणम् ॥ ३४
 पिण्डिताशिजनानन्दं शस्त्रास्त्रशतसंकुलम् ।
 ततः परशुरामोऽभूत्महाबलपराक्रमः ॥ ३५
 परं ज्योतिरचिन्त्यात्मा विष्णुः कारणमूर्तिमान् ।
 कार्तवीर्यबलं सर्वमनेकैः क्षत्रियैः सह ॥ ३६
 हत्वा निपात्य भूमीं तु परमाद्भुतविक्रमः ।
 कार्तवीर्यस्य बाहूनां वनं चिच्छेद रोषवान् ।
 छिन्ने बाहुबने तस्य शिरश्चिच्छेद भार्गवः ॥ ३७
 विष्णुहस्ताद्बृंधं प्राप्य चक्रवर्तीं स पार्थिवः ।
 दिव्यरूपधरः श्रीमान् दिव्यगन्धानुलेपनः ॥ ३८
 दिव्यं विमानमारुह्यं विष्णुलोकमवासवान् ।
 क्रोधात्परशुरामोऽपि महाबलपराक्रमः ॥ ३९
 त्रिसप्तकृत्वो भूम्यां वै पार्थिवान्निजघान सः ।
 क्षत्रियाणां वधात्तेन भूमेभर्गोऽवतारितः ॥ ४०
 भूमिश्च सकला दत्ता कश्यपाय महात्मने ।
 इत्येष जामदग्न्याख्यः प्रादुर्भावो मयोदितः ॥ ४१
 यश्च तच्छृणुयाद्वक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४२
 अवतीर्य भूमीं हरिरेष साक्षात्
 त्रिसप्तकृत्वः क्षितिपान्निहत्य सः ।
 क्षात्रं च तेजो प्रविभन्य राजन्
 रामः स्थितोऽद्यापि गिरौ महेन्द्रे ॥ ४३

इति श्रीनरसिंहपुराणे परशुरामप्रादुर्भावो नाम पद्मतारिसोऽध्यायः ॥ ४६ ॥
 इति प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'परशुरामावतार' नामक छियातीसवर्ग अध्याय पूरा हुआ ॥ ४६ ॥

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके फरसा लेकर वे वहाँसे चल दिये और माहिष्मती पुरीमें जाकर उन्होंने राजा कार्तवीर्य अर्जुनको ललकारा । तब वह अनेक अक्षीहिणी सेनाके साथ युद्धके लिये आया । वहाँ उन दोनोंमें महाभयानक रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ, जो सैकड़ों अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहारसे व्याप्त तथा मास खानेवाले प्राणियोंको आनन्द देनेवाला था । उस समय परशुरामजी अपनेमें अचिन्त्यस्वरूप, परम ज्योतिर्मय, कारणमूर्ति भगवान् विष्णुकी भावना करके महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न हो गये । उन्होंने परम आक्षर्यमय पौरुष प्रकट करते हुए कार्तवीर्यकी असंख्य क्षत्रियोंसे युक्त सम्पूर्ण सेनाको मारकर भूमिपर गिरा दिया और रोषसे भरकर कार्तवीर्यकी समस्त भुजाएँ काट डालीं । उसके बाहुबनका उच्छेद हो जानेपर भृगुनन्दन परशुरामने उसका मस्तक भी घड़से अलग कर दिया ॥ ३३—३७ ॥

इस प्रकार वह चक्रवर्ती राजा कार्तवीर्य श्रीभगवान् विष्णुके हाथसे वधको प्राप्त होकर दिव्यरूप धारण करके, श्रीसम्पत्र एवं दिव्य चन्दनोंसे अनुलिप्त होकर, दिव्य विमानपर आरूढ़ हो, विष्णुधामको प्राप्त हुआ । फिर महान् बल और पराक्रमवाले परशुरामजीने भी इस पृथ्वीके क्षत्रियोंका इककीस बार संहार किया । इस प्रकार क्षत्रियोंका वध करके उन्होंने भूमिका भार उतारा और सम्पूर्ण पृथ्वी महात्मा कश्यपजीको दान कर दी ॥ ३८—४० ॥

इस प्रकार मैंने तुमसे यह 'जामदग्न्य' (परशुराम) नामक अवतारका वर्णन किया । जो भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । राजन्! इस तरह पृथ्वीपर अवतीर्ण होनेके बाद ये साक्षात् भगवान् विष्णुस्वरूप परशुरामजी इककीस बार क्षत्रियोंको मारकर, क्षत्रियतेजको छिन-भिन्न करके आज भी महेन्द्र पर्वतपर विराजमान हैं ॥ ४१—४३ ॥

सैंतालीसवाँ अध्याय

श्रीरामावतारकी कथा—श्रीरामके जन्मसे लेकर विवाहतकके चरित्र

श्रीमार्कण्डेय उकाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि प्रादुर्भावं हरे: शुभम् ।
 निहतो रावणो येन सगणो देवकण्टकः ॥ १

श्रीमार्कण्डेयजी बोले—राजन्! अब मैं भगवान् विष्णुके उस शुभ अवतारका वर्णन करूँगा, जिसके द्वारा देवताओंके लिये कण्टकस्वरूप रावण अपने गणोंसहित मारा गया । तुम [ध्यान देकर] सुनो ॥ १ ॥

ब्रह्मणो मानसः पुत्रः पुलस्त्योऽभूम्हामुनिः ।
तस्य वै विश्रवा नाम पुत्रोऽभूतस्य राक्षसः ॥ २
तस्माज्ञातो महाबीरो रावणो लोकरावणः ।
तपसा महता युक्तः स तु लोकानुपाद्रवत् ॥ ३
सेन्द्रा देवा जितास्तेन गन्धर्वाः किंनरास्तथा ।
यक्षाश्च दानवाश्च तेन राजन् विनिर्जिताः ॥ ४
स्त्रियश्च तु सुर्लिपिण्यो हतास्तेन दुरात्मना ।
देवादीनां नृपत्रेषु रक्षानि विविधानि च ॥ ५
रणे कुबेरं निर्जित्य रावणो बलदर्पितः ।
तत्पुरीं जग्ने लङ्घां विमानं चापि पुष्पकम् ॥ ६
तस्यां पुर्यां दशग्रीवो रक्षसामधिपोऽभवत् ।
पुत्राश्च बहवस्तस्य बभूवुरमितीजसः ॥ ७
राक्षसाश्च तमाश्रित्य भावलपराक्रमाः ।
अनेककोटयो राजन् लङ्घायां निवसन्ति ये ॥ ८
देवान् पितृन् मनुष्यांश्च विद्याधरगणानपि ।
यक्षांश्च ततः सर्वे घातयन्ति दिवानिशम् ॥ ९
संत्रसं तद्दयादेव जगदासीच्चराचरम् ।
दुःखाभिभूतमत्यर्थं सम्बूद्धं नराधिप ॥ १०
एतस्मिन्नेव काले तु देवाः सेन्द्रा महर्षयः ।
सिद्धा विद्याधराश्च गन्धर्वाः किंनरास्तथा ॥ ११
गुह्यका भुजगा यक्षा ये चान्ये स्वर्गवासिनः ।
ब्रह्मणमग्रतः कृत्वा शङ्करं च नराधिप ॥ १२
ते ययुर्हतविकान्ताः क्षीराच्छेस्तटमुत्तमम् ।
तत्रारात्र्य हरिं देवास्तस्थुः प्राञ्छलयस्तदा ॥ १३
ब्रह्मा च विष्णुपारात्र्य गन्धपुष्पादिभिः शुभैः ।
प्राञ्छलिः प्रणतो भूत्वा वासुदेवमथास्तुवत् ॥ १४

ब्रह्माजीच

नमः क्षीराच्छिवासाय नागपर्यङ्कशायिने ।
नमः श्रीकरसंस्पृष्टदिव्यपादाय विष्णवे ॥ १५
नमस्ते योगनिद्राय योगान्तर्भाविताय च ।
ताक्षर्यासनाय देवाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ १६

ब्रह्माजीके मानस पुत्र जो महामुनि पुलस्त्यजी हैं, उनके 'विश्रवा' नामक पुत्र हुआ। विश्रवाका पुत्र राक्षस रावण हुआ। समस्त लोकोंको रुलानेवाला महाबीर रावण विश्रवासे ही उत्पन्न हुआ था। वह महान् तपसे युक्त होकर समस्त लोकोंपर धावा करने लगा। राजन्। उसने इन्द्रसहित समस्त देवताओं, गन्धर्वों और किंनरोंको जीत लिया तथा यक्षों और दानवोंको भी अपने वशीभूत कर लिया। नृपत्रेषु! उस दुरात्माने देवता आदिकी सुन्दरी स्त्रियाँ और नाना प्रकारके रुप भी हर लिये। बलाभिमानी रावणने युद्धमें कुबेरको जीतकर उनकी पुरी लङ्घा और पुष्पक-विमानपर भी अधिकार जमा लिया ॥ २—६ ॥

उस लङ्घापुरीमें दशमुख रावण राक्षसोंका राजा हुआ। उसके अनेक पुत्र उत्पन्न हुए, जो अपरिमित बलसे सम्पन्न थे। राजन्। लङ्घामें जो कई करोड़ महाबली और पराक्रमी राक्षस निवास करते थे, वे सभी रावणका सहारा लेकर देवता, पितर, मनुष्य, विद्याधर और यक्षोंका दिन-रात संहार किया करते थे। नराधिप! समस्त चराचर जगत् उसके भयसे भीत और अत्यन्त दुःखी हो गया था ॥ ७—१० ॥

नरेश! इसी समय जिनका पुरुषार्थ प्रतिहत हो गया था, वे इन्द्रसहित समस्त देवता, महर्षि, सिद्ध, विद्याधर, गन्धर्व, किंनर, गुह्यक, सर्प, यक्ष तथा जो अन्य स्वर्गवासी थे, वे ब्रह्मा और शङ्करजीको आगे करके क्षीरसागरके उत्तम तटपर गये। वहाँ उस समय देवतालोग भगवान्‌की आराधना करके हाथ जोड़कर खड़े हो गये। फिर ब्रह्माजीने गन्ध-पुष्प आदि सुन्दर उपचारोंद्वारा भगवान् वासुदेव विष्णुकी आराधना की और हाथ जोड़, प्रणाम करके वे उनकी स्तुति करने लगे ॥ ११—१४ ॥

ब्रह्माजी छोले—जो क्षीरसागरमें निवास करते हैं, सर्पकी शब्दापर सौते हैं, जिनके दिव्य चरण भगवती श्रीलक्ष्मीजीके कर-कमलोंद्वारा सहलाये जाते हैं, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है। योग ही जिनकी निद्रा है, योगके द्वारा अन्तःकरणमें जिनका ध्यान किया जाता है और जो गहुङ्गजीके ऊपर आसीन होते हैं, उन आप भगवान् गोविन्दको नमस्कार है।

नमः क्षीराविद्यकल्लोलस्युष्टमात्राय शार्ङ्गिणे ।
नमोऽरविन्दपादाय पद्मानाभाय विद्यावे ॥ १७
भक्तार्चितसुपादाय नमो योगप्रियाय वै ।
शुभाङ्गाय सुनेत्राय माधवाय नमो नमः ॥ १८
सुकेशाय सुनेत्राय सुललाटाय चक्रिणे ।
सुवक्राय सुकर्णाय श्रीधराय नमो नमः ॥ १९
सुवक्षसे सुनाभाय पद्मानाभाय वै नमः ।
सुभूते चारुदेहाय चारुदन्ताय शार्ङ्गिणे ॥ २०
चारुजङ्घाय दिव्याय केशवाय नमो नमः ।
सुनखाय सुशान्ताय सुविद्याय गदाभृते ॥ २१
धर्मप्रियाय देवाय वामनाय नमो नमः ।
असुरघनाय चोग्राय रक्षोघनाय नमो नमः ॥ २२
देवानामार्तिनाशाय भीमकर्मकृते नमः ।
नमस्ते लोकनाथाय रावणान्तकृते नमः ॥ २३

मार्कण्डेय उक्ताच

इति स्तुतो हृषीकेशस्तुतोष परमेष्ठिना ।
स्वरूपं दर्शयित्वा तु पितामहमुवाच ह ॥ २४
किमर्थं तु सुरैः सार्थमागतस्त्वं पितामह ।
यत्कार्यं ब्रूहि मे ब्रह्मन् यदर्थं संस्तुतस्त्वया ॥ २५
इत्युक्तो देवदेवेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।
सर्वदेवगणैः सार्थं ब्रह्मा प्राह जनार्दनम् ॥ २६

ब्रह्माजीच

नाशितं तु जगत्सर्वं रावणेन दुरात्मना ।
सेन्नाः पराजितास्तेन बहुशो रक्षसा विभो ॥ २७
राक्षसैर्भक्षिता मर्त्या यज्ञाश्रापि विदूषिताः ।
देवकन्या हृतास्तेन अलाच्छतसहस्रशः ॥ २८
त्वामृते पुण्डरीकाक्षं रावणास्य वधं प्रति ।
न समर्थां यतो देवास्त्वमतस्तद्वधं कुरु ॥ २९

क्षीरसागरकी लहरें जिनके शरीरका स्पर्श करती हैं, जो 'शार्ङ्ग' नामक धनुष धारण करते हैं, जिनके चरण कमलके समान हैं तथा जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है। जिनके सुन्दर चरण भक्तोंद्वारा पूजित हैं, जिन्हें योग प्रिय है तथा जिनके अङ्ग और नेत्र सुन्दर हैं, उन भगवान् लक्ष्मीपतिको बारंबार नमस्कार है। जिनके केश, नेत्र, ललाट, मुख और कान बहुत ही सुन्दर हैं, उन चक्रयाणि भगवान् श्रीधरको प्रणाम है। जिनके वक्षःस्थल और नाभि मनोहर हैं, उन भगवान् पद्मानाभको नमस्कार है। जिनकी भीहें सुन्दर, शरीर मनोहर और दाँत उज्ज्वल हैं, उन भगवान् शार्ङ्गधन्वाको प्रणाम है। रुचिर पिंडलियोंवाले दिव्यरूपधारी भगवान् केशवको नमस्कार है। जो सुन्दर नखोंवाले, परमशान्त और सद्दिद्युओंके आश्रय हैं, उन भगवान् गदाधरको नमस्कार है। धर्मप्रिय भगवान् वामनको बारंबार प्रणाम है। असुर और राक्षसोंके हन्ता उग्र (नृसिंह)-रूपधारी भगवान्‌को नमस्कार है। देवताओंकी पीड़ा हरनेके लिये भयंकर कर्म करनेवाले तथा रावणके संहारक आप भगवान् जगन्नाथको प्रणाम है ॥ १५—२३ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—ब्रह्माजीके द्वारा इस प्रकार स्तुति की जानेपर भगवान् हृषीकेश प्रसन्न हो गये और अपना स्वरूप प्रत्यक्ष दिखाकर वे भगवान् ब्रह्माजीसे बोले—'पितामह ! तुम देवताओंके साथ किसलिये यहाँ आये हो ? ब्रह्मन् ! जो कार्य आ पड़ा हो और जिसके लिये तुमने मेरी स्तुति की है, वह बताओ।' समस्त लोकोंको उत्पन्न करनेवाले भगवान् विष्णुके द्वारा इस प्रकार प्रश्न किये जानेपर सम्पूर्ण देवगणोंके साथ विराजमान ब्रह्माजीने उन जनार्दनसे कहा ॥ २४—२६ ॥

ब्रह्माजी बोले—विभो ! दुरात्मा रावणने समस्त जगत्में भीषण संहार मचा रखा है। उस राक्षसने इन्द्रसहित देवताओंको कई बार परास्त किया है। रावणके पार्श्ववर्ती राक्षसोंने असंख्य मनुष्योंको खा लिया और उनके यज्ञोंको दूषित कर दिया है। स्वयं रावणने सैकड़ों-हजारों देवकन्याओंका अपहरण किया है। कमलनयन ! चूँकि आपको छोड़कर दूसरे देवता रावणका वध करनेमें समर्थ नहीं हैं, अतः आप ही उसका वध करें ॥ २७—२९ ॥

इत्युक्तो ब्रह्मणा विष्णुर्द्वयाणमिदमव्यवीत्।
श्रृणुष्वावहितो ब्रह्मन् यद्गदामि हितं वचः ॥ ३०
सूर्यस्त्वंशोद्दत्तः श्रीमान् राजाऽऽसीद्गुवि वीर्यवान्।
नाम्ना दशरथख्यातस्तस्य पुत्रो भवाम्यहम् ॥ ३१
रावणस्य वधार्थाय चतुर्धाशेन सत्तम्।
स्वांशैर्वानिरस्तपेण सकला देवतागणाः ॥ ३२
वतार्यन्तां विश्वकर्तः स्यादेवं रावणक्षयः।
इत्युक्तो देवदेवेन ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ३३
देवाश्च ते प्रणम्याथ मेरुपृष्ठं तदा ययुः।
स्वांशैर्वानिरस्तपेण अवतेरुक्षु भूतले ॥ ३४
अथापुत्रो दशरथो मुनिभिर्दपारगैः।
इष्टिं तु कारयामास पुत्रप्राप्तिकरीं नृपः ॥ ३५
ततः सौवर्णपात्रस्थं हविरादाद्य पायसम्।
वह्निः कुण्डात् समुत्तस्थौ नूनं देवेन नोदितः ॥ ३६
आदाद्य मुनयो मन्त्राच्यक्तुः पिण्डद्वयं शुभम्।
दत्ते कौशल्यकैकेयोद्देवं पिण्डे मन्त्रमन्त्रिते ॥ ३७
ते पिण्डप्राप्ताने काले सुमित्राया भग्नामते।
पिण्डाभ्यामल्पमल्पं तु सुभागिन्याः प्रयच्छतः ॥ ३८
ततस्ताः प्राशयामासू राजपत्न्यो यथाविधि।
पिण्डान् देवकृतान् प्राश्य प्रापुर्गर्भाननिन्दितान् ॥ ३९
एवं विष्णुर्दशरथाजातस्तत्पतिषु त्रिषु।
स्वांशैर्लोकहितार्थैव चतुर्थी जगतीषते ॥ ४०
रामश्च लक्ष्मणश्चैव भरतः शत्रुघ्न एव च।
जातकर्मादिके प्राप्य संस्कारं मुनिसंस्कृतम् ॥ ४१
मन्त्रपिण्डवशाद्योगं प्राप्य चेरुर्यथार्भकाः।
रामश्च लक्ष्मणश्चैव सह नित्यं विचेरतुः ॥ ४२
जन्मादिकृतसंस्कारी पितुः प्रीतिकरी नृप।
ववृथाते महावीर्या श्रुतिशब्दातिलक्षणी ॥ ४३
भरतः कैकयो राजन् भात्रा सह गृहेऽवसत्।
वेदशास्त्राणि बुद्धुये शास्त्रशास्त्रं नृपोत्तम ॥ ४४

ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेपर भगवान् विष्णु उनसे यों बोले—‘ब्रह्मन्! मैं तुम लोगोंके हितके लिये जो बात कहता हूँ उसे ध्यान देकर सुनो। पृथ्वीपर सूर्यवंशमें उत्पन्न श्रीमान् दशरथ नामसे प्रसिद्ध जो पराक्रमी रुजा है, मैं उन्हींका पुत्र होऊँगा। सत्तम्! रावणका वध करनेके लिये मैं अंशतः चार स्वरूपोंमें प्रकट होऊँगा। विश्वस्त्रा ब्रह्माजी। आप सभी देवताओंको आदेश दें कि वे अपने-अपने अंशसे बानररूपमें अवतीर्ण हों। इस प्रकार करनेसे ही रावणका संहार होगा।’ देवदेव भगवान्के यों कहनेपर लोकपितामह ब्रह्माजी तथा अन्य देवता उनको प्रणाम करके मेरुशिखरपर चले गये और पृथ्वीतलपर अपने-अपने अंशसे बानररूपमें अवतीर्ण हुए ॥ ३०—३४ ॥

तदनन्तर पुत्रहीन राजा दशरथने वेदके पारगामी मुनियोंद्वारा पुत्रकी प्राप्ति करानेवाले ‘पुत्रेषि’ नामक यज्ञका अनुष्टान कराया। तब भगवान्को प्रेरणासे अग्रिदेव सुवर्णपात्रमें रखी हुई होमकी खीर हाथमें लिये कुण्डसे प्रकट हुए। मुनियोंने वह खीर ले ली और मन्त्र पढ़ते हुए उसके दो सुन्दर पिण्ड बनाये। उन्हें मन्त्रसे अधिमन्त्रित कर उन दोनों पिण्डोंको कौसल्या तथा कैकेयीके हाथमें दे दिया। महामते! पिण्ड-भोजनके समय उन दोनों रानियोंने दोनों पिण्डोंमेंसे थोड़ा-थोड़ा निकालकर सौभाग्यवती सुमित्राको दे दिया। फिर उन तीनों रानियोंने विधिपूर्वक उन क्षीरपिण्डोंका भोजन किया। उन देवनिमित पिण्डोंका भक्षण करनेके कारण उन सभी रानियोंने उत्तम गर्भ धारण किये ॥ ३५—३९ ॥

पृथ्वीनाथ! इस प्रकार भगवान् विष्णु लोकहितके लिये ही राजा दशरथसे उनकी तीनों रानियोंके गर्भसे अपने चार अंशोंद्वारा वे राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न नामक चार रूप धारण करके प्रकट हुए। मुनियोंद्वारा जातकर्मादि संस्कार हो जानेपर वे मन्त्रयुक्त पिण्डके अनुसार दो-दो एक साथ रहते हुए सामान्य बालकोंकी भाँति विचरने लगे। इनमें राम और लक्ष्मण सदा एक साथ रहते थे। नरपाल! जातकर्मादि संस्कारोंसे सम्पन्न हो, वे दोनों महान् शक्तिशाली भाई पिताकी प्रसन्नता बढ़ाते हुए बढ़ने लगे। उनके शुभ लक्ष्मण अकृतपूर्व एवं वर्णनातीत थे। अधेष्ठा वे वेद और व्याकरणादि शास्त्रोंमें पारंगत होनेके शुभलक्षणसे सुशोभित थे। राजन्! कैकेयीनन्दन भरत अपने अनुज शत्रुघ्नके साथ प्रायः घरपर ही रहते थे। नृपोत्तम्! उन्होंने वेदशास्त्र और अस्त्रविद्या भी सीख ली थी ॥ ४०—४४ ॥

एतस्मिन्नेब्र काले तु विश्वामित्रो महातपाः।
यागेन यष्टुमारेभे विधिना मधुसूदनम्॥ ४५

स तु विष्णेन वागोऽभूद्राक्षसैर्बहुशः पुरा।
नेतुं स यागरक्षार्थं सम्प्राप्तो रामलक्ष्मणौ॥ ४६

विश्वामित्रो नृपश्रेष्ठ तत्पितुर्मन्दिरं शुभम्।
दशरथस्तु तं दृष्ट्वा प्रत्युत्थाय महामतिः॥ ४७

अर्ध्यपाद्यादि विधिना विश्वामित्रमपूजयत्।
स पूजितो मुनिः प्राह राजानं राजसंनिधी॥ ४८

शृणु राजन् दशरथ यदर्थमहमागतः।
तत्कार्यं नृपशार्दूल कथयामि तत्वाग्रतः॥ ४९

राक्षसैर्नाशितो यागो बहुशो मे दुरासदैः।
यज्ञस्य रक्षणार्थं मे देहि त्वं रामलक्ष्मणौ॥ ५०

राजा दशरथः श्रुत्वा विश्वामित्रबचो नृप।
विषण्णवदनो भूत्वा विश्वामित्रमुवाच ह॥ ५१

आलाभ्यां मम पुत्राभ्यां किं ते कार्यं भविष्यति।
अहं त्वया सहागत्य शक्त्या रक्षामि ते मखम्॥ ५२

राजस्तु वचनं श्रुत्वा राजानं मुनिरक्षीत्।
रामोऽपि शब्दनुते नूनं सर्वज्ञाशयितुं नृप॥ ५३

रामेणीब्र हि ते शक्या न त्वया राक्षसा नृप।
अतो मे देहि रामं च न चिन्तां कर्तुमर्हसि॥ ५४

इत्युक्तो मुनिना तेन विश्वामित्रेण धीमता।
तूष्णीं स्थित्वा क्षणं राजा मुनिवर्यमुवाच ह॥ ५५

यद्वीपि मुनिश्रेष्ठ प्रसन्नस्त्वं निबोध मे।
राजीवलोचनं राममहं दास्ये सहानुजम्॥ ५६

किं त्वस्य जननी ऋष्यन् अद्वैतं मरिष्यति।
अतोऽहं चतुरङ्गेण बलेन सहितो मुने॥ ५७

आगत्य राक्षसान् हन्मीत्येवं मे मनसि स्थितम्।

इन्हीं दिनों महातपस्यी विश्वामित्रजीने यज्ञविधिसे भगवान् मधुसूदनका यजन आरम्भ किया। परंतु पहले उस यज्ञमें बहुत बार राक्षसोंद्वारा विघ्न ढाला गया था, नृपश्रेष्ठ! इसलिये इस बार विश्वामित्रजी यज्ञकी रक्षाके लिये राम तथा लक्ष्मणको ले जानेके निमित्त उनके पिताके सुन्दर महलमें आये। महाबुद्धिमान् दशरथजी उन्हें देखकर उठ खड़े हुए और अर्ध-पाद्यादि उपचारोंद्वारा उन्होंने विधिवत् उनकी पूजा की। इस प्रकार उनके द्वारा सम्मानित हो, मुनिने अन्य राजाओंके निकट विराजमान राजा दशरथसे कहा—‘राजसिंह महाराज दशरथ! सुनो—मैं जिस कार्यके लिये आया हूं, वह तुम्हारे सामने निवेदन करता हूं। मेरे यज्ञको दुर्धर्ष राक्षसोंने अनेक बार नष्ट किया है; अतः उसकी रक्षाके लिये तुम राम और लक्ष्मणको मुझे दे दो’॥ ४५—५०॥

नरेश्वर! विश्वामित्रजीकी बात सुननेपर राजा दशरथ-के मुखपर विषाद छा गया। वे उनसे बोले—‘भगवन्! मेरे ये दोनों पुत्र अभी बालक हैं। इनसे आपका कौन-सा कार्य सिद्ध होगा? मैं स्वयं आपके साथ चलकर यथाशक्ति यज्ञकी रक्षा करूँगा।’ राजाकी बात सुनकर मुनि उनसे बोले—‘नरपाल! राम भी उन सब राक्षसोंका नाश कर सकते हैं, इसमें संशय नहीं है। सच तो यह है कि रामके द्वारा ही वे राक्षस मारे जा सकते हैं, तुम्हारे द्वारा नहीं; अतः राजन्! तुम्हें रामको ही मुझे दे देना चाहिये और किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये’॥ ५१—५४॥

बुद्धिमान् विश्वामित्रमुनिके द्वारा यों कहे जानेपर राजा क्षणभरके लिये चुप हो गये और फिर उन मुनीश्वरसे बोले—‘मुनिश्रेष्ठ! मैं जो कह रहा हूं, उसे आप प्रसन्नतापूर्वक सुनें। मैं कमललोचन रामको लक्ष्मणके सहित आपको दे तो दूँगा, परंतु ऋष्यन्! इनकी माता इन्हें देखे बिना मर जायगी। इसलिये मुने! मेरा ऐसा विचार है कि मैं स्वयं ही चतुरङ्गिणी सेनाके साथ चलकर सब राक्षसोंका वध करूँ’॥ ५५—५७॥

विश्वामित्रः पुनः प्राह राजानमभितीजसम् ॥ ५८
 नाज्ञो रामो नृपश्रेष्ठ स सर्वज्ञः समः क्षमः ।
 शेषनारायणावेतौ तत्वं पुत्रौ न संशयः ॥ ५९
 दुष्टानां निग्रहार्थाय शिष्टानां पालनाय च ।
 अवतीर्णा न संदेहो गृहे तत्वं नराधिप ॥ ६०
 न मात्रा न त्वया राजन् शोकः कार्योऽत्र चापवपि ।
 निःक्षेपे च महाराज अर्पयिष्यामि ते सुती ॥ ६१
 इत्युक्तो दशरथस्तेन विश्वामित्रेण धीमता ।
 तच्छापभीतो मनसा नीयताभित्यभाषत ॥ ६२
 कृच्छात्पित्रा विनिर्मुक्तं राममादाय सानुजम् ।
 ततः सिद्धाश्रमं राजन् सम्प्रतस्थे स कौशिकः ॥ ६३
 तं प्रस्थितमथालोक्य राजा दशरथस्तदा ।
 अनुवृन्धाब्दवीदेतद् वचो दशरथस्तदा ॥ ६४
 अपुत्रोऽहं पुरा ब्रह्मन् ब्रह्मिः काम्यकर्म्यभिः ।
 मुनिप्रसादादधुना पुत्रबानस्मि सत्तम ॥ ६५
 मनसा तद्वियोगं तु न शक्ष्यामि विशेषतः ।
 त्वमेव जानासि मुने नीत्वा शीघ्रं प्रयच्छ मे ॥ ६६
 इत्येवमुक्तो राजानं विश्वामित्रोऽब्दवीत्पुनः ।
 समाप्तयज्ञश्च पुनर्नेष्ये रामं च लक्ष्मणम् ॥ ६७
 सत्यपूर्वं तु दास्यामि न चिन्तां कर्तुमर्हसि ।
 इत्युक्तः प्रेषयामास रामं लक्ष्मणसंयुतम् ॥ ६८
 अनिच्छन्नपि राजासौ मुनिशापभयान्वयः ।
 विश्वामित्रस्तु तौ गृह्य अयोध्याया यथौ शनैः ॥ ६९
 सरव्यास्तीरमासाद्य गच्छन्नेव स कौशिकः ।
 तयोः प्रीत्या स राजेन्द्र द्वे विद्ये प्रथमं ददी ॥ ७०
 बलामतिबलां चैव समन्वे च ससंग्रहे ।
 क्षुत्पिपासापनयने पुनश्चैव महामतिः ॥ ७१
 अस्वग्राममशेषं तु शिक्षयित्वा तु तौ तदा ।
 आश्रमाणि च दिव्यानि मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ ७२
 दश्यित्वा उपित्वा च पुण्यस्थानेषु सत्तमः ।
 गङ्गामुत्तीर्य शोणस्य तीरमासाद्य पश्चिमम् ॥ ७३

विश्वामित्रजी यह सुनकर उन अभित-तेजस्वी राजासे पुनः बोले— 'नृपश्रेष्ठ ! रामचन्द्र अबोध नहीं हैं ; वे सर्वज्ञ, समदशी और परम समर्थ हैं । इसमें संशय नहीं कि तुम्हारे ये दोनों पुत्र राम और लक्ष्मण साक्षात् नारायण एवं शेषनारायण हैं । नराधिप ! दुष्टोंको दण्ड देने और सत्पुरुषोंकी रक्षा करनेके लिये ही ये दोनों आपके घरमें अवतीर्ण हुए हैं, इसमें संदेह नहीं है । राजन् ! इनकी माता तथा आपको इस विषयमें थोड़ी-सी भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये । महाराज ! ये मेरे पास धरोहरके तौरपर रहेंगे । यज्ञ पूर्ण हो जानेपर मैं इन दोनोंको आपके हाथमें दे दूँगा' ॥ ५८—६१ ॥

बुद्धिमान् विश्वामित्रजीके यों कहनेपर दशरथजी मन-ही-मन उनके शापसे ढरते हुए बोले— 'अच्छा, इन्हें ले जाइये ।' राजन् । पिताके द्वारा बड़ी कठिनाईसे छोड़े गये श्रीराम और लक्ष्मणको साथ ले विश्वामित्र मुनि तब अपने सिद्धाश्रमकी ओर प्रस्थित हुए । उन्हें जाते देख उस समय राजा दशरथ कुछ दूर पीछे-पीछे गये और तब मुनिसे इस प्रकार बोले— 'साधुश्रेष्ठ ! ब्रह्मन् ! मैं पहले दीर्घकालतक पुत्रहीन रहा; मुनियोंकी कृपासे अनेक सकाम यज्ञकर्मोंका अनुष्ठान करके अब पुत्रवान् हो सका हूँ । अतः मुने । मैं मनसे भी इन पुत्रोंका अधिक कालतक वियोग नहीं सह सकूँगा, यह बात आप ही जानते हैं ; अतः इन्हें ले जाकर फिर यथासम्भव शोध मेरे पास पहुँचा दीजियेगा' ॥ ६२—६६ ॥

उनके यों कहनेपर विश्वामित्रजीने पुनः राजासे कहा— 'अपना यज्ञ समाप्त हो जानेपर मैं पुनः श्रीराम और लक्ष्मण-को यहाँ ले आऊँगा तथा अपने बचनको सत्य करते हुए इन्हें बापस कर दूँगा, आप चिन्ता न करें' ॥ ६७ ॥

विश्वामित्रजीके इस प्रकार आशासन देनेपर राजाने उनके शापकी आशङ्कासे भयभीत हो, इच्छा न रहते हुए भी, श्रीराम और लक्ष्मणको उनके साथ भेज दिया । विश्वामित्रजी उन दोनों भाइयोंको साथ ले धीरे-धीरे अयोध्यासे बाहर निकले ॥ ६८-६९ ॥

राजेन्द्र ! सरयूके तटपर पहुँचकर महामति विश्वामित्रजीने चलते-चलते ही श्रीराम और लक्ष्मणको प्रेमवश पहले 'बला' और 'अतिबला' नामकी दो विद्याएँ प्रदान की, जो शुधा और पिपासाको दूर करनेवाली हैं । मुनिने उन विद्याओंको मन्त्र और संग्रह (उपसंहार) पूर्वक सिखाया । फिर उसी समय उन्हें सम्पूर्ण अस्त्र-समुदायकी शिक्षा देकर वे साधुश्रेष्ठ मुनि श्रीराम और लक्ष्मणको अनेक आत्मज्ञानी मुनीश्वरोंके दिव्य आश्रम दिखाते और पवित्र तीर्थस्थानोंमें निवास करते हुए गङ्गा नदीको पारकर शोणभद्रके पक्षिम तटपर जा पहुँचे ॥ ७०—७३ ॥

मुनिधार्मिकसिद्धांशु पश्यन्तौ रामलक्ष्मणौ ।
ऋषिभ्यश्च वरान् प्राप्य तेन नीतौ नृपात्मजौ ॥ ७४
ताटकाया बने घोरं मृत्योर्मुखमिवापरम् ।
गते तत्र नृपश्चेष्टु विश्वामित्रो महातपाः ॥ ७५
राममविलष्टकर्मणमिदं बचनमद्वीत् ।
राम राम महाब्राह्मो ताटका नाम राक्षसी ॥ ७६
रावणस्य नियोगेन बसत्यस्मिन् महावने ।
तया मनुष्या बहवो मुनिपुत्रा भृगास्तथा ॥ ७७
निहता भक्षिताश्चेव तस्मात्तां वध सत्तम् ।
इत्येवमुक्तो मुनिना रामस्तं मुनिमद्वीत् ॥ ७८
कथं हि स्वीवधं कुर्यामहमद्य महामुने ।
स्त्रीवधे तु महापापं प्रबदन्ति मनीषिणः ॥ ७९
इति रामवचः श्रुत्वा विश्वामित्र उवाच तम् ।
तस्यास्तु निधनाद्राम जनाः सर्वे निराकुलाः ॥ ८०
भवन्ति सततं तस्मात् तस्याः पुण्यप्रदो वधः ।
इत्येवं वादिनि मुनौ विश्वामित्रे निशाचरी ॥ ८१
आगता सुमहाघोरा ताटका विवृतानना ।
मुनिना प्रेरितो रामस्तां दृष्ट्वा विवृताननाम् ॥ ८२
उद्यतैकभुजयष्टिमायती
श्रोणिलम्बिपुरुषान्त्रमेखलाम् ।
तां विलोक्य बनितावधे घणां
पत्रिणा सह मुमोच राघवः ॥ ८३
शरं संधाय वेगेन तेन तस्या उरःस्थलम् ।
विषटितं द्विधा राजन् सा पपात ममार च ॥ ८४
घातयित्वा तु तामेवं तावानीय मुनिस्तु तौ ।
प्रापयामास तं तत्र नानाऋृषिनिधेवितम् ॥ ८५
नानाद्वुमलताकीर्ण नानापुष्पोपशोभितम् ।
नानानिङ्गीरतोयाद्यं विन्द्यशैलान्तरस्थितम् ॥ ८६
शाकमूलफलोपेतं दिव्यं सिद्धाश्रमं स्वकम् ।
रक्षार्थं तावुभी स्थाप्य शिक्षयित्वा विशेषतः ॥ ८७

मार्गमें मुनियों, धर्मात्माओं और सिद्धोंका दर्शन करते हुए तथा ऋषियोंसे वर प्राप्तकर, राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण विश्वामित्रजीके द्वारा उस ताटकावनमें ले जाये गये, जो यमराजके दूसरे मुखके समान भयंकर था। नृपश्चेष्टु ! वहाँ पहुँचकर महातपस्वी विश्वामित्रने अनायास ही महान् कर्म करनेवाले रामसे कहा—'महाब्राह्मो राम ! इस महान् बनमें रावणकी आज्ञासे 'ताटका' नामकी एक राक्षसी रहती है। उसने बहुत-से मनुष्यों, मुनिपुत्रों और मृगोंको मारकर अपना आहार बना लिया है; अतः सतम ! तुम उसका वध करो' ॥ ७४—७७ ॥

मुनिवर विश्वामित्रके इस प्रकार कहनेपर रामने उनसे कहा—'महामुने ! आज मैं स्त्रीका वध कैसे करूँ ? क्योंकि बुद्धिमान् लोग स्त्रीवधमें महान् पाप बतलाते हैं ।' श्रीरामकी यह बात सुनकर विश्वामित्रने उनसे कहा—'राम ! उस ताटकाको मारनेसे सभी मनुष्य सदाके लिये निर्भय हो जायेंगे, इसलिये उसका वध करना तो पुण्यदायक है' ॥ ७८—८० ॥

मुनिवर विश्वामित्र इस प्रकार कह ही रहे थे कि वह महाघोर राक्षसी ताटका मुँह फैलाये वहाँ आ पहुँची । तब मुनिकी प्रेरणासे रामने उसकी ओर देखा । वह मुँह बाये आ रही थी । उसकी छड़ी-सरीखी एक बाँह ऊपरकी ओर उठी थी । कटिप्रदेशमें घेखला (करधनी) -की जगह लिपटी हुई मनुष्यकी अंतर्दी लटक रही थी । इस रूपमें आती हुई उस निशाचरीको देखकर श्रीरामने स्त्रीवधके प्रति होनेवाली धृणा और बाणको एक साथ ही छोड़ दिया । राजन् ! उन्होंने धनुषपर बाण रखकर उसे बड़े बेगसे छोड़ा । उस बाणने ताटकाकी छातीके दो दुकड़े कर दिये । फिर तो वह धरतीपर गिरी और मर गयी ॥ ८१—८४ ॥

इस प्रकार ताटकाका वध करवाकर मुनि श्रीराम और लक्ष्मण दोनोंको अपने उस दिव्य सिद्धाश्रमपर ले आये, जो बहुत-से मुनियोंद्वारा सेवित था । वह आश्रम विन्द्य पर्वतकी मध्यवर्ती उपत्यकामें विद्यमान था । वहाँ नाना प्रकारके बृक्ष और लतासमूह फैले हुए थे और भौति-भौतिके पुष्प उसकी शोभा बढ़ा रहे थे । वह आश्रम अनेकानेक झरनोंके जलसे सुशोभित तथा शाक एवं मूल-फलादिसे सम्पन्न था । वहाँ उन दोनों राजकुमारोंको विशेषरूपसे शिक्षा देकर मुनिने उनको यज्ञकी रक्षाके लिये नियुक्त कर दिया ।

तत्क्षारब्धवान् यागं विश्वामित्रो महातपाः ।
दीक्षां प्रविष्टे च मुनौ विश्वामित्रे महात्मनि ॥ ८८

यज्ञे तु वितते तत्र कर्म कुर्वन्ति ऋत्विजः ।
मारीचश्च सुवाहुश्च बहवश्चान्यराक्षसाः ॥ ८९

आगता यागनाशाय रावणेन नियोजिताः ।
तानागतान् स विज्ञाय रामः कमललोचनः ॥ ९०

शरेण पातयामास सुवाहु धरणीतले ।
असुवर्पवाहं वर्षन्ति मारीचं भल्लकेन तु ॥ ९१

प्रताङ्गं नीतवानव्यं यथा पर्ण तु वायुना ।
शोषांस्तु हतवान् रामो लक्ष्मणक्ष्म निशाचरान् ॥ ९२

रामेण रक्षितमखो विश्वामित्रो महायशाः ।
समाप्य यागं विधिवत् पूजयामास ऋत्विजान् ॥ ९३

सदस्यानपि सम्पूर्णं यथार्हं च हारिदम् ।
रामं च लक्ष्मणं चैव पूजयामास भक्तिः ॥ ९४

ततो देवगणस्तुष्टो यज्ञभागेन सत्तम् ।
वर्वर्षं पुष्पवर्षं तु रामदेवस्य मूर्धनि ॥ ९५

निवार्यं राक्षसभयं कारथित्वा तु तन्मखम् ।
श्रुत्वा नानाकथाः पुण्या रामो भातृसमन्वितः ॥ ९६

तेन नीतो विनीतात्मा अहल्या यत्र तिष्ठति ।
व्यभिचारान्महेन्द्रेण भ्राता शासा हि सा पुरा ॥ ९७

पाषाणभूता राजेन्द्र तस्य रामस्य दर्शनात् ।
अहल्या मुक्तशापा च जगाम गौतमं प्रति ॥ ९८

विश्वामित्रस्ततस्तत्र विनायामास वै क्षणम् ।
कृतदारो मया नेयो रामः कमललोचनः ॥ ९९

इति संचिन्त्य तौ गृह्ण विश्वामित्रो महातपाः ।
शिष्यैः परिवृतोऽनेकैर्जगाम मिथिलां प्रति ॥ १००

तदनन्तर महान् तपस्वी विश्वामित्रने यज्ञ आरम्भ किया ॥ ८५—८७ ॥

महात्मा विश्वामित्र ज्यों-ही यज्ञकी दीक्षामें प्रविष्ट हुए, उस यज्ञका कार्य चालू हो गया। उसमें ऋत्विजाण अपना-अपना कार्य करने लगे। तब रावणके हारा नियुक्त मारीच, सुवाहु तथा अन्य बहुत-से राक्षसगण यज्ञ नहु करनेके लिये बही आये। उन सबको बही आया जान कमलनयन श्रीरामने बाण मारकर 'सुवाहु' नामक राक्षसको तो धराशायी कर दिया। वह अपने शरीरसे रक्तकी वर्षा-सी करने लगा। इसके बाद 'भल्ल' नामक बाणका प्रहार करके श्रीरामने मारीचको उसी तरह समुद्रके तटपर फेंक दिया, जैसे बायु पत्तेको उड़ाकर दूर फेंक दे। तदनन्तर श्रीराम और लक्ष्मण दोनोंने मिलकर शेष सभी राक्षसोंका वध कर डाला ॥ ८८—९२ ॥

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके हारा यज्ञकी रक्षा होती रहनेसे महायशस्वी विश्वामित्रने उस यज्ञको विधिवत् पूर्ण करके ऋत्विजोंका दक्षिणादिसे पूजन किया। शत्रुदमन! उस यज्ञके सदस्योंका भी यथोचित समादर करके विश्वामित्रजीने श्रीराम और लक्ष्मणकी भी भक्तिपूर्वक पूजा एवं प्रशंसा की। सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ महाराज! तदनन्तर उस यज्ञमें मिले हुए भागोंसे सन्तुष्ट देवताओंने भगवान् रामके मस्तकपर पुष्पोंकी वर्षा की ॥ ९३—९५ ॥

इस प्रकार भाई लक्ष्मणके साथ विनयशील श्रीरामचन्द्रजी राक्षसोंसे प्राप्त भयका निवारण करके, विश्वामित्रका यज्ञ पूर्ण कराकर, नाना प्रकारकी पावन कथाएँ सुनते हुए मुनिके हारा उस स्थानपर लाये गये, जहाँ शिला बनी हुई अहल्या थी। राजेन्द्र! पूर्वकालमें इन्द्रके साथ व्यभिचार करनेसे अपने पति गौतमका शाप प्राप्तकर अहल्या पत्थर हो गयी थी। उस समय रामका दर्शन पाते ही वह शापसे मुक्त हो पुनः अपने पति गौतमके पास चली गयी ॥ ९६—९८ ॥

तदनन्तर विश्वामित्रजीने वहाँ क्षणभर विचार किया कि मुझे कमललोचन रामचन्द्रजीका विवाह करके इन्हें अयोध्या ले चलना चाहिये। यह सोचकर अनेक शिष्योंसे घिरे हुए महातपस्वी विश्वामित्रजी श्रीराम और लक्ष्मणको साथ ले मिथिलाकी ओर चल दिये ॥ ९९—१०० ॥

नानादेशादथायाता जनकस्य निवेशनम्।
 राजपुत्रा महाबीर्याः पूर्वं सीताभिकाङ्क्षिणः ॥ १०१
 तान् दृष्ट्वा पूजयित्वा तु जनकश्च यथार्हतः।
 यत्सीतायाः समुत्पन्नं धनुषहिश्वरं महत् ॥ १०२
 अर्चितं गन्धमालाभी रम्यशोभासमन्विते।
 रङ्गे महति विस्तीर्णं स्थापयामास तद्धनुः ॥ १०३
 उवाच च नृपान् सर्वास्तदोच्चैर्जनको नृपः।
 आकर्षणादिदं येन धनुर्भूयं नृपात्मजाः ॥ १०४
 तस्येवं धर्मतो भार्या सीता सर्वाङ्गशोभना।
 इत्येवं श्राविते तेन जनकेन महात्मना ॥ १०५
 क्रमादादाय ते तत्तु सन्धीकर्तुमथाभवन्।
 धनुषा ताङ्गिताः सर्वे क्रमानेन महीपते ॥ १०६
 विधूय पतिता राजन् विलज्जास्तत्र पार्थिवाः।
 तेषु भग्नेषु जनकस्तद्धनुस्व्याघकं नृप ॥ १०७
 संस्थाप्य स्थितवान् वीरो रामागमनकाङ्क्षया।
 विश्वामित्रस्ततः प्राप्तो मिथिलाधिपतेर्गृहम् ॥ १०८
 जनकोऽपि च तं दृष्ट्वा विश्वामित्रं गृहागतम्।
 रामलक्ष्मणसंयुक्तं शिष्ठ्येश्वाभिगतं तदा ॥ १०९
 तं पूजयित्वा विधिवत्प्राञ्छं विप्रानुयायिनम्।
 रामं रघुपतिं चापि लावण्यादिगुणैर्युतम् ॥ ११०
 शीलाचारगुणोपेतं लक्ष्मणं च महामतिम्।
 पूजयित्वा यथान्यायं जनकः प्रीतमानसः ॥ १११
 हेमपीठे सुखासीनं शिष्ठ्यैः पूर्वापौर्वतम्।
 विश्वामित्रमुवाचाथ किं कर्तव्यं मयेति सः ॥ ११२

मार्कण्डेय उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य मुनिः प्राह महीपतिम्।
 एष रामो महाराज विष्णुः साक्षात्महीपतिः ॥ ११३
 रक्षार्थी विष्टपानां तु जातो दशरथात्मजः।
 अस्मै सीतां प्रयच्छ त्वं देवकन्यामिव स्थिताम् ॥ ११४
 अस्या विवाहे राजेन्द्र धनुर्भूङ्गमुदीरितम्।
 तदानय भवधनुर्चर्चयस्व जनाधिप ॥ ११५

इनके जानेसे पूर्व ही वहाँ सीतासे विवाह करनेकी इच्छावासे अनेक महान् पराक्रमी राजकुमार नाना देशोंसे जनकके वहाँ पधारे थे। उन सबको आया देख राजा जनकने उनका यथोचित सत्कार किया तथा जो सीताके स्वयंबरके लिये ही प्रकट हुआ था, उस महान् माहेश्वर धनुषका चन्दन और पुष्प आदिसे पूजन करके उसे रमणीय शोभासे सम्पन्न मुविस्तुत रङ्गमञ्चपर लाकर रखवाया ॥ १०१—१०३ ॥

तब राजा जनकने वहाँ पधारे हुए उन समस्त राजाओंके प्रति उच्च स्वरसे कहा—'राजकुमारो! जिसके खींचनेसे यह धनुष टूट जायगा, यह सर्वाङ्गसुन्दरी सीता उसीकी धर्मपत्नी हो सकती है।' महात्मा जनकके द्वारा ऐसी बात सुनायी जानेपर वे नरेशाण ऋमशः उस धनुषको ले-लेकर चढ़ानेका प्रयत्न करने लगे; परंतु बारी-बारीसे उस धनुषद्वारा ही झटके खाकर काँपते हुए वे दूर गिर जाते थे। राजन्। इससे उन सभी भूपालोंको वहाँ बड़ी लज्जा हुई। नरेश्वर! उन सबके निराश हो जानेपर बीर राजा जनक उस शिव-धनुषको यथास्थान रखवाकर श्रीरामके आगमनकी प्रतीक्षामें वहाँ ही उहोरे रहे। इतनेमें विश्वामित्रजी मिथिलानरेशके गजभवनमें आ पहुँचे ॥ १०४—१०८ ॥

जनकने श्रीराम, लक्ष्मण तथा शिष्ठोंसे युक्त विश्वामित्रजीको अपने भवनमें आया देख उस समय उनकी विधिवत् पूजा की। फिर द्वाहाणका अनुसरण करनेवाले तथा लावण्य आदि गुणोंसे लक्षित रघुवंशनाथ बुद्धिमान् श्रीराम एवं शील-सदाचारादि गुणोंसे युक्त महामति लक्ष्मणका भी यथायोग्य पूजन करके जनकजी मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् सोनेके सिंहासनपर सुखपूर्वक बैठकर छोटे-बड़े शिष्ठोंसे घिरे हुए मुनिवर विश्वामित्रसे वे बोले—'भगवन्! अब मुझे क्या करना चाहिये' ॥ १११—११२ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजा जनककी यह बात सुनकर मुनिने उनसे कहा—'महाराज! ये राजा राम साक्षात् भगवान् विष्णु हैं। (तीनों) लोकोंकी रक्षाके लिये ये दशरथके पुत्ररूपसे प्रकट हुए हैं; अतः देवकन्याके समान सुशोभित होनेवाली सीताका व्याह तुम इन्हींके साथ कर दो। परंतु राजेन्द्र! नराधिप! तुमने सीताके विवाहमें धनुष तोड़नेकी शर्त रखी है; अतः अब उस शिवधनुषको लाकर यहाँ उसकी अर्चना करो' ॥ ११३—११५ ॥

तथेत्युक्त्वा च राजा हि भवद्यापं तदद्भूतम् ।
अनेक भूभुजां भङ्गं स्थापयामास पूर्ववत् ॥ ११६
ततो दशरथसुतो विश्वामित्रेण चोदितः ।
तेषां मध्यात्समुत्थाय रामः कमललोचनः ॥ ११७
प्रणाम्य विप्रान् देवांशु धनुरादाय तत्तदा ।
सञ्ज्यं कृत्वा महाबाहुर्ज्याधोषमकरोत्तदा ॥ ११८
आकृष्यमाणं तु बलात्तेन भानं महद्धनुः ।
सीता च मालामादाय शुभां रामस्य मूर्धनि ॥ ११९
क्षिप्त्वा संवरयामास सर्वक्षत्रियसंनिधी ।
ततस्ते क्षत्रियाः कृद्वा राममासाद्य सर्वतः ॥ १२०
मुमुचुः शरजालानि गर्जयन्तो महाबलाः ।
तात्रिरीक्ष्य ततो रामो धनुरादाय वेगवान् ॥ १२१
ज्याधोषतलघोषेण कप्पयामास तान्नृपान् ।
चिच्छेद शरजालानि तेषां स्वास्त्रै रथांस्ततः ॥ १२२
धनूषि च पताकाश्च रामश्चिच्छेद लीलया ।
संनह्य स्वबलं सर्वं मिथिलाधिपतिस्ततः ॥ १२३
जामातरं रणे रक्षन् पार्थिण्याहो बभूव ह ।
लक्ष्मणश्च महाबीरो विद्राव्य युधि तान्नृपान् ॥ १२४
हस्त्यश्चाञ्चगुहे तेषां स्यन्दनानि बहूनि च ।
वाहनानि परित्यज्य पलायनपरान्नृपान् ॥ १२५
तात्रिहन्तुं च धावत्स पृष्ठतो लक्ष्मणस्तदा ।
मिथिलाधिपतिस्तं च वारयामास कीशिकः ॥ १२६
जितसेनं महाबीरं रामं भात्रा समन्वितम् ।
आदाय प्रविवेशाथ जनकः स्वगृहं शुभम् ॥ १२७
दूतं च प्रेषयामास तदा दशरथाय सः ।
श्रुत्वा दूतमुखात् सर्वं विदितार्थः स पार्थिवः ॥ १२८
सभार्यः ससुतः श्रीमान् हस्त्यश्चरथवाहनः ।
मिथिलामाजगामाशु स्वबलेन समन्वितः ॥ १२९
जनकोऽप्यस्य सत्कारं कृत्वा स्वां च सुतां ततः ।
विधिवत्कृतशुल्कां तां ददौ रामाय पार्थिव ॥ १३०
अपराश्च सुतास्तिस्त्रो रूपवत्यः स्वलङ्कृताः ।
त्रिभ्यस्तु लक्ष्मणादिभ्यः स्वकन्या विधिवदौ ॥ १३१

तब 'बहुत अच्छा' कहकर राजने अनेक भूपालोंका मान भङ्ग करनेवाले उस अद्भुत शिवधनुषको पूर्ववत् बही रखवाया । तत्पश्चात् कमललोचन दशरथनन्दन राम विश्वामित्रोंके आज्ञा देनेपर राजाओंके बीचसे उठे और ब्राह्मणों तथा देवताओंको प्रणाम करके उन्होंने वह धनुष डटा लिया । फिर उन महाबाहुने धनुषको ढोरी चढ़ाकर उसकी टंकार की । रामके द्वारा बलपूर्वक खींचे जानेसे वह महान् धनुष सहसा टूट गया । तब सीताजी सुन्दर माला लैकर आयी और उन सम्पूर्ण क्षत्रियोंकि निकट भगवान् रामके गलेमें वह माला डालकर उन्होंने उनका विधिपूर्वक पतिलप्तसे चरण किया । इससे वहाँ आये हुए सभी महाबली क्षत्रिय कुपित हो गये और श्रीरामचन्द्रजीपर सब ओरसे आक्रमण एवं गर्जना करते हुए उनपर बाण बरसाने लगे । उन्हें यों करते देख श्रीरामने भी वेगपूर्वक हाथमें धनुष ले प्रत्यक्षाकी टंकारसे उन सभी नरेशोंको कम्पित कर दिया और अपने अस्त्रोंसे उन सबके बाण तथा रथ कट डाले । इतना ही नहीं, श्रीरामने लौलापूर्वक ही उनके धनुष तथा पताकाएँ भी काट डालीं । तदनन्तर मिथिलानरेश भी अपनी सारी सेना तैयार करके उस संग्राममें जामाता श्रीरामकी रक्षा करते हुए उनके पृष्ठपोषक हो गये । इधर, महाबीर लक्ष्मणने भी युद्धमें उन राजाओंको मार भगाया तथा उनके हाथी, घोड़े और बहुत-से रथ अपने अधिकारमें कर लिये । अपने वाहन छोड़कर भागे जाते हुए उन राजाओंको मार डालनेके लिये लक्ष्मण उनके पीछे दौड़े । तब उन्हें मिथिलानरेश जनक और विश्वामित्रने मना कर दिया ॥ ११६—१२६ ॥

राजाओंकी सेनापर विजय पाये हुए महाबीर श्रीरामको लक्ष्मणसमहित साथ ले राजा जनकने अपने सुन्दर भवनमें प्रवेश किया । उसी समय उन्होंने राजा दशरथके पास एक दूत भेजा । दूतके मुखसे सारी बातें सुनकर राजाको सब वृत्तान्त जात हुआ । तब श्रीमान् राजा दशरथ अपनी रानियों और पुत्रोंको साथ ले, हाथी, घोड़े और रथ आदि वाहनोंसे सम्पन्न हो, सेनाके साथ तुरन्त ही मिथिलामें पथारे । राजन् ! जनकने भी राजा दशरथका भलीभाति सत्कार किया । फिर विधिपूर्वक जिसके पाणिग्रहणकी शर्त पूरी की जा चुकी थी, उस अपनी कन्या सीताको रामके हाथमें दे दिया । तत्पश्चात् अपनी अन्य तीन कन्याओंको भी, जो परमसुन्दरी और आभूषणोंसे अलझूत थी, लक्ष्मण आदि तीन भाइयोंके साथ विधिपूर्वक व्याह दिया ॥ १२७—१३१ ॥

एवं कृतविवाहोऽसौ रामः कमललोचनः ।
 भानुभिर्मातृभिः सार्थि पित्रा बलवता सह ॥ १३२
 दिनानि कतिचित्तत्र स्थितो विविधभोजनैः ।
 ततोऽयोध्यापुरीं गन्तुमुत्सुकं ससुतं नृपम् ।
 दृष्टा दशरथं राजा सीतायाः प्रददौ वसु ॥ १३३
 रत्नानि दिव्यानि बहूनि दत्त्वा
 रामाय वस्त्राण्यतिशोभनानि ।
 हस्त्यश्वदासानपि कर्मयोग्यान् ।
 दासीजनांशु प्रवराः स्त्रियशु ॥ १३४
 सीतां सुशीलां बहुरत्नभूषितां
 रथं समारोप्य सुतां सुरूपाम् ।
 वेदादिघोषेष्वहुमङ्गलैश्च
 सम्प्रेषयामास स पार्थिवो बली ॥ १३५
 प्रेषयित्वा सुतां दिव्यां नत्वा दशरथं नृपम् ।
 विश्वामित्रं नमस्कृत्य जनकः संनिवृत्तबान् ॥ १३६
 तस्य पत्न्यो महाभागा: शिक्षयित्वा सुतां तदा ।
 भर्तुभक्तिं कुरु शुभे श्वश्रूणां श्वशुरस्य च ॥ १३७
 श्वश्रूणामर्पयित्वा तां निवृत्ता विविशुः पुरम् ।
 ततस्तु रामे गच्छन्तमयोध्यां प्रबलान्वितम् ॥ १३८
 श्रुत्वा परशुरामो वै पञ्चानं संकरोद्ध ह ।
 तं दृष्टा राजपुरुषाः सर्वे ते दीनमानसाः ॥ १३९
 आसीदशरथश्चापि दुःखशोकपरिष्टुतः ।
 सभार्थः सपरीवारो भागवस्य भयान्त्रप ॥ १४०
 ततोऽद्वीजनान् सर्वान् राजानं च सुदुःखितम् ।
 वसिष्ठश्चोर्जिततपा ऋष्यचारी महामुनिः ॥ १४१
 वसिष्ठ उवाच
 युध्याभिरत्र रामार्थं न कार्यं दुःखमण्वपि ॥ १४२
 पित्रा वा मानुभिर्वापि अन्यैर्भृत्यजनैरपि ।
 अयं हि नृपते रामः साक्षाद्विष्णुस्तु ते गृहे ॥ १४३
 जगतः पालनार्थाय जन्मप्राप्तो न संशयः ।
 यस्य संकीर्त्य नामापि भवभीतिः प्रणश्यति ॥ १४४
 ऋष्य मूर्त्त स्वयं यत्र भयादेस्तत्र का कथा ।
 यत्र संकीर्त्यते रामकथामात्रमपि प्रभो ॥ १४५
 नोपसर्गभयं तत्र नाकालमरणं नृणाम् ।

इस प्रकार विवाह कर लेनेके पश्चात् कमललोचन श्रीराम अपने भ्राताओं, माताओं और बलवान् पिता के साथ कुछ दिनोंतक नाना प्रकारके भोजनादिसे सत्कृत हो मिथिलापुरीमें रहे। फिर महाराज दशरथको अपने पुत्रोंके साथ अयोध्या जानेके लिये उत्कण्ठित देख राजा जनकने सीताके लिये बहुत-सा धन और दिव्य रत्न देकर श्रीरामके लिये अत्यन्त सुन्दर वस्त्र, क्रियाकुशल हाथी, घोड़े और दास दिये एवं दासीके रूपमें बहुत-सी सुन्दरी स्त्रियाँ भी अपित कीं। उन बलवान् भूपालने बहुत-से रत्नमय आभूषणोंहारा विभूषित सुन्दरी साध्वी पुत्री सीताको रथपर चढ़ाकर वेदाद्वनि तथा अन्य माहात्मिक शब्दोंके साथ विदा किया। अपनी दिव्य कन्या सीताको विदा कर राजा जनक दशरथजी तथा विश्वामित्र [एवं वसिष्ठ] मुनिको प्रणाप करके लौट आये। तब जनकको अति सौभाग्य-शालिनी रानीयाँ भी अपनी कन्याओंको यह शिक्षा देकर कि 'शुभे! तुम पतिकी भक्ति तथा सास-ससुरकी सेवा करना' उन्हें उनकी सासुओंको सांप, नगरमें लौट आयी ॥ १३२—१३७ ॥

कहते हैं, तदनन्तर यह सुनकर कि 'राम अपनी प्रबल सेनाके साथ अयोध्यापुरीको लौट रहे हैं', परशुरामने उनका मार्ग रोक लिया। उन्हें देखकर सभी राजपुरुषोंका हृदय कातर हो गया। नरेश्वर! परशुरामके भव्यसे राजा दशरथ भी अपनी स्त्री तथा परिवारके साथ दुःखी और शोकमग्न हो गये। तब उत्कृष्ट तपस्वी ऋष्यचारी महामुनि वसिष्ठजी दुःखी राजा दशरथ तथा अन्य सब लोगोंसे बोले ॥ १३८—१४१ ॥

वसिष्ठजीने कहा—तुम लोगोंको यहाँ श्रीरामके लिये तनिक भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। पिता, माता, भाई अथवा अन्य भूत्यजन थोड़ा-सा भी खेद न करें। नरपाल! ये श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् भगवान् विष्णु हैं। समस्त जगत्की रक्षाके लिये ही इन्होंने तुम्हारे घरमें अवतार लिया है, इसमें संदेह नहीं है। जिनके नाममात्रका कीर्तन करनेसे संसाररूपी भय निवृत्त हो जाता है, वे परमेश्वर ही जहाँ साक्षात् मूर्तिमान् होकर विराजमान हैं, वहाँ भय आदिकी चर्चा भी कैसे की जा सकती है। प्रभो! जहाँ श्रीरामचन्द्रजीकी कथामात्रका भी कीर्तन होता है, वहाँ मनुष्योंके लिये संक्रामक बीमारी और अकालमृत्युका भय नहीं होता ॥ १४२—१४५ ॥

इत्युक्ते भार्गवो रामो राममाहाग्रतः स्थितम् ॥ १४६
 त्वय त्वं रामसंज्ञां तु मया वा संगरं कुरु ।
 इत्युक्ते राघवः प्राह भार्गवं तं पथि स्थितम् ॥ १४७
 रामसंज्ञां कुनस्त्वद्यक्ष्ये त्वया योत्ये स्थिरो भव ।
 इत्युक्त्वा तं पृथक् स्थित्वा रामो राजीवलोचनः ॥ १४८
 ज्याधोषमकरोद्दीरो चौरस्यैवाग्रतस्तदा ।
 ततः परशुरामस्य देहान्तिकम्य वैष्णवम् ॥ १४९
 पश्यतां सर्वभूतानां तेजो राममुखेऽविशत् ।
 दृष्ट्वा तं भार्गवो रामः प्रसन्नवदनोऽद्वीत् ॥ १५०
 राम राम महाबाहो रामस्त्वं नात्र संशयः ।
 विष्णुरेव भवाङ्मातो ज्ञातोऽस्यद्य मया विभो ॥ १५१
 गच्छ वीर यथाकामं देवकार्यं च वै कुरु ।
 दुष्टानां निधनं कृत्वा शिष्टांश्च परिपालय ॥ १५२
 याहि त्वं स्वेच्छया राम अहं गच्छे तपोवनम् ।
 इत्युक्त्वा पूजितस्तैस्तु मुनिभावेन भार्गवः ॥ १५३
 महेन्द्राद्रिं जगामाश्च तपसे धृतमानसः ।
 ततस्तु जातहर्षास्ते जना दशरथश्च ह ॥ १५४
 पुरीमयोध्यां सम्प्राप्य रामेण सह पार्थिवः ।
 दिव्यशोभां पुरी कृत्वा सर्वतो भद्रशालिनीम् ॥ १५५
 प्रत्युत्थाय ततः पौरा: शङ्खतूर्यादिभिः स्वनैः ।
 विशन्तं राममागत्य कृतदारं रणोऽजितम् ॥ १५६
 तं वीक्ष्य हर्षिताः सन्तो विविशुस्तेन वै पुरीम् ।
 तौ दृष्ट्वा स मुनिः प्राप्ती रामं लक्ष्मणामन्तिके ॥ १५७
 दशरथाय तत्पत्रे मातृभ्यक्षु विशेषतः ।
 तौ समर्प्य मुनिश्रेष्ठस्तेन राजा च पूजितः ।
 विश्वामित्रश्च सहसा प्रतिगन्तुं मनो दधे ॥ १५८

वसिष्ठजी इस प्रकार कह ही रहे थे कि भृगुवंशी परशुरामजीने सामने खड़े हुए श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—“राम! तुम अपना यह ‘राम’ नाम त्वया दो, अथवा मेरे साथ युद्ध करो।” उनके यों कहनेपर रघुकुलनन्दन श्रीरामने मार्गमें खड़े हुए उन परशुरामजीसे कहा—“मैं ‘राम’ नाम कैसे छोड़ सकता हूँ? तुम्हारे साथ युद्ध ही करूँगा, सँभल जाओ।” उनसे इस प्रकार कहकर कमलालोचन श्रीराम अलग खड़े हो गये और उन वीरवरने उस समय वीर परशुरामके सामने ही धनुषकी प्रत्यक्षाकी टंकार की। तब परशुरामजीके शरीरसे वैष्णव तेज निकलकर सब प्राणियोंके देखते-देखते श्रीरामके मुखमें समा गया। उस समय भृगुवंशी परशुरामने श्रीरामकी और देख प्रसन्नमुख होकर कहा—“महाबाहु श्रीराम! आप ही ‘राम’ हैं, अब इस विषयमें मुझे संदेह नहीं है। प्रभो! आज मैंने आपको पहचाना; आप साक्षात् विष्णु ही इस रूपमें अवतीर्ण हुए हैं। वीर! अब आप अपने इच्छानुसार जाइये, देवताओंका कार्य सिद्ध कीजिये और दुष्टोंका नाश करके साधु पुरुषोंका पालन कीजिये। श्रीराम! अब आप स्वेच्छानुसार चले जाइये; मैं भी तपोवनको जाता हूँ” ॥ १४६—१५२ ॥

यों कहकर परशुरामजी उन दशरथ आदिके द्वारा मुनिभावसे पूजित हुए और तपस्याके लिये मनमें निश्चय करके महेन्द्राचलको चले गये। तब समस्त बरातियों तथा महाराज दशरथको महान् हर्ष प्राप्त हुआ और वे (वहाँसे चलकर) श्रीरामचन्द्रजीके साथ अयोध्यापुरीके निकट पहुँचे। उधर सम्पूर्ण पुरवासी मङ्गलमयी अयोध्या नगरीको सब ओर दिव्य सजावटसे सुसज्जित करके शहू और दुन्दुभि आदि गाजे-बाजेके साथ उनकी अगवानीके लिये निकले। नगरके बाहर आकर वे रणमें अजेय श्रीरामजीको पलीसहित नगरमें प्रवेश करते हुए देखकर आनन्दमग्न हो गये और उन्हींके साथ अयोध्यामें प्रविष्ट हुए ॥ १५३—१५६ ॥

तत्पश्चात् मुनिवर विश्वामित्रने श्रीराम और लक्ष्मण—दोनों भाइयोंको अपने निकट आया हुआ देखकर उन्हें उनके पिता दशरथ तथा विशेषरूपसे उनकी माताओंको समर्पित कर दिया। तब राजा दशरथद्वारा पूजित होकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र सहसा लौट जानेके लिये उद्यत हुए।

समर्प्य रामं स मुनिः सहानुजं
सभार्यमग्रे पितुरेकवल्लभम्।
पुनः पुनः आव्य हसन्महामति-
र्जगाम सिद्धाश्रममेवमात्मनः ॥ १५९ ॥

इति श्रीरामसिंहपुण्ये रामप्रादुर्भवे सप्तचतुर्विंशतिः ३ अध्यायः ॥ ४७ ॥
इस प्रकार श्रीरामसिंहपुण्यमें 'रामवतारविषयक' सैतालीसर्वां अध्याय पूरा हुआ ॥ ४७ ॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

श्रीराम-वनवास; राजा दशरथका निधन तथा वनमें राम-भरतकी भेट

मार्कण्डेय उक्ताच

कृतदारो महातेजा रामः कमललोचनः ।
पित्रे सुमहतीं प्रीतिं जनानामुपपादयन् ॥ १ ॥
अयोध्यायां स्थितो रामः सर्वभोगसमन्वितः ।
प्रीत्या नन्दत्ययोध्यायां रामे रघुपती नृप ॥ २ ॥
धाता शत्रुघ्नसहितो भरतो मातुलं यथौ ।
ततो दशरथो राजा प्रसमीक्ष्य सुशोभनम् ॥ ३ ॥
युवानं बलिनं योग्यं भूपस्तिद्वये सुतं कविम् ।
अभिविच्य राज्यभारं रामे संस्थाप्य दैत्यावम् ॥ ४ ॥
पदं प्राप्तुं महद्यत्वं करिष्यामीत्यचिन्तयत् ।
संचिन्त्य तत्परो राजा सर्वदिक्षु समादिशत् ॥ ५ ॥
प्राज्ञान् भृत्यान् महीपालामन्त्रिणश्च त्वरान्वितः ।
रामाभिषेकद्रव्याणि ऋषिग्रोक्तानि यानि वै ॥ ६ ॥
तानि भृत्याः समाहृत्य शीघ्रमागन्तुर्मर्हथ ।
दूतामात्याः समादेशात्सर्वदिक्षु नराधिपान् ॥ ७ ॥
आहृय तान् समाहृत्य शीघ्रमागन्तुर्मर्हथ ।
अयोध्यापुरमत्यर्थं सर्वशोभासमन्वितम् ॥ ८ ॥
जनाः कुरुत सर्वत्र नृत्यगीतादिननिदितम् ।
पुरवासिजनानन्दं देशवासिमनःप्रियम् ॥ ९ ॥

इस प्रकार महामति मुनि विश्वामित्रजीने छोटे भाई लक्ष्मण तथा भार्या सीताके साथ श्रीरामजीको, जो अपने पिता को एकान्त प्रिय थे, समर्पित कर दिया और उनके समक्ष बारम्बार उनका गुणगान करके हँसते हुए वे अपने श्रेष्ठ सिद्धाश्रमको चले गये ॥ ४७—४९ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—विवाह करनेके पश्चात् महातेजस्वी कमललोचन श्रीराम अयोध्यावासियोंका आनन्द बढ़ाते हुए सब प्रकारके भोगोंसे सम्पन्न हो, पिता के संतोषके लिये अयोध्यामें ही रहने लगे। नरेश्वर! जब रघुकुलनायक श्रीराम प्रसन्नतापूर्वक अयोध्यामें सानन्द निवास करने लगे, तब उनके भाई भरत शत्रुघ्नको साथ लेकर अपने मामाके यहाँ चले गये। सदनन्तर राजा दशरथने अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामको अप्रतिम सुन्दर, बलिष्ठ, नवयुवक, विद्वान् और राजा बनाये जानेके योग्य समझकर सोचा कि 'अब श्रीरामको राजवदपर अभिविक्त करके राज्यका भार इन्हें सौंप दूँ और स्वयं भगवान् विष्णुके धामको प्राप्त करनेके लिये महान् यत्न करूँ ॥ १—४९, ॥

यह सोचकर राजा इस कार्यमें तत्पर हो गये और समस्त दिशाओंमें रहनेवाले बुद्धिमान् भृत्यों, अधीनस्थ राजाओं तथा मन्त्रियोंको तुरन्त आज्ञा दी—'भृत्यगण! श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेकके लिये जो-जो सामान मुनियोंने बताये हैं, वे सब एकत्र करके शीघ्र ही आओ। दूतों और मन्त्रियो! तुम लोग भी मेरी आज्ञासे सब दिशाओंके राजाओंको बुलाकर, उन्हें साथ ले, शीघ्र यहाँ आ जाओ। पुरवासीजनो! तुम इस अयोध्यानगरीको उत्तम रीतिसे सजाकर सर्वथा शोभा-सम्पन्न बना दो तथा सर्वत्र नृत्य-गीत आदि उत्सवका ऐसा प्रबन्ध करो, जिससे यह नगर समस्त पुरवासियोंको आनन्द देनेवाला हो जाय और सम्पूर्ण देशके निवासियोंको मनोहर प्रतीत होने लगे। तुम सब लोग यह

रामाभिषेकं विपुलं श्वो भविष्यति जानथ ।
श्रुत्वेत्थं मन्त्रिणः प्राहुस्तं नृपं प्रणिपत्य च ॥ १०

शोभनं ते मतं राजन् यदिदं परिभाषितम् ।
रामाभिषेकमस्याकं सर्वेषां च प्रियंकरम् ॥ ११

इत्युक्तो दशरथस्तैस्तान् सर्वान् पुनरब्रवीत् ।
आनीयन्तां द्रुतं सर्वे सम्भारा मम शासनात् ॥ १२

सर्वतः सारभूता च पुरी चेयं समन्तः ।
अद्य शोभान्विता कार्या कर्तव्यं यागमण्डलम् ॥ १३

इत्येवमुक्ता राजा ते मन्त्रिणः शीघ्रकारिणः ।
तथैव चकुस्ते सर्वे पुनः पुनरुदीरिताः ॥ १४

प्राप्तहर्षः स राजा च शुभं दिनमुदीक्षयन् ।
कौशल्या लक्ष्मणश्चैव सुमित्रा नागरो जनः ॥ १५

रामाभिषेकमाकर्ण्य मुदं प्राप्यातिहर्षितः ।
श्वश्रुश्वश्रुयोः सप्त्यकं शुश्रूषणपरा तु सा ॥ १६

मुदान्विता सिता सीता भर्तुराकर्ण्य शोभनम् ।
श्वोभाविन्यभिषेके तु रामस्य विदितात्मनः ॥ १७

दासी तु मन्थरानाम्पी कैकेय्या: कुञ्जरूपिणी ।
स्वां स्वामिनीं तु कैकेयीमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १८

शृणु राजि महाभागे वचनं मम शोभनम् ।
त्वत्पतिस्तु महाराजस्तव नाशाय चोद्यतः ॥ १९

रामोऽसी कौसलीपुत्रः श्वो भविष्यति भूपतिः ।
वसुवाहनकोशादि राज्यं च सकलं शुभे ॥ २०

भविष्यत्यद्य रामस्य भरतस्य न किंचन ।
भरतोऽपि गतो दूरं मातुलस्य गृहं प्रति ॥ २१

हा कष्टं मन्दभाग्यासि सापल्न्याहुः खिता भृशाम् ।
सैवमाकर्ण्य कैकेयी कुञ्जाभिदमथाब्रवीत् ॥ २२

पश्य मे दक्षतां कुञ्जे अद्यैव त्वं विचक्षणे ।
यद्या तु सकलं राज्यं भरतस्य भविष्यति ॥ २३

जान लो कि कल बड़े समारोहके साथ श्रीरामचन्द्रजीका राज्याभिषेक होगा' ॥ ५—९ ॥

यह सुनकर मन्त्रियोंने राजाको प्रणाम करके उनसे कहा—'राजन्! आपने हमारे समक्ष अपना जो यह विचार व्यक्त किया है, बहुत ही उत्तम है। श्रीरामका अभिषेक हम सभीके लिये प्रियकारक है' ॥ १०—११ ॥

उनके यों कहनेपर राजा पुनः उन सब लोगोंसे बोले—'अच्छा, अब मेरी आज्ञासे अभिषेकके सभी सामान शीघ्र लाये जायें और समस्त वसुधारी सारभूता इस अयोध्यापुरीको भी आज ही सब ओरसे सुसज्जित कर देना चाहिये। साथ ही एक यज्ञमण्डपको रचना भी परम आवश्यक है' ॥ १२—१३ ॥

राजाके यों कहने और बार-बार प्रेरणा करनेपर उन सब शीघ्रकारी मन्त्रियोंने उनके कथनानुसार सब कार्य पूर्ण कर दिये। राजा इस शुभ दिनकी प्रतीक्षा करते हुए बड़े ही आनन्दित हुए। कौशल्या, सुमित्रा, लक्ष्मण तथा अन्य पुरखासी श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेकका शुभ समाचार सुनकर आनन्दके मारे फूले नहीं समाये। सास-ससुरकी सेवामें भलीभीत लगी रहनेवाली सीता भी अपने पतिके लिये इस शुभ संवादको सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुई ॥ १४—१६ ॥

आरम्भतत्त्वके ज्ञाता अथवा सबके मनकी बात जाननेवाले भगवान् श्रीरामका अभिषेक दूसरे ही दिन होनेवाला था। इसी बीचमें कैकेयीकी कुञ्जड़ी दासी मन्थराने अपनी स्वामिनी कैकेयीके पास जाकर यह बात कही—'बहुभागिनी रानी! मैं एक बहुत अच्छी बात सुनाती हूँ, सुनो। तुम्हारे पति महाराज दशरथ अब तुम्हारा नाश करनेपर तुले हुए हैं। शुभे! वे जो कौशल्या-पुत्र राम हैं, कल ही राजा होंगे। धन, वाहन और कोश आदिके साथ यह सारा राज्य अब रामका हो जायगा; भरतका कुछ भी नहीं रहेगा। देखो, भाग्यकी बात; इस अवसरपर भरत भी बहुत दूर—अपने मामाके घर चले गये हैं। हाय! यह सब कितने कष्टकी बात है! तुम मन्दभागिनी हो। अब तुम्हें सीतकी ओरसे बहुत ही कष्ट उठाना पड़ेगा' ॥ १७—२१ ॥

ऐसी बात सुनकर कैकेयीने कुञ्जासे कहा—'बुद्धिमति कुञ्जे! तू मेरी दक्षता तो देख—आज ही मैं ऐसा यज्ञ करती हूँ, जिससे यह सारा राज्य भरतका

रामस्य वनवासश्च तथा यत्रं करोम्यहम्।
इत्युक्त्वा मन्थरां सा तु उत्मुच्य स्वाङ्गभूषणम्॥ २४

वस्त्रं पुष्पाणि चोन्मुच्य स्थूलवासोधराभवत्।
निर्माल्न्यपुष्पधूक्कष्टा कश्मलाङ्गी विरूपिणी॥ २५

भस्मधूल्यादिनिर्दिग्धा भस्मधूल्या तथा श्रिते।
भूभागे शान्तदीपे सा संध्याकाले सुदुःखिता॥ २६

ललाटे श्वेतचैलं तु बद्ध्वा सुष्वाप भामिनी।
मन्त्रिभिः सह कार्याणि सम्पन्न्य सकलानि तु॥ २७

पुण्याहः स्वस्तिमाङ्गल्यैः स्थाप्य रामं तु मण्डले।
ऋषिभिस्तु वसिष्ठाण्डौः सार्थं सम्भारमण्डपे॥ २८

वृद्धिजागरणीयैश्च सर्वंतस्तूर्यनादिते।
गीतनृत्यसमाकीर्ण शङ्खकाहलनिःस्वनैः॥ २९

स्वयं दशरथस्तत्र स्थित्वा प्रत्यागतः पुनः।
कैकेय्या वेशमनो द्वारं जरद्धिः परिरक्षितम्॥ ३०

रामाभिषेकं कैकेयीं वकुकामः स पार्थिवः।
कैकेयीभवनं वीक्ष्य सान्धकारमधाश्रवीत्॥ ३१

अन्धकारमिदं कस्मादद्य ते मन्दिरे प्रिये।
रामाभिषेकं हर्षाय अन्त्यजा अपि मेनिरे॥ ३२

गृहालंकरणं कुर्वन्त्यद्य लोका मनोहरम्।
त्वयाद्य न कृतं कस्मादित्युक्त्वा च महीपतिः॥ ३३

न्यालयित्वा गृहे दीपान् प्रविवेश गृहं त्रुपः।
अशोभनाङ्गीं कैकेयीं स्वपन्तीं पतितां भुवि॥ ३४

दृष्टा दशरथः प्राह तस्याः प्रियमिदं त्विति।
आशिलघ्योत्थाय तां राजा श्रुणु मे परमं वचः॥ ३५

स्वप्नातुराधिकां नित्यं यस्ते भक्तिं करोति वै।
तस्याभिषेकं रामस्य श्रो भविष्यति शोभने॥ ३६

हो जाय और रामका बनवास हो'॥ २२—२३%,॥

मन्थरासे यों कहकर कैकेयीने अपने अङ्गोंके आभूषण उतार दिये। सुन्दर वस्त्र और फूलोंके हार भी उतार फेंके और मोटा वस्त्र पहन लिया। फिर निर्माल्न्य (पूजासे उतारे हुए) पुष्पोंको धारण किया, देहमें राख और धूल लपेट ली और कुरुप वैष बनाकर वह शरीरमें कह और मूळांका अनुभव करने लगी। वह भामिनी ललाटमें थेत वस्त्र बाँध, संध्याके समय दीपक चुड़ा, अंधेरमें ही राख और धूलसे भरे भूभागमें अत्यन्त दुःखित हो लेट गयी॥ २४—२६%,॥

इधर मन्त्रियोंके साथ सारे कार्योंके विषयमें मन्त्रणा करके, वसिष्ठ आदि ऋषियोंद्वारा पुण्याहवाचन, स्वस्तिवाचन और मङ्गलपाठादि करवाकर, श्रीरामको यज्ञ-सामग्रीसे युक्त मण्डपमें बिठाया और वृद्धि (नान्दीश्राद्ध) एवं जागरण-सम्बन्धी कृत्यके लिये उपयुक्त तथा सब और शहनाई एवं शङ्ख, काहल आदिके शब्दोंसे निनादित एवं गान और नृत्यके कार्यक्रमोंसे पूर्ण उस मण्डपमें थोड़ी देरतक स्थिरं भी उहरकर राजा दशरथ वहाँसे लौट आये। राजा कैकेयीसे श्रीरामचन्द्रजीके अभिषेकका शुभ समाचार सुनानेकी इच्छासे कैकेयीके भवनके दरवाजेपर पहुँचे, जहाँ बूढ़े सिपाही पहरा देते थे। कैकेयीके घरको अन्धकारसुक्त देख राजा ने कहा॥ २७—३१॥

'प्रिये! आज तुम्हारे मन्दिरमें अन्धकार क्यों है? आज तो इस नगरके चाण्डालोंने भी श्रीरामचन्द्रके अभिषेकको आनन्दजनक माना है। सभी लोग अपने घरको सुन्दर ढंगसे सजा रहे हैं। तुमने अपने भवनको क्यों नहीं सुसज्जित किया?'—यों कहकर राजा ने घरमें दीप प्रज्वलित कराये; फिर उसके भीतर प्रवेश किया। वहाँ कैकेयी घरतीपर पढ़ी सो रही थी। उसका प्रत्येक अङ्ग अशोभन जान पड़ता था। उसे इस अवस्थामें देख राजा ने उठाकर हृदयसे लगाया और उसको प्रिय लगानेवाले ये वचन कहे—'प्रिये! मेरी उत्तम बात सुनो। सुन्दरि! जो तुम्हारे प्रति अपनी मातासे भी अधिक प्रेम रखते हैं, उन्हीं श्रीरामचन्द्रका कल राज्याभिषेक होगा'॥ ३२—३६॥

इत्युक्ता पार्थिवेनापि किंचित्त्रोवाच सा शुभा ।
मुञ्जन्ती दीर्घमुष्टां च रोषोच्छासं मुहुर्मुहुः ॥ ३७
तस्थावाश्लिष्य हस्ताभ्यां पार्थिवः प्राह रोषिताम् ।
किं ते कैकेयि दुःखस्य कारणं वद शोभने ॥ ३८
वस्त्राभरणरत्नादि वद्यदिच्छसि शोभने ।
तत्त्वं गृहीय निश्चाङ्कं भाण्डारात् सुखिनी भव ॥ ३९
भाण्डारेण मम शुभे श्वोऽर्थसिद्धिर्भविष्यति ।
यदाभिषेकं सम्प्राप्ते रामे राजीवलोचने ॥ ४०
भाण्डागारस्य मे द्वारं मया मुक्तं निर्गतम् ।
भविष्यति पुनः पूर्णं रामे राज्यं प्रशासति ॥ ४१
बहु मानय रामस्य अभिषेकं महात्मनः ।
इत्युक्ता राजवर्योण कैकेयी पापलक्षणा ॥ ४२
कुमतिर्निर्वृणा दुष्टा कुञ्जया शिक्षिताव्वीत् ।
राजानं स्वपतिं वाक्यं कुरुमत्यन्तनिष्ठुरम् ॥ ४३
रत्नादि सकलं यत्ते तन्मयैव न संशयः ।
देवासुरमहायुद्धे प्रीत्या यन्मे वरद्वयम् ॥ ४४
पुरा दत्तं त्वया राजसंसदिदानीं प्रयच्छ मे ।
इत्युक्तः पार्थिवः प्राह कैकेयीमशुभां तदा ॥ ४५
अदत्तमप्यहं दास्ये तव नान्यस्य वा शुभे ।
किं मे प्रतिश्रुतं पूर्वं दत्तमेव मया तव ॥ ४६
शुभाङ्गी भव कल्याणि त्यज कोपमनर्थकम् ।
रामाभिषेकं हर्षं भजोत्तिष्ठ सुखी भव ॥ ४७
इत्युक्ता राजवर्योण कैकेयी कलहप्रिया ।
उवाच परुषं वाक्यं राज्ञो मरणकारणम् ॥ ४८
वरद्वयं पूर्वदत्तं यदि दास्यसि मे विभो ।
शोभूते गच्छतु वनं रामोऽयं कोशलात्मजः ॥ ४९
द्वादशाब्दं निवसतु त्वद्वाक्यादण्डके वने ।
अभिषेकं च राज्यं च भरतस्य भविष्यति ॥ ५०

राजाके इस प्रकार कहनेपर वह सुन्दरी कुछ भी न बोली । बारम्बार क्रोधपूर्वक केवल लम्बी-लम्बी गरम सौंसें छोड़ती रही । राजा अपनी भुजाओंसे उसका आलिङ्गन करके बैठ गये औंर उस रूटी हुई कैकेयीसे बोले— 'सुन्दरी कैकेयि ! बताओ, तुम्हारे दुःखका क्या कारण है ? शुभे ! वस्त्र, आभूषण और रत्न आदि जिन-जिन वस्तुओंकी तुम्हें इच्छा हो, उन सबको बिना किसी आशङ्काके भण्डारघरसे ले लो; परंतु प्रसन्न हो जाओ । कल्याणि ! कल जब श्रीरामका राज्याभिषेक सम्पन्न हो जायगा, उस समय उस भण्डारसे मेरे मनोरथकी सिद्धि हो जायगी । इस समय तो मैंने भण्डारघरका द्वार उन्मुक्त कर रखा है । श्रीरामके राज्य-शासन करते समय वह फिर पूर्ण हो जायगा । प्रिये ! महात्मा श्रीरामके राज्याभिषेकको तुम इस समय अधिक महत्व और सम्मान दो' ॥ ३७—४१ ॥

महाराज दशरथके इस प्रकार कहनेपर कुञ्जाके द्वारा पढ़ायी गयी पापिनी, दुर्बुद्धि, दयाहीना और दुष्टा कैकेयीने अपने पति महाराज दशरथसे अत्यन्त कूरतापूर्वक निष्ठा वचन कहा—'महाराज ! इसमें संदेह नहीं कि आपके जो रत्न आदि हैं, वे सब मेरे ही हैं; किंतु पूर्वकालमें देवासुर-संग्रामके अवसरपर आपने प्रसन्न हो मुझे जो दो वर दिये थे, उन्हें ही इस समय दीजिये' ॥ ४२—४४ ॥

यह सुनकर राजाने उस अशुभा कैकेयीसे कहा— 'शुभे ! और किसीको बात तो मैं नहीं कहता, परंतु तुम्हारे लिये तो जिसे नहीं देनेको कहा है, वह वस्तु भी दे दूँगा । फिर जिसको देनेके लिये मैंने पहले प्रतिज्ञा कर ली है, वह वस्तु तो दी हुई ही समझो । कल्याणि ! अब सुन्दर वेष धारण करो और यह व्यर्थका कोप छोड़ दो । उठो, श्रीरामके राज्याभिषेकके आनन्दोत्सवमें भाग लो और सुखी हो जाओ' ॥ ४५—४७ ॥

नृपश्रेष्ठ दशरथके यों कहनेपर कलहप्रिया कैकेयीने ऐसी कठोर बात कही, जो आगे चलकर राजाकी मृत्युका कारण बन गयी । उसने कहा—'प्रभो ! यदि आप पहलेके दिये हुए दोनों वर मुझे देना चाहते हों तो (पहला वर मैं यही माँगती हूँ कि) ये कौशल्यानन्दन श्रीराम कल सबेगा होते ही वनको चले जायें और आपकी आज्ञासे ये बारह वर्षोंतक दण्डकारण्यमें निवास करें तथा मेरा दूसरा अभीष्ट वर यह है कि अब राज्य और राज्याभिषेक भरतका होगा' ॥ ४८—५० ॥

इत्याकर्ण्य स कैकेय्या वचनं घोरमप्रियम्।
पपात भुवि निस्सज्जो राजा सापि विभूषिता ॥ ५१

रात्रिशेषं नयित्वा तु प्रभाते सा मुदावती ।
दूतं सुमन्त्रमाहैवं राम आनीयतामिति ॥ ५२

रामस्तु कृतपुण्याहः कृतस्वस्त्ययनो द्विजैः ।
यागमण्डपमध्यस्थः शङ्खतूर्यरवान्वितः ॥ ५३

तमासाद्य ततो दूतः प्रणिपत्य पुरस्थितः ।
राम राम महाबाहो आज्ञापयति ते पिता ॥ ५४

हुतमुन्तिष्ठ गच्छ त्वं यत्र तिष्ठति ते पिता ।
इत्युक्तस्तेन दूतेन शीघ्रमुत्थाय राघवः ॥ ५५

अनुज्ञाप्य द्विजान् प्राप्तः कैकेय्या भवनं प्रति ।
प्रविशन्तं गृहं रामं कैकेयी प्राह निर्धृणा ॥ ५६

पितुस्तव मतं वत्स इदं ते प्रब्रवीप्यहम्।
वने वस महाबाहो गत्वा त्वं द्वादशाब्दकम् ॥ ५७

अद्यैव गम्यतां वीर तपसे धृतपानसः ।
न चिन्त्यमन्यथा वत्स आदरात् कुरु मे वचः ॥ ५८

एतच्छुत्वा पितुर्बाक्यं रामः कमललोचनः ।
तथेत्यज्ञां गृहीत्वासौ नमस्कृत्य च तावुभौ ॥ ५९

निष्कर्म्य तदग्नहात्रामो धनुरादाय वेश्मतः ।
कौशल्यां च नमस्कृत्य सुमित्रां गन्तुमुद्यतः ॥ ६०

तच्छुत्वा तु ततः पौरा दुःखशोकपरिष्कृताः ।
विव्यथुक्षाथ सौमित्रिः कैकेयीं प्रति रोधितः ॥ ६१

ततस्तं राघवो दृष्ट्वा लक्ष्मणं रक्तलोचनम् ।
वारयामास धर्मज्ञो धर्मवानिभर्महामतिः ॥ ६२

ततस्तु तत्र ये वृद्धास्तान् प्रणम्य मुर्नीक्ष सः ।
रामो रथं खित्रसूतं प्रस्थानायारुरोह वै ॥ ६३

आत्मीयं सकलं द्रव्यं शाहृणोभ्यो नृपात्मजः ।
श्रद्धया परया दत्त्वा वस्त्राणि विविधानि च ॥ ६४

कैकेयीके इस घोर अप्रिय वचनको सुनकर राजा दशरथ मूर्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़े और कैकेयीने (प्रसन्नतापूर्वक) अपने-आपको सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे विभूषित कर लिया। शेष रात विताकर प्रातःकाल कैकेयीने आनन्दित हो राजदूत सुमन्त्रसे कहा—‘श्रीरामको यहाँ बुलाकर लाया जाय।’ उस समय राम ब्राह्मणोंद्वारा पुण्याहवाचन और स्वस्तिवाचन कराकर, शहू और तूर्य आदि वाद्योंका शब्द सुनते हुए यज्ञमण्डपमें विराजमान थे ॥ ५१—५३ ॥

दूत सुमन्त्र उस समय श्रीरामचन्द्रजीके पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम करके सामने खड़े हो गये और बोले—‘राम! महाबाहु श्रीराम! तुम्हारे पिताजीका आदेश है, जल्दी उठो और यहाँ तुम्हारे पिता विद्यमान हैं, वहाँ चलो।’ दूतके यों कहनेपर श्रीरामचन्द्रजी शीघ्र ही उठे और ब्राह्मणोंसे आज्ञा ले कैकेयीके भवनमें जा पहुँचे ॥ ५४-५५ ॥

श्रीरामको अपने भवनमें प्रवेश करते देख दयाहीना कैकेयीने कहा—‘वत्स! तुम्हारे पिताका यह विचार मैं तुम्हें बता रही हूँ। महाबाहो! तुम बारह वर्षोंतक वनमें जाकर रहो। बीर! वहाँ तपस्या करनेका निश्चय मनमें लिये तुम आज ही चले जाओ। बेटा! तुम्हें अपने मनमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। मेरे वचनका आदरपूर्वक पालन करो’ ॥ ५६—५८ ॥

कैकेयीके मुखसे पिताका यह वचन सुनकर कमललोचन श्रीरामने ‘तथास्तु’ कहकर पिताकी आज्ञा शिरोधार्य की और उन दोनों—माता-पिताको प्रणाम करके उनके भवनसे निकलकर उन्होंने अपना धनुष संभाला। फिर कौशल्या और सुमित्राको प्रणाम करके वे घरसे जानेको तैयार हो गये ॥ ५९-६० ॥

यह समाचार सुनते ही समस्त पुरवासीजन दुःख-शोकमें झब गये और बड़ी व्यथाका अनुभव करने लगे। इधर सुमित्राकुमार लक्ष्मण कैकेयीके प्रति कुपित हो उठे। परम बुद्धिमान् धर्मज्ञ श्रीरामने लक्ष्मणको क्रोधसे लाल आँखें किये देख धर्मयुक्त वचनोंद्वारा उन्हें शान्त किया। तत्प्रकाशत् वहाँ जो बढ़े-बढ़े उपस्थित थे, उनको तथा मुनियोंको प्रणाम करके श्रीरामचन्द्रजी वनकी यात्राके लिये रथपर आरूढ़ हुए। उस रथका सारथि बहुत दुःखी था। उस समय राजकुमार श्रीरामने अपने पासके समस्त द्रव्य और नाना प्रकारके वस्त्र अत्यन्त श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंको दान कर दिये ॥ ६१—६४ ॥

तिस्वः शश्रूः समापन्न्य शशुरं च विसंज्ञितम्।
मुच्छन्तमश्चुधाराणि नेत्रयोः शोकजानि च ॥ ६५
पश्यती सर्वतः सीता चारुरोह तथा रथम्।
रथमारुह्य गच्छन्तं सीतया सह राघवम् ॥ ६६
दृष्टा सुमित्रा वचने लक्ष्मणं चाह दुःखिता ।
रामे दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम् ॥ ६७
अयोध्यामटवीं विद्धि व्रज ताभ्यां गुणाकर ।
मात्रैवमुक्तो धर्मात्मा स्तनक्षीराद्वदेहया ॥ ६८
तां नत्वा चारुयानं तमारुरोह स लक्ष्मणः ।
गच्छतो लक्ष्मणो भाता सीता चैव पतिव्रता ॥ ६९
रामस्य पृष्ठतो याती पुराद्वीरौ महामते ।
विधिच्छिन्नाभिषेकं तं रामे राजीवलोचनम् ॥ ७०
अयोध्याया विनिष्कान्तमनुयाताः पुरोहिताः ।
मन्त्रिणः पौरमुख्याश्च दुःखेन महतान्विताः ॥ ७१
तं च प्राप्य हि गच्छन्तं रामपूचुरिदं वचः ।
राम राम महाबाहो गन्तुं नार्हसि शोभन् ॥ ७२
राजन्नन्न निवर्तस्व विहायास्मान् वव गच्छसि ।
इत्युक्तो राघवस्तैस्तु तानुवाच दृढव्रतः ॥ ७३
गच्छध्वं मन्त्रिणः पौरा गच्छध्वं च पुरोधसः ।
पित्रादेशं सया कार्यमभियास्यामि वै वनम् ॥ ७४
द्वादशाब्दं व्रतं चैतत्रीत्वाहं दण्डके वने ।
आगच्छामि पितुः पादं मातृणां द्रष्टुमङ्गसा ॥ ७५
इत्युक्त्वा ताङ्गगामाथ रामः सत्यपरायणः ।
तं गच्छन्तं पुनर्याताः पृष्ठतो दुःखिता जनाः ॥ ७६
पुनः प्राह स काकुत्स्थो गच्छध्वं नगरीमिमाम् ।
मातृश्च पितरं चैव शत्रुघ्नं नगरीमिमाम् ॥ ७७
प्रजाः समस्तास्तत्रस्था राज्यं भरतमेव च ।
पालयध्वं महाभागास्तपसे याप्यहं वनम् ॥ ७८

तदनन्तर सीताजी भी अपनी तीनों सासुओंसे तथा नेत्रोंसे शोकाशुकी धारा बहाते हुए संजाशन्य शशुर महाराज दशरथसे आज्ञा ले सब और देखती हुई रथपर आरुह्य हुई। सीताके साथ श्रीरामचन्द्रको रथपर चढ़कर बनमें जाते देख सुमित्रा अत्यन्त दुःखित हो लक्ष्मणसे बोलीं—‘सदगुणोंकी खान बेटा लक्ष्मण ! तुम आजसे श्रीरामको ही पिता दशरथ समझो, सीताको ही मेरा स्वरूप मानो तथा बनको ही अयोध्या जानो । उन दोनोंके साथ ही सेवाके लिये तुम भी जाओ’ ॥ ६५—६७ ॥

स्त्रेहवश जिनके स्तनोंसे दूध बहकर समस्त शरीरको फिंगों रहा था, उन माता सुमित्राके इस प्रकार कहनेपर लक्ष्मण उन्हें प्रणाम करके स्वयं भी उस सुन्दर रथपर जा बैठे । महामते ! इस प्रकार नगरसे बनमें जाते हुए श्रीरामचन्द्रजीके पीछे धीर-बीर भ्राता लक्ष्मण तथा सुस्थिर-हृदया पतिव्रता सीता—दोनों ही चले ॥ ६८—६९ ॥

दुर्दीवने जिनके राज्याभिषेकको बीचमें ही छिन्न-पिन्न कर दिया था, वे कमलनयन श्रीराम जब अयोध्यापुरीसे निकले, उस समय पुरोहित, मन्त्री और प्रधान-प्रधान पुरवासी भी बहुत दुःखी होकर उनके पीछे-पीछे चले तथा बनकी ओर जाते हुए श्रीरामके निकट पहुँचकर उनसे यों बोले—‘राम ! राम ! महाबाहो ! तुम्हें बनमें नहीं जाना चाहिये । शोभाशाली नरेश्वर ! नगरको लौट चलो; हमें छोड़कर कहाँ जा रहे हो ?’ ॥ ७०—७२ ॥

उनके यों कहनेपर दृढप्रतिज्ञ श्रीराम उनसे बोले—‘मन्त्रियो ! पुरवासियो ! और पुरोहितगण ! आप लोग लौट जायें । मुझे अपने पिताजीकी आज्ञाका पालन करना है, इसलिये मैं बनमें अवश्य जाऊँगा । यहाँ दण्डकारण्यमें आरह यर्पोतक बनवासके नियमको पूर्ण करनेके पश्चात् मैं पिता और माताओंके चरण-कमलोंका दर्शन करनेके लिये शीघ्र ही यहाँ लौट आऊँगा’ ॥ ७३—७५ ॥

नगर-निवासियोंसे यों कहकर सत्यपरायण श्रीराम आगे चढ़ गये । उन्हें जाते देख पुनः सब लोग दुःखी हो उनके पीछे-पीछे चलने लगे । तब ककुत्स्थनन्दन श्रीरामने फिर कहा—‘महाभागगण ! आपलोग इस अयोध्यापुरीको लौट जाइये और मेरे पिता-माताओंकी, भरत-शत्रुघ्नकी, इस अयोध्यानगरीकी, यहाँके समस्त प्रजाजनोंकी तथा इस राज्यकी भी रक्षा कीजिये । मैं बनमें तपस्याके लिये जाता हूँ’ ॥ ७६—७८ ॥

अथ लक्ष्मणमाहेदं वचनं राघवस्तदा।
सीतामर्पय राजाने जनकं पिथिलेश्वरम् ॥ ७९

पितुमातुवशे तिषु गच्छ लक्ष्मण याम्यहम्।
इत्युक्तः प्राह धर्मात्मा लक्ष्मणो भातुवत्सलः ॥ ८०

मैवमाज्ञापय विभो मामद्य करुणाकर।
गन्तुमिच्छुसि यत्र त्वमवश्यं तत्र याम्यहम् ॥ ८१

इत्युक्तो लक्ष्मणोनासी सीतां तामाह राघवः।
सीते गच्छ ममादेशात् पितरं प्रति शोभने ॥ ८२

सुमित्राया गृहे चापि कौशल्यायाः सुमध्यमे।
निवर्तस्व हि तावन्त्वं यावदागमनं मम ॥ ८३

इत्युक्ता राघवेनापि सीता प्राह कृताञ्जलिः।
यत्र गत्वा वने वासं त्वं करोषि महाभुज ॥ ८४

तत्र गत्वा त्वया सार्थं वसाम्यहमर्दिम्।
वियोगं नो सहे राजस्त्वया सत्यवता क्वचित् ॥ ८५

अतस्त्वां प्रार्थयिष्यामि दयां कुरु मम प्रभो।
गन्तुमिच्छुसि यत्र त्वमवश्यं तत्र याम्यहम् ॥ ८६

नानायानेरुपगताञ्नान् बीक्ष्य स पृष्ठतः।
योषितां च गणान् रामो वारयामास धर्मवित् ॥ ८७

निवृत्य स्थीयतां स्वैरमयोध्यायां जनाः स्त्रियः।
गत्वाहं दण्डकारण्यं तपसे धृतमानसः ॥ ८८

कतिपयाद्वादायास्ये नान्यथा सत्यमीरितम्।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या च स्वभार्यया ॥ ८९

जनान्निवत्य रामोऽसौ जगाम च गुहाश्रमम्।
गुहस्तु रामभक्तोऽसौ स्वभावादेव वैष्णवः ॥ ९०

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने उस समय लक्ष्मणसे यह बात कही—‘लक्ष्मण! तुम सीताको ले जाकर मिथिलापति राजा जनकको सौंप आओ और स्वयं पिता-माताके अधीन रहो। लौट जाओ, लक्ष्मण! मैं वनको अकेला ही जाऊँगा।’ उनके यों कहनेपर भ्रातुवत्सल धर्मात्मा लक्ष्मणने कहा—‘प्रभो! करुणानिधान! आप मुझे ऐसी कठोर आज्ञा न दीजिये। आप जहाँ भी जाना चाहते हैं, वहाँ मैं अवश्य चलूँगा।’ लक्ष्मणके यों कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने सीतासे कहा—‘शोभने सीते! तुम मेरी आज्ञासे अपने पिताके यही चली जाओ अथवा माता कौशल्या और सुमित्राके भवनमें जाकर रहो। सुन्दरि! तुम तबतकके लिये वहाँ लौट जाओ, जबतक कि मैं वनसे फिर यहाँ आ न जाऊँ’ ॥ ७९—८३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार आदेश देनेपर सीता भी हाथ जोड़कर बोली—‘महाबाहो! हे शत्रुदमन! आप बनमें जहाँ जाकर निवास करोगे, वहाँ चलकर मैं भी आपके ही साथ रहूँगी। राजन्! सत्यवत्तका पालन करनेवाले आप पतिदेवका वियोग मैं क्षणभरके लिये भी नहीं सह सकती; इसलिये प्रभो! मैं प्रार्थना करती हूँ, मुझपर दया करें। प्राणनाथ! आप जहाँ जाना चाहते हैं, वहाँ मैं भी अवश्य ही चलूँगी’ ॥ ८४—८६ ॥

इसके बाद श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि मेरे पीछे बहुत-से पुरुष नाना प्रकारके बाहनोंपर चढ़कर आ गये हैं तथा झुंड-की-झुंड स्त्रियाँ भी आ गयी हैं; तब धर्मवेत्ता श्रीरामने उन सबको साथ बलनेसे मना किया और कहा—‘पुरुषो! और स्त्रियो! आप सब लोग लौटकर अयोध्यामें स्वच्छन्तपूर्वक रहें। मैं तपस्याके लिये चित्त एकाग्र करके दण्डकारण्यको जा रहा हूँ। वहाँ कुछ ही वर्षोंतक रहनेके बाद मैं अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मणके साथ वहाँ लौट आऊँगा, यह मैंने सच्ची बात बतायी है। इसे अन्यथा नहीं मानना चाहिये’ ॥ ८७—८९ ॥

इस प्रकार अयोध्यावासी लोगोंको लौटाकर श्रीरामने गुहके आश्रमपर पदार्पण किया। गुह स्वभावसे ही वैष्णव तथा श्रीरामचन्द्रजीका परम भक्त था।

कृताव्जलिपुटो भूत्वा किं कर्तव्यमिति स्थितः ।
महता तपसाऽनीता गुरुणा या हि चः पुरा ॥ ११

भगीरथेन या भूमि सर्वपापहरा शुभा ।
नानामुनिजनेर्जुष्टा कूर्ममत्स्यसमाकुला ॥ १२

गङ्गा तुङ्गोर्मिमालाढ्या स्फटिकाभजलावहा ।
गुहोपनीतनावा तु तां गङ्गां स महाद्युतिः ॥ १३

उत्तीर्य भगवान् रामो भरद्वाजाश्रमं शुभम् ।
प्रयागे तु ततस्तस्मिन् स्नात्वा तीर्थे वद्याविधि ॥ १४

लक्ष्मणेन सह भात्रा राघवः सीतया सह ।
भरद्वाजाश्रमे तत्र विश्रान्तस्तेन पूजितः ॥ १५

ततः प्रभाते विमले तपनुज्ञाय राघवः ।
भरद्वाजोक्तमार्गेण चित्रकूटं शनैर्यथौ ॥ १६

नानाद्वुमलताकीर्ण पुण्यतीर्थमनुज्ञम् ।
तापसं वेष्मास्थाय जहुकन्यामतीत्य वै ॥ १७

गते रामे सभार्थे तु सह भात्रा ससारथौ ।
अयोध्यामवसन् भूप नष्टशोभां सुदुःखिताः ॥ १८

नष्टसंज्ञो दशरथः श्रुत्वा वचनमप्तियम् ।
रामप्रवासजननं कैकेय्या मुखनिस्सृतम् ॥ १९

लक्ष्मसंज्ञः क्षणाद्राजा रामरामेति चुकुशो ।
कैकेयुवाच भूपालं भरतं चाभिषेचय ॥ २००

सीतालक्ष्मणसंयुक्तो रामचन्द्रो वनं गतः ।
पुत्रशोकाभिसंतप्तो राजा दशरथस्तदा ॥ २०१

विहाय देहं दुःखेन देवलोकं गतस्तदा ।
ततस्तस्य महापुर्व्यामयोध्यायामरिदम् ॥ २०२

रुकुदुर्दुःखशोकात्ता जनाः सर्वे च योषितः ।
कौशल्या च सुमित्रा च कैकेयी कष्टकारिणी ॥ २०३

भगवान् रामको देखते हो वह उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और बोला—‘भगवन्! मैं क्या सेवा करूँ?’ ॥ १० ॥

[यों कहकर गुहने सीता और लक्ष्मणसहित श्रीरामका सादर पूजन एवं सत्कार किया । इसके बाद सबैरे सारथि और रथको लौटाकर वे गङ्गाजीके तटपर गये और पुनः कहने लगे—] राजन्! जिन्हें आपके पूर्वज महाराज भगीरथ पूर्वकालमें बड़ी तपस्या करके पृथ्वीपर ले आये थे, जो समस्त पापहरिणी और कल्याणकारिणी हैं, अनेकानेक मुनिजन जिनका सेवन करते हैं, जिनमें कृष्ण और मत्स्य आदि जल-जन्म भेरे रहते हैं, जो कैंची-कैंची लहरोंसे सम्प्रभु एवं स्फटिकमणिके समान स्वच्छ जल बहानेवाली हैं, उन पुण्यसंसिलिला गङ्गाजीको गुहके द्वारा लायी हुई नावसे पार करके महान् कानितमान् भगवान् श्रीराम भरद्वाज मुनिके शुभ आश्रमपर गये ॥ ११—१३ ॥

वह आश्रम प्रयागमें था । श्रीरामचन्द्रजीने सीता तथा भाई लक्ष्मणके साथ उस प्रयागतीर्थमें विधिवत् स्नान करके, वहीं भरद्वाज ऋषिके आश्रममें उनसे सम्मान प्राप्तकर रात्रिमें विश्राम किया । फिर निर्मल प्रभातकाल होनेपर श्रीराम तपस्योवेष धारणकर, भरद्वाज मुनिसे आज्ञा ले, उन्हींके बताये हुए मार्गसे गङ्गाके पार हो, धीरि-धीरि नाना प्रकारके वृक्ष और लताओंसे आच्छान्न परम उत्तम पावन तीर्थ चित्रकूटको गये ॥ १४—१७ ॥

राजन्! इधर सीता-लक्ष्मण और सारथिके सहित रामचन्द्रजीके चले जानेपर अयोध्यावासीजन बहुत दुःखी होकर शोभाशून्य अयोध्यानगरीमें रहने लगे । राजा दशरथ तो कैकेयीके मुखसे निर्गत श्रीरामको बनवास देनेवाले अपिय वचनको सुनते ही मूर्च्छित हो गये थे । कुछ देर बाद जब राजाको होश हुआ, तब वे उच्चस्वरसे ‘राम! राम!’ पुकारने लगे । तब कैकेयीने भूपालसे कहा—‘राम तो सीता और लक्ष्मणके साथ वनमें चले गये, अब आप भरतका राज्याभिषेक कीजिये ।’ यह सुनते ही राजा दशरथ पुत्रशोकसे संतप्त हो, दुःखके मारे शरीर त्यागकर देवलोकको चले गये ॥ १८—१०१ ॥

शत्रुदमन! तब उनकी महानगरी अयोध्यामें रहनेवाले सभी स्त्री-पुरुष दुःख और शोकसे पीड़ित हो विलाप करने लगे । कौशल्या, सुमित्रा तथा कष्टकारिणी

परिवार्य मृतं तत्र रुदुस्ताः पतिं ततः ।
ततः पुरोहितस्तत्र वसिष्ठः सर्वधर्मवित् ॥ १०४

तैलद्रोण्यां विनिक्षिप्य मृतं राजकलेवरम् ।
दूतं चै प्रेषयामास सहमन्विगणैः स्थितः ॥ १०५

स गत्वा यत्र भरतः शत्रुघ्नेन सह स्थितः ।
तत्र प्राप्य तथा वार्ता संनिवर्त्य नृपात्मजौ ॥ १०६

तावानीय ततः शीघ्रयोद्यां पुनरागतः ।
कृराणि दृष्ट्वा भरतो निमित्तानि च चै पथिः ॥ १०७

विपरीतं त्वयोद्यायामिति भेने स पार्थिवः ।
निश्शोभां निर्गतश्रीकां दुःखशोकान्वितां पुरीम् ॥ १०८

कैकेय्याग्निविनिर्दग्धामयोद्यां प्रविवेश सः ।
दुःखान्विता जनाः सर्वे तौ दृष्ट्वा रुदुर्भृशम् ॥ १०९

हा तात राम हा सीते लक्ष्मणोति पुनः पुनः ।
रुदो भरतस्तत्र शत्रुघ्नश्च सुदुःखितः ॥ ११०

कैकेय्यास्तत्क्षणाच्छुत्वा चुक्रोद्ध भरतस्तदा ।
दुष्टा त्वं दुष्टचित्ता च यथा रामः प्रवासितः ॥ १११

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा राघवः सीतया बनम् ।
साहसं किं कृतं दुष्टे त्वया सद्योऽत्यभाग्यया ॥ ११२

उद्वास्य सीतया रामं लक्ष्मणेन महात्मना ।
ममैव पुत्रं राजानं करोत्विति मतिस्तव ॥ ११३

दुष्टाया नष्टभाग्यायाः पुत्रोऽहं भाग्यवर्जितः ।
भ्रात्रा रामेण रहितो नाहं राज्यं करोमि वै ॥ ११४

यत्र रामो नरव्याघः पद्मपत्रायतेक्षणः ।
धर्मज्ञः सर्वशास्त्रज्ञो मतिमान् अन्युवत्सलः ॥ ११५

सीता च यत्र वैदेही नियमव्रतचारिणी ।
पतिव्रता महाभागा सर्वलक्षणसंयुता ॥ ११६

कैकेयी भी अपने मृत पतिको चारों ओरसे घेरकर रोने लगी ॥ १०२—१०३ ॥

तब सब धर्मोंको जाननेवाले पुरोहित वसिष्ठजीने वहाँ आकर सबको शान्त किया और राजाके मृत शरीरको तेलसे भरी हुई नीकामे रखवाकर, मन्त्रिगणोंके साथ विचार करके, भरत-शत्रुघ्नको बुलानेके लिये दूत भेजा । वह दूत जहाँ शत्रुघ्नके साथ भरतजी थे, वहाँ गया और जितना उसे बताया गया था, उतना ही संदेश सुनाकर, उन दोनों राजकुमारोंको वहाँसे लौटाकर, उन्हें साथ ले, शीघ्र ही अयोध्यामें स्थौट आया । राजा भरत मार्गमें घोर अपशकुन देख मन-ही-मन यह जान गये कि 'अयोध्यामें कोई विपरीत घटना घटित हुई है ।' फिर जो कैकेयीरूपी अग्रिसे दग्ध होकर शोभाहीन, निस्तेज और दुःख-शोकसे परिपूर्ण हो गयी थी, उस अयोध्यापुरीमें भरतजीने प्रवेश किया । उस समय भरत और शत्रुघ्नको देख सभी लोग दुःखी हो 'हा तात ! हा राम ! हा सीते ! हा लक्ष्मण !' इस प्रकार बारम्बार पुकारते हुए बहुत विलाप करने लगे । यह देख भरत और शत्रुघ्न भी दुःखी होकर रोने लगे ॥ १०४—११० ॥

उस समय कैकेयीके मुखसे तत्काल सारा बृत्तान्त सुनकर भरतजी उसके ऊपर बहुत ही कुपित हुए और बोले—'अरी ! तू तो बड़ी दुष्टा है । तेरे चित्तमें दुष्टापूर्ण विचार भरा हुआ है । हाय ! जिसने श्रीरामको बनवास दे दिया, जिसके कारण भाई लक्ष्मण और देवी सीताके साथ श्रीरामसुनाथजीको बनमें जानेको विवश होना पड़ा, उससे बढ़कर दुष्टा कौन स्त्री होगी ? अरी दुष्टे ! ओ मन्दभागिनी ! तूने तत्काल ऐसा दुस्साहस कैसे किया ? तूने सोचा होगा कि महात्मा लक्ष्मण और साध्वी सीताके साथ रामको घरसे निकालकर महाराजा दशरथ मेरे ही पुत्रको राजा बना देंगे । (धिक्कार है तेरी इस कुबुद्धिको !) आह ! मैं कितना भाग्यहीन हूँ, जो तुझ-जैसी अभागिनी दुष्टा स्त्रीका पुत्र हुआ । किंतु तू निश्चय जान, मैं अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामसे अलग रहकर राज्य नहीं करूँगा । जहाँ मनुष्योंमें श्रेष्ठ, धर्मज्ञ, सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता, बुद्धिमान् तथा भाइयोंपर ज्ञोह रखनेवाले पूज्य भ्राता कमलदललोचन श्रीरामचन्द्रजी गये हैं, जहाँ नियम और व्रतका आचरण करनेवाली, समस्त शुभलक्षणोंसे युक्त, अत्यन्त सौभाग्य-शालिनी पतिव्रता विदेहराजकुमारी सीताजी विद्यमान हैं

लक्ष्मणश्च महावीर्यो गुणवान् भातुवत्सलः ।
तत्र यास्यामि कैकेयि महत्पापं त्वया कृतम् ॥ ११७

राम एव मम भाता ज्येष्ठो मतिमतां वरः ।
स एव राजा दुष्टात्मे भृत्योऽहं तस्य वै सदा ॥ ११८

इत्युक्त्वा मातरं तत्र रुदो भृशदुःखितः ।
हा राजन् पृथिवीपाल मां विहाय सुदुःखितम् ॥ ११९

क गतोऽस्यद्य वै तात किं करोमीह तद्वद् ।
भाता पित्रा समः बवास्ते ज्येष्ठो मे करुणाकरः ॥ १२०

सीता च मातृतुल्या मे वव गतो लक्ष्मणश्च ह ।
इत्येवं विलपनं तं भरतं मन्त्रिभिः सह ॥ १२१

बसिष्ठो भगवानाह कालकर्मविभागवित् ।
दत्तिष्ठोन्निष्ठु वत्स त्वं न शोकं कर्तुमर्हसि ॥ १२२

कर्मकालवशादेव पिता ते स्वर्गमास्थितः ।
तस्य संस्कारकार्याणि कर्माणि कुरु शोभन ॥ १२३

रामोऽपि दुष्टनाशाय शिष्टानां पालनाय च ।
अवतीर्णो जगत्स्वामी स्वांशेन भुवि माधवः ॥ १२४

प्रायस्त्रास्ति रामेण कर्तव्यं लक्ष्मणेन च ।
यत्रासौ भगवान् वीरः कर्मणा तेन चोदितः ॥ १२५

तत्कृत्वा पुनरायाति रामः कमललोचनः ।
इत्युक्तो भरतस्तेन बसिष्ठेन महात्मना ॥ १२६

संस्कारं लभ्यामास विधिदृष्टेन कर्मणा ।
अग्निहोत्राग्निना दग्ध्वा पितुर्देहं विधानतः ॥ १२७

सात्वा सरव्या: सलिले कृत्वा तस्योदक्क्रियाम् ।
शत्रुघ्नेन सह श्रीमान्मातृभिर्बान्धवैः सह ॥ १२८

तस्योऽर्धदेहिकं कृत्वा मन्त्रिणा मन्त्रिनायकः ।
हस्त्यश्वरथपत्तीभिः सह प्रायान्महामतिः ॥ १२९

और जहाँ भाईमें भक्ति रखनेवाले, सहगुणसम्पन्न, महान् पराक्रमी लक्ष्मणजी गये हैं, वहाँ मैं भी जाऊँगा। कैकेयि। तूने रामको बनवास देकर महान् पाप किया है। दुष्टहृदये! बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी ही मेरे ज्येष्ठ भाता हैं, वे ही राजा होनेके अधिकारी हैं। मैं तो सदा उनका दास हूँ' ॥ १११—११८ ॥

मातासे यों कहकर भरतजी अत्यन्त दुःखी हो, वहाँ फूट-फूटकर रोने लगे और विलाप करने लगे—'हा राजन्! हा वसुधाप्रतिपालक! हा तात! मुझ अत्यन्त दुःखी बालकको छोड़कर आप कहाँ चले गये? बताइये, मैं अब यहाँ क्या करूँ? पिताके तुल्य दया करनेवाले मेरे ज्येष्ठ भाता श्रीराम कहाँ हैं? माताके समान पूजनीया सीता कहाँ हैं और मेरा प्यारा भाई लक्ष्मण कहाँ चला गया?' ॥ ११९—१२० ॥

भरतको इस प्रकार विलाप करते देख काल और कर्मके विभागको जाननेवाले भगवान् बसिष्ठजी मन्त्रियोंके साथ वहाँ आकर बोले—'बेटा! उठो, उठो; तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। भद्र! काल और कर्मके बशीभूत होकर ही तुम्हारे पिता स्वर्गवासी हुए हैं; अब तुम उनके अन्त्येहिसंस्कार आदि कर्म करो। भगवान् श्रीराम साक्षात् लक्ष्मीपति नाशयण हैं। वे जगदीश्वर दुष्टोंका नाश और साधुपुरुषोंका पालन करनेके लिये ही अपने अंशसे इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं। बनमें श्रीराम और लक्ष्मणके द्वारा बहुत-से कार्य होनेवाले हैं। वहाँ धीरघर कमललोचन श्रीरामचन्द्रजी उन्हीं कर्तव्यकर्मोंसे प्रेरित होकर रहेंगे और उन्हें पूर्ण करके यहाँ लौट आयेंगे' ॥ १२१—१२५ ॥

उन महात्मा बसिष्ठजीके यों कहनेपर भरतजीने शास्त्रोक्त विधिके अनुसार पिताका और्ध्वदेहिक संस्कार किया। उस समय उन्होंने अग्निहोत्रकी अग्निसे पिताके शवका विधिपूर्वक दाह किया। फिर सरथूके जलमें खान करके श्रीमान् भरतने भाई शत्रुघ्न, सब माताओं तथा अन्य बन्धुजनोंके साथ परलोकगत पिताके लिये तिलसहित जलकी अञ्जलि दी ॥ १२६—१२८ ॥

इस प्रकार पिताका और्ध्वदेहिक संस्कार करके मन्त्रियोंके अधिष्ठित साधुश्रेष्ठ महाबुद्धिमान् भरतजी अपने मन्त्रियों तथा हाथी, घोड़े, रथ एवं पैदल, सेनाओंके साथ (माताओं तथा बन्धुजनोंको भी साथ

भरतो राममन्येषु राममार्गेण सत्तमः।
तमायान्तं महासैनं रामस्यानुविरोधिनम्॥ १३०

मत्वा तं भरतं शत्रुं रामभक्तो गुहस्तदा।
स्वं सैन्यं वर्तुलं कृत्वा संनद्धः कवची रथी॥ १३१

महाबलपरीवारो रुदोध भरतं पथि॥ १३२

सभातुंक सभार्य मे रामं स्वामिनमुत्तमम्।
प्रापयस्त्वं वनं दुष्टं साम्प्रतं हन्तुमिच्छसि॥ १३३

गमिष्यसि दुरात्मस्त्वं सेनया सह दुर्मते।
इत्युक्तो भरतस्तत्र गुहेन नृपनन्दनः॥ १३४

तपुवाच विनीतात्मा रामायाथ कृताञ्जलिः।
यथा त्वं रामभक्तोऽसि तथाहमपि भक्तिमान्॥ १३५

प्रोषिते मयि कैकेय्या कृतमेतमहामते।
रामस्यानयनार्थाय द्वजाम्यद्य महामते॥ १३६

सत्यपूर्वं गमिष्यामि पन्थानं देहि मे गुह।
इति विश्वासमानीय जाह्नवीं तेन तारितः॥ १३७

नौकावृन्दैरनेकस्तु स्त्रात्वासौ जाह्नवीजले।
भरद्वाजाश्रमं प्राप्तो भरतस्तं महामुनिम्॥ १३८

प्रणाम्य शिरसा तस्यै यथावृत्तमुवाच ह।
भरद्वाजोऽपि तं प्राह कालेन कृतमीदूशम्॥ १३९

दुःखं न तावत् कर्तव्यं रामार्थेऽपि त्वयाधुना।
वर्तते चित्रकूटेऽसौ रामः सत्यपराक्रमः॥ १४०

त्वयि तत्र गते वापि प्रायोऽसौ नागमिष्यति।
तथापि तत्र गच्छ त्वं यदसौ वक्ति तत्कुरु॥ १४१

रामस्तु सीतया सार्थं बनखण्डे स्थितः शुभे।
लक्ष्मणस्तु महाबीर्यो दुष्टालोकनतत्परः॥ १४२

ले) श्रीरामचन्द्रजीका अन्वेषण करनेके लिये जिस मार्गसे वे गये थे, उसी मार्गसे चले। उस समय भरत (और शत्रुघ्न)-को इतनी बड़ी सेनाके साथ आते देख, उन्हें श्रीरामचन्द्रजीका विरोधी शत्रु समझकर रामभक्त गुहने सुदूरके लिये सुसज्जित हो, अपनी सेना गोलाकार खड़ी की और कवच धारणकर, रथारूढ़ हो, उस विशाल सेनासे घिरे हुए उसने मार्गमें भरतको रोक दिया। उसने कहा—‘दुष्ट! दुरात्मन्! दुर्बुद्धे! तूने मेरे श्रेष्ठ स्वामी श्रीरामको भाई और पत्रीसहित वनमें तो भिजवा ही दिया; क्या अब उन्हें मारना भी चाहते हो, जो (इतनी बड़ी) सेनाके साथ बहाँ जा रहे हो?’॥ १२९—१३३½,॥

गुहके यों कहनेपर राजकुमार भरत श्रीरामके उद्देश्यसे हाथ जोड़कर विनशयुक्त होकर उससे बोले—‘गुह! जैसे तुम श्रीरामचन्द्रजीके भक्त हो, वैसे ही मैं भी उनमें भक्ति रखता हूँ। महामते! मैं नगरसे बाहर (मामाके घर) चला गया था, उस समय कैकेयीने यह अनर्थ कर डाला। महाबुद्धे! आज मैं श्रीरामचन्द्रजीको लौटा लानेके लिये जा रहा हूँ। तुमसे यह सत्य बात बताकर बहाँ जाना चाहता हूँ। तुम मुझे मार्ग दे दो’॥ १३४—१३६½,॥

इस प्रकार विश्वास दिलानेपर गुह उन्हें गङ्गातट-पर ले आया और झुंड-की-झुंड नौकाएँ मैगाकर उनके हारा उन सबको पार कर दिया। फिर गङ्गाजीके जलमें स्नान करके भरतजी भरद्वाजमुनिके आश्रमपर पहुँचे और उन महामुनिके चरणोंमें मस्तक झुका, प्रणाम करके उन्होंने उनसे अपना यथार्थ बृत्तान् कह सुनाया॥ १३७—१३८½,॥

भरद्वाजजीने भी उनसे कहा—‘भरत! कालके ही प्रभावसे ऐसा काण्ड घटित हुआ है। अब तुम्हें श्रीरामके लिये भी खेद नहीं करना चाहिये। सत्यपराक्रमी वे श्रीरामचन्द्रजी इस समय चित्रकूटमें हैं। वहाँ तुम्हारे जानेपर भी वे प्रायः नहीं आ सकेंगे; तथापि तुम वहाँ जाओ और जैसे वे कहें, वैसे ही करो। श्रीरामचन्द्रजी सीताके साथ एक सुन्दर बनखण्डीमें निवास करते हैं और महान् पराक्रमी लक्ष्मण दुष्ट जीवोंपर दृष्टि रखते हैं—उनकी रक्षामें तत्पर रहते हैं’॥ १३९—१४२॥

इत्युक्तो भरतस्तत्र भरद्वाजेन धीमता।
उत्तीर्णं यमुनां यातक्षित्रकूटं महानगम्॥ १४३

स्थितोऽसौ दृष्टवान्दूरात्सधूलीं चोत्तरां दिशम्।
रामाय कथयित्वा इस तदादेशात् लक्ष्मणः॥ १४४

वृक्षमारुह्य मेधावी दीक्षमाणः प्रयत्नतः।
स ततो दृष्टवान् दृष्टामायान्तीं महतीं चमूप्॥ १४५

हस्त्यश्वरथसंयुक्तां दृष्टा रामपथाद्वीत्।
हे भातस्त्वं महाबाहो सीतापाश्च स्थिरो भव॥ १४६

भूपोऽस्ति बलवान् कक्षिद्वस्त्यश्वरथपत्तिभिः।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य लक्ष्मणस्य महात्मनः॥ १४७

रामस्तमन्नवीद्वीरो वीरं सत्यपराक्रमः।
प्रायेण भरतोऽस्माकं द्रष्टुमायाति लक्ष्मण॥ १४८

इत्येवं वदतस्तस्य रामस्य विदितात्मनः।
आगत्संस्थाप्य सेनां तां भरतो विनयान्वितः॥ १४९

ज्ञाहाणीर्मन्त्रिभिः सार्थं रुद्रागत्य पादयोः।
रामस्य निपपाताथ वैदेह्या लक्ष्मणस्य च॥ १५०

मन्त्रिणो मातृवर्गश्च स्तिरथवन्युसुहजनाः।
परिवार्यं ततो रामं रुदुः शोककातराः॥ १५१

स्वर्यातं पितरं ज्ञात्वा ततो रामो महामतिः।
लक्ष्मणेन सह भात्रा वैदेह्याथ समन्वितः॥ १५२

ज्ञात्वा मलापहेतीर्थे दत्त्वा च सलिलाङ्गलिम्।
मात्रादीनभिवाद्याथ रामो दुःखसमन्वितः॥ १५३

उवाच भरतं राजन् दुःखेन महतान्वितम्।
अयोध्यां गच्छ भरत इतः शीघ्रं महामते॥ १५४

राजा विहीनां नगरीं अनाशां परिपालय।
इत्युक्तो भरतः प्राह रामं राजीवलोचनम्॥ १५५

त्वामृते पुरुषव्याघ्रं न यास्येऽहमितो धूवम्।
यत्र त्वं तत्र यास्यामि वैदेही लक्ष्मणो यथा॥ १५६

बुद्धिमान् भरद्वाजजीके यों कहनेपर भरतजी यमुना पार करके महान् पर्वत वित्रकूटपर गये। वहाँ खड़े हुए लक्ष्मणजीने दूरसे उत्तर दिशमें धूल उड़ती देख श्रीरामचन्द्रजीको सूचित किया। फिर उनकी आज्ञासे वृक्षपर चढ़कर बुद्धिमान् लक्ष्मणजी प्रयत्नपूर्वक उधर देखने लगे। तब उन्हें वहाँ बहुत बड़ी सेना आती दिखायी दी, जो हर्ष एवं उत्साहसे भरी जान पड़ती थी। हाथी, घोड़े और रथोंसे युक्त उस सेनाको देखकर लक्ष्मणजी श्रीरामसे बोले—‘ऐया! तुम सीताके पास स्थिरतापूर्वक बैठे रहो। महाबाहो! कोई महाबली राजा हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंसे युक्त चतुरज़िणी सेनाके साथ आ रहा है’॥ १४३—१४६ ½ ॥

महात्मा लक्ष्मणके ऐसे बचन सुनकर सत्यपराक्रमी वीरवर श्रीराम अपने उस वीर भ्रातासे बोले—‘लक्ष्मण! मुझे तो प्रायः यही जान पड़ता है कि भरत ही हम लोगोंसे मिलनेके लिये आ रहे हैं।’ विदितात्मा भगवान् श्रीराम जिस समय यों कह रहे थे, उसी समय विनयशील भरतजी वहाँ पहुँचे और सेनाको कुछ दूरीपर उहराकर स्वयं ज्ञाहाणों और मन्त्रियोंके साथ निकट आ, सीता और लक्ष्मणसहित भगवान् श्रीरामके चरणोंपर रोते हुए गिर पड़े। फिर मन्त्री, माताएँ, स्नेही बन्धु तथा मित्रगण श्रीरामको चारों ओरसे घेरकर शोकमग्न हो रोने लगे॥ १४७—१५१ ॥

तदनन्तर महामति श्रीरामने अपने पिताके स्वर्गगामी होनेका समाचार पाकर भ्राता लक्ष्मण और जानकीके साथ वहाँके पापनाशक तीर्थमें स्नान करके जलाङ्गलि दी। राजन्! फिर माता आदि गुरुजनोंको प्रणाम करके रामचन्द्रजी दुःखी हो अत्यन्त खोदमें पड़े हुए भरतसे बोले—‘महामते भरत! तुम अब यहाँसे शीघ्र अयोध्याको चले जाओ और राजासे हीन हुई उस अनाथ नगरीका पालन करो।’ उनके यों कहनेपर भरतने कमललोचन रामसे कहा—‘पुरुषश्रेष्ठ! यह निष्ठय है कि मैं आपको साथ लिये बिना यहाँसे नहीं जाऊँगा। जहाँ आप जायेंगे, वहाँ सीता-लक्ष्मणकी भाँति मैं भी चलूँगा’॥ १५२—१५६ ॥

इत्याकर्ष्य पुनः प्राह भरतं पुरतः स्थितम्।
नृणां पितृसमो ज्येष्ठः स्वधर्ममनुवर्तिनाम्॥ १५७

यथा न लङ्घयं वचनं मया पितृमुखेरितम्।
तथा त्वया न लङ्घयं स्याद्वचनं मम सत्तम्॥ १५८

पत्समीपादितो गत्वा प्रजास्त्वं परिपालय।
द्वादशाब्दिकमेतन्मे व्रतं पितृमुखेरितम्॥ १५९

तदरण्ये चरित्वा तु आगमिष्यामि तेऽनिकम्।
गच्छ तिष्ठ ममादेशो न दुःखं कर्तुमर्हसि॥ १६०

इत्युक्तो भरतः प्राह बाष्पपर्याकुलेक्षणः।
यथा पिता तथा त्वं मे नात्र कार्या विचारणा॥ १६१

तवादेशान्मया कार्यं देहि त्वं पादुके मम।
नन्दिग्रामे वसिष्येऽहं पादुके द्वादशाब्दिकम्॥ १६२

त्वद्वेषमेव मद्वेषं त्वद्व्रतं मे महाव्रतम्।
त्वं द्वादशाब्दिकादूर्ध्वं यदि नायासि सत्तम्॥ १६३

ततो हविर्यथा चाग्नी प्रथक्ष्यामि कलेवरम्।
इत्येवं शपथं कृत्वा भरतो हि सुदुःखितः॥ १६४

बहु प्रदक्षिणां कृत्वा नमस्कृत्य च राघवम्।
पादुके शिरसा स्थाप्य भरतः प्रस्थितः शनैः॥ १६५

स कुर्वन् भातुरादेशं नन्दिग्रामे स्थितो वशी।
तपस्वी नियताहारः शाकमूलफलाशनः॥ १६६

जटाकलापं शिरसा च विभ्रत्
त्वचशु वाक्षीः किल वन्यभोजी।
रामस्य वाक्यादरतो हृदि स्थितं
बभार भूभारमनिन्दितात्मा॥ १६७

यह सुनकर श्रीरामने अपने सामने खड़े हुए भरतसे पुनः कहा—‘साधुश्रेष्ठ भरत ! अपने धर्मका पालन करनेवाले मनुष्योंके लिये ज्येष्ठ प्राता पिता के समान पूज्य है । जिस प्रकार मुझे पिता के मुखसे निकले हुए वचनका उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये, वैसे ही तुम्हें भी मेरे वचनोंका उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये । अब तुम यहाँ मेरे निकटसे जाकर प्रजाजनका पालन करो । पिता के मुखसे कहा हुआ जो यह बारह वर्षोंके वनवासका व्रत मैंने स्वीकार किया है, उसका वनमें पालन करके मैं पुनः तुम्हारे पास आ जाऊँगा । जाओ, मेरी आज्ञाके पालनमें लग जाओ; तुम्हें खेद नहीं करना चाहिये’॥ १५७—१६० ॥

उनके यों कहनेपर भरतने औंखोंमें आँसू भरकर कहा—‘भैया ! इसके सम्बन्धमें मुझे कोई विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है कि मेरे लिये जैसे पिताजी थे, वैसे ही आप हैं । अब मैं आपके आदेशके अनुसार ही कार्य करूँगा; किंतु आप अपनी दोनों चरणपादुकाएँ मुझे दे दें । मैं इन्हीं पादुकाओंका आश्रय ले नन्दिग्राममें निवास करूँगा और आपकी ही भाँति बारह वर्षोंतक व्रतका पालन करूँगा । अब आपके वेषके समान ही मेरा वेष होगा और आपका जो व्रत है, वही मेरा भी महान् व्रत होगा । साधुश्रीरोमणे ! यदि आप बारह वर्षोंके व्रतका पालन करनेके बाद तुरंत नहीं पथरेंगे तो मैं अग्रिमें हविर्यथकी भाँति अपने शरीरको होम दूँगा ।’ अत्यन्त दुःखी भरतजीने इस प्रकार शपथ करके भगवान् रामकी अनेक बार प्रदक्षिणा की, बारंबार उन्हें प्रणाम किया और उनकी चरणपादुकाएँ अपने सिरपर रखकर वे वहाँसे धीरे-धीरे चल दिये ॥ १६१—१६५ ॥

भरतजी अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके, शाक और मूल-फलादिका नियमित आहार करते हुए तपोनिष्ठ हो, भ्राताके आदेशका पालन करते हुए नन्दिग्राममें रहने लगे । विशुद्ध हृदयवाले भरतजी अपने सिरपर जटा धारण किये और अङ्गोंमें वल्कल पहने, दन्त फलोंका ही आहार करते थे । वे मन-ही-मन श्रीरामचन्द्रजीके वचनोंमें श्रद्धा रखनेके कारण अपने ऊपर पढ़े पृथ्वीके शासनका भार ढोने लगे ॥ १६६—१६७ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे श्रीरामपादुभावे अष्टचत्वारिंशतीति अध्यायः ॥ ४८ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें श्रीरामावतारविषयक अङ्गतालीसर्वां अध्याय पूरा हुआ ॥ ४८ ॥

उनचासवाँ अध्याय

श्रीरामका जयन्तको दण्ड देना; शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण और अगस्त्यसे मिलना;
शूर्पणखाका अनादर; सीताहरण; जटायुवध और शबरीको दर्शन देना

मार्कण्डेय उक्ताच

गतेऽथ भरते तस्मिन् रामः कमललोचनः । लक्ष्मणेन सह धात्रा भार्या सीतया सह ॥ १
शाकमूलफलाहारो विच्चार महावने । कदाचित्तलक्ष्मणमृते रामदेवः प्रतापवान् ॥ २
चित्रकूटवनोद्देशे वैदेह्यत्सङ्गमाश्रितः । सुष्ठाप स मुहूर्तं तु ततः काको दुरात्मवान् ॥ ३
सीताभिमुखमध्येत्य विददार स्तनान्तरम् । विदार्य वृक्षमारुह्य स्थितोऽसौ वायसाधमः ॥ ४
ततः प्रबुद्धो रामोऽसौ दृष्टा रक्तं स्तनान्तरे । शोकाविष्टां तु सीतां तामुवाच कमलेक्षणः ॥ ५
वद स्तनान्तरे भद्रे तव रक्तस्य कारणम् । इत्युक्ता सा च तं प्राह भत्तारं विनयान्विता ॥ ६
पश्य राजेन्द्र वृक्षागे वायसं दुष्टेष्टितम् । अनेनैव कृतं कर्म सुप्ते त्वयि महामते ॥ ७
रामोऽपि दृष्ट्वान् काकं तस्मिन् क्षोधपथाकरोत् । इष्वीकास्त्रं समाधाय ज्ञाह्यास्त्रेणाभिमन्त्रितम् ॥ ८
काकमुदिश्य चिक्षेप सोऽप्यथावद्यान्वितः । स त्विन्द्रस्य सुतो राजग्रिन्दलोके विवेश ह ॥ ९
रामास्त्रं प्रच्छलदीप्तं तस्यानु प्रविवेश वै । विदितार्थंशु देवेन्द्रो देवैः सह समन्वितः ॥ १०
निष्क्रामयच्च तं दुष्टं राघवस्यापकारिणम् । ततोऽसौ सर्वदेवैस्तु देवलोकाद्विः कृतः ॥ ११
पुनः सोऽप्यपतद्रामं राजानं शरणं गतः । प्राहि राम महाबाहो अज्ञानादपकारिणम् ॥ १२

मार्कण्डेयजी कहते हैं—भरतजीके अयोध्या लौट जानेपर कमललोचन श्रीरामचन्द्रजी अपनी भार्या सीता और भाई लक्ष्मणके साथ शाक और मूल-फल आदिके आहारसे ही जीवन-निर्बाह करते हुए उस महान् बनमें विचरने लगे। एक दिन परम प्रतापी भगवान् राम लक्ष्मणको साथ न ले जाकर चित्रकूट पर्वतके बनमें सीताजीको गोदमें कुछ देरतक सोये रहे। इतनेमें ही एक दुष्ट कोएने सीताके सम्मुख आ उनके स्तनोंके बीच चौंच मारकर धाव कर दिया। धाव करके वह अधम काक वृक्षपर जा बैठा ॥ १—४ ॥

तदनन्तर जब कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीकी नींद खुली, तब उन्होंने देखा, सीताके स्तनोंसे रक्त वह रहा है और वे शोकमें झूमी हुई हैं। यह देख उन्होंने सीतासे पूछा—‘कल्पाणि! बताओ, तुम्हारे स्तनोंके बीचसे रक्त वहनेका क्या कारण है?’ उनके यों कहनेपर सीताने अपने स्वामीसे विनयपूर्वक कहा—‘राजेन्द्र! महामते! वृक्षकी शाखापर बैठे हुए इस दुष्ट कोएको देखिये; आपके सो जानेपर इसीने यह दुस्साहसपूर्ण कार्य किया है’ ॥ ५—७ ॥

रामचन्द्रजीने भी उस कोएको देखा और उसपर बहुत ही क्रोध किया। फिर सौंकका वाण बनाकर उसे ब्रह्मास्त्र-मन्त्रसे अभिमन्त्रित किया और उस कोएको लक्ष्य करके चला दिया। यह देख वह भयभीत होकर भागा। राजन्! कहते हैं, वह काक वास्तवमें इन्द्रका पुत्र जयन्त था, अतः भागकर इन्द्रलोकमें घुस गया। उसके साथ ही श्रीरामचन्द्रजीके उस प्रज्वलित एवं देवोप्यमान वाणने भी उसका पीछा करते हुए इन्द्रलोकमें प्रवेश किया। यह सब वृत्तान्त जान, देवराज इन्द्रने देवताओंके साथ मिलकर विचार किया तथा श्रीरामचन्द्रजीका अपराध करनेवाले उस दुष्ट पुत्रको वहाँसे निकाल दिया। जब सब देवताओंने उसे देवलोकसे बाहर कर दिया, तब वह पुनः एवा श्रीरामचन्द्रजीकी ही शरणमें आया और बोला—‘महाबाहो श्रीराम! मैंने अज्ञानवश अपराध किया है, मुझे बचाइये’ ॥ ८—१२ ॥

इति ब्रुवनं तं प्राह रामः कमललोचनः।
अमोघं च मर्मवास्त्रमङ्गमेकं प्रयच्छ वै ॥ १३

ततो जीवसि दुष्ट त्वमपकारो महान् कृतः।
इत्युक्तोऽसी स्वकं नेत्रमेकमस्त्राय दत्तवान् ॥ १४

अस्त्रं तत्रेत्रमेकं तु भस्मीकृत्य समाययौ।
ततः प्रभृति काकानां सर्वेषामेकनेत्रता ॥ १५

चक्षुषेकेन पश्यन्ति हेतुना तेन पार्थिव।
उषित्वा तत्र सुचिरं छित्रकूटे स राघवः ॥ १६

जगाय दण्डकारण्यं नानामुनिनिषेवितम्।
सभातृकः सभार्यक्षु तापसं खेषमास्थितः ॥ १७

धनुःपर्वसुपाणिक्षु सेषुधिक्षु महाबलः।
ततो ददर्श तत्रस्थानम्बुधक्षान्महापुनीन् ॥ १८

अश्मकुद्वाननेकांश्च दन्तोलूखलिनस्तथा।
पञ्चाग्निमध्यगानन्यानन्यानुग्रतपश्चरान् ॥ १९

तान् दृष्टा प्रणिपत्योच्चै रामस्तैश्चाभिनन्दितः।
ततोऽखिलं वनं दृष्टा रामः साक्षाज्ञनार्दनः ॥ २०

भ्रातुभायांसहायक्षु सम्प्रतस्थे महामतिः।
दर्शयित्वा तु सीतायै वनं कुसुमितं शुभम् ॥ २१

नानाश्वर्यसमायुक्तं शनैर्गच्छन् स दृष्टवान्।
कृष्णाङ्गं रक्तनेत्रं तु स्थूलशीलसमानकम् ॥ २२

शुभदंष्ट्रं महाबाहुं संध्याघनशिरोरुहम्।
मेधस्वनं सापराधं शरं संधाय राघवः ॥ २३

विव्याध राक्षसं क्रोधाल्लक्ष्मणेन सह प्रभुः।
अन्यैरवध्यं हत्वा तं गिरिगते महातनुष् ॥ २४

इस प्रकार कहते हुए जयन्तसे कमललोचन श्रीरामने कहा—‘ओरे दुष्ट ! मेरा अस्त्र अमोघ है, अतः इसके लिये अपना कोई एक अङ्ग दे दे; तभी तू जीवित रह सकता है; क्योंकि तूने बहुत बड़ा अपराध किया है।’ उनके यों कहनेपर उसने श्रीरामके उस बाणके लिये अपना एक नेत्र दे दिया। उसके एक नेत्रको भस्म करके वह अस्त्र लौट आया। उसी समयसे सभी कोई एक नेत्रवाले हो गये। गजन् ! इसी कारण वे एक आँखसे ही देखते हैं ॥ १३—१५ ॥

श्रीरामचन्द्रजी अपने भाई और पत्नीके साथ चिरकालतक चित्रकूटपर निवास करनेके अनन्तर वहाँसे अनेक मुनियोंद्वारा सेवित दण्डकारण्यको चल दिये। उस समय वे तपस्वी वेषमें थे, उनके हाथमें धनुष और बाण थे तथा पीठपर तारकस बैधा था। वहाँ जानेपर महाबलवान् श्रीरामने उस वनमें रहनेवाले बड़े-बड़े मुनियोंका दर्शन किया, जिनमेंसे कई लोग केवल जलका आहार करनेवाले थे। कितने ही दन्तहीन होनेसे पत्थरपर कूट-पीसकर आहार ग्रहण करते, इसलिये ‘अश्मकुट’ कहलाते थे। कुछ तपस्वी दौँतोंसे ही ओखलीका काम लेनेवाले होनेसे ‘दन्तोलूखली’ कहे जाते थे। कुछ पौँच अग्नियोंके बीचमें बैठकर तप करते थे और कुछ महात्मा इससे भी उत्तर तपस्यामें तत्पर थे। उनका दर्शन करके श्रीरामने उन्हें साणाङ्ग प्रणाम किया और उन्होंने भी उनका अभिनन्दन किया ॥ १६—१९ ॥

तत्पक्षात् साक्षात् विष्णुस्वरूप महामति भगवान् श्रीराम वहकि समस्त वनका अवलोकन करके अपनी भार्या और भाइके साथ आगे बढ़े। वे सीताजीको फूलोंसे सुशोभित तथा नाना आश्चर्योंसे युक्त सुन्दर वन दिखाते हुए जिस समय धीर-धीरे जा रहे थे, उसी समय उन्होंने सामने एक राक्षस देखा, जिसका शरीर काला और नेत्र ल्लाल थे। वह पर्वतके समान स्थूल था। उसकी दाढ़ें चमकीली, भुजाएं बड़ी-बड़ी और केश संध्याकालिक मेघके समान लाल थे। वह घनघोर गर्जना करता हुआ सदा दूसरोंका अपकार किया करता था। उसे देखते ही लक्षणके साथ श्रीरामचन्द्रजीने धनुषपर बाण चढ़ाया तथा उस घोर राक्षसको, जो दूसरोंसे नहीं मारा जा सकता था, बींधकर मार डाला। इस प्रकार उसका वध करके उन्होंने उस महाकाय राक्षसकी लाशको पर्वतके खड़ेमें डाल दिया

शिलाभिश्छाद्य गतवाऽशारभङ्गाश्रमं ततः ।
तं नत्वा तत्र विश्रम्य तत्कथातुष्टुमानसः ॥ २५

तीक्ष्णाश्रममुपागम्य दृष्टवांस्तं महामुनिम् ।
तेनादिष्टेन मार्गेण गत्वागस्त्वं ददर्श ह ॥ २६

खद्गं तु विमलं तस्मादवाप रघुनन्दनः ।
इषुधिं चाक्षयशारं चायं चैव तु वैष्णवम् ॥ २७

ततोऽगस्त्याश्रमाद्रामो भ्रातुभार्यासिमन्वितः ।
गोदावर्याः समीपे तु पञ्चवट्यामुवास सः ॥ २८

ततो जटायुरभ्येत्य रामं कमललोचनम् ।
नत्वा स्वकुलमाख्याय स्थितवान् गृध्रनायकः ॥ २९

रामोऽपि तत्र तं दृष्ट्वा आत्मवृत्तं विशेषतः ।
कथयित्वा तु तं प्राह सीतां रक्ष महामते ॥ ३०

इत्युक्तोऽसी जटायुस्तु राममालिङ्गं सादरम् ।
कार्यार्थं तु गते रामे भ्रात्रा सह बनान्तरम् ॥ ३१

अहं रक्ष्यामि ते भार्या स्थीयतामत्र शोभन ।
इत्युक्त्वा गतवात्रामं गृध्रराजः स्वमाश्रमम् ॥ ३२

समीपे दक्षिणे भागे नानापक्षिनिषेविते ।
बसन्तं राघवं तत्र सीतया सह सुन्दरम् ॥ ३३

मन्यथाकारसदृशं कथयन्तं महाकथाः ।
कृत्वा मायामयं रूपं लावण्यगुणसंयुतम् ॥ ३४

मदनाक्रान्तहृदया कदाचिद्वावणानुजा ।
गायन्ती सुस्वरं गीतं शनैरागत्य राक्षसी ॥ ३५

ददर्श राममासीनं कानने सीतया सह ।
अथ शूर्पणखा घोरा मायारूपधरा शुभा ॥ ३६

निशशङ्का दुष्टचित्ता सा राघवं प्रत्यभाषत ।
भज मां कानं कल्पाणीं भजन्तीं कामिनीभिह ॥ ३७

और शिलाओंसे ढैंककर वे बहाँसे शरभङ्गमुनिके आश्रमपर गये । वहाँ उन मुनिको प्रणाम करके उनके आश्रमपर कुछ देरतक विश्राम किया और उनके साथ कथा-चार्ता करके वे मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए ॥ २९—२५ ॥

बहाँसे सुतीक्ष्णमुनिके आश्रमपर जाकर श्रीरामने उन महर्षिका दर्शन किया और कहते हैं, उन्हींके बताये हुए मार्गसे जाकर वे अगस्त्यमुनिसे मिले । वहाँ श्रीरघुनाथजीने उनसे एक निर्मल खद्ग तथा वैष्णव धनुष प्राप्त किये और जिसमें रखा हुआ बाण कभी समाप्त न हो—ऐसा तरकस भी उपलब्ध किया । तत्पक्षात् सीता और लक्ष्मणके साथ वे अगस्त्य-आश्रमसे आगे जाकर गोदावरीके निकट पञ्चवटीमें रहने लगे । वहाँ जानेपर कमललोचन श्रीरामचन्द्रजीके पास गृध्रराज जटायु आये और उनसे अपने कुलका परिचय देकर खड़े हो गये । उन्हें वहाँ उपस्थित देख श्रीरामने भी अपना सारा बृत्तान्त विशेषरूपसे जनाया और कहा—‘महामते ! तुम सीताको रक्षा करते रहो’ ॥ २६—३० ॥

श्रीरामके यों कहनेपर जटायुने आदरपूर्वक उनका आलिङ्गन किया और कहा—‘श्रीराम ! जब कभी कार्यवश अपने भाई लक्ष्मणके साथ आप किसी दूसरे बनमें चले जायें, उस समय मैं ही आपकी भार्याकी रक्षा करूँगा; अतः सुन्दर ! आप निश्चिन्त होकर वहाँ रहिये ।’ श्रीरामसे यों कहकर गृध्रराज पास ही दक्षिण भागमें स्थित अपने आश्रमपर चले आये, जो नाना पक्षियोंद्वारा सेवित था ॥ ३१-३२ ॥

एक चार यह सुनकर कि कामदेवके समान सुन्दर श्रीरामचन्द्रजी नाना प्रकारकी महत्वपूर्ण कथाएँ कहते हुए अपनी भार्या सीताके साथ पञ्चवटीमें निवास कर रहे हैं, रावणकी छोटी बहिन रुक्षसी शूर्पणखा मन-ही-मन कामसे पीड़ित हो गयी और लावण्य आदि गुणोंसे सुकृ मायामय सुन्दर रूप बनाकर, मधुर स्वरमें गीत गाती हुई धीरे-धीरे वहाँ आयी । उसने बनमें सीताजीके साथ बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजीको देखा । तब मायामय सुन्दर रूप धारण करनेवाली भयंकर राक्षसी दुष्टहृदया शूर्पणखाने निहर होकर श्रीरामसे कहा—‘प्रियतम ! मैं आपको चाहनेवाली सुन्दरी दासी हूँ । आप मुझ सेविकाको स्वीकार करें । जो

भजमानां त्यजेद्यस्तु तस्य दोषो महान् भवेत्।
इत्युक्तः शूर्पणख्या रामस्तामाह पार्थिवः ॥ ३८

कलत्रबानहं बाले कनीयांसं भजस्व मे।
इति श्रुत्वा ततः प्राह राक्षसी कामरूपिणी ॥ ३९

अतीव निषुणा चाहं रतिकर्मणि राघव।
त्यक्त्वैनामनभिज्ञां त्वं सीतां मां भज शोभनाम् ॥ ४०

इत्याकर्ण्य वचः प्राह रामस्तां धर्मतत्परः।
परस्त्रियं न गच्छेऽहं त्वमितो गच्छ लक्ष्मणम् ॥ ४१

तस्य नात्र बने भार्या त्वामसौ संग्रहीष्यति।
इत्युक्ता सा पुनः प्राह रामं राजीवलोचनम् ॥ ४२

यथा स्यात्लक्ष्मणो भर्ता तथा त्वं देहि पत्रकम्।
तथैवमुक्त्वा प्रतिमान् रामः कमललोचनः ॥ ४३

छिन्न्यस्या नासिकाभिति भोक्तव्या नात्र संशयः।
इति रामो महाराजो लिख्य पत्रं प्रदत्तवान् ॥ ४४

सा गृहीत्वा तु तत्पत्रं गत्वा तस्मान्मुदान्विता।
गत्वा दत्तवती तद्वल्लक्ष्मणाय महात्मने ॥ ४५

तां दृष्टा लक्ष्मणः प्राह राक्षसीं कामरूपिणीम्।
न लक्ष्यं राघववचो मया तिष्ठात्मकश्चमले ॥ ४६

तां प्रगृह्ण ततः खडगमुद्यम्य विमलं सुधीः।
तेन तत्कर्णनासां तु चिच्छेद तिलकाण्डवत् ॥ ४७

छिन्ननासा ततः सा तु रुरोद भृशदुःखिता।
हा दशास्य मम भ्रातः सर्वदेवविमर्दक ॥ ४८

हा कष्टं कुम्भकण्ठियायाता मे चापदा पश।
हा हा कष्टं गुणनिधे विभीषण महामते ॥ ४९

इत्येवमार्ता रुदती सा गत्वा खरदूषणौ।
त्रिशिरसं च सा दृष्टा निवेद्यात्मपराभवम् ॥ ५०

पुरुष सेवामें उपस्थित हुई रमणीका त्याग करता है, उसे बड़ा दोष लगता है' ॥ ३३—३७ ॥

शूर्पणखाके यों कहनेपर पृथ्वीपति श्रीरामचन्द्रजीने उससे कहा—'बाले! मेरे तो स्त्री हैं। तुम मेरे छोटे भाईके पास जाओ।' उनकी बात सुनकर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली उस राक्षसीने कहा—'राघव! मैं रति-कर्मणे बहुत निषुण हूँ और यह सीता अनभिज्ञ है; अतः इसे त्यागकर मुझ सुन्दरीको ही स्वीकार करें' ॥ ३८—४० ॥

उसकी यह बात सुनकर धर्मपरायण श्रीरामने कहा—'मैं परायी स्त्रीके साथ कोई सम्पर्क नहीं रखता। तुम यहाँसे लक्ष्मणके निकट जाओ। यहाँ बतमें उसकी स्त्री नहीं है; अतः शायद वह तुम्हें स्वीकार कर लेगा।' उनके यों कहनेपर शूर्पणखा पुनः कमलनयन श्रीरामसे बोली—'अच्छा, आप एक ऐसा पत्र लिखकर दें, जिससे लक्ष्मण मेरा भर्ता (भरण-पौष्णका भार लेनेवाला) हो सके।' तब बुद्धिमान् कमलनयन महाराज श्रीरामने 'बहुत अच्छा' कहकर एक पत्र लिखा और उसे दे दिया। उसमें लिखा था—'लक्ष्मण! तुम इसकी नाक काट लो; निस्संदेह ऐसा ही करना। यों ही न छोड़ना' ॥ ४१—४४ ॥

शूर्पणखा वह पत्र लेकर प्रसन्नतापूर्वक बहाँसे गयी। जाकर उसने महात्मा लक्ष्मणको उसी रूपमें वह पत्र दे दिया। उस कामरूपिणी राक्षसीको देखकर लक्ष्मणने उससे कहा—'कलद्विनी! ठहर, मैं श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं कर सकता।' यों कहकर बुद्धिमान् लक्ष्मणने उसे पकड़ लिया और एक चमचमाती हुई तलबार उठाकर तिलबुश्के काण्ड (पोखो)-के समान उसकी नाक और कान काट लिये ॥ ४५—४७ ॥

नाक कट जानेपर वह बहुत दुःखी हो रहे तथा विलाप करने लगी—'हा! समस्त देवताओंका मान-मर्दन करनेवाले मेरे भाई राघव! आज मुझपर महान् कष्ट आ गया। हा भाई कुम्भकर्ण! मुझपर बड़ी भारी विपत्ति आ पड़ी। हा गुणनिधे महामते विभीषण! मुझे महान् दुःख देखना पड़ा' ॥ ४८—४९ ॥

इस प्रकार आर्तभावसे रोदन करती हुई वह खर-दूषण और त्रिशिरसे पास गयी तथा उससे अपने अपमानकी बात निवेदन करके बोली—

राममाह जनस्थाने भ्रात्रा सह महाबलम्।
ज्ञात्वा ते राघवं कुद्धाः प्रेषयामासुर्लिङ्गितान्॥ ५१

चतुर्दशसहस्राणि राक्षसानां बलीयसाम्।
अग्ने निजग्मुस्तेनैव रक्षसां नायकास्त्रयः॥ ५२

रावणेन नियुक्तास्ते पुरैव तु महाबलाः।
महाबलपरीबारा जनस्थानमुपागताः॥ ५३

क्रोधेन महताऽऽविष्टा दृष्टा तां छिन्नासिकाम्।
रुदतीपशुदिग्धाङ्गी भगिनीं रावणस्य तु॥ ५४

रामोऽपि तद्वलं दृष्टा राक्षसानां बलीयसाम्।
संस्थाप्य लक्ष्मणं तत्र सीताया रक्षणं प्रति॥ ५५

गत्वा तु प्रहितैस्तत्र राक्षसैर्बलदर्पिते।
चतुर्दशसहस्रं तु राक्षसानां महाबलम्॥ ५६

क्षणेन निहतं तेन शरैरग्रिशिखोपमैः।
खरश्च निहतस्तेन दूषणश्च महाबलः॥ ५७

त्रिशिराश्च महारोषाद् रणे रामेण पातितः।
हल्वा तान् राक्षसान् दुष्टान् रामश्चाश्रममाविशत्॥ ५८

शूर्पणखा च रुदती रावणान्तिकमागता।
छिन्नासां च तां दृष्टा रावणो भगिनीं तदा॥ ५९

मारीचं प्राह दुर्बुद्धिः सीताहरणकर्मणि।
पुष्पकेण विमानेन गत्वाहं त्वं च मातुल॥ ६०

जनस्थानसमीपे तु स्थित्वा तत्र ममाज्ञया।
सीवर्णमृगरूपं त्वमास्थाय तु शनैः शनैः॥ ६१

गच्छ त्वं तत्र कार्यार्थं यत्र सीता व्यवस्थिता।
दृष्टा सा मृगयोतं त्वां सीवर्णं त्वयि मातुल॥ ६२

स्पृहां करिष्यते रामं प्रेषयिष्यति बन्धने।
तद्वाक्यात्तत्र गच्छन्त धावस्व गहने चने॥ ६३

लक्ष्मणस्यापकर्षार्थं बक्तव्यं बागुदीरणम्।
ततः पुष्पकमारुह्य मायारूपेण चाप्यहम्॥ ६४

तां सीतामहमानेष्ये तस्यामासक्तमानसः।
त्वमपि स्वेच्छया पश्चादागमिष्यसि शोभन्॥ ६५

‘महाबली श्रीराम इस समय जनस्थानमें अपने भाई लक्ष्मणके साथ रहते हैं।’ श्रीरामका पता पाकर वे तीनों बहुत ही कुपित हुए और उनके साथ युद्धके लिये उन्होंने चौदह हजार प्रतापी एवं बलवान् राक्षसोंको भेजा तथा वे तीनों निशाचर-नायक स्वयं भी उस सेनाके साथ आगे-आगे चले। उन महाबलवान् राक्षसोंको रावणने वहाँ पहले से ही नियुक्त कर रखा था। वे बहुत बड़ी सेनाके साथ जनस्थानमें आये। रावणको बहिन शूर्पणखा नाक कट जानेसे बहुत रो रही थी। उसके सारे अङ्ग औंसुओंसे भीग गये थे। उसकी वह दुर्दशा देख वे खर-दूषण आदि राक्षस अत्यन्त कुपित हो उठे थे॥ ५०—५४॥

श्रीरामने भी बलवान् राक्षसोंको उस सेनाको देख लक्ष्मणको सीताको रक्षामें उसी स्थानमें रोक दिया और अपने साथ युद्धके लिये वहाँ भेजे गये उन बलाभिमानी राक्षसोंके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। अग्रिकी ज्वालाके समान दीपिमान् वाणींद्वारा उन्होंने चौदह हजार राक्षसोंकी प्रबल सेनाको क्षणभरमें मार गिराया। साथ ही खर और महाबली दूषणका भी वध किया। इसी प्रकार त्रिशिराको भी श्रीरामने अत्यन्त रोषपूर्वक रणक्षेत्रमें मार गिराया। इस तरह उन सभी दुष्ट राक्षसोंका वध करके श्रीरामचन्द्रजी अपने आश्रममें लौट आये॥ ५५—५८॥

तब शूर्पणखा रोती हुई रावणके पास आयी। दुर्बुद्धि रावणने अपनी बहिनकी नाक कटी देख सीताको हर लानेके डरेश्यसे मारीचसे कहा—‘मामा! हम और तुम पुष्पकविमानसे चलकर जनस्थानके पास रहोरे। वहाँसे तुम मेरी आज्ञाके अनुसार सोनेके मृगका वेष धारणकर धीरे-धीरे मेरा कार्य सिद्ध करनेके लिये उस स्थानपर जाना, जहाँ सीता रहती है। मामा! वह जब तुम्हें सुवर्णमय मृगशावकके रूपमें देखेगी, तब तुम्हें लेनेकी इच्छा करेगी और श्रीरामको तुम्हें बौध लानेके लिये भेजेगी। जब सीताकी बात मानकर वे तुम्हें बौधने चलें, तब तुम उनके सामनेसे गहन बनमें भाग जाना। फिर लक्ष्मणको भी उधर ही खींचनेके लिये उच्चस्वरसे [हा भाई लक्ष्मण! इस प्रकार] कातर बचन थोलना। तत्पश्चात् मैं भी मायामय वेष बनाकर, पुष्पक विमानपर आरूढ हो, उस असहाया सीताको हर लाँकेंगा; क्योंकि मेरा मन उसमें आसक्त हो गया है। फिर भद्र! तुम भी स्वेच्छानुसार चले आना’॥ ५९—६५॥

इत्युक्ते रावणेनाथ मारीचो वाक्यमब्रवीत्।
त्वमेव गच्छ पापिष्ठ नाहं गच्छामि तत्र वै ॥ ६६

पूरैवानेन रामेण व्यथितोऽहं मुनेव्यच्छे।
इत्युक्तवति मारीचे रावणः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ६७

मारीचं हनुमारेभे मारीचोऽप्याह रावणम्।
तब हस्तवधाद्वीर रामेण मरणं वरम् ॥ ६८

अहं गमिष्यामि तत्र यत्र त्वं नेतुमिच्छसि।
अथ पुष्पकमारुद्धु जनस्थानमुपागतः ॥ ६९

मारीचस्तत्र सौवर्णी मृगमास्थाव चाग्रतः।
जगाम यत्र सा सीता वर्तते जनकात्मजा ॥ ७०

सौवर्णी मृगपोतं तु दृष्ट्वा सीता यशस्विनी।
भाविकर्मवशाद्राममुवाच पतिमात्मनः ॥ ७१

गृहीत्वा देहि सौवर्णी मृगपोतं नृपात्मज।
अयोध्यायां तु मद्देहे क्लीडनार्थमिदं मम ॥ ७२

तयैवमुक्तो रामस्तु लक्ष्मणं स्थाप्य तत्र वै।
रक्षणार्थं तु सीताया गतोऽसौ मृगपृष्ठतः ॥ ७३

रामेण चानुयातोऽसौ अभ्यधावद्वने मृगः।
ततः शरेण विव्याध रामस्तं मृगपोतकम् ॥ ७४

हा लक्ष्मणेति चोक्त्वासौ निपपात महीतले।
मारीचः पर्वताकारस्तेन नष्टो अभूव सः ॥ ७५

आकर्ण्य रुदतः शब्दं सीता लक्ष्मणमब्रवीत्।
गच्छ लक्ष्मणं पुत्रं त्वं यत्रायं शब्दं उत्थितः ॥ ७६

भ्रातुर्ज्येष्ठस्य तत्त्वं वै रुदतः श्रूयते छ्वनिः।
प्रायो रामस्य संदेहं लक्ष्येऽहं महात्मनः ॥ ७७

इत्युक्तः स तथा प्राह लक्ष्मणस्तामनिन्दिताम्।
न हि रामस्य संदेहो न भयं विद्यते क्लीचित् ॥ ७८

रावणके यों समझानेपर मारीचने कहा—‘अरे पापिष्ठ! तुम्हीं जाओ, मैं वहाँ नहीं जाऊँगा। मैं तो विश्वामित्रमुनिके यज्ञमें पहले ही श्रीरामके हाथों भारी कष्ट उठा चुका हूँ।’ मारीचके यों कहनेपर रावण क्रोधसे मूर्च्छित हो उसे मार डालनेको उद्घात हो गया। तब मारीचने उससे कहा—‘वीर! तुम्हारे हाथसे वध हो, इसकी अपेक्षा तो श्रीरामके हाथसे ही मरना अच्छा है। तुम मुझे जहाँ ले चलना चाहते हो, वहाँ अब मैं अवश्य चलूँगा’ ॥ ६६—६८ ॥

यह सुनकर वह पुष्पकविमानपर आरूढ़ हो उसके साथ जनस्थानके निकट आया। वहाँ पहुँचकर मारीच सुवर्णमय मृगका रूप धारणकर, जहाँ जनकनन्दिनी सीता विद्यमान थी, वहाँ उनके सामने गया। उस सुवर्णमय मृगकिशोरको देखकर यशस्विनी सीता भावी कर्मके वशीभूत हो अपने पति भगवान् श्रीरामसे बोली—‘राजपुत्र! आप उस सुवर्णमय मृगशावकको पकड़कर मेरे लिये ला दीजिये। यह अयोध्यामें मेरे महलके भीतर क्रीड़ा-विनोदके लिये रहेगा’ ॥ ६९—७२ ॥

सीताके यों कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने उनकी रक्षाके लिये लक्ष्मणको वहाँ रख दिया और स्वयं उस मृगके पीछे चले। श्रीरामके पीछा करनेपर वह मृग बनकी ओर भागा, तब श्रीरामने उस मृगशावकको बाणसे बींध डाला। मारीच ‘हा! लक्ष्मण!’—यों कहकर पर्वताकार शरीरसे पृथ्वीपर गिरा और प्राणहीन हो गया। रोते हुए मारीचके उस आर्तनादको सुनकर सीताने लक्ष्मणसे कहा—‘वत्स लक्ष्मण! जहाँसे यह आवाज आयी है, वहाँ तुम भी जाओ। निश्चय ही तुम्हारे ज्येष्ठ प्राणाके रोदनका शब्द कानोंमें आ रहा है, मुझे प्रायः महात्मा श्रीरामका जीवन संशयमें पड़ा दिखायी देता है’ ॥ ७३—७५ ॥

सीताकी यह बात सुनकर उन अनिन्दिता देवीसे लक्ष्मणने कहा—‘देवि! श्रीरामके लिये कोई संदेहको बात नहीं है, उन्हें कहीं भी भय नहीं है।’

इति कृवाणं तं सीता भाविकर्मवलाद्धतम्।
लक्ष्मणं प्राह वैदेही विरुद्धवचनं तदा॥७९

मृते रामे तु मामिच्छन्नतस्त्वं न गमिष्यसि।
इत्युक्तः स विनीतात्मा असहन्नप्रियं चचः॥८०

जगाम राममन्वेष्टुं तदा पार्थिवनन्दनः।
सन्न्यासवेषमास्थाय रावणोऽपि दुरात्मवान्॥८१

स सीतापार्श्वमासाद्य वचनं चेदमुक्तवान्।
आगतो भरतः श्रीमानयोध्याया महामतिः॥८२

रामेण सह सम्भाष्य स्थितवांस्तत्र कानने।
मां च प्रेषितवान् रामो विमानमिदमारुह॥८३

अयोध्यां याति रामस्तु भरतेन प्रसादितः।
मृगबालं तु वैदेहि क्रीडार्थं ते गृहीतवान्॥८४

बलेशितासि महारण्ये बहुकालं त्वमीदृशम्।
सम्प्राप्तराज्यस्ते भर्ता रामः स रुचिराननः॥८५

लक्ष्मणश्च विनीतात्मा विमानमिदमारुह।
इत्युक्ता सा तथा गत्वा नीता तेन महात्मना॥८६

आरुरोह विमानं तु छवाना प्रेरिता सती।
तज्जगाम ततः शीघ्रं विमानं दक्षिणां दिशम्॥८७

ततः सीता सुदुःखार्ता विललाप सुदुःखिता।
विमाने खेऽपि रोदन्त्याश्चके स्पर्शं न राक्षसः॥८८

रावणः स्वेन रूपेण बभूवाथ महातनुः।
दशग्रीवं महाकाव्यं दृष्टा सीता सुदुःखिता॥८९

हा राम विजिताद्याहं केनापिच्छद्यरूपिणा।
रक्षसा घोररूपेण त्रायस्वेति भयादिता॥९०

हे लक्ष्मण महाबाहो मां हि दुष्टेन रक्षसा।
हुतमागत्य रक्षस्व नीयमानामधाकुलाम्॥९१

यों कहते हुए लक्ष्मणसे उस समय विदेहकुमारी सीताने कुछ विरुद्ध वचन कहा, जो भवितव्यताकी प्रेरणासे उनके मुखसे सहसा निकल पड़ा था। वे बोलीं—‘मैं जानती हूं, तुम श्रीरामके मर जानेपर मुझे अपनी बनाना चाहते हो; इसीसे इस समय वहाँ नहीं जा रहे हो।’ सीताके यों कहनेपर विनयशील राजकुमार लक्ष्मण उस अश्रिय वचनको न सह सके और तत्काल ही श्रीरामचन्द्रजीकी खोजमें चल पड़े॥७८—८०%,॥

इसी समय दुरात्मा रावण भी संन्यासीका वेष बनाकर सीताके पास आया और यों बोला—‘देवि! अयोध्यासे महाबुद्धिमान् भरतजी आये हैं। वे श्रीरामचन्द्रजीके साथ बातचीत करके वहीं काननमें ठहरे हुए हैं। श्रीरामचन्द्रजीने मुझे तुम्हें बुलानेके लिये यहाँ भेजा है। तुम इस विमानपर चढ़ चलो। भरतजीने मनाकर श्रीरामको अयोध्या चलनेके लिये राजी कर लिया है, अतः वे अयोध्या जा रहे हैं। वैदेहि! तुम्हारी क्रीडा—विनोदके लिये उन्होंने उस मृग-शावकको भी पकड़ लिया है। अहो! तुमने इस विशाल वनमें बहुत दिनोंतक ऐसा महान् कष्ट उठाया है। अब तुम्हारे स्वामी सुन्दर मुखबाले श्रीरामचन्द्रजी तथा उनके विनयशील भाई लक्ष्मण भी राज्यग्रहण कर चुके हैं। अतः तुम उनके पास चलनेके लिये इस विमानपर चढ़ जाओ।’॥८१—८५%,॥

उसके यों कहनेपर उसकी कपटपूर्ण बातोंसे प्रेरित हो सती सीता वह सब सत्य मानकर उस तथाकथित महात्माके साथ विमानके निकट गयीं और उसपर आरूढ़ हो गयीं। तब वह विमान शीश्रतापूर्वक दक्षिण दिशाकी ओर चल पड़ा। यह देख सीता अत्यन्त शोकसे पीड़ित हो, अत्यन्त दुःखसे विलाप करने लगीं। यद्यपि सीता आकाशमें उसके अपने ही विमानपर बैठी थीं, तथापि रावणने वहाँ रोती हुई सीताका स्पर्श नहीं किया। अब रावण अपने असली रूपमें आ गया। उसका शरीर बहुत बड़ा हो गया। दस मस्तकबाले उस विशालकाय राक्षसपर दृष्टि पड़ते ही सीता अत्यन्त दुःखमें दूब गयीं और विलाप करने लगीं—‘हाय राम! किसी कपटवेषधारी भयानक राक्षसने आज मुझे खोखा दिया है, मैं भयसे पीड़ित हो रही हूं; मुझे बचाओ। हे महाबाहु लक्ष्मण! मुझे दृष्टि रक्षस हटकर लिये जा रहा है। मैं भयसे व्यकुत्त हूं तुम जल्दी आकर मुझ असहायकी रक्षा करो।’॥८६—९१॥

एवं प्रलपमानायाः सीतायास्तन्महत्स्वनम्।
आकर्ष्य गृध्राजस्तु जटायुस्तत्र चागतः ॥ १२

तिष्ठ रावण दुष्टात्मन् मुञ्च मुञ्चात्र मैथिलीम्।
इत्युक्त्वा युयुधे तेन जटायुस्तत्र वीर्यवान् ॥ १३

पक्षाभ्यां ताडयामास जटायुस्तस्य वक्षसि।
ताडयन्तं तु तं मन्त्वा बलवानिति रावणः ॥ १४

तुण्डचञ्चुप्रहरैस्तु भृशं तेन प्रपीडितः।
तत उत्थाप्य वेगेन चन्द्रहासमसिं महत् ॥ १५

जघान तेन दुष्टात्मा जटायु धर्मचारिणम्।
निषपात महीपृष्ठे जटायुः क्षीणचेतनः ॥ १६

उवाच च दशग्रीवं दुष्टात्मन् न त्वया हतः।
चन्द्रहासस्य वीर्येण हतोऽहं राक्षसाधम् ॥ १७

निरायुधं को हनेन्मूढ सायुधस्त्वामृते जनः।
सीतापहरणं विद्धि मृत्युस्ते दुष्ट राक्षस ॥ १८

दुष्ट रावण रामस्त्वां विद्युति न संशयः।
रुदती दुःखशोकार्त्ता जटायुं प्राह मैथिली ॥ १९

मत्कृते मरणं यस्मात्त्वया प्राप्तं द्विजोत्तम्।
तस्माद्रामप्रसादेन विष्णुलोकमवाप्यसि ॥ २००

यावद्रामेण सङ्गस्ते भविष्यति महाद्विज।
तावत्तिष्ठन्तु ते प्राणा इत्युक्त्वा तु खगोत्तमम् ॥ २०१

ततस्तान्यपितान्यज्ञानूषणानि विमुच्य सा।
शीघ्रं निब्रह्य वस्त्रेण रामहस्तं गमिष्यथ ॥ २०२

इत्युक्त्वा पातयामास भूमौ सीता सुदुःखिता।
एवं हृत्वा स सीतां तु जटायुं पात्य भूतले ॥ २०३

इस प्रकार उच्चस्वरसे विलाप करती हुई सीताके उस महान् आर्तनादको सुनकर गृध्राज जटायु वहाँ आ पहुँचे (और बोले—) 'अरे दुष्टात्मा रावण! रुहर जा; तू सीताको छोड़ दे, छोड़ दे।' यह कहकर पराक्रमी जटायु उसके साथ युद्ध करने लगे। उन्होंने अपने दोनों पंखोंसे रावणकी छातीमें चोट की। उनको इस प्रकार प्रहार करते देख रावणने समझ लिया कि 'यह पक्षी बड़ा बलवान् है।' अब जटायुके मुख और चोंचकी मारसे वह बहुत पीड़ित हो गया, तब उस दुष्टने बड़े वेगसे 'चन्द्रहास' नामक विशाल खड्ग उठाया और उससे धर्मात्मा जटायुपर घातक प्रहार किया। इससे उनकी चेतना क्षीण हो गयी और वे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १२—१६ ॥

उस समय उन्होंने रावणसे कहा—'अरे दुष्टात्मन्! ओ नीच राक्षस! मुझे तूने नहीं मारा है। मैं तो तेरे 'चन्द्रहास' नामक खड्गके प्रभावसे मारा गया हूँ। और मूर्ख! तेरे सिवा दूसरा कौन शास्त्रधारी योद्धा होगा, जो किसी निहत्येपर हथियार चलायेगा? अरे दुष्ट राक्षस! तू यह जान ले कि सीताका हर लो जाना तेरी मौत है। दुष्टात्मा रावण! निस्संदेह श्रीरामचन्द्रजी तेरा वध कर डालेंगे' ॥ १७—१८ ॥

जटायुके मारे जानेसे अत्यन्त दुःख और शोकसे पीड़ित हुई मिथिलेशकुमारी सीता उनसे रोकर बोली—'हे पक्षिराज! तुमने मेरे लिये मृत्युका वरण किया है, इसलिये तुम श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे विष्णुलोकको प्राप्त होओगे। खगश्रेष्ठ! जबतक श्रीरामचन्द्रजीसे तुम्हारी भेट न हो, तबतक तुम्हारे प्राण शारीरमें ही रहें।' उन पक्षिराजसे यों कहकर अत्यन्त दुःखिनी सीताने अपने शरीरसे धारण किये हुए समस्त आभूषणोंको उतारा और शीघ्रतापूर्वक वस्त्रमें बौधकर कहा—'तुम सब-के-सब श्रीरामके हाथमें पहुँच जाओगे।' और तब उन्हें भूमिपर गिरा दिया ॥ १९—२०२ ॥

इस प्रकार सीताको हरकर तथा जटायुको धराशायी

पुष्पकेण गतः शीघ्रं लङ्घां दुष्टनिशाचरः ।
अशोकवन्निकामध्ये स्थापयित्वा स मैथिलीम् ॥ १०४

इमापत्रैव रक्षस्य राक्षस्यो विकृताननाः ।
इत्यादिश्य गृहं यातो रावणो राक्षसेश्वरः ॥ १०५

लङ्घनिवासिनश्चुरेकान्तं च परस्परम् ।
अस्याः पुर्या विनाशार्थं स्थापितेयं दुरात्मना ॥ १०६

राक्षसीभिर्विरूपाभी रक्ष्यमाणा समन्ततः ।
सीता च दुःखिता तत्र स्मरन्ती राममेव सा ॥ १०७

उवास सा सुदुःखाता दुःखिता रुदती भृशम् ।
यथा ज्ञानखले देवी हंसवाना सरस्वती ॥ १०८

सुग्रीवभृत्या हरयश्चतुरश्च बदृच्छया ।
बस्त्रबद्धं तयोत्सुष्टुं गृहीत्वा भूषणं हुतम् ॥ १०९

स्वपत्रे विनिवेद्योऽनुः सुग्रीवाय महात्मने ।
अरण्येऽभूम्यहायुद्धं जटायो रावणस्य च ॥ ११०

अथ रामश्च तं हत्वा मारीचं मायथाऽऽगतम् ।
निवृत्तो लक्ष्मणं दृष्ट्वा तेन गत्वा स्वमाश्रमम् ॥ १११

सीतामपश्यन्तुःखातः प्ररुदोद स राघवः ।
लक्ष्मणश्च महातेजा रुदोद भृशदुःखितः ॥ ११२

बहुप्रकारमस्वस्थं रुदन्तं राघवं तदा ।
भूतले पतितं धीमानुत्थाप्याश्वास्य लक्ष्मणः ॥ ११३

उवाच वचनं प्राप्तं तदा यत्तच्छृणुष्व मे ।
अतिवेलं महाराज न शोकं कर्तुमर्हसि ॥ ११४

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ शीघ्रं त्वं सीतां मृगयितुं प्रभो ।
इत्येवं बदता तेन लक्ष्मणेन महात्मना ॥ ११५

उत्थापितो नरपतिर्दुःखितो दुःखितेन तु ।
भात्रा सह जगामाथ सीतां मृगयितुं बनम् ॥ ११६

करके वह दुष्ट निशाचर पुष्पकविमानद्वारा शीघ्र ही लङ्घामें जा पहुँचा । वहाँ मिथिलेशकुमारी सीताको अशोक-वाटिकामें रखकर राक्षसियोंसे बोला—'भयंकर मुख्यवाली निशाचरियो ! तुम लोग यहीं सीताकी रखवाली करो ।' यह आदेश दे वह राक्षसराज रावण अपने भवनमें चला गया । उस समय लङ्घनिवासी एकान्तमें परस्पर मिलकर बातें करने लगे—'दुरात्मा रावणने इस नगरीका विनाश करनेके लिये ही सीताको यहाँ ला रखा है' ॥ १०३—१०६ ॥

विकट आकारवाली राक्षसियोंद्वारा सब ओरसे सुरक्षित हुई सीता वहाँ दुःखमग्र हो केवल श्रीरामचन्द्रजीका ही चिन्तन करती हुई रहने लगीं । वे सदा अत्यन्त शोकात्म हो चड़े दुःखके साथ बहुत रोदन किया करती थीं । रावणके बशमें पड़ी हुई सीता ज्ञानको अपनेतक ही सीमित रखनेवाले कृपणके अधीन हुई हंसवाहिनी सरस्वतीके समान वहाँ शोभा नहीं पाती थीं ॥ १०७—१०८ ॥

सीताने बस्त्रमें बैथे हुए अपने जिन आभूषणोंको नीचे गिरा दिया था, उन्हें अकस्मात् घूमनेके लिये आये हुए चार बानरोंने, जो बानरराज सुग्रीवके सेवक थे, पाया और शीघ्रतापूर्वक ले जाकर अपने स्वामी महात्मा सुग्रीवको अर्पित करके यह समाचार भी सुनाया कि 'आज बनके भीतर जटायु और रावणमें बड़ा भारी युद्ध हुआ था' । इधर, जब श्रीरामचन्द्रजी मायामय वेष बनाकर आये हुए उस मारीचको मारकर लौट पड़े, तब मार्गमें लक्ष्मणको देखकर उनके साथ अपने आश्रमपर आये; किंतु वहाँ सीताको न देखकर वे दुःखसे व्यथित हो फूट-फूटकर रोने लगे । महातेजस्वी लक्ष्मण भी अत्यन्त दुःखी होकर रोदन करने लगे । उस समय श्रीरामचन्द्रजीको सर्वथा अस्वस्थ होकर रोते और पृथ्वीपर गिरा देख बुद्धिमान् लक्ष्मणने उन्हें उठाकर धौरज बैधाया ॥ १०९—११३ ॥

राजन् ! उस समय लक्ष्मणने उनसे जो समयोचित बात कही थी, वह तुम मुझसे सुनो । (लक्ष्मण बोले—) 'महाराज ! आप अधिक शोक न करें । प्रभो ! अब सीताकी खोज करनेके लिये आप शीघ्रतापूर्वक उठिये, उठिये ।' इत्यादि बातें कहते हुए दुःखी महात्मा लक्ष्मणने अपने शोक-प्रस्ता भाई राजा रामचन्द्रजीको उठाया और उनके साथ स्वयं सीताकी खोज करनेके लिये बनमें चले ॥ ११४—११६ ॥

वनानि सर्वाणि विशोद्ध्य राघवो
गिरीन् समस्तान् गिरिसानुगोचरान्।
तथा मुनीनामपि चाश्रमान् अहं-
स्तुणादिवल्लीगहनेषु भूमिषु॥ ११७

नदीतटे भूविवरे गुहायां
निरीक्षमाणोऽपि महानुभावः।
प्रियामपश्यन् भृशदुःखितस्तदा
जटायुषं वीक्ष्य च घातितं नृपः॥ ११८

अहो भवान् केन हतस्त्वमीदृशीं
दशामवासोऽसि मृतोऽसि जीवसि।
ममाद्य सर्वं समदुःखितस्य थोः
पत्नीविद्योगादिह चागतस्य वै॥ ११९

इत्युक्तमात्रे विहगोऽथ कृच्छा-
दुवाच वाचं मधुरां तदानीम्।
शृणुष्व राजन् मम वृत्तमत्र
वदामि दुष्टं च कृतं च सद्यः॥ १२०

दशाननस्तामपनीय मायया
सीतां समारोप्य विमानमुत्तमम्।
जगाम खे दक्षिणदिइमुखोऽसौ
सीता च माता विललाप दुःखिता॥ १२१

आकर्ष्य सीतास्थनमागतोऽहं
सीतां विमोक्तुं स्वबलेन राघव।
यद्दं च तेनाहमतीव कृत्वा
हतः पुनः खडगबलेन रक्षसा॥ १२२

वैदेहिवाक्यादिह जीवता मया
दृष्टो भवान् स्वर्गमितो गमिष्ये।
मा राम शोकं कुरु भूमिपाल
जहाद्य दुष्टं सगणं तु नैर्ऋतम्॥ १२३

रामो जटायुषेत्युक्तः पुनस्ते चाह शोकतः।
स्वस्त्यस्तु ते द्विजवर गतिस्तु परमास्तु ते॥ १२४

उस समय श्रीरामचन्द्रजीने सारे वनोंको छान डाला, समस्त पर्वतों तथा उनकी चोटियोंपर जानेवाले मार्गोंका भी निरीक्षण कर लिया। इसी प्रकार उन्होंने मुनियोंके बहुत-से आश्रम भी देखे; तृण एवं लताओंसे आच्छादित वनस्थलियों तथा खुले मैदानोंमें, नदोंके किनारे, गङ्गामें और कन्दराओंमें देखनेपर भी जब उन महानुभावको अपनी प्रिया सीताका पता नहीं लगा, तब वे बहुत दुःखी हुए। उसी समय राजा रामचन्द्रजीने रावणद्वारा मारे गये जटायुको देखा और कहा—‘अहो! आपको किसने मारा? आह! आप ऐसी दुर्दशाको पहुँच चुके हैं? पता नहीं, जीवित हैं या मर गये। पलीके वियोगवश आपके समान ही दुःखी होकर यहाँ आये हुए मुझ रामके लिये आजकल आप ही सब कुछ थे’॥ ११७—११९॥

भगवान् रामके इतना कहते ही वह पक्षी उस समय बड़े कष्टसे मधुर वाणीमें बोला—‘राजन्! इस समय मैंने जो कुछ देखा है और तत्काल ही उसके लिये जो कुछ किया है, वह मेरा सारा बृतान्त आप सुनें। दशमुख रावणने मायासे सीताका अपहरण करके उसे उत्तम विमानपर चढ़ा लिया और आकाशमार्गसे वह दक्षिण दिशाकी ओर चल दिया। उस समय माता सीता बड़े दुःखके साथ विलाप कर रही थीं। रघुनन्दन! सीताकी आवाज सुनकर मैंने उन्हें अपने ही बलसे छुड़ानेके लिये रावणके साथ महान् युद्ध छेड़ दिया। फिर उस राक्षसने अपनी तलबारके बलसे मुझे मार डाला। विदेहकुमारी सीताके ही आशीर्वादसे मैं अभीतक जीवित था, अब यहाँसे स्वर्गलोकको जाऊँगा। पृथ्वीपालक राम! आप शोक न कीजिये, अब तो उस दुष्ट राक्षसको उसके गणोंसहित मार ही डालिये’॥ १२०—१२३॥

जटायुके यों कहनेपर श्रीरामने पुनः शोकपूर्वक उनसे कहा—‘पक्षिराज! आपका कल्याण हो और आपको उत्तम गति मिले।’

ततो जटायुः स्वं देहं विहाय गतवान्दिवम्।
विमानेन तु रम्येण सेव्यमानोऽप्सरोगणैः॥ १२५

रामोऽपि दाढ्वा तद्देहं स्नातो दत्त्वा जलाञ्जलिम्।
भात्रा सगच्छन् दुःखातो राक्षसी पथिं दृष्टवान्॥ १२६

उद्गमन्तीं महोल्काभां विवृतास्थां भयंकरीम्।
क्षयं नयन्तीं जन्मून् वै पातयित्वा गतो रुषा॥ १२७

गच्छन् वनान्तरं रामः स कबन्धं ददर्श ह।
विरूपं जठरमुखं दीर्घवाहुं घनस्तनम्॥ १२८

रुच्यानं राममार्गं तु दृष्ट्वा तं दग्धध्याज्ञानैः।
दग्धोऽसीं दिव्यरूपी तु खस्थो राममभाषत्॥ १२९

राम राम महाबाहो त्वया भम भहामते।
विरूपं नाशितं चौर मुनिशापाच्चिरागतम्॥ १३०

त्रिदिवं यामि धन्योऽस्मि त्वत्प्रसादात्र संशयः।
त्वं सीताप्राप्तये सख्यं कुरु सूर्यसुतेन भोः॥ १३१

बानरेन्द्रेण गत्वा तु सुधीवे स्वं निवेद्य वै।
भविष्यति नृपश्रेष्ठं ऋष्यमूकगिरि द्वज॥ १३२

इत्युक्त्वा तु गते तस्मिन् रामो लक्ष्मणसंयुतः।
सिद्धैस्तु मुनिभिः शून्यमाश्रमं प्रविवेश ह॥ १३३

तत्रस्थां तापसीं दृष्ट्वा तथा संलाप्य संस्थितः।
शबरीं मुनिमुख्यानां सपर्याहितकल्पयाम्॥ १३४

तथा सम्पूजितो रामो बदरादिभिरीश्वरः।
साप्त्येनं पूजयित्वा तु स्वामवस्थां निवेद्य वै॥ १३५

सीतां त्वं प्राप्यसीत्युक्त्वा प्रविश्याग्निं दिवंगता।
द्विवं प्रस्थाप्य तां चापि जगामान्यत्र राघवः॥ १३६

तदनन्तर जटायु अपना शरीर त्यागकर एक सुन्दर विमानपर आरूढ़ हुए और अप्सरागणोंसे सेवित हो स्वर्गलोकको चले गये। श्रीरामचन्द्रजीने भी उनके शरीरका दाह-संस्कार करके स्नानके पश्चात् उनके निमित्त जलाञ्जलि दी। फिर सीताके लिये दुःखी हो भाइ लक्ष्मणके साथ आगे जाने लगे। इतनेमें ही उन्हें रासोपर एक राक्षसी खड़ी दिखायी दी। वह मुँहसे बड़ी भारी उल्काके समान आगकी ज्वाला उगल रही थी। उसका मुँह फैला हुआ था। वह बड़ी डरावनी थी और पास आये हुए अनेकोंनेक ओरोंका संहार कर रही थी। श्रीरामने उसे गोष्ठपूर्वक मार गिराया। फिर वे आगे चढ़ गये। जब श्रीराम दूसरे चरणे जाने लगे, तब उन्होंने कबन्धको देखा, जो बहुत ही कुरुप था। उसका मुख उसके पेटमें ही था, बहँ बड़ी-बड़ी थीं और स्तन घने थे। श्रीरामने उसे अपना मार्ग रोकते देख उसे काठ-कबाड़ियां धीर-धीर जला दिया। जल जानेपर वह दिव्यरूप धारण करके प्रकट हुआ और आकाशमें स्थित होकर श्रीरामसे बोला— ॥ १२४—१२९ ॥

‘महाबाहु श्रीराम! महामते वीरवर! एक मुनिके शापवश चिरकालसे प्राप्त हुई मेरी कुरुपताको आपने नष्ट कर दिया; अब मैं स्वर्गलोकको जा रहा हूँ। इसमें संदेह नहीं कि आज मैं आपकी कृपासे धन्य हो गया। रघुनन्दन! आप सीताकी प्राप्तिके लिये सूर्यकुमार वानरराज सुग्रीवके साथ मित्रता कीजिये। उनके यहाँ जाकर सुग्रीवसे सारा वृत्तान्त निवेदन कर देनेपर आपका कार्य सिद्ध हो जायगा। अतः नृपश्रेष्ठ! आप यहाँसे ऋष्यमूक पर्वतपर जाइये’ ॥ १३०—१३२ ॥

यह कहकर कबन्ध स्वर्गको चला गया। कहते हैं, तब लक्ष्मणके साथ श्रीरामचन्द्रजीने एक ऐसे आश्रममें प्रवेश किया, जो सिद्धों और मुनियोंसे शून्य था। उसमें उन्होंने एक ‘शबरी’ नामकी तपस्त्रिनी देखी, जो बड़े-बड़े मुनियोंकी सेवा-पूजा करनेसे निष्पाप हो गयी थी। उसके साथ वार्तालाप करके वे वहाँ ठहर गये। शबरीने बेर आदि फलोंके द्वारा भगवान् रामका भलीभांति संस्कार किया। आवधारके पश्चात् उनसे अपनी अवस्था निवेदन की और यह कहकर कि ‘आप सीताको प्राप्त कर लेंगे’ वह शबरी भी उनके सामने ही अग्रिमें प्रवेश करके स्वर्गको चली गयी। उसे भी स्वर्गलोकमें पहुँचाकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अन्यत्र चले गये ॥ १३३—१३६ ॥

ततो विनीतेन गुणान्वितेन
भात्रा समेतो जगदेकनाथः ।
प्रियावियोगेन सुदुःखितात्मा
जगाम याप्यां स तु रामदेवः ॥ १३७

इति श्रीनरसिंहपुराणे रामग्रन्थार्थात् एकोनपञ्चाशीउध्यायः ॥ ४९ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'श्रीरामावतारविषयक' उन्वासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४९ ॥

तदनन्तर विनयशील और गुणी भाई लक्ष्मणके साथ जगदीश्वर भगवान् राम प्रियाके वियोगसे अत्यन्त दुःखी हो बहाँसे दक्षिणकी ओर चल दिये ॥ १३७ ॥

पचासवाँ अध्याय

सुग्रीवसे मैत्री; वालिवध; सुग्रीवका प्रमाद और उसकी भर्त्तना;
सीताकी खोज और हनुमानका लङ्घागमन

मार्कण्डेय उच्चाच

वालिना कृतवैरोऽथ दुर्गवतीं हरीश्वरः ।
सुग्रीवो दृष्टवान् दूराददृष्ट्वा ऽऽह पवनात्मजम् ॥ १

कस्येमो सुधनुः पाणी चीरबल्कलध्यारिणी ।
पश्यन्तीं सरसीं दिव्यां पद्मोत्पलसमावृताम् ॥ २

नानारूपधरावेतीं तापसं वेषमास्थिती ।
वालिदूताविह प्राप्ताविति निश्चित्य सूर्यजः ॥ ३

उत्पपात भयत्रस्तः ऋष्यमूकाद् वनान्तरम् ।
वानरैः सहितः सर्वैरगस्त्याश्रममुत्तमम् ॥ ४

तत्र स्थित्वा स सुग्रीवः प्राह वायुसुतं पुनः ।
हनूमन् पृच्छ शीघ्रं त्वं गच्छ तापसवेषधृक् ॥ ५

को हि कस्य सुतौ जातौ किमर्थं तत्र संस्थितौ ।
ज्ञात्वा सत्यं पम छूहि वायुपुत्र महामते ॥ ६

इत्युक्तो हनुमान् गत्वा पम्पातटमनुत्तमम् ।
भिक्षुरुपी स तं प्राह रामं भात्रा समन्वितम् ॥ ७

को भवानिह सम्प्राप्तस्तथ्यं छूहि महामते ।
अरण्ये निर्जने घोरे कुतस्त्वं किं प्रयोजनम् ॥ ८

मार्कण्डेयजी बोले—वालीसे वैर हो जानेके कारण उसके लिये दुर्गम स्थानमें रहनेवाले वानरराज सुग्रीवने दूरसे ही श्रीराम और लक्ष्मणको आते देखा और देखकर पवनकुमार हनुमानजीसे कहा—'ये दोनों किसके पुत्र हैं, जो हाथमें सुन्दर धनुष लिये, चौर एवं वल्कल-वस्त्र धारण किये, कमलों एवं उत्पलोंसे आच्छन्न इस दिव्य सरोवरको देख रहे हैं।' जान पड़ता है, ये दोनों वालीके भेजे हुए यहुविधरुपधारी दूत हैं, जो इस समय तपस्वीका वेष धारण किये यहाँ आ पहुँचे हैं। यह निश्चय करके सूर्यकुमार सुग्रीव भयभीत हो गये और समस्त वानरोंके साथ ऋष्यमूक पर्वतसे कूदकर दूसरे वनमें स्थित आगस्त्यमुनिके उत्तम आश्रमपर चले गये ॥ १—४ ॥

वहाँ स्थित होकर सुग्रीवने पुनः पवनकुमारसे कहा—'हनूमन्! तुम भी तपस्वीका वेष धारण करके शीघ्र जाओ और पूछो कि 'वे कौन हैं? किसके पुत्र हैं? और किस लिये वहाँ ठहरे हुए हैं?' महावुद्धिमान् वायुनन्दन! ये सब बातें सच-सच जानकर मुझसे बताओ' ॥ ५—६ ॥

उनके इस प्रकार कहनेपर हनुमानजी संन्यासीके रूपमें पाप्यासरके उत्तम तटपर गये और भाई लक्ष्मणके साथ विद्यमान श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—'महामते! आप कौन हैं? यहाँ कैसे आये हैं? इस जनशून्य धोर वनमें आप कहाँसे आ गये? यहाँ आनेका क्या प्रयोजन है?—ये सब बातें मेरे समक्ष ठीक-ठीक बताइये' ॥ ७—८ ॥

एवं वदनं तं प्राह लक्ष्मणो भ्रातुराज्ञया।
प्रवक्ष्यामि निबोध त्वं रामवृत्तान्तमादितः ॥ ९

राजा दशरथो नाम बभूव भूवि विश्रुतः।
तस्य पुत्रो महाबुद्धे रामो ज्येष्ठो ममाग्रजः ॥ १०

अस्याभिषेक आरब्धः कैकेय्या तु निवारितः।
पितुराज्ञामयं कुर्वन् रामो भ्राता ममाग्रजः ॥ ११

मया सह विनिष्कम्य सीतया सह भार्यया।
प्रविष्टो दण्डकारण्यं नानामुनिसमाकुलम् ॥ १२

जनस्थाने निवसतो रामस्यास्य महात्मनः।
भार्या सीता तत्र वने केनापि पाप्मना हृता ॥ १३

सीतामन्वेषयन् दीरो रामः कमललोचनः।
इहायातस्त्वया दृष्ट इति वृत्तान्तमीरितम् ॥ १४

श्रुत्वा ततो वचस्तस्य लक्ष्मणस्य महात्मनः।
अव्यक्तितात्मा विश्वासाद्दनूमान् मारुतात्मजः ॥ १५

त्वं मे स्वामी इति वदन् रामं रघुपतिं तदा।
आश्चास्यानीय सुग्रीवं तयोः सख्यमकारयत् ॥ १६

शिरस्यारोद्य पादाब्जं रामस्य विदितात्मनः।
सुग्रीवो वानरेन्द्रस्तु उवाच मधुराक्षरम् ॥ १७

अद्यप्रभृति राजेन्द्र त्वं मे स्वामी न संशयः।
अहं तु तत्र भृत्यश्च वानरैः सहितः प्रभो ॥ १८

त्वच्छ्रुत्यं शत्रुः स्यादद्यप्रभृति राघव।
मित्रं ते मम सन्मित्रं त्वददुर्खं तन्ममापि च ॥ १९

त्वत्प्रीतिरेव मत्प्रीतिरित्युक्त्वा पुनराह तम्।
बाली नाम मम ज्येष्ठो महाबलपराक्रमः ॥ २०

भार्यापहारी दुष्टात्मा मदनासक्तमानसः।
त्वामृते पुरुषव्याघ्रं नास्ति हन्ताद्य वालिनम् ॥ २१

युगपत्समतालांस्तु तर्तुन् यो वै वधिष्यति।
स तं वधिष्यतीत्युक्तं पुराणज्ञैर्नृपात्मज ॥ २२

इस प्रकार पूछते हुए हनुमान् जीसे अपने भाईकी आज्ञा पाकर लक्ष्मण बोले—‘मैं श्रीरामचन्द्रजीका वृत्तान्त आदिसे ही वर्णन करता हूँ, सुनो। इस पृथ्वीपर दशरथ नामके राजा बहुत प्रसिद्ध थे। महाबुद्धे! ये मेरे बड़े भाई श्रीराम उन्हीं महाराजके ज्येष्ठ पुत्र हैं। इनका राज्याभिषेक होने जा रहा था, किंतु (मेरी छोटी सीतेली माता) कैकेयीने उसे रोक दिया। फिर, पिताजी आज्ञाका पालन करते हुए, ये मेरे बड़े भ्राता श्रीराम मेरे तथा अपनी धर्मपत्नी सीताके साथ घरसे निकल आये। वनमें आकर इन्होंने अनेकों पुनियोंसे युक्त दण्डकारण्यमें प्रवेश किया। यहाँ जनस्थानमें निवास करते हुए इन महात्मा श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मपत्नी सीताको वनमें किसी पापीने हर लिया। उन सीताजीकी ही खोज करते हुए ये खोरबर कमलनयन श्रीराम यहाँ आये हैं, जिससे तुम्हें यहाँ इनका दर्शन हुआ है। बस, यही हमारा वृत्तान्त है, जो तुमसे बता दिया’ ॥ ९—१४॥

महात्मा लक्ष्मणके वचन सुनकर उनपर विश्वास हो आनेके कारण वायुनन्दन हनुमान् ने अपने स्वरूपको प्रकट नहीं किया और रम्यकुलनायक रामचन्द्रसे यह कहकर कि ‘आप मेरे स्वामी हैं’—उन्हें सानख्या देते हुए अपने साथ सुग्रीवके पास ले आकर उन दोनों भाइयोंकी सुग्रीवसे मित्रता करा दी। फिर श्रीरामचन्द्रजीके स्वरूपका परिचय प्राप्त हो जानेके कारण उनके चरण-कमलोंको सिरपर धारणकर वानरराज सुग्रीवने मधुर वाणीमें कहा—‘राजेन्द्र! इसमें सदेह नहीं कि आजसे आप हमारे स्वामी हुए और प्रभो! मैं समस्त वानरोंके साथ आपका सेवक हुआ। रघुनन्दन! आपका जो शत्रु है, वह आजसे मेरा भी शत्रु है और जो आपका मित्र है, वह मेरा भी श्रेष्ठ मित्र है; इतना ही नहीं, आपका जो दुःख है, वह मेरा भी है तथा आपकी प्रसन्नता ही मेरी भी प्रसन्नता है’ यों कहकर सुग्रीवने पुनः श्रीरामचन्द्रजीसे कहा— ॥ १५—१९ ॥

‘प्रभो! ‘बाली’ नामक मेरा ज्येष्ठ भाई है, जो महाबलजान् और बड़ा ही पराक्रमी है; किंतु वह हृदयका अत्यन्त दुष्ट है। उसने कामासक्त होकर मेरी भार्याका अपहरण कर लिया है। पुरुषश्रेष्ठ! इस समय आपके सिवा दूसरा कोई बालीको मारनेवाला नहीं है। राजकुमार! पुराणवेत्ताओंने कहा है कि जो ताढ़के इन सात बुक्षोंको एक साथ ही काट डालेगा, वही बालीका वध कर सकेगा’ ॥ २०—२२॥

तत्प्रियार्थं हि रामोऽपि श्रीमांश्चित्त्वा महातर्लन्।
अर्धाकृष्णेन बाणेन युगप्रदघुनन्दनः ॥ २३

विद्युत्वा महातर्लन् रामः सुग्रीवं प्राह पार्थिवम्।
वालिना गच्छ युद्धस्य कृतचिह्नो रवेः सुत ॥ २४

इत्युक्तः कृतचिह्नोऽयं युद्धं चक्रेऽथ वालिनम् ॥ २५

रामोऽपि तत्र गत्वार्थं शरेणीकेन वालिनम् ॥ २६

विव्याध वीर्यवान् वाली पपात च ममार च ।
वित्रस्तं वालिषुत्रं तु अङ्गदं विनयान्वितम् ॥ २७

रणशौण्डुं यीवराज्ये नियुक्त्वा राघवस्तदा ।
तां च तारां तथा दत्त्वा रामश्च रविसूनवे ॥ २८

सुग्रीवं प्राह धर्मात्मा रामः कमललोचनः ।
राज्यमन्वेषय स्वं त्वं कपीनां पुनरावृज ॥ २९

त्वं सीतान्वेषणे यत्रं कुरु शीघ्रं हरीश्वर ।
इत्युक्तः प्राह सुग्रीवो रामं लक्ष्मणसंयुतम् ॥ ३०

प्रावृद्कालो महान् प्राप्तः साप्ततं रघुनन्दन ।
बानराणां गतिर्नास्ति वने वर्षति वासवे ॥ ३१

गते तस्मिस्तु राजेन्द्र प्राप्ते शरदि निर्मले ।
चारान् सम्प्रेषयिष्यामि वानरान्दिक्षु राघव ॥ ३२

इत्युक्त्वा रामचन्द्रं स तं प्रणम्य कपीश्वरः ।
पम्पापुरं प्रविश्याथ रेमे तारासमन्वितः ॥ ३३

रामोऽपि विधिवद्भात्रा शैलसानीं महावने ।
निवासं कृतवान् शैले नीलकण्ठे महामतिः ॥ ३४

प्रावृद्काले गते कृच्छ्रात् प्राप्ते शरदि राघवः ।
सीतावियोगाद्युथितः सौभित्रिं प्राह लक्ष्मणम् ॥ ३५

उल्लङ्घितस्तु समयः सुग्रीवेण ततो रुषा ।
लक्ष्मणं प्राह काकुत्स्थो भातरं भातुवत्सलः ॥ ३५

[यह सुनकर] श्रीमान् रामचन्द्रजीने भी सुग्रीवका प्रिय करनेके लिये आधे खींचे हुए बाणसे ही उन सात महावृक्षोंको एक ही साथ काट डाला। उन महावृक्षोंका भेदन करके श्रीरामने राजा सुग्रीवसे कहा—‘सूर्यनन्दन सुग्रीव ! मेरे पहचाननेके लिये अपने शरीरमें कोई चिह्न धारण करके तुम जाओ और वालीके साथ युद्ध किया और श्रीरामने भी वहाँ जाकर एक ही बाणसे वालीको बोध दिया। इससे पराक्रमी वाली पृथ्वीपर गिरा और मर गया। तब श्रीरामचन्द्रजीने अत्यन्त ऊरे हुए वालि-कुमार अङ्गदको, जो बहुत ही विनयी और संग्राममें कुशल था, युवराजपदपर अभिषिक्त करके ताराको सुग्रीव-की सेवामें अपित कर दिया। तत्पश्चात् कमलनयन धर्मतिमा श्रीराम सुग्रीवसे बोले—‘तुम बानरोंके गण्यकी दैख-भाल कर लो, फिर मेरे पास आना और कपीश्वर ! सीताकी खोज करनेका शोध ही यत्र करना’॥ २३—२८ ॥

उनके द्वाय इस प्रकार कहे जानेपर सुग्रीवने लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—‘रघुनन्दन ! इस समय महान् वर्षाकाल आ पहुंचा है; इन्द्रके वर्षा करते रहनेपर इस बनमें बानरोंका चलना-फिरना न हो सकेगा। राजेन्द्र ! वर्षा बीतने और शरत्काल आ जानेपर मैं समस्त दिशाओंमें अपने बानर दूतोंको भेजूँगा।’ यह कहकर बानराज सुग्रीवने श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम किया और पम्पापुरमें प्रवेश करके वे ताराके साथ रमण करने लगे॥ ३१—३२ ॥

इधर महामति श्रीरामचन्द्रजी भी अपने भाई लक्ष्मणके साथ उस महावनमें ‘नीलकण्ठ’ नामक पर्वतकी चोटीपर विधिपूर्वक रहने लगे। (सीताके वियोगमें) उनका वर्षाकाल बड़ी कठिनाईसे बीता। जब शरत्काल उपस्थित हुआ, तब श्रीरामचन्द्रजीने सीताके वियोगसे व्यथित हो सुमित्रानन्दन लक्ष्मणसे इस विषयमें वार्तालाप किया। उस समयतक वहाँ न आकर सुग्रीवने अपनी पूर्व-प्रतिज्ञाका उल्लङ्घन किया था। इसलिये भ्रातुवत्सल ककुत्स्थनन्दन श्रीरामने लक्ष्मणसे क्रोधपूर्वक कहा—

गच्छ लक्ष्मण दुष्टोऽसौ नागतः कपिनायकः ।
गते तु वर्षाकालेऽहमागमिष्यामि तेऽन्तिकम् ॥ ३६

अनेकैर्वानैः सार्थमित्युक्त्वासौ तदा गतः ।
तत्र गच्छ त्वराद्युक्तो यत्रास्ते कपिनायकः ॥ ३७

तं दुष्टमग्रतः कृत्वा हरिसेनासमन्वितम् ।
रमन्तं तारया सार्थं शीघ्रमानय मां प्रति ॥ ३८

नात्रागच्छति सुग्रीवो यद्यसौ प्राप्तभूतिकः ।
तदा त्वयैवं वक्तव्यः सुग्रीवोऽनुतभाषकः ॥ ३९

बालिहन्ता शरो दुष्ट करे मेऽद्यापि तिष्ठुति ।
स्मृत्वैतदाचर कपे रामवाक्यं हितं तत्व ॥ ४०

इत्युक्तस्तु तथेत्युक्त्वा रामं नत्वा च लक्ष्मणः ।
पम्पापुरं जगामाथ सुग्रीवो यत्र तिष्ठुति ।
दृष्टा स तत्र सुग्रीवं कपिराजं वभाष वै ॥ ४१

ताराभोगविषक्तस्त्वं रामकार्यपराङ्मुखः ।
किं त्वया विस्मृतं सर्वं रामाग्रे समयं कृतम् ॥ ४२

सीतामन्विष्य दास्यामि यत्र कवापीति दुर्भृते ।
हत्वा तु बालिनं राज्यं येन दत्तं पुरा तत्व ॥ ४३

त्वामृते कोऽवमन्येत कपीन्द्र पापचेतस ।
प्रतिश्रुत्य च रामस्य भार्याहीनस्य भूपते ॥ ४४

साहाय्यं ते करोमीति देवाग्निजलसंनिधी ।
ये ये च शत्रवो राजंस्ते ते च मम शत्रवः ॥ ४५

मित्राणि यानि ते देव तानि मित्राणि मे सदा ।
सीतामन्वेषितुं राजन् वानरैर्बहुभिर्वृतः ॥ ४६

सत्यं यास्यामि ते पार्श्वमित्युक्त्वा कोऽन्यथाकरोत् ।
त्वामृते पापिनं दुष्टं रामदेवस्य संनिधी ॥ ४७

कारथित्वा तु तेनैवं स्वकार्यं दुष्टवानर ।
ऋषीणां सत्यवद्वाक्यं त्वयि दुष्टं मयाथुना ॥ ४८

सर्वस्य हि कृतार्थस्य पतिरन्या प्रवर्तते ।
वत्सः क्षीरक्षयं दृष्टा परित्यजति मातरम् ॥ ४९

'लक्ष्मण ! तुम पम्पापुरमें जाओ। देखो, क्या कारण है कि वह दुष्ट वानरराज अभीतक नहीं आया। पहले तो वह यही कहकर गया था कि 'वर्षाकाल वीतनेपर मैं अनेक वानरोंके साथ आपके पास आऊँगा।' अब तुम जहाँ वह वानरराज रहता है, वहाँ शोष्रतापूर्वक जाओ। ताराके साथ रमण करनेवाले उस दुष्ट वानरको आगे करके समस्त वानरसेनाके सहित मेरे पास शीघ्र ले आओ। यदि ऐश्वर्य प्राप्त कर लेनेके कारण मदमें चूर हो सुग्रीव यहाँ न आये तो तुम उस असत्यवादीसे यों कहना—'अरे दुष्ट ! श्रीरामने कहा है कि जिससे चालिका वध किया गया था, वह याण आज भी मेरे हाथमें मौजूद है; अतः वानर ! इस बातको याद करके तू श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाका पालन कर; इसीमें तेरा भला है' ॥ ३३—४० ॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसी आज्ञा देनेपर लक्ष्मणने 'बहुत अच्छा' कहकर उसे शिरोधार्य किया और उनको नमस्कार करके वे पम्पापुरमें गये, जहाँ सुग्रीव रहता था। वहाँ उन्होंने वानरराज सुग्रीवको देखकर कहा—“अरे ! तू श्रीरामचन्द्रजीके कार्यसे मैंह मोड़कर यहाँ ताराके साथ भोग-बिलासमें फँसा हुआ है ? रे दुर्बुद्धे ! तूने श्रीरामके सामने जो यह प्रतिज्ञा की थी कि 'जहाँ-कहीं भी हो, सीताको ढूँढ़कर मैं आपको अर्पित करूँगा' उसे क्या भूल गया ? और पापात्मा वानरराज ! जिन्होंने बालिको मारकर पहले ही तुम्हें राज्य दे दिया, ऐसे परोपकारी मित्रका तेरे सिवा कौन अनादर कर सकता है ? तूने देवता, अग्नि और जलके निकट श्रीरामसे यह प्रतिज्ञा की थी कि 'राजन् ! मैं पलीसे वियुक्त हुए आपकी सहायता करूँगा। राजन् ! जो-जो आपके शत्रु हैं, वे-वे मेरे भी शत्रु हैं तथा देव ! जो-जो आपके मित्र हैं, वे-वे मेरे भी सदा ही मित्र हैं। राजन् ! मैं बहुत-से वानरोंके साथ सीताकी खोज करानेके लिये अवश्य ही आपके पास आऊँगा।' भगवान् श्रीरामके निकट यों कहकर तुङ्ग-जैसे दुष्ट पापीके सिवा दूसरा कौन है, जो इसके विपरीत आचरण करता । अरे दुष्ट वानर ! इस प्रकार तूने अपना काम तो उससे करा लिया और उनका कार्य करना तू भूल गया ! इस समय ऋषियोंकी यह यथार्थ बात कि 'अपना काम सिद्ध हो जानेपर सभीकी बुद्धि बदल जाती है, जैसे बछड़ा माताके थनोंमें दूधकी कमी देखकर उसे छोड़ देता है [फिर माताकी परवा नहीं करता]'

जनवृत्तविदां लोके सर्वज्ञानां महात्मनाम्।
 न तं पश्यामि लोकेऽस्मिन् कृतं प्रतिकरोति यः ॥ ५०
 शास्त्रेषु निष्कृतिर्दृष्टा महापातकिनामपि।
 कृतञ्जनस्य कपे दुष्ट न दृष्टा निष्कृतिः पुरा ॥ ५१
 कृतञ्जनता न कार्या ते त्वत्कृतं समयं स्मर।
 एहोद्यागच्छ शरणं काकुत्स्थं हितपालकम् ॥ ५२
 यदि नायासि च कपे रामवाक्यमिदं शृणु।
 नयिष्ये मृत्युसदनं सुग्रीवं वालिनं यथा ॥ ५३
 म शारो विद्यते उस्माकं येन वाली हतः कपिः ।
 लक्ष्मणेनैव मुक्तोऽसौ सुग्रीवः कपिनायकः ॥ ५४
 निर्गत्य तु नमश्वके लक्ष्मणं मन्त्रिणोदितः ।
 उवाच च महात्मानं लक्ष्मणं बानराधिपः ॥ ५५
 अज्ञानकृतपापानामस्माकं क्षन्तुमर्हसि।
 समयः कृतो मद्या राजा रामेणामिततेजसा ॥ ५६
 यस्तदानीं महाभाग तमद्यापि न लहूये।
 यास्यामि निखिलैरद्य कपिभिर्नृपनन्दन ॥ ५७
 त्वया सह महावीर रामपार्श्वं न संशयः ।
 मां दृष्टा तत्र काकुत्स्थो यद्वक्ष्यति च मां प्रति ॥ ५८
 तत्सर्वं शिरसा गृह्णा करिष्यामि न संशयः ।
 सन्ति मे हरयः शूराः सीतान्वेषणकर्मणि ॥ ५९
 तान्वहं प्रेषयिष्यामि दिक्षु सर्वासु पार्थिव।
 इत्युक्तः कपिराजेन सुग्रीवेण स लक्ष्मणः ॥ ६०
 एहि शीघ्रं गमिष्यामो रामपार्श्वमितोऽधुना।
 सेना चाहूयतां वीर ऋक्षाणां हरिणामपि ॥ ६१
 यां दृष्टा प्रीतिमध्येति राघवस्ते महापते।
 इत्युक्तो लक्ष्मणोनाथ सुग्रीवः स तु वीर्यवान् ॥ ६२
 पार्श्वस्थं युवराजानमङ्गदं संज्ञयाद्वीत्।
 सोऽपि निर्गत्य सेनानीमाह सेनापतिं तदा ॥ ६३
 तेनाहृताः समागत्य ऋक्षवानरकोटयः ।
 गुहास्थाश्च गिरिस्थाश्च वृक्षस्थाश्चैव वानरः ॥ ६४
 तैः सार्थं पर्वताकारैर्वानैर्भीमविक्रमैः ।
 सुग्रीवः शीघ्रमागत्य ववन्दे राघवं तदा ॥ ६५
 लक्ष्मणोऽपि नमस्कृत्य रामं भातरमङ्गवीत्।
 प्रसादं कुरु सुग्रीवे विनीते चाधुना नृप ॥ ६६

मुझे तुझमें ही ठीक-ठीक घटती-सी दीख रही है। संसारमें जो मनुष्योंचित सदृश्यवहारका ज्ञान रखनेवाले हैं, उन सर्वत्र महात्माओंमेंसे मैं किसीको भी ऐसा नहीं देखता, जो लोकमें दूसरोंके द्वारा किये हुए उपकारको न मानता हो। शास्त्रोंमें महापातकी पुरुषोंके भी उद्धारका उपाय (प्रायश्चित्त) देखा गया है, किन्तु दुष्ट वानर! कृतञ्ज पुरुषके उद्धारका उपाय मैंने पहले कभी नहीं देखा है। इसलिये तुझे कभी कृतञ्जनता नहीं करनी चाहिये। अपनी की हुई प्रतिज्ञाको याद कर। अब आ, तेरे हितकी रक्षा करनेवाले काकुत्स्थकुलनन्दन भगवान् श्रीरामकी शरणमें चल। वानर! यदि तू नहीं आना चाहता तो यह श्रीरामका बचन सुन। [उन्होंने कहा है—] ‘मैं वालिकी ही भौति सुग्रीवको भी यमपुर भेज दूँगा। जिससे वानरराज वालि मारा गया है, वह बाण अब भी मेरे पास भौजूद है’ ॥ ४१—५३ ॥

लक्ष्मणके इस प्रकार कहनेपर कपिराज सुग्रीव मन्त्रीकी प्रेरणासे बाहर निकले। उन्होंने लक्ष्मणको प्रणाम किया और उन महात्मासे कहा—‘महाभाग! हमारे अज्ञानवश किये हुए अपराधोंको आप क्षमा करें। मैंने उस समय अमिततेजस्वी रुजा रामचन्द्रके साथ जो प्रतिज्ञा की थी, उसका अब भी उल्लङ्घन नहीं करूँगा। महावीर राजकुमार! मैं अब समस्त वानरोंको साथ लेकर आपके साथ श्रीरामके पास चलूँगा। मुझे वहाँ देखकर श्रीरामचन्द्रजी मुझसे जो कुछ भी कहेंगे, उसे मैं शिरोधार्य करके निस्संदेह पूर्ण करूँगा। राजन्। मेरे यहाँ बड़े-बड़े बीर वानर हैं। उन सबको मैं सीताजीकी खोज करनेके लिये समस्त दिशाओंमें भेजूँगा’ ॥ ५४—५९ ॥

वानरराज सुग्रीवके यों कहनेपर लक्ष्मणने कहा—‘आओ! अब यहाँसे शीघ्र ही श्रीरामके पास चलें। वीर! महापते! वानरों और भालुओंकी सेना भी बुला लो, जिसे देखकर श्रीरामचन्द्रजी तुमपर प्रसन्न हों।’ लक्ष्मणद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर परम पराक्रमी सुग्रीवने पास ही खड़े हुए युवराज अङ्गदसे इशारेमें कुछ कहा। अङ्गदने भी जाकर सेनाका संचालन करनेवाले सेनापतिको प्रेरित किया। सेनापतिके बुलानेसे पर्वत, कन्दरा और बृक्षोंपर रहनेवाले करोड़ों वानर आये। पर्वतोंके समान आकारवाले उन भयंकर पराक्रमी वानरोंके साथ सुग्रीवने उस समय शीघ्रतापूर्वक पहुँचकर श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम किया। साथ ही लक्ष्मणजीने भी अपने भाईको प्रणाम करके कहा—‘राजन्! इन विनयशील सुग्रीवपर अब आप कृपा करें’ ॥ ६०—६६ ॥

इत्युक्तो राघवस्तेन धात्रा सुग्रीवमद्वीत्।
आगच्छात्र महावीर सुग्रीव कुशलं तव ॥ ६७

श्रुत्वेत्थं रामवचनं प्रसन्नं च नराधिपम्।
शिरस्यञ्जलिमाधाय सुग्रीवो राममद्वीत् ॥ ६८

तदा मे कुशलं राजन् सीतादेवी तव प्रभो ।
अन्विष्य तु यदा दत्ता मया भवति नान्यथा ॥ ६९

इत्युक्ते वचने तेन हनूमान्मारुतात्मजः ।
नत्वा रामं बधाष्टैनं सुग्रीवं कपिनायकम् ॥ ७०

शृणु सुग्रीव मे वाक्यं राजायं दुःखितो भृशम् ।
सीतावियोगेन च सदा नाशनाति च फलादिकम् ॥ ७१

अस्य दुःखेन सततं लक्ष्मणोऽयं सुदुःखितः ।
एतयोरत्र यावस्था तां श्रुत्वा भरतोऽनुजः ॥ ७२

दुःखी भवति तददुःखाददुःखं प्राप्नोति तज्जनः ।
यत एवमतो राजन् सीतान्वेषणमाचर ॥ ७३

इत्युक्ते वचने तत्र वायुपुत्रेण धीमता ।
जाम्बवानतितेजस्वी नत्वा रामं पुरःस्थितः ॥ ७४

स प्राह कपिराजं तं नीतिमान् नीतिमद्वचः ।
यदुकं वायुपुत्रेण तत्तथेत्यवगच्छ भोः ॥ ७५

यत्र क्षापि स्थिता सीता रामभार्या यशस्विनी ।
पतिव्रता महाभागा वैदेही जनकात्मजा ॥ ७६

अद्यापि वृत्तसम्पत्रा इति मे मनसि स्थितम् ।
न हि कल्पाणचित्तायाः सीतायाः केनचिद्दूषि ॥ ७७

पराभवोऽस्ति सुग्रीव प्रेषयादीव वानरान् ।
इत्युक्तस्तेन सुग्रीवः प्रीतात्मा कपिनायकः ॥ ७८

यश्चिमायां दिशि तदा प्रेषयामास तान् कपीन् ।
अन्वेष्टुं रामभार्या तां महावलपराक्रमः ॥ ७९

उत्तरस्यां दिशि तदा नियुतान् वानरानसी ।
प्रेषयामास धर्मात्मा सीतान्वेषणकर्मणि ॥ ८०

भाई लक्ष्मणके इस प्रकार अनुरोध करनेपर श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवसे कहा—‘महावीर सुग्रीव! यहाँ आओ। कहो, कुशल तो है न?’ श्रीरामचन्द्रजीका ऐसा कथन सुनकर और उन नरेशको प्रसन्न जानकर सुग्रीवने सिरपर अङ्गलि जोड़ उनसे कहा—‘राजन्! प्रभो! मेरी कुशल तो तभी होगी, जब मैं सीतादेवीको दूँड़कर आपको अपित्त कर दूँ; नहीं तो नहीं’ ॥ ६७—६९ ॥

सुग्रीवने जब यह बात कही, तब पवनकुमार हनुमान्जी श्रीरामको नमस्कार करके कपिराज सुग्रीवसे बोले—‘सुग्रीव! आप मेरी बात सुनें। ये राजा श्रीरामचन्द्रजी सीताके वियोगसे सदा ही बहुत दुःखी रहते हैं, इसीलिये फल आदिका भी आहार नहीं करते। इन्हींके दुःखसे ये लक्ष्मण भी सदा अत्यन्त दुःखित रहा करते हैं। इन दोनोंकी यहाँ जो अवस्था है, उसे सुनकर इनके छोटे भाई भरत भी दुःखी होते हैं और उनके दुःखसे वहाँके सभी लोग दुःखमें फड़े रहते हैं। राजन्! चूँकि ऐसी स्थिति है, अतः आप बहुत शोध सीताकी खोज कराइये’ ॥ ७०—७३ ॥

बुद्धिमान् वायुनन्दनके यों कहनेपर अत्यन्त तेजस्वी जाम्बवान् श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करके सामने खड़े हो गये। वे नीतिज्ञ थे, अतः कपिराज सुग्रीवसे नीतियुक्त वचन बोले—‘सुग्रीव! हनुमान्जीने जो कहा है, उसे आप ठीक ही समझें। श्रीरामचन्द्रजीकी यशस्विनी भार्या विदेहकुलनन्दिनी जनककुमारी महाभागा पतिव्रता सीता जहाँ—कहीं भी होंगी, आज भी सदाचारसे सम्पन्न होंगी—यह विचार मेरे मनमें निश्चितरूपसे जमा हुआ है। सुग्रीव! सदा कल्पाणस्वरूप श्रीरामचन्द्रजीमें ही मन लगाये रहनेवाली सीताजीका इस पृथ्वीपर किसीके द्वारा भी पराभव नहीं हो सकता। इसलिये आप अभी बानरोंको भेजें’ ॥ ७४—७७ ॥

जाम्बवान्के इस प्रकार कहनेपर महान् बल और पराक्रमसे युक्त कपिराज सुग्रीवने प्रसन्न हो सीताकी खोजके लिये बहुत-से बानरोंको पश्चिम दिशामें भेजा तथा उन धर्मात्माने उत्तर दिशामें भी सीताको दूँड़नेके निमित्त एक लाख बानरोंको उसी समय भेज दिया।

पूर्वस्यां दिशि कपीशु कपिराजः प्रतापवान्।
प्रेषयामास रामस्य सुभार्यान्वेषणाय चै॥ ८१

इति तान् प्रेषयामास वानरान् वानराधिपः।
सुग्रीवो वालिपुत्रं तमङ्गदं प्राह बुद्धिमान्॥ ८२

त्वं गच्छ दक्षिणं देशं सीतान्वेषणकर्मणि।
जाम्बवांशु हनुमांशु मैन्दो द्विविद एव च॥ ८३

नीलाद्याश्चैव हरयो महाबलपराक्रमाः।
अनुयास्यन्ति गच्छन्तं त्वामद्य मम शासनात्॥ ८४

अचिरादेव यूयं तां दृष्टा सीतां यशस्विनीम्।
स्थानतो रूपतश्चैव शीलतश्च विशेषतः॥ ८५

केन नीता च कुत्रास्ते ज्ञात्वाऽत्रागच्छ पुत्रक।
इत्युक्तः कपिराजेन पितृव्येण महात्मना॥ ८६

अङ्गदसूर्णमुत्थाय तस्याङ्गां शिरसा दधे।
इत्युक्ते दूरतः स्थाप्य वानरानथं जाम्बवान्॥ ८७

रामं च लक्ष्मणं चैव सुग्रीवं मारुतात्मजम्।
एकतः स्थाप्य तानाह नीतिमान् नीतिमद्वचः॥ ८८

श्रूयतां वचनं मेऽद्य सीतान्वेषणकर्मणि।
श्रुत्वा च तद्गृहणं त्वं रोचते यन्नपात्मज॥ ८९

रावणेन जनस्थानात्रीयमाना तपस्विनी।
जटायुषा तु सा दृष्टा शक्त्या युद्धं प्रकुर्वता॥ ९०

भूषणानि च दृष्टानि तया क्षिप्तानि तेन चै।
तान्यस्माभिः प्रदृष्टानि सुग्रीवायार्पितानि च॥ ९१

जटायुवाक्याद्वजेन्द्र सत्यमित्यवधारय।
एतस्मात्कारणात्सीता नीता तेनैव रक्षसा॥ ९२

रावणेन महाबाहो लङ्घायां वर्तते तु सा।
त्वां स्मरन्ती तु तत्रस्था त्वहुःखेन सुदुःखिता॥ ९३

रक्षन्ती यत्रतो वृत्तं तत्रापि जनकात्मजा।
त्वद्द्वयानैव स्वान् प्राणान्धारयन्ती शुभानना॥ ९४

इसी प्रकार प्रतापी वानरराजने पूर्व दिशामें भी रामकी श्रेष्ठ भार्या सीताका अन्वेषण करनेके लिये बहुत-से वानर भेजे। बुद्धिमान् वानरराज सुग्रीवने इस प्रकार वानरोंको भेज लेनेके बाद वालिकुमार अङ्गदसे कहा—'अङ्गद! तुम सीताकी खोज करनेके लिये दक्षिण दिशामें जाओ। मेरी आज्ञासे आज तुम्हारे चलते समय तुम्हारे साथ जाम्बवान्, हनुमान्, मैन्द, द्विविद और नील आदि महाबली एवं महापराक्रमी वानर जायेंगे। बेटा! तुम सभी लोग बहुत शोश्न जाकर यशस्विनी सीताका दर्शन करो और यह भी पता लगाओ, 'वे कैसे स्थानमें हैं, किस रूपमें हैं? विशेषतः उनका आचरण कैसा है? कौन उन्हें ले गया है? तथा उसने उन्हें कहाँ रखा है?'—यह सब जानकर शोश्न लौट आओ''॥ ७८—८५ ॥

अपने चाचा महात्मा सुग्रीवके इस प्रकार आदेश देनेपर अङ्गदने तुरंत डठकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य की। सुग्रीवकी पूर्वोक्त आज्ञा सुनकर नीतिज्ञ जाम्बवान् ने सब वानरोंको कुछ दूर खड़ा कर दिया और श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव तथा हनुमन् जीको एक जगह करके उनसे यह नीतियुक्त बात कही—'नृपनन्दन श्रीरामचन्द्रजी! सीताका अन्वेषण करनेके विषयमें इस समय आप मेरी एक बात सुनें और सुननेके बाद यदि वह अच्छी लगे तो उसे स्वीकार करें। जटायुने तपस्विनी सीताको जनस्थानसे रावणद्वारा ले जायी जाती हुई देखा था तथा उन्होंने उसके साथ यथाशक्ति युद्ध भी किया था। साथ ही, सीताजीने उस समय अपने आभूषण उतार फेंके थे, जिनको जटायुने और हम लोगोंने भी देखा था। उन आभूषणोंको हमने सुग्रीवको अर्पित कर दिया है। इस कारण राजेन्द्र! जटायुके कथनातुसार आप इस बातको सत्य समझें कि सीताजीको वही दुष्ट रक्षस रावण ले गया है और महाबाहो! वे इस समय लङ्घामें ही हैं। वहाँ रहकर भी वे आपके ही दुःखसे अत्यन्त दुःखी हो निरन्तर आपका ही स्मरण किया करती हैं। जनकनन्दिनी सीता लङ्घामें रहकर भी अपने सदाचारकी यत्पूर्वक रक्षा कर रही हैं। वे सुमुखी सीतादेवी आपके ही ध्यानसे अपने ग्राणोंको धारण करती हुई

स्थिता प्रायेण ते देवी सीता दुःखपरायणा ।
हितमेव च ते राजनुदधेलहने क्षमम् ॥ १५

वायुपुत्रं हनुमन्तं त्वमत्रादेष्टुमर्हसि ।
त्वं चाप्यर्हसि सुग्रीव प्रेषितुं मारुतात्मजम् ॥ १६

तमृते सागरं गन्तुं वानराणां न विद्यते ।
बलं कस्यापि वा वीर इति मे मनसि स्थितम् ॥ १७

कियतां मद्वचः क्षिप्रं हितं पथ्यं च नः सदा ।
उत्ते जाम्बवतैवं तु नीतिस्वल्पाक्षरान्विते ॥ १८

वाक्ये वानरराजोऽसौ शीघ्रमुत्थाय चासनात् ।
वायुपुत्रसमीपं तु तं गत्वा वाक्यमद्वीत् ॥ १९

शृणु मद्वचनं वीर हनुमन्मारुतात्मज ।
अयमिक्ष्वाकुतिलको राजा रामः प्रतापवान् ॥ २००

पितुरादेशमादाय भातृभार्यासमन्वितः ।
प्रविष्टो दण्डकारण्यं साक्षाद्वर्मपरायणः ॥ २०१

सर्वात्मा सर्वलोकेशो विष्णुर्मानुषरूपवान् ।
अस्य भार्या हता तेन दुष्टेनापि दुरात्मना ॥ २०२

तद्वियोगजदुःखातो विचिन्वस्तां बने बने ।
त्वया दृष्टो नृपः पूर्वमयं वीरः प्रतापवान् ॥ २०३

एतेन सह संगम्य समयं चापि कारितम् ।
अनेन निहतः शान्तुर्मम वालिर्महाबलः ॥ २०४

अस्य प्रसादेन कपेर राज्यं प्राप्तं मयाधुना ।
मया च तत्प्रतिज्ञातमस्य साहाय्यकर्मणि ॥ २०५

तत्सत्यं कर्तुमिच्छामि त्वद्वलान्मारुतात्मज ।
उत्तीर्य सागरं वीर दृष्टा सीतामनिदिताम् ॥ २०६

भूयस्तर्तु बलं नास्ति वानराणां त्वया विना ।
अतस्त्वमेव जानासि स्वामिकार्यं महामते ॥ २०७

बलवान्नीतिमांश्चैव दक्षस्त्वं दौत्यकर्मणि ।
तेनैवमुक्तो हनुमान् सुग्रीवेण महात्मना ॥ २०८

स्वामिनोऽर्थं न किं कुर्यामीदृशं किं नु भाषसे ।
इत्युक्तो वायुपुत्रेण रामस्तं पुरतः स्थितम् ॥ २०९

प्रायः आपके ही वियोग-दुःखमें दूखी रहती हैं। इसलिये राजन्। इस समय आपके हितकी ही बात बता रहा है आप इस कायके लिये वायुपुत्र हनुमान्‌जीको आज्ञा दें; क्योंकि ये ही समुद्र लांघनेमें समर्थ हैं और सुप्रीव। आपको भी चाहिये कि पवनकुमार हनुमान्‌जीको ही वहाँ भेजें; क्योंकि वानरोंमें उनके अतिरिक्त कोई भी ऐसा नहीं है, जो समुद्रके पार जा सके तथा है वीर। इनके बगवर किसीका बल भी नहीं है। बस, मैरे मनमें यही विचार है। मैरे कथनका शीघ्र पालन किया जाय; क्योंकि यह हमारे लिये सदा ही हितकर और लाभकारी होगा' ॥ २६—२७ ॥

जाम्बवान्‌के इस प्रकार थोड़े अक्षरोंमें नीतिशुक्र वचन कहनेपर वानरराज सुग्रीव शीघ्र ही अपने आसनसे उठे और वायुनन्दन हनुमान्‌जीके निकट जाकर उनसे बोले— ॥ २८—२९ ॥

"पवनकुमार वीर हनुमान्‌जी ! तुम मेरी बात सुनो। ये प्रतापी राजा श्रीरामचन्द्रजी इक्ष्वाकुवंशके भूषण हैं। ये अपने पिताकी आज्ञा मानकर भाई और पत्नीके सहित दण्डकारण्यमें चले आये थे। सदैव धर्ममें तत्पर रहनेवाले ये श्रीराम समस्त लोकोंकि ईश्वर और सबके आत्मा साक्षात् भगवान् विष्णु ही हैं। इस समय मनुष्यरूपमें अवतीर्ण हुए हैं। इनकी धर्मपत्नी सीताको दुष्ट दुरत्या रावणने हर लिया है। ये प्रतापी वीर राजा उन्हींके वियोगजन्य दुःखसे पीड़ित हो बन-बनमें उन्हींकी खोज करते हुए आ रहे थे, जबकि तुमने इन्हें पहले-पहल देखा था। इनके साथ मिलकर हमने प्रतिज्ञा भी की थी। इन्होंने मेरे शान्तु महाबली वालिका बध किया तथा कपे! इन्हींकी कृपासे मैंने इस समय अपना राज्य प्राप्त किया है और मैंने भी इनकी सहायताके लिये प्रतिज्ञा की है। पवननन्दन ! मैं अपनी उस प्रतिज्ञाको तुम्हारे ही बलपर पूर्ण करना चाहता हूँ। वीर ! समुद्रके पार जा पतिव्रता सीताको देखकर पुनः समुद्रके इस पार लौट आनेकी सामर्थ्य तुम्हारे सिवा वानरोंमें से किसीमें भी नहीं है। अतः महामते ! तुम्हीं अपने स्वामीके कार्यको ठीक-ठीक जान सकते हो; क्योंकि तुम बलवान् नीतिज्ञ और दूतकर्ममें दक्ष हो" ॥ २००—२०७ ॥

महात्मा सुग्रीवके यों कहनेपर हनुमान्‌जी बोले— 'आप ऐसी बात क्यों कहते हैं ? भला, अपने स्वामी भगवान् श्रीरामका कार्य क्या मैं नहीं करूँगा ?' वायुनन्दनके

प्राह वाक्यं महाबाहुवार्ष्यसम्पूर्णलोचनः ।
 सीतां स्मृत्वा सुदुःखार्तः कालयुक्तमभिन्नजित् ॥ ११०
 त्वयि भारं समारोष्य समुद्रतरणादिकम् ।
 सुग्रीवः स्थाप्यते ह्यत्र मया सार्थं महामते ॥ १११
 हनूमांसत्र गच्छ त्वं मत्प्रीत्यै कृतनिश्चयः ।
 ज्ञातीनां च तथा प्रीत्यै सुग्रीवस्य विशेषतः ॥ ११२
 प्रायेण रक्षसा नीता भार्या मे जनकात्मजा ।
 तत्र गच्छ महाबीर यत्र सीता व्यवस्थिता ॥ ११३
 यदि पृच्छति सादृश्यं मदाकारमशेषतः ।
 अतो निरीक्ष्य मां भूयो लक्ष्मणं च ममानुजम् ॥ ११४
 ज्ञात्वा सर्वाङ्गं लक्ष्मणं सकलं चावयोरिह ।
 नान्यथा विश्वसेत्सीता इति मे मनसि स्थितम् ॥ ११५
 इत्युक्तो रामदेवेन प्रभञ्जनसुतो बली ।
 उथाय तत्पुरः स्थित्वा कृताङ्गलिरुचाच तम् ॥ ११६
 जानामि लक्षणं सर्वं युवयोस्तु विशेषतः ।
 गच्छामि कृपिभिः सार्थं त्वं शोकं मा कुरुष्व वै ॥ ११७
 अन्यच्च देहभिज्ञानं विश्वासो येन मे भवेत् ।
 सीतायास्तव देव्यास्तु राजन् राजीवलोचनः ॥ ११८
 इत्युक्तो वायुपुत्रेण रामः कमललोचनः ।
 अङ्गुलीयकमुन्मुच्य दत्तवान् रामचिह्नितम् ॥ ११९
 तद्युहीत्वा तदा सोऽपि हनूमान्मारुतात्मजः ।
 रामं प्रदक्षिणीकृत्य लक्ष्मणं च कपीश्वरम् ॥ १२०
 नत्वा ततो जगामाशु हनूमानङ्गनीसुतः ।
 सुग्रीवोऽपि च ताङ्गुत्वा वानरान् गन्तुमुद्यातान् ॥ १२१
 आज्ञेयानाज्ञापयति वानरान् बलदर्पितान् ।
 शृणवन्तु वानराः सर्वे शासनं मम भाषितम् ॥ १२२
 विलम्बनं न कर्तव्यं युष्माभिः पर्वतादिषु ।
 ह्वां गत्वा तु तां वीक्ष्य आगत्व्यमनिन्दिताम् ॥ १२३
 रामपत्नीं महाभागां स्थास्येऽहं रामसंनिधी ।
 कर्तनं च करिष्यामि अन्यथा कर्णनासयोः ॥ १२४

इस प्रकार उत्तर देनेपर शत्रुविजयी महाबाहु राम सीताकी यादसे अत्यन्त दुःखी हो, और उसमें आँसू भरकर, सामने बैठे हुए हनुमानजीसे समयोधित वचन बोले—‘महामते! मैं समुद्रके पार जाने आदिका भार तुम्हारे ही ऊपर रखकर सुग्रीवको अपने साथ रखता हूँ। हनूमन्! तुम मेरी, इन वानर-बन्धुओंकी और विशेषतः सुग्रीवकी प्रसन्नताके लिये दृढ़ निश्चय करके बहाँ (लङ्घामें) जाओ। महाबीर! प्रायः यही जान पड़ता है कि रावण नामक राक्षस ही सीताको ले गया है; अतः जहाँ सीता रखी गयी हो, वहाँ जाना। यदि वे पूछें कि ‘तुम जिनके पाससे आते हो, उन श्रीराम और लक्ष्मणका स्वरूप कैसा है?’ तो इसका उत्तर देनेके लिये तुम मेरे शरीरको तथा मेरे छोटे भाई लक्ष्मणको भी अच्छी तरह देख लो। हम दोनोंके शरीरका प्रत्येक चिह्न देखकर उनसे बताना। नहीं तो सीता तुमपर विश्वास नहीं कर सकती—यह मेरे मनका दृढ़ विचार है’ ॥ १०८—११५ ॥

भगवान् श्रीरामके यों कहनेपर महाबली वायुनन्दन हनुमान् उठकर उनके सामने खड़े हो गये और हाथ जोड़कर उनसे बोले—‘मैं आप दोनोंके सब लक्षण विशेषरूपसे जानता हूँ; अब मैं वानरोंके साथ जा रहा हूँ आप खेद न करें। कमललोचन राजन्! इसके अतिरिक्त आप मुझे कोई पहचानकी वस्तु दीजिये, जिससे आपकी महारानी सीताका मुङ्गपर विश्वास हो ॥ ११६—११८ ॥

वायुनन्दन हनुमान्के इस प्रकार अनुरोध करनेपर कमलनयन श्रीरामने अपनी अँगूठी निकालकर दे दी, जिसपर ‘राम’ नाम खुदा हुआ था। उसे लेकर पवनकुमार हनुमान्ने भी श्रीराम, लक्ष्मण और वानराज सुग्रीवकी परिक्रमा की। फिर उन्हें प्रणामकर वे अङ्गनीनन्दन हनुमान् बहाँसे शीघ्रतापूर्वक चले। तब सुग्रीव भी अपने आज्ञाकारी एवं बलाभिमानी वानरोंके विषयमें यह जानकर कि वे जानेके लिये उद्यत हैं, उन्हें आदेश देते हुए बोले—‘सभी वानर इस समय मेरी आज्ञा सुन ले—तुम पर्वतों और घनोंमें विलम्ब मत जाना। शीघ्र जाकर महाभागा रामपत्नी पतिव्रता सीताका पता लगाकर लौट आना; मैं श्रीरामचन्द्रजी-के पास उहरता हूँ। यदि तुम मेरी आज्ञाके विपरीत चलोगे तो मैं तुम्हारी नाक और कान काट लूँगा’ ॥ ११९—१२४ ॥

एवं तान् प्रेषयित्वा तु आज्ञापूर्वं कपीश्वरः ।
 अथ ते वानरा याताः पश्चिमादिषु दिशु वै ॥ १२५
 ते सानुषु समस्तेषु गिरीणामपि मूर्धसु ।
 नदीतीरेषु सर्वेषु मुनीनामाश्रमेषु च ॥ १२६
 कन्दरेषु च सर्वेषु वनेषूपवनेषु च ।
 वृक्षेषु वृक्षगुल्मेषु गुहासु च शिलासु च ॥ १२७
 सहापर्वतपार्श्वेषु विन्यसागरपार्श्वयोः ।
 हिमवत्यपि शैले च तथा किम्पुरुषादिषु ॥ १२८
 मनुदेशेषु सर्वेषु सप्तपातालकेषु च ।
 मध्यदेशेषु सर्वेषु कश्मीरेषु महाबलाः ॥ १२९
 पूर्वदेशेषु सर्वेषु कामरूपेषु कोशले ।
 तीर्थस्थानेषु सर्वेषु सप्तकोङ्कणकेषु च ॥ १३०
 यत्र तत्रैव ते सीतामदृष्ट्वा पुनरागताः ।
 आगत्य ते नमस्कृत्य रामलक्ष्मणपादयोः ॥ १३१
 सुग्रीवं च विशेषेण नास्माभिः कमलेक्षणा ।
 दृष्ट सीता महाभागेत्युक्त्वा तांस्त्रत्र तस्थिरे ॥ १३२
 ततस्तं दुःखितं प्राह रामदेवं कपीश्वरः ।
 सीता दक्षिणादिग्भागे स्थिता द्रष्टुं बने नृप ॥ १३३
 शब्द्या वानरसिंहेन वायुपुत्रेण धीमता ।
 दृष्ट सीतामिहायाति हनुमान्नात्र संशयः ॥ १३४
 स्थिरो भव महाबाहो राम सत्यमिदं वचः ।
 लक्ष्मणोऽप्याह शकुनं तत्र वाक्यमिदं तदा ॥ १३५
 सर्वथा दृष्टसीतस्तु हनुमानागमिष्यति ।
 इत्याश्वास्य स्थितौ तत्र रामं सुग्रीवलक्ष्मणौ ॥ १३६
 अथाङ्गदं पुरस्कृत्य ये गता वानरोत्तमाः ।
 यत्रादन्वेषणार्थाय रामपत्नीं यशस्विनीम् ॥ १३७
 अदृष्टा श्रममापत्राः कृच्छ्रभूतास्तदा बने ।
 भक्षणेन विहीनास्ते क्षुधया च प्रपीडिताः ॥ १३८
 भृष्णिर्गहनेऽरण्ये क्लापि दृष्टा च सुप्रभा ।
 गुहानिवासिनी सिद्धा ऋषिपत्नी हृनिन्दिता ॥ १३९
 सा च तानागतान्दृष्टा स्वाश्रमं प्रति वानरान् ।
 आगताः कस्य यूयं तु कुतः किं नु प्रयोजनम् ॥ १४०

कपिराज सुग्रीवने इस प्रकार आज्ञापूर्वक उन्हें भेजा और वे बानर पश्चिम आदि दिशाओंमें चल पडे । समस्त पर्वतोंके सानुओं (उपल्यकाओं) और शिखरोंपर, सारी नदियोंके तटोंपर, मुनियोंके आश्रमोंमें, खड़ोंमें, सब प्रकारके बनों और उपवनोंमें, वृक्षों और झाड़ियोंमें, कन्दराओं तथा शिलाओंमें, सहापर्वतके आस-पास, विन्याचल और समुद्रके निकट, हिमालय पर्वतपर किम्पुरुष आदि देशोंमें, समस्त मानवीय प्रदेशोंमें, सातों पातालोंमें, सम्पूर्ण मध्यप्रदेशोंमें, कश्मीरमें, पूर्वदिशाके सारे देशोंमें, कामरूप (आसाम) और कोशल (अवध)-में, सम्पूर्ण तीर्थ-स्थानोंमें तथा सातों कोङ्कण देशोंमें भी जहाँ-तहाँ सर्वत्र सीताकी खोज करते हुए वे महाबली बानर उन्हें न पाकर लौट आये । आकर उन्होंने श्रीराम और लक्ष्मणके चरणोंमें तथा विशेषतः सुग्रीवको प्रणाम किया और यह कहकर कि 'हमने कमललोचना महाभागा सीताको कहों नहीं देखा', वहाँ खड़े हो गये ॥ १२५—१३२ ॥

तब दुःखित हुए भगवान् रामसे कपिराज सुग्रीवने कहा—'राजन्! सीताजी दक्षिण दिशामें ही बनमें स्थित हैं; उन्हें बानरश्रेष्ठ बुद्धिमान् पवनकुमार ही देख सकते हैं । इसमें संदेह नहीं कि हनुमान्‌जी सीताको देखकर ही आयेंगे । महाबाहु श्रीराम! आप धैर्य धारण करें, मेरा यह कथन बिलकुल सत्य है ।' तब लक्ष्मणने भी शकुन देखकर यह बात कही—'हनुमान् सर्वथा सीताको देखकर ही आयेंगे ।' इस प्रकार सुग्रीव और लक्ष्मण भगवान् श्रीरामको सान्ध्यना देते हुए उनके पास रहने लगे ॥ १३३—१३६ ॥

इधर जो-जो श्रेष्ठ बानर अङ्गदजीको आगे करके यशस्विनी श्रीसीताजीकी यज्ञपूर्वक खोज करनेके लिये गये थे, वे बनमें कहीं भी सीताजीका पता न पाकर बहुत थक गये तथा कष्टमें पड़े गये । यही नहीं, कुछ भोजन न मिलनेके कारण वे भूखसे भी बहुत पीड़ित हो गये । गहन बनमें घूमते हुए उन्होंने एक परम कान्तिमयी और उत्तम गुणोंवाली ऋषिपत्नी देखी, जो कन्दरामें निवास करनेवाली और सिद्धा थी । उसने उन बानरोंको अपने आश्रमपर आया देख पूछा—'आप लोग किसके दूत हैं? कहाँसे आये हैं? और यहाँ आनेका क्या प्रयोजन है?' ॥ १३७—१४० ॥

इत्युक्ते जाम्बवानाह तां सिद्धां सुप्रहापतिः ।
सुग्रीवस्य वयं भूत्या आगता हृत्र शोभने ॥ १४१
रामभार्यार्थमनघे सीतान्वेषणकर्मणि ।
कां दिग्भूता निराहारा अदृशा जनकात्मजाम् ॥ १४२
इत्युक्ते जाम्बवत्पत्र पुनस्तानाह सा शुभा ।
जानामि रामं सीतां च लक्षणं च कपीश्वरम् ॥ १४३
भुद्गीष्वमत्र मे दत्तमाहारं च कपीश्वराः ।
रामकार्यागतास्त्वत्र यूयं रामसमा मम ॥ १४४
इत्युक्त्वा चामृतं तेषां योगादृत्वा तपस्विनी ।
भोजयित्वा यथाकामं भूयस्तानाह तापसी ॥ १४५
सीतास्थानं तु जानाति सम्पातिर्नाम पक्षिराट् ।
आस्थितो वै वने सोऽपि महेन्द्रे पर्वते द्विजः ॥ १४६
मार्गेणानेन हरयस्तत्र यूयं गमिष्यथ ।
स वक्ति सीतां सम्पातिर्दूरदशी तु यः खगः ॥ १४७
तेनादिष्टं तु पथानं पुनरासाद्य गच्छथ ।
अवश्यं जानकीं सीतां द्रक्ष्यते पवनात्मजः ॥ १४८
तथैव मुक्ताः कपयः परां प्रीतिमुपागताः ।
हृष्टास्तेजनमापन्नास्तां प्रणम्य प्रतस्थिरे ॥ १४९
महेन्द्राद्रिं गता वीरा वानरास्तद्विदूक्षया ।
तत्र सम्पातिरासीनं दृष्टवन्नः कपीश्वराः ॥ १५०
तानुवाचाथ सम्पातिर्वानिरानागतान्द्विजः ।
केयूयमिति सम्प्राप्ताः कस्य वाङ्मूल माचिरम् ॥ १५१
इत्युक्ते वानरा कुचुर्यथावृत्तमनुक्रमात् ।
रामदूता वयं सर्वे सीतान्वेषणकर्मणि ॥ १५२
प्रेषिताः कपिराजेन सुग्रीवेण महात्मना ।
त्वां द्रष्टुमिह सम्प्राप्ताः सिद्धाया वचनादद्विज ॥ १५३
सीतास्थानं महाभाग त्वं नो वद महामते ।
इत्युक्तो वानरः श्येनो वीक्षांचके सुदक्षिणाम् ॥ १५४

उसकी बात सुनकर महामति जाम्बवानने उस सिद्धा तपस्विनीसे कहा—‘शोभने! शोभने! हम सुग्रीवके भूत्य हैं, श्रीरामचन्द्रजीकी भार्या सीताकी खोज करनेके लिये यहाँ आये हैं। हम किस दिशाको जायें, इसका ज्ञान हमें नहीं रह गया है। सीताजीका पता न पानेके कारण अभीतक हमने कुछ खोजन भी नहीं किया है’ ॥ १४१—१४२ ॥

जाम्बवानके यों कहनेपर उस कल्पाणी तपस्विनीने पुनः उन बानरोंसे कहा—‘मैं श्रीराम, लक्षण, सीता और कपिराज सुग्रीवको भी जानती हूँ। बानरेन्द्रगण! आप लोग यहाँ मेरा दिया हुआ आहार ग्रहण करें। आप लोग श्रीरामचन्द्रजीके कार्यसे यहाँ आये हैं, अतः हमारे लिये श्रीरामचन्द्रजीके समान ही आदरणीय हैं।’ यों कहकर उस तपस्विनीने अपने योगबलसे उन बानरोंको अमृतमय मधुर पदार्थ अर्पित किया तथा यथेष्ट भोजन कराकर पुनः उनसे कहा—‘सीताका स्थान पक्षिराज सम्पातिको ज्ञात है। वे इसी बनयें महेन्द्रपर्वतपर रहते हैं। बानरगण! आप लोग इसी मार्गसे वहाँ पहुँच जायेंगे। सम्पाति बहुत दूरतक देखनेवाले हैं, अतः वे सीताका पता बता देंगे। उनके बताये हुए मार्गसे आप लोग पुनः आगे जाइयेगा। जनकनन्दिनी सीताको ये पवनकुमार हनुमानजी अवश्य देख लेंगे’ ॥ १४३—१४८ ॥

उसके इस प्रकार कहनेपर बानरगण बहुत ही प्रसन्न हुए; उन्हें बड़ा उत्साह मिला। फिर वे उस तपस्विनीको प्रणाम करके वहाँसे प्रस्थित हुए। सम्पातिको देखनेकी इच्छासे वे वीर कपीश्वर महेन्द्रपर्वतपर गये तथा वहाँ बैठे हुए सम्पातिको उन्होंने देखा। तब पक्षिराज सम्पातिने वहाँ आये हुए बानरोंसे कहा—‘आप लोग कौन हैं? किसके दूर हैं? कहाँसे आये हैं? शोभ बतायें’ ॥ १४९—१५२ ॥

सम्पातिके यों पूछनेपर बानरोंने साए समाचार यथार्थरूपसे क्रमशः बताना आरम्भ किया—‘पक्षिराज! हम सब श्रीरामचन्द्रजीके दूत हैं। कपिराज महात्मा सुग्रीवने हमें सीताजीकी खोजके लिये भेजा है। पक्षिवर! एक सिद्धाके कहनेसे हम आपका दर्शन करनेके लिये यहाँ आये हैं। महामति! महाभाग! सीताके स्थानका पता आप हमें बता दें।’ बानरोंके इस तरह अनुरोध करनेपर गृध्र सम्पातिने अपनी दृष्टि दक्षिण दिशाकी ओर दीड़ायी और पतिव्रता

सीतां दृष्टा स लङ्घायामशोकाख्ये महावने।
स्थितेति कथितं तेन जटायुस्तु मृतस्तव ॥ १५५

भ्रातेति चोचुः स स्नात्वा दत्त्वा तस्योदकाञ्जलिम्।
योगमास्थाय स्वं देहं विसर्जनं महामतिः ॥ १५६

ततस्तं वानरा दग्ध्वा दत्त्वा तस्योदकाञ्जलिम्।
गत्वा महेन्द्रशृङ्गं ते तपारुद्धा क्षणं स्थिताः ॥ १५७

सागरं वीक्ष्य ते सर्वे परम्परमथाकृवन्।
रावणोनैव भार्या सा नीता रामस्य निश्चितम् ॥ १५८

सम्पातिवचनादद्य संज्ञातं सकलं हि तत्।
वानराणां तु कश्चात्र उत्तीर्य लक्षणोदधिम् ॥ १५९

लङ्घां प्रविश्य दृष्टा तां रामपत्नीं यशस्विनीम्।
पुनश्चोदधितरणे शक्तिं छूत हि शोभनाः ॥ १६०

इत्युक्तो जाम्बवान् प्राह सर्वे शक्तास्तु वानराः।
सागरोत्तरणे किंतु कार्यपन्नस्य सम्भवेत् ॥ १६१

तत्र दक्षोऽयमेवात्र हनुमानिति मे मतिः।
कालक्षेपो न कर्तव्यो मासार्थमधिकं गतम् ॥ १६२

यद्यदृष्टा तु गच्छामो वैदेहीं वानरघ्नाः।
कर्णनासादि नः स्वाङ्गं निकृन्तति कपीश्वरः ॥ १६३

तस्मात् प्रार्थ्यः स चास्माभिर्वयुपुत्रस्तु मे मतिः।
इत्युक्तास्ते तथेत्यूचुर्वानरा वृद्धवानरम् ॥ १६४

ततस्ते प्रार्थ्यामासुर्वानराः पवनात्मजम्।
हनुमन्तं महाप्राज्ञं दक्षं कार्येषु चाधिकम् ॥ १६५

गच्छ त्वं रामभूत्यस्त्वं रावणस्य भयाय च।
रक्षस्व वानरकुलपस्माकमङ्गनीसुत ।
इत्युक्तस्तांस्तथेत्याह वानरान् पवनात्मजः ॥ १६६

सीताको देखकर बताया—‘सीताजी लङ्घामें अशोकवनके भीतर ठहरी हुई हैं।’ तब वानरोंने कहा—‘आपके प्राता जटायुने सीताजीकी रक्षाके लिये ही प्राणत्याग किया है।’ यह सुनकर महामति सम्पातिने स्नान करके जटायुको जलाञ्जलि दी और योगधारणाका आश्रय ले अपने शरीरको त्याग दिया ॥ १५२—१५६ ॥

तदनन्तर वानरोंने सम्पातिके शवका दाह-संस्कार किया और उन्हें जलाञ्जलि दे, महेन्द्रपर्वतपर जाकर तथा उसके शिखरपर आरुहि हो, क्षणभर खड़े रहे। फिर समुद्रकी ओर देख वे सभी परस्पर कहने लगे—‘एवंने ही भगवान् श्रीरामकी भार्या सीताका अपहरण किया है, यह बात निश्चित हो गयी। सम्पातिके बचनसे आज सब बातें ठीक-ठीक ज्ञात हो गयीं। शोभाशाली वानरो! अब आप सब लोग सोचकर बतायें कि यहाँ वानरोंमें कौन ऐसा बीर है, जो इस क्षार समुद्रके पार जा लङ्घामें भुसे और परम यशस्विनी श्रीरामपत्नी सीताजीका दर्शन करके पुनः समुद्रके पार लौट आनेमें समर्थ हो सके’ ॥ १५७—१६० ॥

वानरोंकी यह बात सुनकर जाम्बवान्जीने कहा—‘समुद्रके पार करनेमें तो सभी वानर समर्थ हैं, परंतु यह कार्य एक अन्यतम वानरसे ही सिद्ध होगा। मेरे विचारमें तो यह आता है कि इस कार्यको सिद्ध करनेमें केवल हनुमानजी ही समर्थ हैं। अब समय नहीं खोना चाहिये। हमारे लौटनेकी जो नियत अवधि थी। उससे पंद्रह दिन अधिक बीत गये हैं। वानरेन्द्रगण! यदि हमलोग सीताको देखे बिना ही लौट जायेंगे तो कपिगाज सुग्रीव हमारी नाक और कान काट लेंगे। इसलिये मेरी राय यह है कि हम सब लोग इस कार्यके लिये वायुनन्दन हनुमानजीसे ही प्रार्थना करें’ ॥ १६१—१६३ ॥

यह सुनकर उन वानरोंने बृह जाम्बवान्जीसे कहा, ‘अच्छा, ऐसा ही हो।’ तत्पश्चात् वे सभी वानर कार्यसाधनमें विशेष कुशल महाबुद्धिमान् पवननन्दन हनुमानजीसे प्रार्थना करने लगे—‘अङ्गनीनन्दन! आप श्रीरामचन्द्रजीके प्रिय सेवक हैं। आप ही रावणको भय देनेके लिये लङ्घामें जायें और हमारे वानरबृन्दकी रक्षा करें।’ वानरोंके यो कहनेपर पवनकुमार हनुमानजीने ‘तथास्तु’ कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार की। एक तो श्रीरामचन्द्रजीकी आङ्ग थी,

रामप्रयुक्तश्च पुनः स्वभर्तुणा
पुनर्महेन्द्रे कपिभिश्च नोदितः।
गन्तुं प्रचके मतिमञ्जनीसुतः
समुद्रमुत्तीर्य निशाचरालयम्॥ १६७

इति श्रीनरसिंहपुराणे रामप्रादुर्भवे पञ्चाशतमोऽध्यायः ॥ ५० ॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'श्रीरामावतारकी कथाविषयक' पञ्चाशतोऽध्याय पूरा हुआ ॥ ५० ॥

इक्यावनबाँ अध्याय

हनुमानजीका समुद्र पार करके लङ्घनमें जाना, सीतासे भेंट और
लङ्घनका दहन करके श्रीरामको समाचार देना

भार्कण्डेश उकाव

स तु रावणनीतायाः सीतायाः परिमार्गणम्।
इयेष पदमन्वेषु चारणाचनिते पथिः ॥ १

अङ्गालिं प्राइमुखं कृत्वा सगणायात्मयोनये।
मनसाऽऽवन्द्य रामं च लक्ष्मणं च महारथम्॥ २

सागरं सरितश्चैव प्रणम्य शिरसा कपिः।
ज्ञातीश्चैव परिष्वन्य कृत्वा चैव प्रदक्षिणाम्॥ ३

अरिष्टं गच्छ पन्थानं पुण्यवायुनिषेवितम्।
पुनरागमनायेति वानररभिपूजितः॥ ४

अङ्गसा स्वं तथा वीर्यमाविवेशाश्च वीर्यवान्।
मार्गमालोकयन् दूरादूर्ध्वं प्रणिहितेक्षणः॥ ५

सम्पूर्णमिव चात्मानं भावयित्वा महाबलः।
उत्पयात गिरे: श्रुङ्गात्रिष्ठीड्य गिरिमध्वरम्॥ ६

पितुर्मर्गेण यातस्य वायुपुत्रस्य धीमतः।
रामकार्यपरस्यास्य सागरेण प्रचोदितः॥ ७

विश्रामाश्च समुत्तस्थौ मैनाको लवणोदधेः।
तं निरीक्ष्य निपीछायाथ रथात्सम्भाष्य सादरम्॥ ८

फिर अपने स्वामी सुग्रीवने भी आदेश दिया था, इसके बाद महेन्द्रपर्वतपर उन वानरोंने भी उन्हें प्रेरित किया, अतः अङ्गनीकुमार हनुमानजीने समुद्र लाँघकर निशाचरपुरी लङ्घनमें जानेका निश्चय कर लिया ॥ १६४—१६७ ॥

भार्कण्डेशजी बोले—हनुमानजीने रावणद्वारा हरी गयी सीताकी खोज करने तथा उनके स्थानका पता लगानेके लिये चारणोंके मार्ग (आकाश)-से जानेकी इच्छा की। पूर्वाभिमुख हो, हाथ जोड़कर उन्होंने देवगणोंसहित आत्मयोनि ब्रह्माजीको मन-ही-मन प्रणाम किया तथा श्रीराम और महारथी लक्ष्मणको भी मनसे ही प्रणाम करके सागर तथा सरिताओंको मस्तक नवाया। फिर अपने वानर-बन्धुओंको गले लगाकर उन सबकी प्रदक्षिणा की। तब अन्य सब वानरोंने यह आशीर्वाद दिया—‘बीर! तुम (सकुशल) लौट आनेके लिये पवित्र वायुसे सेवित मार्गपर बिना विज्ञ-बाधाके जाओ।’ यों कहकर उन्होंने हनुमानजीका सम्मान किया। फिर पराक्रमी पवनकुमार अपनी सहज शक्तिको प्राप्त हुए—उनमें वायुके सदृश बलका आवेश हो गया। दूरतकके मार्गका अवलोकन करते हुए उन्होंने ऊपर दृष्टि ढाली। अपने-आपमें पद्मविष्व ऐक्षर्यकी पूर्णताका-सा अनुभव करते हुए वे महाबली हनुमान् महेन्द्र पर्वतको पैरोंसे दबाकर उसके शिखरसे आकाशकी ओर उछले ॥ ५—६ ॥

बुद्धिमान् वायुपुत्र हनुमानजी श्रीरामचन्द्रजीके कार्य-साधनमें तत्पर हो जब अपने पिता वायुके मार्गसे चले जा रहे थे, उस समय उनको थोड़ी दैरतक विश्राम देनेके लिये, समुद्रद्वारा प्रेरित हो, मैनाक पर्वत पानीसे बाहर ऊपरकी ओर उठ गया। उसे देख उन्होंने वहाँ थोड़ा-सा रुककर उससे आदरपूर्वक बातचीत की और फिर उसे अपने चेगसे दबाकर उछलते हुए वे दूर चले गये।

उत्पतंश्च वने वीरः सिंहिकास्यं महाकपिः ।
आस्यप्रान्तं प्रविश्याथ वेगेनान्तर्विनिस्सृतः ॥ ९
निस्मृत्य गतवाऽशीघ्रं वायुपुत्रः प्रतापवान् ।
लङ्घयित्वा तु तं देशं सागरं पवनात्मजः ॥ १०
त्रिकूटशिखरे रम्ये बृक्षाग्रे निपपात ह ।
तस्मिन् स पर्वतश्रेष्ठे दिनं नीत्वा दिनक्षये ॥ ११
संध्यामुपास्य हनुमान् रात्रौ लङ्घां शनैर्निशि ।
लङ्घाभिधां विनिर्जित्य देवतां प्रविवेश ह ॥ १२
लङ्घामनेकरलाङ्घां बह्वाक्षर्यसमन्विताम् ।
राक्षसेषु प्रसुमेषु नीतिमान् पवनात्मजः ॥ १३
रावणस्य ततो वेशम प्रविवेशाथ ऋद्धिमत् ।
शयानं रावणं दृष्ट्वा तत्पे महति वानरः ॥ १४
नासापुटैर्घ्योरकारैर्विशद्विवायुमोचकैः ।
तथैव दशभिर्वक्त्रैर्दृष्टोपेतैस्तु संयुतम् ॥ १५
स्त्रीसहस्रैस्तु दृष्ट्वा तं नानाभरणभूषितम् ।
तस्मिन् सीतामदृष्ट्वा तु रावणस्य गृहे शुभे ॥ १६
तथा शयानं स्वगृहे राक्षसानां च नायकम् ।
दुःखितो वायुपुत्रस्तु सम्पातेर्वचनं स्मरन् ॥ १७
अशोकवनिकां प्राप्तो नानापुष्पसमन्विताम् ।
जुष्टां मलयजातेन चन्दनेन सुगच्छना ॥ १८
प्रविश्य शिंशपावृक्षमाभितां जनकात्मजाम् ।
रामपल्लीं समद्राक्षीद् राक्षसीभिः सुरक्षिताम् ॥ १९
अशोकवृक्षमारुह्यं पुष्पितं मधुपल्लवम् ।
आसांचक्रे हरिस्तत्र सेयं सीतेति संस्मरन् ॥ २०
सीतां निरीक्ष्य बृक्षाग्रे यावदास्तेऽनिलात्मजः ।
स्त्रीभिः परिवृतस्तत्र रावणस्तावदागतः ॥ २१
आगत्य सीतां प्राहाथ प्रिये मां भज कामुकम् ।
भूषिता भव वैदेहि त्यज रामगतं मनः ॥ २२
इत्येवं भाषमाणं तमन्तर्धाय तृणं ततः ।
प्राह वाक्यं शनैः सीता कम्पमानाथ रावणम् ॥ २३
गच्छ रावणं दुष्टं त्वं परदारपरायण ।
अच्चिरामवाणास्ते पिबन्तु रुथिरं रणे ॥ २४

मार्गमें सिंहिका नामकी राक्षसी थी । उसने जलमें मुँह फैला रखा था । महाकपि हनुमान्‌जी उसके मुँहमें जा पड़े । मुँहमें पड़ते ही वे वेगपूर्वक उसके भीतर धूसकर पुनः बाहर निकल आये । इस प्रकार सिंहिकाके मुखसे निकलकर प्रतापी पवनकुमार उस समुद्र-प्रदेशको लाँघते हुए त्रिकूट पर्वतके सुरस्य शिखरपर एक महान् बृक्षके ऊपर जा उतरे । उसी उत्तम पर्वतपर दिनविताकर हनुमान्‌जीने वहीं सायंकालकी संध्योपासना की । फिर रातमें धीर-धीर वे लङ्घाकी ओर चले । मार्गमें मिली हुई 'लङ्घा' नामकी नगर-देवताको जीतकर उन्होंने नाना रबोंसे सम्प्रभु और अनेक प्रकारके आक्षयोंसे युक्त लङ्घापुरीमें प्रवेश किया ॥ ७—१२ ॥

तदनन्तर जब सब राक्षस गहरी नीदमें सो गये, तब नीतिज्ञ हनुमान्‌जीने रावणके समुद्रिशाली भवनमें प्रवेश किया । वहाँ रावण एक बहुत बड़े पर्लगपर सो रहा था । हनुमान्‌जीने देखा—साँस छोड़नेवाले बीस भयंकर नासिकाछिद्रोंसे युक्त उसके दसों मुखोंमें बड़ी भयानक दाढ़े थीं । नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित रावण हजारों स्त्रियोंके साथ वहाँ सोया था । किंतु रावणके उस सुन्दर भवनमें सीताजी कहीं नहीं दिखायी दी । वह राक्षसराज अपने घरके भीतर गढ़ निद्रामें सो रहा था । सीताजीका दर्शन न होनेसे वायुनन्दन हनुमान्‌जी बहुत दुःखी हुए । फिर सम्पातिके कथनको याद करके वे अशोकवाटिकामें आये, जो विविध प्रकारके पुष्पोंसे सुशोभित और अत्यन्त सुगच्छित मलयज-चन्दनसे ल्यास थी ॥ १३—१८ ॥

वाटिकामें प्रवेश करके हनुमान्‌जीने अशोकवृक्षके नीचे बैठी हुई जनकनन्दिनी श्रीरामपली सीताको देखा, जो राक्षसियोंसे सुरक्षित थीं । वह अशोकवृक्ष सुन्दर मृदुल पल्लवोंसे विलसित और पुष्पोंसे सुशोभित था । कपिवर हनुमान्‌जी उस वृक्षपर चढ़ गये और 'ये ही सीता हैं'—यह सोचते हुए वहीं बैठ गये । सीताजीका दर्शन करके वे पवनकुमार ज्यों ही वृक्षके शिखरपर बैठे, त्यों ही रावण बहुत-सी स्त्रियोंसे घिरा हुआ वहाँ आया । आकर उसने सीतासे कहा—'प्रिये ! मैं कामपीड़ित हूँ, मुझे स्वीकार करो । वैदेहि ! अब शृङ्खार धारण करो और श्रीरामकी ओरसे मन हटा लो ।' इस प्रकार कहते हुए रावणसे भयवश कांपती हुई सीताजी बीचमें तिनकेकी ओट रखकर धीर-धीर बोली—'परस्त्रीसेवी दुष्ट रावण ! तू चला जा । मैं शाप देती हूँ—भगवान् श्रीरामके बाण शीघ्र ही रणभूमिमें तुम्हारा रक्त पीयें' ॥ १९—२४ ॥

तथेत्युक्तो भर्त्सितश्च राक्षसीराह राक्षसः ।
द्विमासाभ्यन्तरे चैनां बशीकुरुत मानुषीम् ॥ २५
यदि नेच्छति मां सीता ततः खादत मानुषीम् ।
इत्युक्त्वा गतवान् दुष्टो रावणः स्वं निकेतनम् ॥ २६
ततो भयेन तां प्राहू राक्षस्यो जनकात्मजाम् ।
रावणं भज कल्पाणि सधनं सुखिनो भव ॥ २७
इत्युक्ता प्राह ताः सीता राधवोऽलघुविक्रमः ।
निहत्य रावणं युद्धे सगणं मां नयिष्यति ॥ २८
नाहमन्यस्य भार्या स्वामृते रामं रघृतमम् ।
स ह्यागत्य दशग्रीवं हत्वा मां पालयिष्यति ॥ २९
इत्याकर्ण्य वचस्तस्या राक्षस्यो ददृशुर्भयम् ।
हन्तां हन्तामेषा भक्ष्यतां भक्ष्यतामियम् ॥ ३०
ततस्तास्त्रिजटा प्राह स्वप्ने दृष्टमनिन्दिता ।
शृणुष्वं दुष्टराक्षस्यो रावणस्य विनाशनः ॥ ३१
रक्षोभिः सह सर्वस्तु रावणस्य मृतिप्रदः ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा रामस्य विजयप्रदः ॥ ३२
स्वप्नः शुभो मया दृष्टः सीतायाश्च पतिप्रदः ।
त्रिजटावाक्यमाकर्ण्य सीतापार्श्वं विसुज्य ताः ॥ ३३
राक्षस्यस्ता ययुः सर्वाः सीतामाहाङ्कानीसुतः ।
कीर्तयन् रामबृत्तान्तं सकलं पवनात्मजः ॥ ३४
तस्यां विश्वासमानीय दत्त्वा रामाङ्गुलीयकम् ।
सम्भाष्य लक्षणं सर्वं रामलक्ष्मणयोस्ततः ॥ ३५
महत्या सेनया युक्तः सुग्रीवः कपिनायकः ।
तेन सार्थीमिहागत्य रामस्तव पतिः प्रभुः ॥ ३६
लक्ष्मणश्च महावीरो देवरस्ते शुभानने ।
रावणं सगणं हत्वा त्वामितोऽदाय गच्छति ॥ ३७
इत्युक्ते सा तु विश्वस्ता वायुपुत्रपथाङ्गवीत् ।
कथमत्रागतो वीर त्वमुत्तीर्य महोदधिम् ॥ ३८
इत्याकर्ण्य वचस्तस्याः पुनस्तामाह वानरः ।
गोप्यदवन्मयोन्नीर्णः समुद्रोऽयं वरानने ॥ ३९

सीताजीका यह उत्तर और फटकार पाकर राक्षसराज रावणने राक्षसियोंसे कहा—‘तुम लोग इस मानव-कन्याको दो महीनेके भीतर समझाकर मेरे बशीभूत कर दो । यदि इतने दिनोंतक इसका मन मेरी ओर न छुके तो इस मानुषीको तुम खा डालना ।’ यों कहकर दृष्ट रावण अपने महलमें चला गया । तब रावणके डरसे डरी हुई राक्षसियोंने जनकनन्दिनी सीतासे कहा—‘कल्पयि ! रावण बहुत धनी है, इसे स्वीकार कर लो और सुखसे रहो ।’ राक्षसियोंके यों कहनेपर सीताने उनसे कहा—‘महापराक्रमी भगवान् श्रीराम युद्धमें रावणको उसके सेवकगणोंसहित मारकर मुझे ले जायेंगे । मैं रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीके सिथा दूसोंकी भार्या नहीं हो सकती । वे ही आकर रावणको मारकर मेरी रक्षा करेंगे’ ॥ २५—२९ ॥

सीताकी यह बात सुनकर राक्षसियोंने उन्हें भय दिखाते हुए कहा—‘अरी ! इसे मार डालो, मार डालो; खा जाओ, खा जाओ ।’ उन राक्षसियोंमें एकका नाम त्रिजटा था । वह उत्तम विचार रखनेवाली—सार्थी स्त्री थी । उसने उन सभी राक्षसियोंको स्वप्रमें देखी हुई बात बतायी । वह बोली—‘अरी दुष्ट राक्षसियो । सुनो; मैंने एक शुभ स्वप्न देखा है, जो रावणके लिये विनाशकारी है, समस्त राक्षसोंके साथ रावणको मौतके मूँहमें डालनेवाला है, भ्राता लक्ष्मणके साथ श्रीरामचन्द्रजीकी विजयका सूचक है और सीताको पतिसे मिलानेवाला है ।’ त्रिजटाकी बात सुनकर वे सभी राक्षसियों सीताके पाससे हटकर दूर चली गयीं । तब अङ्गनीनन्दन हनुमान्‌जीने अपनेको सीताके सामने प्रकट किया और ‘श्रीराम-नाम’ का कीर्तन करते हुए उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके सम्पूर्ण वृत्तान्तका उनके समक्ष वर्णन किया । इस प्रकार सीताके मनमें विश्वास उत्पन्न करके उन्हें श्रीरामचन्द्रजीकी अङ्गूठी दी । फिर उनसे श्रीराम और लक्ष्मणके शरीरके लक्षण बताये और कहा—‘सुमुखि ! बानरोंके राजा सुग्रीव बहुत बड़ी सेनाके स्वामी हैं । उन्हेंके साथ आपके पतिदेव भगवान् श्रीरामचन्द्रजी तथा आपके देवर महावीर लक्ष्मणजी यहाँ पधारेंगे और रावणको सेनासहित मारकर आपको यहाँसे ले जायेंगे’ ॥ ३०—३७ ॥

हनुमान्‌जीके यह कहनेपर सीताजीका उनपर विश्वास हो गया । वे बोली—‘वीर ! तुम किस तरह महासागरको पार करके यहाँ चले आये ?’ उनका यह वचन सुनकर हनुमान्‌जीने पुनः उनसे कहा—‘वरानने ! मैं इस समुद्रको उसी प्रकार लाँघ गया, जैसे कोई गौके खुरसे बने हुए

जपतो रामरामेति सागरो गोष्यदायते ।
दुःखमग्नासि वैदेहि स्थिरा भव शुभानने ॥ ४०

क्षिप्रं पश्यसि रामं त्वं सत्यमेतदद्वचीमि ते ।
इत्याश्वास्य सर्तीं सीतां दुःखितां जनकात्मजाम् ॥ ४१

ततशूडामणिं प्राप्य श्रुत्वा काकपराभवम् ।
नत्वा तां प्रस्थितो बीरो गन्तुं कृतमतिः कपिः ॥ ४२

ततो विमृश्य तद्दद्वक्त्वा क्रीडावनमशेषतः ।
तोरणस्थो ननादोच्चै रामो जयति वीर्यवान् ॥ ४३

अनेकान् राक्षसान् हत्वा सेनाः सेनापतीश्च सः ।
तदा त्वक्षकुमारं तु हत्वा रावणसैनिकम् ॥ ४४

साश्च ससारथिं हत्वा इन्द्रजितं गृहीतवान् ।
रावणस्य पुरः स्थित्वा रामं संकीर्त्य लक्ष्मणम् ॥ ४५

सुग्रीवं च महावीर्यं दग्ध्वा लङ्घामशेषतः ।
निर्भत्त्यरावणं दुष्टं पुनः सम्भाष्य जानकीम् ॥ ४६

भूयः सागरमुत्तीर्य ज्ञातीनासाद्य वीर्यवान् ।
सीतादर्शनपावेद्य हनूमांश्चैव पूजितः ॥ ४७

वानरैः सार्थमागत्य हनुमान्मधुवनं महत् ।
निहत्य रक्षपालांस्तु पाययित्वा च तन्मधु ॥ ४८

सर्वे दधिमुखं पात्य हर्षितो हरिभिः सह ।
खमुत्पत्य च सम्प्राप्य रामलक्ष्मणपादयोः ॥ ४९

नत्वा तु हनुमांस्तत्र सुग्रीवं च विशेषतः ।
आदितः सर्वमावेद्य समुद्रतरणादिकम् ॥ ५०

कथयामास रामाय सीता दृष्टा मयेति चै ।
अशोकवनिकामध्ये सीता देवीं सुदुःखिता ॥ ५१

गड़े को लाँघ जाय। जो 'राम-राम' का जप करता है, उसके लिये समुद्र मींके खुरके चिह्नके समान हो जाता है। शुभानने थैदेहि ! आप दुःखमग्ना दिखायी देते हैं, अब थैर्य धारण कीजिये। मैं आपसे सत्य-सत्य कह रहा हूँ, आप यहुत शीघ्र श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करेंगी।' इस प्रकार दुःखमें इबी हुई पतिन्नता जनकनन्दिनी सीताको आश्वासन दे, उनसे पहचानके लिये चूडामणि पाकर और श्रीरामके प्रभावसे काकरूपी जयन्तके पराभवकी कथा सुनकर, वहाँसे चल देनेका विचार करके हनुमानजीने सीताको नमस्कार करनेके पश्चात् प्रस्थान किया ॥ ३८—४२ ॥

तत्पश्चात् कुछ सोचकर पराक्रमी हनुमानजीने शुक्रके उस सम्पूर्ण क्रीडावन (अशोकवनिका)-को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला और वनके द्वारपर स्थित हो, उच्चस्वरसे सिंहनाद करते हुए बोले—'भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो!' फिर तो युद्धके लिये सामने आये हुए अनेक राक्षसोंको मारकर सेना और सेनापतियोंका संहार किया। इसके बाद शुक्रके सेनापति अक्षकुमारको अश्व तथा सारथिसहित यमलोक पहुँचा दिया। इसपर रावणमुत्र इन्द्रजितने वरके प्रभावसे उन्हें बंदी बना लिया। इसके बाद वे रावणके सम्मुख उपस्थित किये गये। वहाँसे छूटकर उन्होंने श्रीराम, लक्ष्मण और महाबली सुग्रीवके यशक्रं बीर्तन करते हुए सम्पूर्ण लङ्घामुरीको जलाकर भस्म कर दिया। तदनन्तर दुष्टात्मा रावणको ढाँचताकर पुनः सीताजीसे चार्तालाप किया। फिर पराक्रमी हनुमानजी समुद्रके इस पर आकर अपने बानर बन्धुओंसे मिले और सीताजीके दर्शनका समाचार सुनाकर सबसे सम्मानित हुए ॥ ४३—४७ ॥

तत्पश्चात् हनुमानजी सभी बानरोंके साथ मधुवनमें आये। उसके रखवालोंको मारकर उन्होंने वहाँ सब साधियोंको मधु-पान कराया और स्वयं भी पीया। इस कार्यमें बाधा देनेवाले दधिमुख नामके बानरको सबने धरतीपर दे मारा। इसके बाद हनुमानजी सब बानरोंके साथ आनन्दित हो, आकाशमें उछलते हुए श्रीराम और लक्ष्मणके निकट आ पहुँचे। वहाँ उन दोनोंके चरणोंमें प्रणाम कर, विशेषतः सुग्रीवको मस्तक हुकाकर उन्होंने समुद्र लौंघनेसे लेकर सारा समाचार आद्योपान्त सुनाया और यह भी कहा कि 'मैंने अशोक-वाटिकाके भीतर सीतादेवीका दर्शन किया।

राक्षसीभिः परिवृता त्वां स्मरनी च सर्वदा ।
अश्रुपूर्णमुखी दीना तव पत्नी बरानना ॥ ५२

शीलवृत्तसमायुक्ता तत्रापि जनकात्मजा ।
सर्वग्रान्वेषमाणेन मया दृष्टा पतिश्वता ॥ ५३

मया सम्भाषिता सीता विश्वस्ता रघुनन्दन ।
अलङ्घारश्च सुमणिस्तया ते प्रेषितः प्रभो ॥ ५४

इत्युक्त्वा दत्तवांस्तस्मै चूडामणिमनुजमम् ।
इदं च वचनं तु ध्यं पत्न्या सम्प्रेषितं शृणु ॥ ५५

चित्रकूटे मदङ्गे तु सुप्ते त्वयि महाव्रत ।
बायसापिभवं राजंसत्तिकल स्मर्तुमर्हसि ॥ ५६

अल्पापराधे राजेन्द्र त्वया अलिभुजि प्रभो ।
यत्कृतं तत्र कर्तुं च शक्यं देवासुररपि ॥ ५७

ब्रह्मास्त्रं तु तदोत्सृष्टं रावणं किं न जेष्यसि ।
इत्येवमादि बहुशः प्रोक्त्वा सीता रुरोद ह ।
एवं तु दुःखिता सीता तां मोक्षं यत्नमाचर ॥ ५८

इत्येवमुक्ते	पवनात्मजेन
	सीतावचस्तच्छुभभूषणं च ।
श्रुत्वा च दृष्टा च रुरोद रामः	
कपिं समालिङ्ग्य श्रानेः प्रतस्थे ॥ ५९	

इति श्रीनरसिंहपुराणे रायप्रातुर्भवे एकपञ्चाशतयोऽध्यायः ॥ ५१ ॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'श्रीरामावतारकी कथाविषयक' इत्यावतर्लोकाध्याय पूरा हुआ ॥ ५१ ॥

उन्हें राक्षसियाँ थेरे हुए थीं और वे बहुत दुःखी होकर निरन्तर आपका ही स्मरण कर रही थीं। उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी और वे बड़ी दीन अवस्थामें थीं। रघुनन्दन! आपकी धर्मपत्नी सुमुखी सीता वहाँ भी शील और सदाचारसे सम्पन्न हैं। मैंने सब जगह हूँदूते हुए पतिश्वता जानकीको अशोकवनमें पाया, उनसे बारातिलाप किया और उन्होंने भी मेरा विश्वास किया। प्रभो! उन्होंने आपको देनेके लिये अपना श्रेष्ठ मणिमय अलङ्घार भेजा है' ॥ ४८—५४ ॥

यह कहकर हनुमान्‌जीने भगवान् श्रीरामको वह उत्तम चूडामणि दे दी और कहा—'प्रभो! आपकी धर्मपत्नी श्रीसीताजीने यह संदेश भी कहला भेजा है, सुनिये—'महान् ब्रतका पालन करनेवाले महाराज! चित्रकूट पर्वतपर जब आप मेरी गोदमें [सिर रखकर] सो गये थे, उस समय काकबेषधारी जयन्तका जो आपने मान-मर्दन किया था, उसे स्मरण करें। राजेन्द्र! प्रभो! उस कोएके थोड़े-से ही अपराधपर उसे दण्ड देनेके लिये आपने जो अद्भुत कर्म किया था, उसे देवता और असुर भी नहीं कर सकते। उस समय तो आपने ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया था? क्या इस समय इस रावणको पराजित नहीं करेंगे?' इस प्रकार बहुत-सी बातें कहकर सीताजी रोने लगी थीं। यह है दुःखिनी सीताका वृत्तान्त! आप उन्हें उस दुःखसे मुक्त करनेका प्रयत्न कीजिये।' पवनकुमार हनुमान्‌जीके इस प्रकार कहनेपर सीताजीका वह संदेश सुन और उनके उस सुन्दर आभूषणको देख, भगवान् श्रीराम उन कपिवर हनुमान्‌जीको गलेसे लगाकर रोने लगे और धीरे-धीरे वहाँसे प्रसिद्धत हुए ॥ ५५—५९ ॥

बावनवाँ अध्याय

श्रीराम आदिका समुद्रतटपर जाना; विभीषणकी शरणागति और उन्हें लङ्घाके राज्यकी प्राप्ति; समुद्रका श्रीरामको मार्ग देना; पुलङ्घारा समुद्र पार करके बानरसेनासहित श्रीरामका सुखेल पर्वतपर पङ्गाव डालना; अङ्गदका प्रभाव; लक्ष्मणकी प्रेरणासे श्रीरामका अङ्गदकी प्रशंसा करना; अङ्गदके चीरोचित उद्धार और दौत्यकर्म; बानर चीरोंद्वारा राक्षसोंका संहार; रावणका श्रीरामके द्वारा बुद्धमें पराजित होना, कुम्भकर्णका वध; अतिकाय आदि राक्षस चीरोंका मारा जाना; मेघनादका पराक्रम और वध; रावणकी शक्तिसे मूर्च्छित लक्ष्मणका हनुमानजीके द्वारा पुनर्जीवन; राम-रावण-युद्ध; रावण-वध; देवताओंद्वारा श्रीरामकी स्तुति; सीताके साथ अयोध्यामें आनेपर श्रीरामका राज्याभिषेक और अन्तमें पुरवासियोंसहित उनका परमधामगमन

मर्कण्डेय उचाच

इति श्रुत्वा प्रियावार्ता वायुपुत्रेण कीर्तिताम्।		
रामो गत्वा समुद्रान्तं बानरैः सह विस्तृतैः ॥ १		
सागरस्य तटे रथ्ये तालीवनविराजिते।		
सुग्रीवो जाम्बवांश्चाथ बानररतिहर्षितैः ॥ २		
संख्यातीतैर्वृतः श्रीमान् नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः।		
अनुजेन च धीरेण चीक्ष्य तस्थौ सरित्पतिम्॥ ३		
रावणेनाथ लङ्घायां स सूक्तौ भर्त्सत्तोऽनुजः।		
विभीषणो महाबुद्धिः शास्त्रज्ञैर्मन्त्रिभिः सह ॥ ४		
नरसिंहे महादेवे श्रीधरे भक्तवत्सले।		
एवं रामेऽचलां भक्तिमागत्य विनयाजदा॥ ५		
कृताङ्गलिरुवाचेदं राममविलष्टकारिणम्।		
राम राम महाबाहो देवदेव जनार्दन॥ ६		
विभीषणोऽस्मि मां रक्ष अहं ते शरणं गतः।		
इत्युक्त्वा निपपाताथ प्राङ्गली रामपादयोः ॥ ७		
विदितार्थोऽथ रामस्तु तमुत्थाप्य महामतिम्।		
समुद्रतोयैस्तं चीरमधिष्ठित्य विभीषणम्॥ ८		
लङ्घाराज्यं तर्वैवेति प्रोक्तः सम्भाष्य तस्थिवान्।		
ततो विभीषणोनोक्तं त्वं विष्णुर्भुवनेश्वरः ॥ ९		
अविद्यर्ददातु मार्गं ते देव तं याचयामहे।		
इत्युक्तो बानरैः सार्थं शिश्ये तत्र स राधवः ॥ १०		

मार्कण्डेयजी बोले—वायुनन्दन हनुमानजीके द्वारा कथित प्रिया जानकीका वृत्तान्त सुन लेनेके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी विशाल बानरसेनाके साथ समुद्रके निकट गये। साथ ही सुग्रीव और जाम्बवान् भी तालवनसे सुशोभित सागरके सुरम्य तटपर जा चहुँचे। अत्यन्त हृष्ट और उत्साहसे पूर्ण उन असंख्य बानरोंसे धिरे हुए श्रीमान् भगवान् राम नक्षत्रोंसे धिरे हुए चन्द्रमाकी भौति शोभा पा रहे थे। अपने धीर-बीर अनुज लक्ष्मणजीके साथ समुद्रकी विशालताका अवलोकन करते हुए वे उसके तटपर ठहर गये। इधर लङ्घामें रावणने [राक्षसकुलके हितके लिये] अच्छी बात कहनेपर भी अपने छोटे भाई महाबुद्धिमान् विभीषणको बहुत फटकारा। तब वे अपने शास्त्रज्ञ मन्त्रियोंके साथ महान् देवता भक्तवत्सल लक्ष्मीपतिके अवतार नक्षेष्ट श्रीराममें अविचल भक्ति रखते हुए उनके निकट आये और अनायास ही महान् कर्म करनेवाले उन भगवान् श्रीरामसे हाथ जोड़ विनयपूर्वक यों बोले—‘महाबाहो श्रीराम ! देवदेव जनार्दन ! मैं [रावणका भाई] विभीषण हूँ आपकी शरणमें आया हूँ; मेरी रक्षा कीजिये’—यों कहकर हाथ जोड़े हुए वे श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें गिर पड़े। उनका अभिप्राय जानकर भगवान् श्रीरामने उन महाबुद्धिमान् बीर विभीषणको उठाया और समुद्रके जलसे उनका राज्याभिषेक करके कहा—‘अब लङ्घाका राज्य तुम्हारा ही होगा।’ श्रीरामके यों कहनेपर विभीषण उनके साथ बातचीत करके वहीं खड़े रहे ॥ १—८७, ॥

तब विभीषणने कहा—‘प्रभो ! आप जगत्पति भगवान् विष्णु हैं। देव ! ऐसी चेष्टा करें कि समुद्र ही आपको जानेका मार्ग दे दे। हम सब लोग उससे प्रार्थना करें।’ उनके यों कहनेपर श्रीरामचन्द्रजी बानरोंके साथ समुद्रके

सुमे रामे गतं तत्र त्रिरात्रमभितद्युतौ।
ततः कुद्धो जगद्राथो रामो राजीवलोचनः ॥ ११

संशोषणमपां कर्तुमस्त्रमाग्रेयमाददे।
तदोत्थाय वचः प्राह लक्ष्मणश्च रुषान्वितम् ॥ १२

क्रोधस्ते लयकर्ता हि एनं जहि महामते।
भूतानां रक्षणार्थाय अवतारस्त्वया कृतः ॥ १३

क्षन्तव्यं देवदेवेश इत्युक्त्वा धृतवान् शरम्।
ततो रात्रिप्रये याते कुद्धं राममवेक्ष्य सः ॥ १४

आग्रेयास्वाच्य संत्रस्तः सागरोऽभ्येत्य मूर्तिमान्।
आह रामं महादेवं रक्ष मामपकारिणम् ॥ १५

मार्गो दत्तो मया तेऽद्य कुशलः सेतुकर्मणि।
नलश्च कथितो वीरस्तेन कारय राघव ॥ १६

यावदिष्टं तु विस्तीर्णं सेतुबन्धनमुत्तमम्।
ततो नलमुखैरन्यैवानैरगमितीजसैः ॥ १७

बन्धयित्वा महासेतुं तेन गत्वा स राघवः।
सुवेलाख्यं गिरि प्राप्तः स्थितोऽसी वानैर्वृतः ॥ १८

हर्ष्यस्थलस्थितं दुष्टं रावणं वीक्ष्य चाङ्गदः।
रामादेशादथोत्पुत्रं दूतकर्मसु तत्परः ॥ १९

प्रादात्पादप्रहारं तु रोषाद्रावणमूर्धनि।
विस्मितं तैः सुरगणैर्बीक्षितः सोऽतिवीर्यवान् ॥ २०

साधयित्वा प्रतिज्ञां तां सुवेलं पुनरागतः।
ततो वानरसेनाभिः संख्यातीतभिरच्युतः ॥ २१

रुरोध रावणपुरीं लङ्घां तत्र प्रतापवान्।
रामः समन्तादालोक्य प्राह लक्ष्मणमन्तिके ॥ २२

तीर्णोऽर्णवः कवलितेव कपीश्वरस्य
सेनाभट्टझटिति राक्षसराजधानीम्।
यत्पौरुषोचितमिहाङ्कुरितं मया तद्
देवस्य वश्यमपरं धनुषोऽथ वास्य ॥ २३

लटपर धरना देते हुए लेट गये। अपार कान्तिमान् भगवान् श्रीरामको वहाँ लेटे-लेटे तीन रातें बीत गयीं; तब कमलनदयन जगदीश्वर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा ही क्रोध हुआ और उन्होंने समुद्रके जलको सुखा डालनेके लिये हाथमें अग्निवाण धारण किया। यह देख लक्ष्मणजी तत्काल ठठे और कुछ हुए भगवान् रामसे यों बोले— ॥ १—१२ ॥

'महामते! आपका क्रोध तो समस्त श्रहाण्डका प्रलय करनेवाला है, इस समय इस कोपको दबा दें; क्योंकि आपने प्राणियोंकी रक्षाके लिये अवतार धारण किया है। देवदेव! आप क्षमा करें,—यों कहकर उन्होंने श्रीरामके उस बाणको पकड़ लिया। इधर तीन रात बीत जानेपर श्रीरामचन्द्रजीको कुपित देख, उनके अग्निवाणसे भयभीत हो, समुद्र मनुष्यरूप धारणकर उनके निकट आया और महान् देवता भगवान् श्रीरामसे बोला—'भगवन्! मुझ अपराधीकी रक्षा कीजिये। रघुनन्दन! अब मैंने आपको जानेका मार्ग दे दिया। आपकी सेनामें वीरवर नल पुल बनानेमें निपुण कहे गये हैं। उनके हांसा आपको जितना बड़ा अभीष्ट हो, उतने ही बड़े उत्तम पुलका निर्माण करा लीजिये' ॥ १३—१६ ॥

तब भगवान् रामने नल आदि अन्य अमित-तेजस्वी वानरोंहारा बहुत बड़ा पुल बनवाया और उसीके हांसा समुद्रके पार जा, सुवेल नामक पर्वतपर पहुँचकर वहाँ वानरोंके साथ डेरा डाल दिया। वहाँसे अङ्गदने देखा—'दुष्ट रावण महलकी अट्टालिकापर बैठा हुआ है।' उसे देखते ही वे भगवान् श्रीरामकी आज्ञा ले, दूस-कार्यमें संलग्न हो, उछलकर रावणके पास जा पहुँचे। जाते ही उन्होंने रोषपूर्वक रावणके मस्तकपर लात मारी। उस समय देवताओंने महान् पराक्रमी अङ्गदजीकी ओर बड़े विस्मयके साथ देखा। इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके वे पुनः सुवेल पर्वतपर चले आये। तदनन्तर प्रतापी भगवान् श्रीरामने असंख्य वानर-सेनाओंके हांसा रावणकी पुरी लङ्घाको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १७—२१ ॥

तब श्रीरामने चारों ओर देख लक्ष्मणको पास चुलाकर कहा—'भाई! हम लोगोंने समुद्र तो पार कर लिया तथा कपिराज सुग्रीवके सैनिकोंने राक्षसोंकी राजधानी लङ्घाको आनन-फाननमें अपना ग्रास-सा बना लिया है। पुरुषार्थसे जो कुछ सिद्ध होनेके योग्य था, उसका अङ्गर तो हमने उत्पन्न कर दिया; अब आगे जो कुछ होना है, वह आग्य अथवा इस धनुषके अधीन है' ॥ २२—२३ ॥

लक्ष्मणः प्राह—कातरजनमनोऽवलम्बिना किं
दैवेन।

यावल्ललाटशिखरं भुकुटिर्न याति
यावज्ञ कार्मुकशिखामधिरोहति च्या।

तावन्निशाचरपते: पटिमानमेतु

त्रैलोक्यमूलविभुजेषु भुजेषु दर्पः ॥ २४

तदा लक्ष्मणः रामस्य कर्णे लगित्वा
पितृवधवैरस्परणे अथ तद्वक्तिवीर्यपरीक्षणाय
लक्षणविज्ञानायादिश्यतामङ्गदाय दूत्यम्। रामः साधु
इति भणित्वा अङ्गदं सबहुमानमवलोक्य
आदिशति ॥ २५ ॥ अङ्गद! पिता ते
यद्वाली वलिनि दशकण्ठे कलितवान्नशक्तास्तद्वक्तुं
वयमपि मुदा तेन पुलकः।

स एव त्वं व्यावर्त्तयसि तनुजत्वेन पितृतां
ततः किं वक्तव्यं तिलकयति सुष्ठार्थपदवीम् ॥ २६

अङ्गदो मौलिमण्डलमिलत्करयुगलेन प्रणाम्य
यदाज्ञापयति देवः। अवधार्यताम् ॥ २७ ॥

किं प्राकारविहारतोरणवतीं लङ्घामिहैवानये
किं वा सैन्यमहं द्रुतं रघुपते तत्रैव सम्पादये।
अत्यल्पं कुलपर्वतैरविरलैर्बृजामि वा सागरं
देवादेशय किं करोमि सकलं दोर्दण्डसाध्यं मम ॥ २८

श्रीरामस्तद्वचनमात्रेणीव तद्वक्तिं सामर्थ्यं
चावेक्ष्य बदति ॥ २९ ॥

अज्ञानादथवाधिपत्यरभसा वास्पत्परोक्षे हता
सीतेयं प्रविमुच्यतामिति वचो गत्वा दशास्यं बद।
नो चेत्तलक्ष्मणमुक्तमार्गणगणच्छेदोच्छलच्छोणित-
च्छव्रच्छव्रदिग्नतमन्तकपुरीं पुत्रैर्वृतो यास्यसि ॥ ३०

लक्ष्मण बोले—'पाई! कातर पुरुषोंके हृदयको
अवलम्बन देनेवाले भाग्य या दैवसे क्या होनेवाला है?
जबतक हमारी भुकुटि रोषसे तनकर ललाटके ऊपरतक
नहीं जाती और जबतक प्रत्यञ्चा धनुषके अश्रभागपर
नहीं चढ़ती, तभीतक निशाचरराज रावणका दर्प त्रिभुवनका
मूलोच्छेदन करनेवाली उसकी भुजाओंके भरोसे बढ़ता
रहे' ॥ २४ ॥

ऐसा विचार प्रकट करके लक्ष्मणने उसी समय
भगवान् श्रीरामके कानमें मुँह लगाकर कहा—'अब इस
समय इस बातकी परीक्षा तथा जानकारीके लिये कि
यह अङ्गद अपने पिता वालीके वैरजनित वधका स्मरण
करके भी आपमें कितनी भक्ति रखता है, इसमें कितना
पराक्रम है तथा इसके अब कैसे लक्षण (रंग-ढंग) हैं,
आप अङ्गदको पुनः दूतकर्म करनेका आदेश दीजिये।'
श्रीरामचन्द्रजी 'बहुत अच्छा' कहकर अङ्गदकी ओर
बड़े आदरसे देखाकर उन्हें आदेश देने लगे—'अङ्गद!
तुम्हारे पिता वालीने दशकण्ठ रावणके प्रति जो पुरुषार्थ
किया था, उसका हम भी चर्णन नहीं कर सकते। उसकी
याद आते ही हथीके कारण हमारे शरीरमें रोमाञ्च हो आता
है। वही वाली आज तुम्हारे रूपमें प्रकट है। तुम पुत्ररूपमें
उत्पन्न हो, अपने पुरुषार्थसे पिताको भी पीछे छोड़ रहे
हो; अतः तुम्हारे विषयमें क्या कहना है। तुम पुत्र-
पदवीको मस्तकका तिलक बना रहे हो' ॥ २५-२६ ॥

अङ्गदने अपने मस्तकपर दोनों हाथ जोड़ भगवान् को
प्रणाम करके कहा—'जैसी आज्ञा, भगवान् इधर ध्यान
दें। रघुपते! क्या मैं चहारदीवारी, विहार-स्थल और
नगरद्वारसहित लङ्घापुरीको यहीं उठा लाऊं? या अपनी
सारी सेनाको ही उस पुरीमें आक्रमणके लिये पहुँचा हूँ?
अथवा इस अत्यन्त तुच्छ सागरको अविरल कुलाचलोद्वारा
पाट हूँ? भगवन्! आज्ञा दीजिये, क्या करूँ? मेरे भुव-
दण्डोद्वारा सब कुछ सिढ़ हो सकता है' ॥ २७-२८ ॥

भगवान् रामने अङ्गदके कथनसे ही उनकी भक्ति
और शक्तिका अनुमान लगाकर कहा—'धीर! तुम दशमुख
रावणके पास जाकर कहो—'रावण! तुम अज्ञानसे या
प्रभुत्वके अधिमानमें आकर हम लोगोंके पीठ-पीछे
चोरकी भौति जिस सीताको ले गये हो, उसे छोड़ दो;
नहीं तो लक्ष्मणके छोड़े हुए बाणोद्वारा बेधे जाकर
छलकते हुए रक्तकी धाराओंसे छत्रकी भौति दिग्ननको
आच्छादित करके तुम अपने पुत्रोंके साथ ही यमपुरीको
प्रस्थान करोगे' ॥ २९-३० ॥

अङ्गदः ॥ ३१ ॥ देव!

संधी चा विग्रहे चापि मयि दूते दशाननी ।
अक्षता चाक्षता चापि क्षितिपीठे लुठिष्यति ॥ ३२

तदा श्रीरामचन्द्रेण प्रशस्य प्रहितोऽङ्गदः ।
उक्तिप्रत्युक्तिचातुर्यैः पराजित्यागतो रिपुम् ॥ ३३

राघवस्य बलं ज्ञात्वा चारैस्तदनुजस्य च ।
बानराणां च भीतोऽपि निर्भीरिव दशाननः ॥ ३४

लङ्घापुरस्य रक्षार्थमादिदेश स राक्षसान् ।
आदिश्य सर्वतो दिक्षु पुत्रानाह दशाननः ॥ ३५

धूमाक्षं धूम्रपानं च राक्षसा चात मे पुरीम् ।
पाशीर्बध्नीत ती मत्यी अभित्रान्तकवीर्यवान् ।
कुम्भकर्णोऽपि पदभ्राता तुर्यनादैः प्रबोधितः ॥ ३६

राक्षसाश्चैव संदिष्टा रावणेन महाबलाः ।
तस्याज्ञां शिरसाऽऽदाय युयुधुर्वानैः सह ॥ ३७

युध्यमाना यथाशक्त्या कोटिसंख्यास्तु राक्षसाः ।
वानरैर्निधनं प्राप्ताः पुनरन्यान् यथाऽऽदिशत् ॥ ३८

पूर्वद्वारे दशग्रीवो राक्षसानभितीजसः ।
ते चापि युध्य हरिभिर्नीलाद्यैर्निधनं गताः ॥ ३९

अथ दक्षिणदिग्भागे रावणेन नियोजिताः ।
ते सर्वे वानरवैर्दर्पितास्तु यमं गताः ॥ ४०

पश्चिमेऽङ्गदमुख्यैश्च वानरैरतिगर्वितैः ।
राक्षसाः पर्वताकाराः प्रापिता यमसादनम् ॥ ४१

तदुत्तरे तु दिग्भागे रावणेन निवेशिताः ।
पेतुस्ते राक्षसाः कूरा मैन्दाद्यैवानैरहताः ॥ ४२

ततो वानरसहास्तु लङ्घाप्राकारमुच्छ्रितम् ।
उत्सुत्याभ्यन्तरस्थांश्च राक्षसान् बलदर्पितान् ॥ ४३

अङ्गदने कहा—‘देव! मुझ दूतके रहते हुए रावण संधि करे या विग्रह, दोनों ही अवस्थाओंमें उसके दसों मस्तक पृथ्वीतलपर गिरकर लौटेंगे। हाँ, इतना अन्तर अवश्य होगा कि संधि कर लेनेपर उसके मस्तक बिना कटे ही (आपके सामने प्रणामके लिये) गिरेंगे और विग्रह करनेपर कटकर गिरेंगे।’ तब श्रीरामचन्द्रजीने अङ्गदकी प्रशंसा करके उन्हें भेजा और वे भी वहाँ जा, बाद-प्रतिवादकी चाहुरीसे शत्रुको हराकर लौट आये ॥ ३१—३३ ॥

दशानन रावणने भी अपने गुप्तचरोंद्वारा श्रीरामचन्द्रजीका, उनके भाई लक्ष्मणका और वानरोंका बल जानकर भयभीत होनेपर भी निहरकी भाँति लङ्घापुरीकी रक्षाके लिये राक्षसोंको आज्ञा दी। सम्पूर्ण दिशाओंमें राक्षसोंको जानेकी आज्ञा दे उसने अपने पुत्रोंसे और धूमाक्ष तथा धूम्रपानसे भी कहा—‘राक्षसो! तुम लोग नगरमें जाओ और उन दोनों मनुष्य-कुमारोंको पाशसे बाँध लाओ। शत्रुओंके लिये यमराजके समान पराक्रमी मेरा भाई कुम्भकर्ण भी इस समय बाधोंके शब्दसे जगा लिया गया है ॥ ३४—३६ ॥

इतना ही नहीं, रावणने बड़े बलवान्-बलवान् राक्षसोंको युद्धके लिये आदेश दिया और वे भी उसकी आज्ञा शिरोधार्य कर वानरोंके साथ जूँड़ने लगे। अपनी शक्तिभर युद्ध करते हुए करोड़ों राक्षस वानरोंके हाथ मारे गये। और-तो-और, दशमुख रावणने जिन दूसरे-दूसरे अपार-तेजस्वी राक्षसोंको पूर्वद्वारपर युद्धके लिये आदेश किया था, वे सब भी नील आदि वानरोंसे युद्ध करते हुए मृत्युको प्राप्त हुए। इसके बाद रावणने दक्षिण दिशामें लङ्घनेके लिये जिन राक्षसोंको नियुक्त किया था, वे भी श्रेष्ठ वानरोंद्वारा अपने अङ्गोंके विदीर्ण कर दिये जानेपर यमलोकको चले गये। फिर पश्चिम द्वारपर जो पर्वताकार राक्षस थे, वे भी अत्यन्त गर्वाले अङ्गदादि वानर वीरोंद्वारा यमपुरीको पहुँचा दिये गये। फिर उत्तर द्वारपर रावणके द्वारा ठहराये हुए कूर राक्षस मैन्द आदि वानरोंके हाथ मारे जाकर धराशायी हो गये। तदनन्तर वानरगण लङ्घाकी कँची चहारदीवारी फौंटकर उसके भीतर रहनेवाले

हत्वा शीघ्रं पुनः प्राप्ताः स्वसेनामेव बानराः ।
एवं हतेषु सर्वेषु राक्षसेषु दशाननः ॥ ४४

रोदमानासु तत्स्त्रीषु निर्गतः क्रोधपूर्चितः ।
द्वारे स पक्षिमे वीरो राक्षसैर्बहुभिर्वृतः ॥ ४५

क्रासी रामेति च वदन् धनुष्पाणिः प्रतापवान् ।
रथस्थः शरवर्षं च विसृजन् बानरेषु सः ॥ ४६

तत्स्तद्वाणछिन्नाङ्गा बानरा दुद्वुस्तदा ।
पलायमानांस्तान् दृष्टा बानरान् राघवस्तदा ॥ ४७

कस्मात् बानरा भग्नाः किमेषां भयमागतम् ।
इति रामवचः श्रुत्वा प्राह वाक्यं विभीषणः ॥ ४८

शृणु राजन् महाबाहो रावणो निर्गतोऽधुना ।
तद्वाणछिन्ना हरयः पलायन्ते महामते ॥ ४९

इत्युक्तो राघवस्तोन धनुरुद्धार्य रोषितः ।
ज्याधोषतलघोषाभ्यां पूर्यामास खं दिशः ॥ ५०

युयुधे रावणोनाथ रामः कमललोचनः ।
सुग्रीवो जाम्बवांश्चैव हनूमानङ्गदस्तथा ॥ ५१

विभीषणो बानराङ्गं लक्ष्मणाङ्गापि वीर्यवान् ।
उपेत्य रावणीं सेनां वर्षन्तीं सर्वसायकान् ॥ ५२

हस्त्यशुरथसंयुक्तां ते निजघ्नुर्महाबलाः ।
रामरावणयोर्युद्धमभूत् तत्रापि भीषणम् ॥ ५३

रावणोन विसृष्टानि शास्त्रास्त्राणि च यानि वै ।
तानि छित्त्वाथ शास्त्रैस्तु राघवश्च महाबलः ॥ ५४

शरेण सारथिं हत्वा दशभिश्च महाहयान् ।
रावणस्य धनुशिष्ठत्वा भल्लेनैकेन राघवः ॥ ५५

मुकुटं पञ्चदशभिश्छत्वा तन्मस्तकं पुनः ।
सुवर्णपुरुद्दर्शभिः शैर्विव्याध वीर्यवान् ॥ ५६

तदा दशास्यो व्यथितो रामबाणीर्भृशं तदा ।
विवेश मन्त्रिभिर्नीतिः स्वपुरीं देवमर्दकः ॥ ५७

बलाभिमानी राक्षसोंका भी संहार करके पुनः शीघ्रतापूर्वक अपनी सेनामें लौट आये ॥ ३७—४३ ॥

इस प्रकार सब राक्षसोंके मारे जानेपर उनको स्त्रियोंको रोदन करते देख दशानन रावण क्रोधसे मूर्चित होकर निकला । वह प्रतापी और हाथमें धनुष ले बहुसंख्यक राक्षसोंसे घिरा हुआ पक्षिम द्वारपर आया और बोला—‘कहाँ है वह राम?’ तथा रथपर बैठे-बैठे बानरोंपर बाणोंकी वर्षा करने लगा । उसके बाणोंसे अङ्ग छिन्न-भिन्न हो जानेके कारण बानर इधर-उधर भागने लगे । उस समय बानरोंको भागते देख श्रीरामने पूछा—‘बानरोंमें क्यों भगदड़ पड़ गयी है? इनमें कौन-सा भय आ पहुँचा?’ ॥ ४४—४७ ॥

श्रीरामकी बात सुनकर विभीषणने कहा—‘रावन्! महाबाहो! सुनिये, इस समय रावण युद्धके लिये निकला है। महामते! उसीके बाणोंसे क्षत-विक्षत हो बानरण भाग रहे हैं’ ॥ ४८—४९ ॥

विभीषणके यो कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने कुपित होकर धनुष उठाया और प्रत्यक्षाकी टंकारसे समस्त दिशाओं तथा आकाशको गैंजा दिया । तत्पक्षात् कमलनयम श्रीरामचन्द्रजी रावणसे युद्ध करने लगे और सुग्रीव, जाम्बवान्, हनूमान्, अङ्गद, विभीषण, पराक्रमी लक्ष्मण तथा अन्यान्य महाबली बानर पहुँचकर हाथी, घोड़े और रथोंसे युक्त रावणकी चतुरङ्गिणी सेनाको, जो सब प्रकारके बाणोंकी वर्षा कर रही थी, मारने लगे । वहाँ भी श्रीराम और रावणका युद्ध बड़ा ही भयंकर हुआ । रावण जिन-जिन अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग करता था, उन सबका बाणोंद्वारा छेदन करके महाबली श्रीरामचन्द्रजीने एक बाणसे सारथिको तथा दस बाणोंसे उसके बड़े-बड़े घोड़ोंको धराशायी करके एक भल्ल नामक बाणद्वारा रावणके धनुषको भी काट डाला । फिर महान् पराक्रमी रामने पंद्रह बाणोंसे उसके मुकुट बेधक, सुवर्णकी पौखवाले दस बाणोंसे उसके मस्तकोंको भी बेध दिया । उस समय देवताओंका मान-मर्दन करनेवाला रावण श्रीरामके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित हो गया और मन्त्रियोंद्वारा ले जाया जाकर वह अपनी पुरी लङ्घाको लौट गया ॥ ५०—५७ ॥

बोधितस्त्वर्थनादैस्तु गजयूथक्रमैः शनैः ।
पुनः प्राकारमुल्लहृष्य कुम्भकर्णो विनिर्गतः ॥ ५८

उत्तुङ्गस्थूलदेहोऽसौ भीमदृष्टिर्महाबलः ।
वानरान् भक्षयन् दुष्टो विचचार क्षुधान्वितः ॥ ५९

तं दृष्टोत्पत्य सुग्रीवः शूलेनोरस्थताडयत् ।
कर्णद्वयं कराभ्यां तु चिछत्त्वा वक्षेण नासिकाम् ॥ ६०

सर्वतो युध्यमानांशु रक्षोनाथान् रणोऽधिकान् ।
राघवो धातयित्वा तु वानरेन्द्रैः समन्ततः ॥ ६१

चकर्तं विशिखाँस्तीक्ष्णैः कुम्भकर्णस्य कन्धराम् ।
विजित्येन्द्रजितं साक्षादगरुडेनागतेन सः ॥ ६२

रामो लक्ष्मणसंयुक्तः शुशुभे वानरवृतः ।
व्यर्थं गते चेन्द्रजिति कुम्भकर्णे निपातिते ॥ ६३

लङ्घानाथस्ततः कुद्धः पुत्रं त्रिशिरसं पुनः ।
अतिकायमहाकायी देवान्तकनरान्तकौ ॥ ६४

यूयं हत्वा तु पुत्राद्या तौ नरौ युधि निष्प्रत ।
तात्रियुज्य दशग्रीवः पुत्रानेवं पुनर्द्वीपीत् ॥ ६५

महोदरमहापाश्चीं सार्थमेतैर्महाबलैः ।
संग्रामेऽस्मिन् रिपून् हन्तुं युवां व्रजतमुद्यतौ ॥ ६६

दृष्टा तानागतांश्चैव युध्यमानान् रणे रिपून् ।
अनयत्नलक्ष्मणः षड्भिः शरैस्तीक्ष्णैर्यमालयम् ॥ ६७

वानराणां समूहश्च शिष्ठांशु रजनीचरान् ।
सुग्रीवेण हतः कुम्भो राक्षसो बलदर्पितः ॥ ६८

निकुम्भो वायुपुत्रेण निहतो देवकण्ठकः ।
विरूपाक्षं युध्यमानं गदया तु विभीषणः ॥ ६९

भीमपैन्दी च श्वपतिं वानरेन्द्री निजष्टतुः ।
अङ्गदो जाप्तवांश्चाथ हरयोऽन्यान्निशाचरान् ॥ ७०

युध्यमानस्तु समरे महालक्षं महाचलम् ।
जघान रामोऽथ रणे बाणवृष्टिकां नृप ॥ ७१

तदनन्तर वार्योंके घोषसे जगाया गया कुम्भकर्ण लङ्घाने परकोटेको लौंधकर धैरि-धैरि गजसमूहकी-सी मन्द गतिसे बाहर निकला । उसका शरीर बहुत ही कॅचा और गोटा था, औले बड़ी ही भयानक थीं । वह महाबली दुष्ट राक्षस भूखसे व्याकुल हो वानरोंको अपना आहार बनाता हुआ रणभूमिमें विचरने लगा । उसे देख सुग्रीवने उछलकर उसकी छातीमें शूलसे प्रहार किया तथा अपने दोनों हाथोंसे उसके दोनों कानोंको और मुखसे उसकी नासिकाको काट लिया ॥ ५८—६० ॥

तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीने रणमें सब ओर युद्ध करते हुए बहुसंघर्षक राक्षसाधिपतियोंको चारों ओरसे वानरोंद्वारा मरावाकर अपने तीखे बाणोंसे कुम्भकर्णका भी गला काट लिया । फिर वहाँ आये हुए साक्षात् गरुडके द्वारा इन्द्रजित्को भी जीतकर वानरोंसे घिरे हुए श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणसहित बड़ी शोभा पाने लगे । इन्द्रजित्का उद्योग व्यर्थ होने और कुम्भकर्णके मारे जानेपर लङ्घापति रावणने कुद्ध हो अपने पुत्र त्रिशिरा, अतिकाय, महाकाय, देवान्तक और नशन्तकसे कहा—‘पुत्रवरो! तुम उन दोनों मनुष्यों—राम और लक्ष्मणको युद्धमें मार डालो ।’ इस प्रकार उन पुत्रोंको ऐसी आज्ञा दे दशकण्ठ रावणने पुनः महोदर और महापाश्च नामक राक्षसोंसे कहा—‘तुम दोनों इस संग्राममें शत्रुओंका वध करनेके लिये उद्यत हो बहुत बड़ी सेनाओंके साथ जाओ’ ॥ ६१—६६ ॥

रणभूमिमें उपर्युक्त शत्रुओंको आकर युद्ध करते देख लक्ष्मणने छः तीखे बाणोंसे मारकर उन्हें यमलोक भेज दिया । इसके बाद वानरगणने शेष राक्षसोंको मार डाला । सुग्रीवने बलाभिमानी कुम्भ नामक राक्षसको मारा, हनुमान्‌जीने देवताओंके लिये कण्ठकरूप निकुम्भका वध किया । युद्ध करते हुए विरूपाक्षको विभीषणने गदासे मार डाला । वानरशेष भीम और मैन्दने शपतिका संहार किया, अङ्गद और जाप्तवान् तथा अन्य वानरोंने दूसरे निशाचरोंका संहार किया । नरेश्वर! युद्धमें लगे हुए श्रीरामचन्द्रजीने भी संग्रामभूमिमें बाणोंकी वर्षा करनेवाले महालक्ष और महाचल नामक राक्षसोंको मौतके घाट उतार दिया ॥ ६७—७१ ॥

इन्द्रजिन्मन्त्रलब्धं तु रथमारुह्य वै पुनः।
वानरेषु च सर्वेषु शरवर्षे वर्वर्षे सः ॥ ७२

रात्रौ तद्वाणभिन्नं तु बलं सर्वं च राघवम्।
निश्चेष्टमखिलं दृष्टा जाप्यवत्प्रेरितस्तदा ॥ ७३

बीर्यादीषधमानीय हनूमान् मारुतात्मजः।
भूम्यां शायानमुत्थाप्य रामं हरिगणांस्तथा ॥ ७४

तैरेव वानरैः साधी ज्वलितोल्काकरैर्निशि ।
दाहयामास लङ्घां तां हस्त्यश्वरथरक्षसाम् ॥ ७५

चर्षन्तं शरजालानि सर्वदिक्षु घनो यथा ।
स भ्रात्रा मेघनादं तं घातयामास राघवः ॥ ७६

घातितेष्वथ रक्षस्तु पुत्रमित्रादिबन्धुषु ।
कारितेष्वथ विघ्नेषु होमजप्यादिकर्मणाम् ॥ ७७

ततः कुञ्जो दशग्रीवो लङ्घाद्वारे विनिर्गतः ।
क्वासौ राम इति ब्रूते मानुषस्तापसाकृतिः ॥ ७८

योद्धा कपिबलीत्युच्चैर्वाहरद्राक्षसाधिषः ।
वेगवद्धिविनीतैश्च अश्वैश्चिप्ररथे स्थितः ॥ ७९

अथायान्तं तु तं दृष्टा रामः प्राह दशाननम्।
रामोऽहमत्र दुष्टात्मन्नेहि रावण मां प्रति ॥ ८०

इत्युक्ते लक्ष्मणः प्राह रामं राजीवलोचनम्।
अनेन रक्षसा योत्स्ये त्वं तिष्ठेति महाबल ॥ ८१

ततस्तु लक्ष्मणो गत्वा रुरोध शरवृष्टिभिः ।
विंशद्वाहुविसृष्टेस्तु शस्त्रास्त्रैर्लक्ष्मणं युधिः ॥ ८२

रुरोध स दशग्रीवः तयोर्युद्धमभून्महत्।
देवा व्योम्नि विमानस्था वीक्ष्य तस्थुर्महाहवम् ॥ ८३

ततो रावणशस्त्राणिच्छुत्त्वा स्वैस्तीक्षणसायकैः ।
लक्ष्मणः सारथिं हत्वा तस्याश्वानपि भल्लकैः ॥ ८४

तत्पक्षात् इन्द्रजित् मन्त्रशक्तिसे प्राप्त हुए रथपर आलू
हो समस्त वानरोंपर बाण-बृह्णि करने लगा। रात्रिके
समय समस्त वानर-सेना तथा श्रीरामचन्द्रजीको मेघनाटके
बाणोंसे बिढ़ हो सर्वथा निश्चेष्ट पड़े देख पवनकुमार
हनूमानजी जाप्यवान्तके द्वारा प्रेरित हो अपने पराक्रमसे
आौषध ले आये। उन्होंने उस आौषधके प्रभावसे भूमिपर
पड़े हुए श्रीरामचन्द्रजी तथा वानरगणोंको उठाया और
प्रज्वलित उल्का हाथमें लिये उन्हीं वानरोंके साथ रथमें
जाकर हाथी, रथ और घोड़ोंसे मुक्त राक्षसोंकी लङ्घामें
आग लगा दी। तदनन्तर भगवान् रामने बादलके समान
समस्त दिशाओंमें बाणोंकी वर्षा करते हुए मेघनाटका
अपने भाई लक्ष्मणके द्वारा वध करा दिया ॥ ७२—७६ ॥

इस प्रकार जब पुत्र-मित्रादि समस्त राक्षस-बन्धु
परे गये तथा होम-जप आदि अधिकार-कर्मोंमें वानरोंद्वारा
विष्व डाल दिया गया, तब कुपित हो दशशीश रावण
वेगशाली सुशिक्षित अशोंसे युक्त विचित्र रथमें बैठकर
लङ्घाके द्वारपर निकल आया और कहने लगा—‘तपस्योंका
वेष बनाये वह मनुष्य राम कहाँ है, जो वानरोंके बलपर
योद्धा बना हुआ है?’ राक्षसराज रावणने यह बात बड़े
जोरोंसे कही। यह सुन भगवान् रामने दशानन रावणको
आते देख उससे कहा—‘दुष्टात्मा रावण! मैं ही राम हूँ
और यहाँ खड़ा हूँ, तू मेरी ओर चला आ’ ॥ ७७—८० ॥

उनके यों कहनेपर लक्ष्मणने कमलनयन
श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—‘महाबल! आप अभी ठहरें, मैं
इस राक्षसके साथ युद्ध करूँगा।’ तदनन्तर लक्ष्मणने
आगे बढ़कर बाणोंकी बृह्णिसे रावणको ढक दिया। फिर
दशग्रीव रावणने भी अपनी बीस भुजाओंद्वारा छोड़े हुए
शस्त्रास्त्रोंसे लक्ष्मणको संग्राममें आच्छादित कर दिया।
इस प्रकार उन दोनोंमें महान् युद्ध हुआ। विमानपर
आरूढ़ देवतागण इस महान् संग्रामको देख [कौतूहलबन]।
आकाशमें स्थित हो गये ॥ ८१—८३ ॥

तत्पक्षात् लक्ष्मणने अपने तीखे बाणोंद्वारा रावणके
अस्त्र-शस्त्र काटकर उसके सारथिको मार डाला और
भल्ल नामक बाणोंसे उसके घोड़ोंको भी नष्ट कर दिया।

रावणस्य धनुशिछत्त्वा व्यजं च निशितैः शौरैः ।
वक्षःस्थलं महावीरो विव्याध परवीरहा ॥ ८५

ततो रथान्निपत्याधः क्षिप्रं राक्षसनायकः ।
शक्तिं जग्राह कुपितो घण्टानादविनादिनीम् ॥ ८६

अग्रिन्वालान्वलजिह्वां महोत्कासदृशाद्युतिम् ।
दृढमुष्ठया तु निक्षिप्ता शक्तिः सा लक्ष्मणोरसि ॥ ८७

विदार्यान्तःप्रविष्टाथ देवास्त्रस्तास्ततोऽम्बरे ।
लक्ष्मणं पतितं दृष्टा रुदद्विवानरेश्वरैः ॥ ८८

दुःखितः शीघ्रमागच्य तत्पार्श्वं प्राह राघवः ।
क्ष गतो हनुमान् वीरो मित्रो मे पवनात्मजः ॥ ८९

यदि जीवति मे धाता कथचित्पतितो भुवि ।
इत्युक्ते हनुमान् राजन् वीरो विख्यातपौरुषः ॥ ९०

बद्ध्वाञ्जलिं बभाषेदं देहानुज्ञां स्थितोऽस्मि भोः ।
रामः प्राह महावीर विशल्यकरणी मम ॥ ९१

अनुजं विरुजं शीघ्रं कुरु मित्र महाबल ।
ततो वेगात्समुत्पत्य गत्वा द्रोणगिरिं कपि: ॥ ९२

बद्ध्वा च शीघ्रमानीय लक्ष्मणं नीरुजं क्षणात् ।
चकार देवदेवेशां पश्यतां राघवस्य च ॥ ९३

ततः कुद्धो जगद्वाथो रामः कमललोचनः ।
रावणस्य बलं शिष्टं हस्त्यश्वरथराक्षसम् ॥ ९४

हत्वा क्षणेन रामस्तु तच्छ्रीरं तु सायकैः ।
तीक्ष्णीर्जर्जरितं कृत्वा तस्थिवान् वानरैर्वृतः ॥ ९५

अस्तचेष्टो दशग्रीवः संज्ञां प्राप्य शनैः पुनः ।
उत्थाय रावणः कुद्धः सिंहनादं ननाद च ॥ ९६

तत्त्वादश्रवणीव्योम्नि वित्रस्तो देवतागणः ।
एतस्मिन्नेव काले तु रामं प्राप्य महामुनिः ॥ ९७

फिर तीखे चाणोंसे रावणका धनुष और उसकी ध्वजा काटकर शत्रु-वीरोंका नाश करनेवाले महान् पराक्रमी लक्ष्मणजीने उसके वक्षःस्थलको बेध दिया। तब राक्षसराज रावण रथसे नीचे गिर पड़ा। किंतु शीघ्र ही उठकर कुपित हो उसने हाथमें शक्ति उठायी, जो सैकड़ों घडियालोंके समान आवाज करनेवाली थी। उसकी धार अग्रिकी ज्वालाके समान प्रज्वलित थी तथा उसकी कान्ति महती उत्काके समान प्रतीत होती थी। उसने दृढ़तापूर्वक मुद्दी बांधकर उस शक्तिको लक्ष्मणकी छातीपर फेंका। वह शक्ति उनको छाती छेदकर भीतर झुस गयी। इससे आकाशमें स्थित देवतागण भयभीत हो गये। लक्ष्मणको गिर देख रोते हुए वानराधिपतियोंके साथ दुःखी हो भगवान् श्रीराम शीघ्र ही उनके पास आये और कहने लगे—‘मेरे मित्र पवनकुमार हनुमान् कहाँ चले गये? पृथ्वीपर पड़ा हुआ मेरा भाई लक्ष्मण जिस-किसी प्रकार भी जीवित हो सके, वह उपाय होना चाहिये’॥ ८४—८९½, ॥

राजन्! उनके इस प्रकार कहनेपर, विष्णुत पराक्रमी वीर हनुमान्जी हाथ जोड़कर बोले—‘देव! आज्ञा दें, मैं सेवामें उपस्थित हूँ’॥ ९०½, ॥

श्रीरामने कहा—‘महावीर! मुझे ‘विशल्यकरणी’ ओषधि चाहिये। महाबली! उसे लाकर मेरे भाईको शीघ्र ही नीरोग करो॥ ९१½, ॥

तब हनुमान्जी बड़े वेगसे उछले और द्रोणगिरिपर जाकर शीघ्र ही वहाँसे दवा बांधकर ले आये और उसका प्रयोग करके देवदेवेशरों तथा रामचन्द्रजीके देखते-देखते क्षणभरमें लक्ष्मणको नीरोग कर दिया॥ ९२—९३॥

तदनन्तर जगदीश्वर कमलनयन श्रीराम बहुत ही कुपित हुए और रावणकी बची हुई सेनाको हाथी, घोड़े, रथ तथा राक्षसोंसहित क्षणभरमें मार गिराया। उन्होंने तीखे चाणोंसे रावणका शरीर जर्जर कर दिया और रणभूमिमें वानरोंसे घिरे हुए छड़े रहे। रावण निषेष्ट होकर गिर पड़ा। फिर धीर-धीर होशमें आनेपर वह उठकर कुपित हो सिंहनाद करने लगा। उसकी गर्जना सुनकर आकाशवर्ती देवतालोग दहल गये॥ ९४—९६½, ॥

इसी समय रावणके प्रति धैर धौधे महामुनि अगस्त्य श्रीरामचन्द्रजीके पास आये और शत्रुओंपर विजय

रावणे बद्धवैरस्तु अगस्त्यो चै जयप्रदम्।
आदित्यहृदयं नाम मन्त्रं प्रादाज्जयप्रदम्॥ १८

रामोऽपि जप्त्वा तन्मन्त्रमगस्त्योक्तं जयप्रदम्।
तहतं वैष्णवं चापमतुलं सदृष्टं दृढम्॥ १९

पूजयित्वा तदादाय सन्यं कृत्वा महाबलः।
सौवर्णपुरुषस्तीक्ष्णेस्तु शर्मर्मविदारणीः॥ २००

युधुधे राक्षसेन्द्रेण रघुनाथः प्रतापवान्।
तथोस्तु युध्यतोस्तत्र भीमशक्त्योर्महामते॥ २०१

परस्परविसृष्टस्तु व्योमि संवर्द्धितोऽनलः।
समुत्थितो नृपश्रेष्ठ रामरावणयोर्युधिः॥ २०२

संगरे वर्तमाने तु रामो दाशरथिस्तदा।
पदातिर्युधे वीरो रामोऽनुक्तपराक्रमः॥ २०३

सहस्राश्चयुतं दिव्यं रथं मातलिमेव च।
प्रेषयामास देवेन्द्रो महानं लोकविश्रुतम्॥ २०४

रामस्तं रथमारुह्य पूज्यमानः सुरोत्तमैः।
मातल्युक्तोपदेशस्तु रामचन्द्रः प्रतापवान्॥ २०५

ब्रह्मदत्तवरं दुष्टं ब्रह्मास्त्रेण दशाननम्।
जघान वैरिणं कूरं रामदेवः प्रतापवान्॥ २०६

रामेण निहते तत्र रावणे सगणो रिपौ।
इन्द्राद्या देवताः सर्वाः परस्परमथाद्युवन्॥ २०७

रामो भूत्वा हुरिर्यस्मादस्माकं वैरिणं रणे।
अन्यैरवध्यमध्येन जघान युधि रावणम्॥ २०८

तस्मात् रामनामानभन्नामपराजितम्।
पूजयामोऽवतीर्येनमित्युक्त्वा ते दिवौकसः॥ २०९

नानाविमानैः श्रीमद्विरवतीर्य महीतले।
रुद्रेन्द्रवसुचन्द्राद्या विधातारं सनातनम्॥ २१०

विष्णुं जिष्णुं जगन्मृतं मानुजं रामपव्ययम्।
तं पूजयित्वा विधिवन्परिवार्योपतस्थिरः॥ २११

रामोऽयं दृश्यतां देवा लक्ष्मणोऽयं व्यवस्थितः।
सुग्रीवो गविपत्रोऽयं चायुपत्रोऽयमास्थितः॥ २१२

दिलानेवाले 'आदित्यहृदय' नामक स्तोत्र-मन्त्रका उपदेश किया। महाबली श्रीरामचन्द्रजीने भी अगस्त्यमुनिके बलावै हुए उस विजयदायक मन्त्रका जप करके उनके द्वारा अर्पित किये गये उत्तम ढोरीवाले, सुदृढ़ एवं अनुपम वैष्णव-धनुषको सादर ग्रहण किया और उसपर प्रत्यक्षा चढ़ायी। फिर प्रतापी रघुनाथजी शत्रुओंका मर्म-धेन करनेमें समर्थ सोनेकी पाँखवाले तीक्ष्ण बाणोंद्वारा राक्षसराज रावणके साथ युद्ध करने लगे॥ १७—२००%,॥

महामते! नृपश्रेष्ठ! उन दोनों भयंकर शक्तिवाले श्रीराम और रावणके परस्पर युद्ध करते समय एक-दूसरेपर छोड़ी हुई अग्रिकी ज्याला उठ-उठकर वहाँ आकाशमें फैलने लगी। इस वर्तमान संग्राममें अवर्णनीय पराक्रमवाले वीर दशरथनन्दन श्रीराम पैदल ही युद्ध कर रहे थे। यह देख देवराज इन्द्रने अपने सारीष मातलिसहित एक महान् लोकविष्णुत दिव्य रथ भेजा, जिसमें एक हजार घोड़े जुते थे। प्रतापी श्रीरामचन्द्रजी श्रेष्ठ देवोंद्वारा प्रशंसित होकर उस रथपर आरूढ़ हुए और मातलिके उपदेशसे उस दुष्ट दशरथनका, जिसे ब्रह्माजीने वरदान दिया था, ब्रह्मास्त्रद्वारा वध किया। इस प्रकार प्रतापी भगवान् श्रीरामने अपने क्लूर वैरो रावणका संहार किया॥ १०१—१०६॥

श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा शत्रु रावणका उसके गणोंसहित वध हो जानेपर इन्द्र आदि सभी देवता परस्पर कहने लगे—“साक्षात् भगवान् विष्णुने ही श्रीरामावतार लेकर हमारे वैरी रावणका, जो दूसरोंके लिये अवध्य था, युद्धमें वध किया है। इसलिये हम लोग आकाशसे उतरकर इन अनन्त पराक्रमी तथा किसीसे भी पराजित न होनेवाले 'श्रीराम' नामक परमेश्वरको पूजा करें।” ऐसी सम्मति करके वे रुद्र, इन्द्र, वसु और चन्द्र आदि देवतागण अनेक कान्तिमान् विमानोंद्वारा पृथ्वीपर उतरे। वे जगत्‌के रचयिता, विश्वमूर्ति, सनातन पुरुष, विजयशील भगवान् विष्णुके स्वरूपभूत अविनाशी परमात्मा श्रीरामका लक्ष्मणसहित विधिवत् पूजन करके उन्हें सब ओरसे धैरकर खड़े हो गये॥ १०७—१११॥

सब देवता परस्पर कहने लगे—‘देवगण! देखो—ये श्रीरामचन्द्रजी हैं, ये लक्ष्मणजी खड़े हैं, ये सूर्यनन्दन सुग्रीव हैं, ये बायुनन्दन हनुमानजी खड़े हैं और ये

अङ्गदाण्डा इमे सर्वे इत्यूचुस्ते दिवौकसः ।
गन्धामोदितदिक्चक्रा भूमरालिपदानुगा ॥ ११३

देवस्त्रीकरनिर्मुक्ता राममूर्धनि शोभिता ।
पषात पुष्पवृष्टिस्तु लक्ष्मणस्य च मूर्धनि ॥ ११४

ततो ब्रह्मा समागत्य हंसयानेन राघवम् ।
अमोघाख्येन स्तोत्रेण स्तुत्वा राममवोचत ॥ ११५

ब्रह्मोदाच

त्वं विष्णुरादिर्भूतानामनन्तो ज्ञानदृक्ष्रभुः ।
त्वमेव शाश्वतं ब्रह्म वेदान्ते विदितं परम् ॥ ११६

त्वया यदद्य निहतो रावणो लोकरावणः ।
तदाशु सर्वलोकानां देवानां कर्म साधितम् ॥ ११७

इत्युक्ते पदायोनीं तु शङ्करः प्रीतिमास्थितः ।
प्रणाप्य रामं तस्मै तं भूयो दशरथं नृपम् ॥ ११८

दर्शयित्वा गतो देवः सीता शुद्धेति कीर्तयन् ।
ततो बाहुबलप्राप्तं विमानं पुष्पकं शुभम् ॥ ११९

पूतामारोप्य सीतां तामादिष्टः पवनात्मजः ।
ततस्तु जानकीं देवीं विशोकां भूषणान्विताम् ॥ १२०

बन्दितां बानरेन्द्रेस्तु सार्थं भात्रा महाबलः ।
प्रतिष्ठाप्य महादेवं सेतुमध्ये स राघवः ॥ १२१

लब्धवान् परमां भक्तिं शिवे शास्त्रोरनुग्रहात् ।
रामेश्वर इति ख्यातो महादेवः पिनाकथृक् ॥ १२२

तस्य दर्शनमात्रेण सर्वहत्यां व्यपोहति ।
रामस्तीर्णप्रतिज्ञोऽसौ भरतासक्तमानसः ॥ १२३

ततोऽयोध्यां पुरीं दिव्यां गत्वा तस्यां द्विजोत्तमैः ।
अभिषिन्नो वसिष्ठादीर्भरतेन प्रसादितः ।
अकरोद्धर्मतो राज्यं चिरं रामः प्रतापवान् ॥ १२४

अङ्गद आदि सभी बानर और विराजमान हैं।' तत्पक्षात् श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणके मस्तकपर देवाङ्गनाओं-के हाथसे छोड़े गये फूलोंकी वर्षा हुई। उस समय वहाँकी सब दिशाएँ उन दिव्य पुष्पोंकी सुगन्धसे सुवासित हो रही थीं और उन पुष्पोंपर भ्रमण मैडरा रहे थे ॥ ११२—११४ ॥

तदनन्तर ब्रह्माजी हंसकी सवारीसे वहाँ आये और 'अमोघ' नामक स्तोत्रसे भगवान् श्रीरामकी स्तुति करके तब उनसे बोले ॥ ११५ ॥

ब्रह्माजीने कहा—आप समस्त प्राणियोंके आदिकारण, अविनाशी, ज्ञानदृष्टि भगवान् विष्णु हैं; आप ही वेदान्त-विख्यात सनातन परब्रह्म हैं। आपने आज जो सम्पूर्ण लोकोंको रुलानेवाले रावणका वध किया है, इससे समस्त लोकों तथा देवताओंका भी कार्य सद्धा सिद्ध हो गया ॥ ११६-११७ ॥

ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेके पक्षात् भगवान् शङ्करने भी पहले श्रीरामचन्द्रजीको प्रेमपूर्वक प्रणाम किया। फिर उन्हें राजा दशरथका दर्शन कराया। उसके बाद यह कहकर कि 'श्रीसीताजी निष्कसङ्कु और शुद्ध चरित्रवाली हैं'—भगवान् शंकर चले गये ॥ ११८ ॥

तदनन्तर पवित्रात्मा सीताजीको अपने बाहुबलसे प्राप्त सुन्दर पुष्पकविमानपर चलाकर भगवान् ने हनुमानजी-को चलनेका आदेश दिया। तब समस्त बानरेन्द्रोद्वारा बन्दित शोकरहित जानकीदेवीको आभूषणोंसे विभूषितकर महाबली रामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मणके साथ चले। लौटती बार श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रके पुलपर महादेवजीकी स्थापना की और शङ्करजीकी कृपासे उन्होंने उन शिवजीमें परमभक्ति प्राप्त की। वहाँ स्थापित हुए पिनाकधारी महादेवजी 'रामेश्वर' नामसे विख्यात हुए। उनके दर्शनमात्र-से शिवजी सब प्रकारके हत्यादि दोषोंको दूर कर देते हैं ॥ ११९—१२२ ॥

इस प्रकार प्रतिज्ञा पूर्ण करके श्रीरामचन्द्रजी अपना चित्त भरतजीकी ओर लगा रहनेके कारण वहाँसे दिव्यपुरी अयोध्याको गये। फिर भरतजीके मनानेपर श्रीरामचन्द्रजीने चसिष्ट आदि उत्तम ब्राह्मणोंके हारा अपना राज्याभिषेक कराया। तत्पक्षात् प्रतापी भगवान् श्रीरामने चिरकालतक

यज्ञादिकं कर्म निजं च कृत्वा
पौरेस्तु रामो दिवमारुरोह।
राजन्मया ते कथितं समाप्ततो
रामस्य भूम्यां चरितं महात्मनः।
इदं सुभक्त्या पठतां च शृणवतां
ददाति रामः स्वपदं जगत्पतिः ॥ १२५

इति श्रीनरसिंहपुराणे रामप्रादुर्भावे हिष्पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५३ ॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें श्रीरामावतारकी कथाखिलयक वाक्यानां अध्याय पूरा हुआ ॥ ५३ ॥

धर्मपूर्वक राज्य किया तथा राजोचित् यागादि कर्मोंका अनुष्ठान करके वे पुरवासीजनोंके साथ ही स्वर्गलीक (साकेतधाम) - को चले गये । राजन् ! पृथ्वीपर महात्मा श्रीरामचन्द्रजीके किये हुए चरित्रोंका मैंने तुमसे संक्षेपतः वर्णन किया । जो लोग इसको भक्तिपूर्वक पढ़ते और सुनते हैं, उन्हें जगत्पति भगवान् श्रीराम अपना धार्म प्रदान करते हैं ॥ १२३—१२५ ॥

तिरपनवाँ अध्याय

बलराम-श्रीकृष्ण-अवतारके चरित्र

मार्कण्डेय उकाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रादुर्भावद्वयं शुभम्।
तृतीयस्य तु रामस्य कृष्णस्य तु समाप्ततः ॥ १
पुरा ह्यसुरभाराती मही प्राह नृपोत्तम्।
आसीनं देवमध्ये तु ब्रह्माणं कमलासनम् ॥ २
देवासुरे हता ये तु विष्णुना दैत्यदानवाः।
ते सर्वे क्षत्रिया जाताः कंसाद्याः कमलोद्धव ॥ ३
तद्वरिभारसम्प्राप्ता सीदन्ती चतुरानन्।
मम तद्वारहानिः स्याद्यथा देव तथा कुरु ॥ ४
तथैवमुक्तो ब्रह्माश्च देवैः सह जगाम हु।
क्षीरोदस्योत्तरं कूलं विष्णुं भक्तिविबोधितम् ॥ ५
तत्र गत्वा जगत्क्षम्य देवैः सार्थं जनार्दनम्।
नरसिंहं महादेवं गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ॥ ६
अभ्यर्थ्यं भक्त्या गोविन्दं वाक्पुष्पेण च केशवम्।
पूजयामास राजेन्द्र तेन तुष्टो जगत्पतिः ॥ ७

राजेन्द्र

वाक्पुष्पेण कथं ब्रह्मन् ब्रह्माप्यर्चितवान् हरिम्।
तन्मे कथय विप्रेन्द्र ब्रह्मोक्तं स्तोत्रमुत्तमम् ॥ ८

मार्कण्डेयजी कहते हैं—अब मैं तीसरे राम (बलराम) और श्रीकृष्णके युगल अवतारोंका संक्षेपमें वर्णन करूँगा। नृपत्रेष्ठ ! पूर्वकालकी बात है, पृथ्वी दैत्योंके भासे पीड़ित हों देवताओंके मध्यमें विराजमान कमलासन ब्रह्माजीके पास गयी और इस प्रकार बोली ॥ १-२ ॥

'कमलोद्धव ! देवासुर-संग्राममें जो-जो दैत्य और दानव भगवान् विष्णुके हाथसे मारे गये थे, वे सभी कंस आदि क्षत्रियोंके रूपमें उत्पन्न हुए हैं। चतुरानन ! उनके भासे बोझसे दबकर मैं बहुत दुःखी हो गये हूँ। देव ! मेरा वह भार जैसे भी दूर हो, वह उपाय आप करें' ॥ ३-४ ॥

पृथ्वीके द्वारा इस प्रकार प्रार्थना की जानेपर, कहते हैं, ब्रह्माजी समस्त देवताओंके साथ क्षीरसागरके उत्तर तटपर भगवान् विष्णुके निकट गये । उन्होंने भगवान्को अपनी भक्तिके प्रभावसे सोतोसे जगाया था । वहाँ पहुँचकर जगत्की सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजीने समस्त देवताओंके साथ नरसिंहस्वरूप महान् देवता भगवान् जनार्दनकी गन्ध-पुष्पादिके द्वारा क्रमशः भक्तिपूर्वक पूजा की । फिर वाक्पुष्पसे भी उन गोविन्द-केशवका पूजन किया । राजेन्द्र ! इससे वे जगदीक्षर भगवान् विष्णु उनपर बहुत संतुष्ट हुए ॥ ५-७ ॥

राजा बोले—ब्रह्मन् ! ब्रह्माजीने भगवान् विष्णुकी वाक्पुष्पसे किस प्रकार पूजा की ? विप्रेन्द्र ! ब्रह्माजीद्वारा कहे हुए उस उत्तम स्तोत्र (वाक्पुष्प) - को आप मुझे सुनाइये ॥ ८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि स्तोत्रं ब्रह्ममुखेरितम् ।
सर्वपापहरं पुण्यं विष्णुतुष्टिकरं परम् ॥ ९

तमाराध्य जगन्नाथमूर्ध्वबाहुः पितामहः ।
भूत्वैकाग्रमना राजनिदं स्तोत्रमुदीरयत् ॥ १०

ब्रह्मोवाच

नमामि देवं नरनाथमच्युतं
नारायणं लोकगुरुं सनातनम् ।
अनादिमव्यक्तमचिन्त्यमव्ययं
वेदान्तवेद्यं पुरुषोत्तमं हरिम् ॥ ११

आनन्दस्त्रपं परमं परात्परं
चिदात्मकं ज्ञानवतां परां गतिम् ।
सर्वात्मकं सर्वगतैकस्त्रपं
ध्येयस्वस्त्रपं प्रणामामि माधवम् ॥ १२

भक्तप्रियं काननमतीव निर्मलं
सुराधिपं सूरिजनैरभिष्टुतम् ।
चतुर्भुजं नीरजवर्णमीश्वरं
रथाङ्गपाणिं प्रणतोऽस्मि केशवम् ॥ १३

गदासिशङ्खाङ्गकरं श्रियः पतिं
सदाशिवं शार्ङ्गधरं रविप्रभम् ।
पीताम्बरं हारविराजितोदरं
नमामि विष्णुं सततं किरीटिनम् ॥ १४

गण्डस्थलासक्तसुरकुण्डलं
सुदीपिताशेषदिशं निजत्विषा ।
गन्धर्वसिद्धैरुपगीतमृगध्वनिं
जनार्दनं भूतपतिं नमामि तम् ॥ १५

हत्वासुरान् पाति युगे युगे सुरान्
स्वधर्मसंस्थान् भुवि संस्थितो हरिः ।
करोति सुष्ठिं जगतः क्षयं य-
स्तं वासुदेवं प्रणतोऽस्मि केशवम् ॥ १६

मार्कण्डेयजी बोले—राजन्! मैं ब्रह्माजीके मुखसे निकले हुए उस उत्तम स्तोत्रको कहता हूँ, सुनो! वह स्तोत्र समस्त पापोंको हरनेवाला, पवित्र तथा भगवान् विष्णुको अत्यन्त संतुष्ट करनेवाला है। राजन्! ब्रह्माजीने पूर्वोक्त रूपसे भगवान् जगन्नाथकी पूजा करके एकाग्रचित्त हो इस स्तोत्रका पाठ किया ॥ ९-१० ॥

ब्रह्माजी बोले—मैं सम्पूर्ण जीवोंके स्वामी भगवान् अच्युतको, सनातन लोकगुरु भगवान् नारायणको नमस्कार करता हूँ। जो अनादि, अव्यक्त, अचिन्त्य और अविनाशी हैं, उन वेदान्तवेद्य पुरुषोत्तम श्रीहरिको प्रणाम करता हूँ। जो परमानन्दस्वरूप, परात्पर, ज्ञानमय एवं ज्ञानियोंके परम आश्रय हैं तथा जो सर्वमय, सर्वव्यापक, अद्वितीय और सबके ध्येयरूप हैं, उन भगवान् लक्ष्मीपतिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो भक्तोंके प्रेमी, अत्यन्त कमनीय और दोषोंसे रहित हैं, जो समस्त देवताओंके स्वामी हैं, विद्वान् पुरुष जिनकी सुति करते हैं, जिनके चार भुजाएँ हैं, नीलकमलके समान जिनकी श्यामल कान्ति है, जो हाथमें चक्र धारण किये रहते हैं, उन परमेश्वर केशवको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनके हाथोंमें गदा, तलवार, शङ्ख और कमल सुशोभित हैं, जो लक्ष्मीजीके पति हैं, सदा ही कल्पाण करनेवाले हैं, जो शार्ङ्गधनुष धारण किये रहते हैं, जिनकी सूर्यके समान कान्ति है, जो पीतबस्त्र धारण किये रहते हैं, जिनका उदरभाग हारसे विभूषित है तथा जिनके मस्तकपर मुकुट शोभा पा रहा है, उन भगवान् विष्णुको मैं सदा प्रणाम करता हूँ। जिनके कपोलोंपर सुन्दर रक्तवर्ण कुण्डल शोभा पा रहे हैं, जो अपनी कान्तिसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रहे हैं, गन्धर्व और सिद्धगण जिनका सुयशा गाते रहते हैं तथा जिनका वैदिक ऋचाओंहारा यशोगान किया जाता है, उन भूतनाथ भगवान् जनार्दनको मैं प्रणाम करता हूँ। जो भगवान् प्रत्येक युगमें पृथ्वीपर अवतार ले, देवद्वारोंकी हत्या करके अपने धर्ममें स्थित देवताओंकी रक्षा करते हैं तथा जो इस जगत्की सृष्टि एवं संहार करते हैं, उन सर्वान्तर्यामी भगवान् केशवको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ११-१६ ॥

यो मत्स्यरूपेण रसातलस्थितान्
वेदान् समाहृत्य मम प्रदत्तवान्।

निहत्य युद्धे मधुकैटभावुभी
तं वेदवेदां प्रणतोऽस्म्यहं सदा ॥ १७

देवासुरैः क्षीरसमुद्रमध्यतो
च्यस्तो गिरियैन धृतः पुरा महान्।

हिताय कौर्म वपुरास्थितो य-
स्तं विष्णुमाद्यं प्रणतोऽस्मि भास्करम्॥ १८

हत्वा हिरण्याक्षमतीव दर्पितं
वराहरूपी भगवान् सनातनः।

यो भूमिमेतां सकलां समुद्धर-
स्तं वेदमूर्तिं प्रणमामि सूकरम्॥ १९

कृत्वा नृसिंहं वपुरात्मनः परं
हिताय लोकस्य सनातनो हरिः

जघान यस्तीक्ष्णनरखैर्दितेः सुतं
तं नारसिंहं पुरुषं नमामि ॥ २०

यो वामनोऽसी भगवाङ्गनार्दनो
बलिं बबन्ध त्रिभिरुजितैः पदैः।

जगत्त्रयं क्रम्य ददी पुरंदरे
तदेवमाद्यं प्रणतोऽस्मि वामनम्॥ २१

यः कार्तबीर्य निजघान रोषात्
त्रिस्समकृत्वः क्षितिपात्मजानपि।

तं जामदग्न्यं क्षितिभारनाशकं
नतोऽस्मि विष्णुं पुरुषोत्तमं सदा ॥ २२

सेतुं महान्तं जलधीं बबन्ध यः
सम्प्राप्य लङ्घां सगणं दशाननम्।

जघान भृत्यै जगतां सनातनं
तं रामदेवं सततं नतोऽस्मि ॥ २३

यथा तु वाराहनृसिंहरूपैः
कृतं त्वया देव हितं सुराणाम्।

तथाद्य भूमेः कुरु भारहानिं
प्रसीद विष्णो भगवन्नमस्ते ॥ २४

जिन्होंने युद्धमें मधु और कैटभ—इन दोनों दैत्योंको मारा तथा मत्स्यरूप धारण करके रसातलमें पहुँचे हुए वेदोंको लाकर मुझे दिया था, उन वेदवेद परमेश्वरको मैं सदा ही प्रणाम करता हूँ। पूर्वकालमें जिन्होंने देवता और असुरोंद्वारा क्षीरसमुद्रमें डाले हुए महान् मन्दराचलको सबका हित करनेके लिये कूर्मरूपसे पीठपर धारण किया था, उन प्रकाश देनेवाले आदिदेव भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन सनातन भगवान् ने वशहरूप धारण करके इस सम्पूर्ण वसुधराका जलसे उद्धार किया और उसी समय अत्यन्त अभिमानी दैत्य हिरण्याक्षको मार गिराया था, उन वेदमूर्तिं सूकररूपधारी भगवान् को प्रणाम करता हूँ। जिन सनातन भगवान् श्रीहरिने त्रिलोकीका हित करनेके लिये स्वयं ही ब्रह्म नृसिंहरूप धारण करके अपने तीखे नखोंद्वारा दिति-नन्दन हिरण्यकशिष्यका वध किया था, उन परम पुरुष भगवान् नरसिंहको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन वामनरूपधारी भगवान् जनार्दनने बलिको बांधा था और अपने बड़े हुए तीन पाणोंसे त्रिभुवनको नापकर उसे इन्द्रको दे दिया था, उन आदिदेव वामनको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन्होंने कोपबश राजा कार्तबीर्यको मार डाला तथा इकीम थार क्षत्रियोंका संहार किया, पृथ्वीका भार दूर करनेवाले परशुरामरूपधारी उन पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुको मैं सदा नमस्कार करता हूँ। जिन्होंने समुद्रमें बहुत बड़ा पुल बांधा और लङ्घामें पहुँचकर त्रिलोकीकी रक्षाके लिये रावणको उसके गणोंसहित मार डाला था, उन सनातन पुरुष भगवान् श्रीरामको मैं सदा प्रणाम करता हूँ। भगवान्! विष्णो! जिस प्रकार [पूर्वकालमें] वाराह-नृसिंह आदि रूपोंसे आपने देवताओंका हित किया है, उसी प्रकार आज भी प्रसन्न होकर पृथ्वीका भार दूर करें। देव! आपको सादर नमस्कार है ॥ १७—२४ ॥

श्रीमार्कण्डेश उवाच

इति स्तुतो जगद्राथः श्रीधरः पद्मयोनिना।
आविर्बभूव भगवाञ्छाङ्गचकगदाधरः ॥ २५
उवाच च हृषीकेशः पद्मयोनि सुरानपि।
स्तुत्यानयाहं संतुष्टः पितामह दिवौकसः ॥ २६
पठतां पापनाशाय नृणां भक्तिमतामपि।
यतोऽस्मि प्रकटीभूतो दुर्लभोऽपि हरिः सुराः ॥ २७
देवैः सेन्द्रैः सरुद्रैस्तु पृथ्व्या च प्रार्थितो ह्यहम्।
पद्मयोने बदाय त्वं श्रुत्वा तत्करवाणि ते ॥ २८
इत्युक्ते विष्णुना प्राह ब्रह्मा लोकपितामहः।
देत्यानां गुह्यभारेण पीडितेयं मही भृशम् ॥ २९
लघ्वीमिमां कारयितुं त्वयाहं पुरुषोत्तम।
तेनागतः सुरैः सार्थं नान्यदस्तीति कारणम् ॥ ३०
इत्युक्तो भगवान् प्राह गच्छध्वमपराः स्वकम्।
स्थानं निरामयाः सर्वे पद्मयोनिस्तु गच्छतु ॥ ३१
देवक्यां वसुदेवाच्य अवतीर्य महीतले।
सितकृष्णो च मच्छक्ती कंसादीन् घातयिष्यतः ॥ ३२
इत्याकर्ण्य हरेवाक्यं हरि नत्वा ययुः सुराः।
गतेषु त्रिदिवीकःसु देवदेवो जनार्दनः ॥ ३३
शिष्ठानां पालनार्थाय दुष्टनिग्रहणाय च।
प्रेषयामास ते शक्ती सितकृष्णो स्वके नृप ॥ ३४
तयोः सिता च रोहिण्यां वसुदेवाद्वभूव ह।
तद्वत्कृष्णा च देवक्यां वसुदेवाद्वभूव ह ॥ ३५
रोहिणोयोऽथ पुण्यात्मा रामनामाश्रितो महान्।
देवकीनन्दनः कृष्णास्तयोः कर्म शृणुच्च मे ॥ ३६
गोकुले बालकाले तु राक्षसी शकुनी निशि।
रामेण निहता राजन् तथा कृष्णोन पूतना ॥ ३७
धेनुकः सगणस्तालवने रामेण घातितः।
शकटश्चार्जुनी वक्षी तद्वत्कृष्णोन घातिती ॥ ३८

श्रीमार्कण्डेयजी कहते हैं—ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर जगत्पति भगवान् लक्ष्मीधर हाथमें शङ्ख, चक्र और गदा धारण किये वहाँ प्रकट हुए तथा वे भगवान् हृषीकेश ब्रह्माजी और देवताओंसे बोले—‘पितामह! देवताओं! मैं तुम्हारी इस स्तुतिसे बहुत ही प्रसन्न हूँ। देवगण! यह स्तोत्र इसका पाठ करनेवालोंके सारे पाप नष्ट करनेमें समर्थ है। यद्यपि मैं श्रीहरिके रूपमें भक्तिमान् पुरुषोंको भी कठिनतासे ही प्राप्त होता हूँ तथापि इस स्तोत्रके प्रभावसे मैं प्रत्यक्ष प्रकट हो गया हूँ। ब्रह्माजी! आज रुद्र और इन्द्रसहित समस्त देवताओं तथा पृथिवीने मेरी प्रार्थना की है, अतः तुम लोग अपना मनोरथ कहो; उसे सुनकर पूर्ण करूँगा’ ॥ २५—२८ ॥

भगवान् विष्णुके यों कहनेपर लोकपितामह ब्रह्माजी बोले—‘पुरुषोत्तम! यह पृथ्वी देत्योंके गुरुत्व भारसे अत्यन्त पीडित हो रही है। अतः मैं आपके द्वारा इस वसुधाके भारको उत्तरत्वानेके लिये यहाँ देवताओंके साथ आया हूँ। मेरे आनेका दूसरा कोई कारण नहीं है’ ॥ २९—३० ॥

यह सुनकर भगवान्ने कहा—‘देवगण! तुम लोग निश्चिन्त होकर अपने-अपने स्थानको लौट जाओ। ब्रह्माजी भी चले जायें। मेरी गौर और कृष्ण—दो शक्तियाँ पृथ्वीपर वसुदेवजीके बीर्य एवं देवकीके गर्भसे अवतार लेकर कंस आदि असुरोंका वध करेंगी’ ॥ ३१—३२ ॥

भगवान्का यह बचन सुनकर सभी देवता उनको प्रणाम करके चले गये। राजन्! देवताओंके चले जानेपर देवदेव जनार्दनने सज्जनोंकी रक्षा और दुष्टोंका संहार करनेके लिये अपनी वे गौर-कृष्ण—दो शक्तियाँ भेजीं। उनमेंसे गौर शक्ति वसुदेवद्वारा रोहिणीके गर्भसे प्रकट हुई तथा कृष्ण शक्ति वसुदेवके अंश एवं देवकीके गर्भसे अवतार लिया। पुण्यात्मा महापुरुष रोहिणीनन्दनने ‘राम’ नाम धारण किया और देवकीनन्दनका ‘श्रीकृष्ण’ नाम रखा गया। नरेश्वर! तुम उन दोनोंके कर्म मुझसे सुनो ॥ ३३—३६ ॥

राजन्! गोकुलमें रामने बाल्यकालमें ही रात्रिके समय एक पक्षीरूपधारिणी राक्षसीको मारा था और श्रीकृष्णने ‘पूतना’ का संहार किया था। रामने तालवनमें ‘धेनुक’ नामक राक्षसको उसके गणोंसहित मारा था और श्रीकृष्णने भी शकट उलट दिया तथा ‘यमलान्तुन’ नामक दो वक्षोंको

प्रलम्बो निधनं नीतो दैत्यो रामेण मुष्टिना ।
कालियो दमितस्तोये कालिन्द्यां विषपत्रगः ॥ ३९

गोवर्धनश्च कृष्णोन धूतो वर्षति वासवे ।
गोकुलं रक्षता तेन अरिष्टश्च निपातितः ॥ ४०

केशी च निधनं नीतो दुष्टवाजी महासुरः ।
अकूरेण च तौ नीतौ मधुरायां महात्मना ॥ ४१

दर्दश तु निमग्नश्च रामकृष्णौ महामते ।
स्वं स्वं रूपं जले तस्य अकूरस्य विभूतिदम् ॥ ४२

अनयोर्भाविमत्तुलं ज्ञात्वा दृष्ट्वा च यादवाः ।
बभूवुः प्रीतमनसो ह्यकूरश्च नृपात्मजः ॥ ४३

दुर्बचक्षु प्रजल्पन्तं कंसस्य रजकं ततः ।
कृष्णो जघान रामश्च तद्वस्त्रं ब्रह्मणे ददौ ॥ ४४

मालाकारेण भक्त्या तु सुपनोभिः प्रपूजितौ ।
ततस्तस्य वरान्दत्त्वा दुर्लभान् रामकेशवी ॥ ४५

गच्छन्ती राजमार्गं तु कुञ्जया पूजिती ततः ।
तत्कौटिल्यमपानीय विरूपं कार्मुकं ततः ॥ ४६

बभूज कृष्णो बलवान् कंसस्याकृष्ण तत्क्षणात् ।
रक्षपालान् जघानाथ रामस्तत्र खलान् बहून् ।
हत्वा कुवलयाख्यं च गजं रामजनार्दनौ ॥ ४७

प्रविश्य रङ्गं गजदन्तपाणी
मदानुलिसौ बसुदेवपुत्रौ ।
युद्धे तु रामो निजघान मल्लं
शैलोपमं मुष्टिकमव्ययात्मा ॥ ४८

कृष्णोऽपि चाणूरमतिप्रसिद्धं
बलेन वीर्येण च कंसमल्लकम् ।
युद्ध्या तु तेनाथ चिरं जघान
तं दैत्यमल्लं जनसंसदीशः ॥ ४९

उखाड़ दिया था । रामने 'प्रलम्ब' नामक राक्षसको मुक्केसे मारकर मौतके घाट उतारा तथा श्रीकृष्णने यमुनाके जलमें रहनेवाले विषेले सर्प 'कालिय' का दमन किया और इन्द्रके वर्षा करते समय वे सात दिनोंतक हाथपर गोवर्धनपर्वत धारण किये रखड़े हे । इतना ही नहीं, श्रीकृष्णने गोकुलकी रक्षा करते हुए अरिष्टासुरका भी वध किया था । फिर दुष्ट धोड़ेका रूप धारण करनेवाले महान् असुर केशीका उन्होंने संहार किया; इसके बाद महात्मा अकूरजी [कंसकी आज्ञासे] आये तथा राम और कृष्ण—दोनों बन्धुओंको मधुरा ले गये । महामते । मार्गमें अकूरजीने यमुनामें हुबकी लगाते समय जलके भीतर राम और कृष्ण—दोनोंको देखा । उन दोनों बन्धुओंने अकूरजीको अपने—अपने ऐक्षर्यदायक स्वरूपका दर्शन कराया । नृपनन्दन ! उन दोनोंके अनुष्ठ प्रसरणको देख और जानकर अकूरजीके साथ ही समस्त यादवगण बहुत ही प्रसन्न हुए ॥ ३७—४३ ॥

तत्पक्षात् [मधुरामें भ्रमण करते समय] कटुवचन कहनेवाले कंसके एक धोबीको कृष्ण और रामने मार डाला तथा उसके बस्त्र ब्राह्मणोंको बाँट दिये । फिर मार्गमें एक मालीने फूलोंसे भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की । तब राम और श्रीकृष्णने उसे दुर्लभ वर दिये । उसके बाद जब वे सङ्कपर धूम रहे थे, उसी समय 'कुञ्जा' दासीने आकर उनका आदर-सत्कार किया । तब श्रीकृष्णने उसकी भड़ी लगनेवाली कुञ्जताको दूर कर दिया । तदनन्तर [ब्रह्मशालामें रखे गये] कंसके धनुषको महाबली श्रीकृष्णने [बलपूर्वक] खोंचा और तत्काल ही तोड़ डाला । उस समय वहाँके अनेकों दुष्ट रक्षकोंको बलरामजीने मार डाला । फिर बलराम और श्रीकृष्ण—दोनोंने मिलकर 'कुवलयापीड' नामक हाथीको भी मार गिराया ॥ ४४—४७ ॥

तदनन्तर उन दोनों बसुदेवकुमारोंने हाथीके दौड़ उखाड़कर हाथमें ले लिये और उसके मदसे सने हुए ही रङ्गभूमिमें प्रवेश किया । वहाँ अविनाशी बलरामजीने पर्वताकार 'मुष्टिक' नामक पहलवानको कुशतीमें मार डाला और श्रीकृष्णचन्द्रने भी कंसके 'चाणूर' नामक

मृतस्य मल्लस्य च मुष्टिकस्य
मित्रं पुनः पुष्करकं स रामः।
युद्धार्थमुत्थाय कृतक्षणं तं
मुष्टिप्रहारेण जघान वीरः ॥ ५०

कृष्णः पुनस्तान् सकलात्रिहत्य
निगृह्ण कंसं विनिपात्य भूमी।
स्वयं च देहे विनिपत्य तस्य
हत्या तथोव्या निचकर्ष कृष्णः ॥ ५१

हते तु कंसे हरिणातिकुद्धो
भ्रातापि तस्यातिरुषेण चोत्थितः।

सुनाभसंज्ञो बलवीर्ययुक्तो
रामेण नीतो यमसादनं क्षणात् ॥ ५२

तौ बन्धु मातापितरौ सुहृष्टौ
जनैः समस्तैर्यदुभिः सुसंबृतौ।
कृत्या नृपं चोग्रसेनं यदूनं
सभां सुधर्मा ददतुमहेन्द्रीम् ॥ ५३

सर्वज्ञभावादपि रामकृष्णौ
सम्प्राप्य सांदीपनितोऽस्त्रविद्याम्।

गुरोः कृते पञ्चजनं निहत्य
यमं च जित्वा गुरवे सुतं ददी ॥ ५४

निहत्य रामो मगधेश्वरस्य
बलं समस्तं बहुशः समागतम्।

दिव्यास्त्रपूरैरमराविमावुभी
शुभां पुरीं चक्रतुः सागरान्ते ॥ ५५

तस्यां विधायाथ जनस्य आसं
हत्या शृगालं हरिरव्ययात्मा।

दग्ध्या महान्तं यवनं ह्युपाया-
द्वां च दत्त्वा नृपतेर्जगाम ॥ ५६

रामोऽथ संशान्तसमस्तविग्रहः
सम्प्राप्य नन्दस्य पुनः स गोकुलम्।

वृन्दावने गोपजनैः सुभाषितः
सरिण रामो यमुनां चकर्ष ॥ ५७

पहलवानका, जो अपने बल और पराक्रमके कारण बहुत ही प्रसिद्ध था, कच्छूमर निकाल दिया। भगवान् श्रीकृष्णने उस जन-समाजमें दैत्य मल्ल चाणूरके साथ देरतक युद्ध करनेके बाद उसका वध किया था। फिर वीरवर बलरामजीने युद्धके लिये उत्साहपूर्वक उठे हुए पुष्करको, जो 'मृत मुष्टिक' नामक मल्लका मित्र था, मुकेसे ही मार डाला। इसके बाद श्रीकृष्णने वहाँ उपस्थित समस्त दैत्योंका संहार करके कंसको पकड़ लिया और उसे मझके नीचे भूमिपर पटककर वे स्वयं भी उसके शरीरपर कूद पड़े। इस प्रकार कंसका वध करके श्रीकृष्णने उसके मृत देहको भूमिपर घसीटा। श्रीकृष्णद्वारा कंसके मरे जानेपर उसका बलवान् एवं पराक्रमी भ्राता सुनाभ अत्यन्त क्रोधपूर्वक युद्धके लिये उठा; किंतु उसे भी बलरामजीने तुरंत ही मारकर यमलोक भेज दिया ॥ ४८—५२ ॥

तदनन्तर समस्त यदुवंशियोंसे घिरे हुए उन दोनों भाइयोंने अत्यन्त प्रसन्न हुए माता-पिताकी बन्दना करके श्रीउग्रसेनको ही यदुवंशियोंका राजा बनाया और उन्हें इन्द्रकी 'सुधर्मा' नामक दिव्य सभा प्रदान की ॥ ५३ ॥

यद्यपि बलराम और श्रीकृष्ण सर्वज्ञ थे, तो भी उन्होंने सांदीपनिसे अस्त्र-विद्याकी शिक्षा पायी। फिर गुरुको दक्षिणा देनेके लिये उद्यत हो, 'पञ्चजन' दैत्यको मारा और यमराजको जीतकर वे दीर्घकालके मरे हुए गुरुपुत्रको वहाँसे ले आये। वही पुत्र उन्होंने गुरुजीको दक्षिणाके रूपमें अर्पित किया ॥ ५४ ॥

फिर बलरामजीने अपने ऊपर अनेकों बार चढ़ाई करनेवाले मगधराज जरासंधके समस्त सैनिकोंको दिव्यास्त्रोंकी वर्षा करके मार डाला। इसके बाद उन दोनों देवेशरोंने समुद्रके भीतर एक सुन्दर पुरी द्वारकाका निर्माण कराया। उसमें मधुरावासी कुटुम्बीजनोंको बसाकर अविनाशी भगवान् श्रीकृष्णने राजा शृगालका वध किया। फिर एक उपाय करके महान् योद्धा यवनराजको भस्म कर, राजा मुचुकुन्दको वरदान दे, वे द्वारकामें लौट गये ॥ ५५-५६ ॥

तत्पश्चात् सारा बखेड़ा समाप्त हो जानेपर बलरामजी एक बार फिर नन्दके गोकुल (नन्दगाँव)-में गये और वहाँ वृन्दावनमें गोपजनोंसे भलीभौति प्रेमालाप आदिके द्वारा सम्मानित हुए। वहाँ उन्होंने अपने हलसे यमुनाजीका आकर्षण किया था।

सम्प्राप्य भार्यामध्ये रेवतीं च
रेमे तथा द्वारावतीं स लाङ्गली।
क्षात्रेण सम्प्राप्य तदा स रुक्मिणीं
कृष्णोऽपि रेमे पुरुषः पुराणः ॥ ५८

चूते कलिङ्गराजस्य दन्तानुत्पाट्य लाङ्गली।
जघानाष्टपदेनैव रुक्मिणं चानुतान्वितम् ॥ ५९

कृष्णः प्राग्न्योतिथो दैत्यान् हयग्रीवादिकान् बहून्।
हत्वा तु नरकं चापि जग्राह च महद्धनम् ॥ ६०

अदित्यै कुण्डले दत्त्वा जित्वेन्द्रं दैवतैः सह।
गृहीत्वा पारिजातं तु ततो द्वारावतीं पुरीम् ॥ ६१

कुरुभिश्च धृतं साम्बं राम एको महाबलः।
कुरुणां भयमुत्पाद्य मोचयामास वीर्यवान् ॥ ६२

बाणबाहुवनं छित्रं कृष्णोन् युधि धीमता।
रामेण तद्वलं नीतं क्षयं कोटिगुणं क्षणात् ॥ ६३

देवापकारी रामेण निहतो वानरो महान्।
ततोऽर्जुनस्य साहाय्यं कुर्वता कंसशत्रुणा ॥ ६४

सर्वभूतवधाद्राजन् भुवो भारोऽवरोपितः।
तीर्थयात्रा कृता तद्वद्रामेण जगतः कृते ॥ ६५

रामेण निहता ये तु तात्र संख्यातुमुत्सहे।
एवं तौ रामकृष्णौ तु कृत्वा दुष्टवधं नृप ॥ ६६

अवतार्य भुवो भारं जग्मतुः स्वेच्छया दिवम्।
इत्येती कथिती दिव्यी प्रादुर्भावीं मया तव।
संक्षेपाद्रामकृष्णस्य काल्क्यं शृणु ममाधुना ॥ ६७

इत्थं हि शक्ती सितकृष्णारूपे
होरेनन्तस्य महाबलाक्ष्ये।

कृत्वा तु भूमेन्द्रप भारहानि
पुनश्च विष्णुं प्रतिजगमतुस्ते ॥ ६८

तदनन्तर द्वारकामें 'रेवती' नामकी भार्याको पाकर बलरामजी उनके साथ सुखपूर्वक रहने लगे और पुराणपुरुष श्रीकृष्णचन्द्र भी क्षत्रियधर्मके अनुसार 'रुक्मिणी' नामक भार्याको हस्तगत करके उसके साथ सानन्द विहार करने लगे। तदनन्तर एक बार जूआ खेलते समय हलाधरने कलिङ्गराजके दौतोंको उखाड़ लिया और असत्यका आश्रय लेनेवाले रुक्मीको भी पासेसे ही मार गिराया। इसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने भी प्राण्योतिष्पुरुके हयग्रीव आदि बहुत-से दैत्योंको यमलोक पहुँचाया तथा नरकासुरका भी संहार करके वे उसके बहासे बहुत धन ले आये। बहासे श्रीकृष्ण इन्द्रलोकमें गये। वहाँ उन्होंने अदितिको उनके वे दोनों दिव्य कुण्डल दिये, जो नरकासुरने हड्डप लिये थे। फिर देवताओंसहित इन्द्रको जीतकर पारिजात वृक्ष साथ ले, वे अपनी पुरी द्वारकाको लौट आये ॥ ५७—६१ ॥

तदनन्तर महाबली एवं महापराक्रमी बलरामजीने अकेले ही हस्तिनापुरमें जा कौरवोंको भय दिखाया और उनके द्वारा बंदी बनाये गये [श्रीकृष्णपुत्र] साम्बको छुड़ाया। फिर बुद्धिमान् श्रीकृष्णचन्द्रने युद्धमें बाणासुरकी भुजाओंको काट ढाला और बलरामजीने उसके करोड़ों सैनिकोंका क्षणभरमें ही संहार कर दिया। इसके बाद बलरामजीने देववैरी 'हिंचिद' नामक महान् वानरका वध किया। इसी तरह भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनकी सहायता करके उनके द्वारा समस्त दुष्ट क्षत्रियोंका वध कराया और पृथ्वीका सारा भार उतार दिया। उन दिनों बलरामजी लोकहितके लिये तीर्थयात्रा कर रहे थे ॥ ६२—६५ ॥

राजन्! बलराम और श्रीकृष्णचन्द्रने जितने दुष्टोंका वध किया था, उनकी गणना हम नहीं कर सकते। इस प्रकार दोनों भाई बलराम और श्रीकृष्णने दुष्टोंका संहार करके भूमिका भार दूर किया। फिर वे स्वेच्छातुसार वैकुण्ठधामको पधार गये। इस तरह राम और श्रीकृष्णके इन दिव्य अवतारोंको मैंने तुम्हें संक्षेपसे कह सुनाया। अब मुझसे 'कलिक-अवतार' का वर्णन मुनो। नरेश! इस प्रकार अनन्त भगवान् विष्णुकी वे दोनों महाबलकी गौर और कृष्ण शक्तियाँ पृथ्वीका भार उतारकर पुनः अपने विष्णुस्वरूपमें लौन हो गयीं ॥ ६६—६८ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे कृष्णप्रादुर्भावको नाम त्रिपञ्चकोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव' 'नामक तिरपनका अध्याय पूरा हुआ ॥ ५३ ॥

चौवनवाँ अध्याय

कलिक-चरित्र और कलि-धर्म

मार्कण्डेय उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि शृणु राजन् समाहितः ।
प्रादुर्भावं हरे: पुण्यं कल्क्याख्यं पापनाशनम् ॥ १
कलिकालेन राजेन्द्र नहे धर्मं महीतले ।
वृद्धिंगते तथा पापे व्याधिसम्पीडिते जने ॥ २
देवैः सम्प्रार्थितो विष्णुः क्षीराव्यौ स्तुतिपूर्वकम् ।
साम्भलाख्ये महाग्रामे नानाजनसमाकुले ॥ ३
नामा विष्णुयशः पुत्रः कल्की राजा भविष्यति ।
अश्वमारुह्य खद्गेन म्लेच्छानुत्सादयिष्यति ॥ ४
म्लेच्छान् समस्तान् क्षितिनाशभूतान्
हत्वा स कल्की पुरुषोत्तमांशः ।
कृत्वा च यागं बहुकाङ्क्षानारख्यं
संस्थाप्य धर्मं दिवमारुरोह ॥ ५
दशावताराः कथितास्तर्वैव
हरेर्मवा पार्थिव पापहन्तुः ।
इमं सदा यस्तु नृसिंहभक्तः
शृणोति नित्यं स तु याति विष्णुम् ॥ ६

राजेन्द्र

तत्र प्रसादाद्विप्रेन्द्र प्रादुर्भावाः श्रुता मया ।
नारायणस्य देवस्य शृणवतां कल्मषापहाः ॥ ७
कलिं विस्तरतो द्यूहि त्वं हि सर्वविदां वरः ।
ज्ञाह्यणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च मुनिसत्तम ॥ ८
किमाहाराः किमाचारा भविष्यन्ति कल्लौ युगे ।

सूत उवाच

शृणु ध्वमृष्यः सर्वे भरद्वाजेन संयुताः ॥ ९
सर्वे धर्मा विनश्यन्ति कृष्णो कृष्णत्वमागते ।
तस्मात् कलिर्महाघोरः सर्वपापस्य साधकः ॥ १०

मार्कण्डेयजी बोले—राजन्! इसके बाद मैं तुमसे भगवान् विष्णुके 'कलिक' नामक पावन अवतारका वर्णन करता हूँ, जो समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला है; तुम सावधान होकर सुनो। राजेन्द्र! जब कलिकालद्वारा पृथ्वीपर धर्मका नाश हो जायगा, पाप बढ़ जायगा और सभी लोग नाना प्रकारके रोगोंसे पीड़ित होने लगेंगे, तब देवतालोग क्षीरसागरके तटपर बाकर वहाँ भगवान् विष्णुकी स्तुति करते हुए उनसे प्रार्थना करेंगे। तदनन्तर भगवान् 'साम्भल' नामक महान् ग्राममें, जो बहुसंख्यक मनुष्योंसे परिपूर्ण होगा, विष्णुयशाके पुत्ररूपसे अवतार ले, 'कलिक' नामसे विख्यात राजा होंगे। फिर वे ओडेपर चढ़कर, हाथमें तलवार ले, म्लेच्छोंका नाश करेंगे। इस प्रकार भगवान् विष्णुके अंशभूत 'कलिक' भूमण्डलका ध्वंस करनेवाले समस्त म्लेच्छोंका संहार कर, 'बहुकाङ्क्षन' नामक यज्ञ करके, धर्मकी स्थापना कर स्वर्गारूप हो जायेंगे। राजेन्द्र! पापोंका नाश करनेवाले भगवान् विष्णुके इन दस अवतारोंका मैंने वर्णन किया। जो भगवद्वक्त पुरुष इन अवतार-चरित्रोंका नित्य श्रवण करता है, वह भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेता है ॥ १—६ ॥

राजा बोले—विश्रेन्द्र! आपके प्रसादसे मैंने भगवान् नारायणके अवतारोंका, जो श्रोताओंके पापोंका नाश करनेवाले हैं, श्रवण कर लिया। मुनिसत्तम! अब आप कलिका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये; क्योंकि आप सर्वज्ञ महात्माओंमें सबसे श्रेष्ठ हैं। कृपया यताइये कि कलियुगमें ज्ञाह्यण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कैसे आहार और आचरणवाले होंगे ॥ ७-८ ॥, ॥

सूतजी बोले—भरद्वाजसहित आप सभी ऋषिगण सुनें। राजाके यों प्रेरणा करनेपर मार्कण्डेयजीने कलि-धर्मका इस प्रकार निरूपण किया। भगवान् कृष्णचन्द्रके परमधाम पधार जानेपर उनके अन्तर्धानिके फलस्वरूप समस्त पापोंका साधक महाघोर कलियुग प्रकट होगा;

ब्राह्मणः क्षत्रिया वैश्या: शूद्रा धर्मपराइमुखाः ।
घोरे कलियुगे प्राप्ते द्विजदेवपराइमुखाः ॥ ११

व्याजधर्मरताः सर्वे दम्भाचारपरायणाः ।
असूयानिरताश्चैव वृथाहंकारदूषिताः ॥ १२

सर्वे: संक्षिप्यते सत्यं नरैः पण्डितगच्छितैः ।
अहमेवाधिक इति सर्वं एव बदन्ति वै ॥ १३

अधर्मलोलुपाः सर्वे तथान्येषां च निन्दकाः ।
अतः स्वल्पायुषः सर्वे भविष्यन्ति कलौ युगे ॥ १४

अल्पायुष्टान्मनुष्याणां न विद्याग्रहणं द्विजाः ।
विद्याग्रहणशून्यत्वादधर्मो वर्तते पुनः ॥ १५

ब्राह्मणाद्यास्तथा वर्णाः संकीर्यन्ते परस्परम् ।
कामक्रोधपरा मूढा वृथा संतापपीडिताः ॥ १६

बद्धवैरा भविष्यन्ति परस्परवधेष्पतवः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या: सर्वे धर्मपराइमुखाः ॥ १७

शूद्रतुल्या भविष्यन्ति तपः सत्यविवर्जिताः ।
उत्तमा नीचतां यान्ति नीचाश्चोत्तमतां तथा ॥ १८

राजानो द्रव्यनिरतास्तथा लोभपरायणाः ।
धर्मकञ्चुकसंबीता धर्मविध्वंसकारिणः ॥ १९

घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्वाधर्मसमन्विते ।
यो योऽश्वरथनागाढः स स राजा भविष्यति ॥ २०

पितृन् पुत्रा नियोक्त्यन्ति वध्वः शशूश्च कर्मसु ।
पतीन् पुत्रान् बज्ज्ञयित्वा गमिष्यन्ति स्त्रियोऽन्यतः ॥ २१

पुरुषाल्पं बहुस्त्रीकं श्वाहुत्यं गवां क्षयः ।
धनानि श्लाघनीयानि सतां वृत्तमपूजितम् ।
खुण्डवर्षी च पर्जन्यः पन्थानस्तस्करावृताः ।
सर्वः सर्वं च जानाति वृद्धाननुपसेव्य च ॥ २२

न कश्चिदकविनामि सुरापा ब्रह्मवादिनः ।
किंकराश्च भविष्यन्ति शूद्राणां च द्विजातयः ॥ २३

उस समय सभी धर्म नष्ट हो जायेंगे । घोर कलियुग प्राप्त होनेपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी लोग धर्म, ब्राह्मण तथा देवताओंसे विमुख हो जायेंगे । सभी किसी-न-किसी व्याजसे (स्वार्थसिद्धिके लिये) ही धर्ममें प्रवृत्त होंगे; दम्भ—दौंगका आचरण करेंगे । एक-दूसरेमें दोप दूँडनेवाले और व्यर्थ अभिमानसे दूषित विचारवाले होंगे । पाण्डित्यका गर्व रखनेवाले सभी मनुष्य सत्यका अपलाप करेंगे और सब लोग यही कहेंगे कि 'मैं ही सबसे बड़ा हूँ' । कलियुगमें सभी अधर्मलोलुप तथा दूसरोंकी निन्दा करनेवाले होंगे, अतः सबकी आयु बहुत थोड़ी होगी । द्विजगण ! मनुष्योंकी आयु अल्प होनेसे ब्राह्मणलोग अधिक विद्याध्ययन नहीं कर सकेंगे । विद्याध्ययनसे शून्य होनेके कारण उनके हारा पुनः अधर्मकी ही प्रवृत्ति होगी ॥ ९—१५ ॥

ब्राह्मण आदि खण्डोंमें परस्पर संकरता आ जायगी । वे कामी, क्रोधी, मूर्ख और व्यर्थ संतापसे पीड़ित होंगे । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आपसमें थेर बौधकर एक-दूसरेका वध कर देनेकी इच्छावाले होंगे । वे सभी अपने-अपने धर्मसे विमुख होंगे । तप एवं सत्यभाषणादिसे रहित होकर शूद्रके समान हो जायेंगे । उत्तम वर्णवाले नीचे गिरेंगे और नीच वर्णवाले उत्तम बनेंगे । राजालोग लोभी तथा केवल धनोपार्जनमें ही प्रवृत्त रहेंगे । वे धर्मका चोला पहनकर उसीकी ओटमें धर्मका विध्वंस करनेवाले होंगे । समस्त अधर्मोंसे युक्त घोर कलियुगके आ जानेपर जो-जो घोड़े, रथ और हाथीसे सम्पन्न होंगे, वे-वे ही राजा कहे जायेंगे । पुत्र अपने पितासे काम करायेंगे और बहुरूप साससे करम लेंगी । स्त्रियाँ पति और पुत्रको धोखा देकर अन्य पुरुषोंके पास जाया करेंगी ॥ १६—२१ ॥

पुरुषोंकी संख्या कम और स्त्रियोंकी अधिक होंगी । कुत्तोंकी अधिकता होगी और गाँओंका हास । सबके मनमें धनका ही महत्व रहेगा । सत्पुरुषोंके सदाचारका सम्मान नहीं होगा । मैथ कहीं वर्षा करेंगे, कहीं नहीं करेंगे । समस्त मार्ग चोरोंसे घिरे रहेंगे । गुरुजनोंकी सेवामें रहे बिना ही सभी लोग सब कुछ जाननेका अभिमान करेंगे । कोई भी ऐसा न होगा जो अपनेको कवि न मानता हो । शर्व पीनेवाले लोग ब्रह्मज्ञानका उपदेश करेंगे । ब्राह्मण, क्षत्रिय,

द्विष्णन्ति पितरं पुत्रा गुरुं शिष्या द्विष्णन्ति च ।
 पतिं च वनिता द्वेष्टि कली घोरे समागते ॥ २४
 लोभाभिपूतमनसः सर्वे दुष्कर्मशीलिनः ।
 पराम्बलोलुपा नित्यं भविष्यन्ति द्विजातयः ॥ २५
 परस्त्रीनिरताः सर्वे परद्रव्यपरायणाः ।
 घोरे कलियुगे प्राप्ते नरं धर्मपरायणम् ॥ २६
 अमृथानिरताः सर्वे उपहासं प्रकुर्वते ।
 न व्रतानि चरिष्यन्ति ब्राह्मणा वेदनिन्दकाः ॥ २७
 न यक्ष्यन्ति न होष्यन्ति हेतुवादैर्विकुलिताः ।
 द्विजाः कुर्वन्ति दम्भार्थं पितृयज्ञादिकाः क्रियाः ॥ २८
 न पात्रेष्वेव दानानि कुर्वन्ति च नरास्तथा ।
 क्षीरोपाधिनिमित्तेन गोषु प्रीतिं प्रकुर्वते ॥ २९
 ब्रह्मन्ति च द्विजानेव धनार्थं राजकिंकराः ।
 दानयज्ञजपादीनां विक्रीणन्ते फलं द्विजाः ॥ ३०
 प्रतिग्रहं प्रकुर्वन्ति चण्डालादेरपि द्विजाः ।
 कले: प्रथमपादेऽपि विनिन्दन्ति हरिं नराः ॥ ३१
 युगान्ते च हरेनाम नैव कञ्चित् स्मरिष्यति ।
 शूद्रस्त्रीसङ्गनिरता विधवासंगलोलुपा: ॥ ३२
 शूद्रान्नभोगनिरता भविष्यन्ति कली द्विजाः ।
 न च द्विजातिशुश्रूषां न स्वर्धमप्रवर्त्तनम् ॥ ३३
 करिष्यन्ति तदा शूद्राः प्रब्रज्यालिङ्गिनोऽधमाः ।
 सुखाय परिवीताश्च जटिला भस्मधूर्धरा: ॥ ३४
 शूद्रा धर्मान् प्रवक्ष्यन्ति कूटबुद्धिविशारदाः ।
 एते चान्ये च ब्रह्मवः पाषण्डा विप्रसन्नमाः ॥ ३५
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या भविष्यन्ति कली युगे ।
 गीतवाद्यरता विप्रा वेदवादपराइमुखाः ॥ ३६
 भविष्यन्ति कली प्राप्ते शूद्रमार्गप्रवर्तिनः ।
 अल्पद्रव्या वृथालिङ्गा वृथाहंकारदूषिताः ॥ ३७
 हतारो न च दातारो भविष्यन्ति कली युगे ।
 प्रतिग्रहपरा नित्यं द्विजाः समार्गशीलिनः ॥ ३८
 आत्मस्तुतिपराः सर्वे परनिन्दापरास्तथा ।
 विश्वासहीनाः पुरुषा देववेदद्विजातिषु ॥ ३९

और वैश्य शूद्रोंके सेवक होंगे । घोर कलिकाल आनेपर पुत्र पितासे, शिष्य गुरुसे और स्त्रियाँ अपने पतियोंसे द्वेष करेंगी । सधका चित्त लोभसे आङ्गान्त होगा, अतएव सभी लोग दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त होंगे । ब्राह्मण सदा दूसरोंके ही अन्तके सोभी होंगे । सभी परस्त्रीसेवी और परधनका अपहरण करनेवाले होंगे । घोर कलियुग आ जानेपर दूसरोंमें दोषदृष्टि रखनेवाले सभी लोग धर्मपरायण पुरुषोंका उपहास करेंगे । ब्राह्मणलोग वेदकी निन्दामें प्रवृत्त होकर व्रतोंका आचरण नहीं करेंगे । तर्कवादसे कुत्सित विचार ही जानेके कारण वे न तो यज्ञ करेंगे और न हवनमें ही प्रवृत्त होंगे । द्विजलोग दम्भके लिये ही पितृयज्ञ आदि क्रियाएँ करेंगे । मनुष्य प्रायः सत्याग्रको दान नहीं देंगे । लोग दूध आदिके लिये ही गौओंमें प्रेम रखेंगे । राजाके सिपाही धनके लिये ब्राह्मणोंको ही बौधेंगे । द्विजलोग दान, यज्ञ और जप आदिका फल प्रायः बेचा करेंगे । ब्राह्मणलोग चण्डाल आदि अस्युश्य जातियोंसे भी दान लेंगे । कलियुगके प्रथम चरणमें भी लोग भगवान्‌की निन्दा करनेवाले हो जायेंगे ॥ २२—३१ ॥

कलियुगके अन्तिम समयमें तो कोई भगवान्‌के नामका स्मरणतक न करेगा । कलियुगके द्विज शूद्रोंकी स्त्रियोंके साथ सहवास करेंगे और विधवा-संगमके लिये लालायित रहेंगे तथा वे शूद्रोंका भी अन्त भक्षण करनेवाले होंगे । उस समय अधम शूद्र संन्यासका चिह्न धारणकर न तो द्विजातियोंकी सेवा करेंगे और न उनकी स्वर्धममें ही प्रवृत्ति होगी । वे अपने सुखके लिये जनेक पहनेंगे, जटा रखायेंगे और शारीरमें खाक-भृत लपेटे फिरेंगे । विप्रवरो ! कूटबुद्धिमें निपुण शूद्रगण धर्मका उपदेश करेंगे । ऊपर कहे अनुसार तथा और भी तरहके बहुत-से पाषण्डी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कलियुगमें उत्पत्त होंगे । कलियुग आनेपर विप्रगण वेदके स्वाध्यायसे विमुख हो गाने-बजानेमें मन लगायेंगे और शूद्रोंके मार्गका अनुसरण करेंगे । कलियुगमें लोग धोड़े धनचाले, झूठा वेष धारण करनेवाले और मिथ्याभिमानसे दूषित होंगे । वे दूसरोंका धन हरण कर लेंगे, पर अपना किसीको नहीं देंगे । उस समय अच्छे पथपर चलनेवाले ब्राह्मण सदा दान लेते फिरेंगे । सभी लोग आत्मप्रशंसक और दूसरोंकी निन्दा करनेवाले होंगे । देवता, वेद और ब्राह्मणोंपरसे सबका विश्वास उठ जायगा ॥ ३२—३९ ॥

असंश्रुतोक्तिवक्तारो द्विजद्वेषरतास्तथा ।
स्वधर्मत्यागिनः सर्वे कृतज्ञा भिन्नवृत्तयः ॥ ४०

याचकाः पिशुनाश्चैव भविष्यन्ति कल्ली युगे ।
परापवादनिरता आत्मस्तुतिपरायणाः ॥ ४१

परस्वहरणोपायचिन्तकाः सर्वदा जनाः ।
अत्याहादपरास्तत्र भुज्ञानाः परवेशमनि ॥ ४२

तस्मिन्नेव दिने प्रायो देवतार्चनतत्पराः ।
तत्रैव निन्दानिरता भुक्त्वा चैकत्र संस्थिताः ॥ ४३

द्विजाश्च क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्ये च जातयः ।
अत्यन्तकामिनश्चैव संकीर्यन्ते परस्परम् ॥ ४४

न शिष्यो न गुरुः कश्चिन्न पुत्रो न पिता तथा ।
न भार्या न पतिश्चैव भविता तत्र संकरे ॥ ४५

शूद्रवृत्त्यैव जीवन्ति द्विजा नरकभोगिनः ।
अनावृष्टिभयप्राया गगनासक्तदृष्टयः ॥ ४६

भविष्यन्ति जनाः सर्वे तदा क्षुद्रयकातराः ।
अन्नोपाधिनिमित्तेन शिष्यान् गृहन्ति भिक्षावः ॥ ४७

उभाभ्यामपि पाणिभ्यां शिरः कण्ठद्वयनं स्त्रियः ।
कुर्वन्त्यो गुरुभर्तृणामाज्ञा भेत्यन्ति ता हिताः ॥ ४८

यदा यदा न यक्ष्यन्ति न होष्यन्ति द्विजातयः ।
तदा तदा कलेवृद्धिरनुमेया विचक्षणैः ॥ ४९

सर्वधर्मेषु नष्टेषु याति निःश्रीकतां जगत् ।

सुत उक्तव्य

एवं कले: स्वरूपं तत्कथितं विग्रसत्तमाः ॥ ५०

हरिभक्तिपरानेव न कलिर्बाधिते द्विजाः ।
तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ध्यानमेव हि ॥ ५१

सब लोग वेदविरुद्ध वचन घोलनेवाले और ब्राह्मणोंके द्वेषी होंगे। सभी स्वधर्मके त्यागनेवाले, कृतघ्न और अपने वर्णधर्मके विरुद्ध वृत्तिसे आजीविका चलानेवाले होंगे। कलियुगमें लोग भिखुमंगे, चुगलखोर, दूसरोंकी निन्दा करनेवाले और अपनी ही प्रशंसामें तत्पर होंगे। मनुष्य सदा दूसरोंके धनका अपहरण करनेके उपायको ही सोचते रहेंगे। यदि उन्हें दूसरोंके घरमें भोजन करनेका अवसर मिल जाय तो वे वडे ही आनन्दित होंगे और प्रायः उसी दिन वे दूसरोंको दिखानेके लिये देवताकी पूजामें प्रवृत्त होंगे। दूसरोंकी निन्दामें तत्पर रहनेवाले वे ब्राह्मण वहाँ ही सबके साथ एक आसनपर बैठकर भोजन करेंगे ॥ ४०—४३ ॥

उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—सभी जातियोंके लोग अत्यन्त कामी होंगे और एक-दूसरेसे सम्पर्क स्थापित करके वर्ण-संकर हो जायेंगे। वर्ण-संकरताकी दशामें गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र और पति-पत्नीका विचार नहीं रहेगा। नरकभोगी ब्राह्मणादि वर्ण प्रायः शूद्रवृत्तिसे ही जीविका चलायेंगे और नरकभोगी होंगे। लोगोंको प्रायः सदा अनावृष्टिका भय बना रहेगा और वे सदा आकाशकी ओर दृष्टि लगाये वृष्टिकी ही प्रतीक्षा करते रहेंगे। उस समयके सभी लोग सदा भूखकी पीड़ासे कातर रहेंगे। संन्यासी लोग अब-प्राप्तिके उद्देश्यसे ही लोगोंको शिष्य बनाते फिरेंगे। स्त्रियाँ दोनों ही हाथोंसे सिर खुजलाती हुई अपने पति तथा गुरुजनोंकी हितभरी आज्ञाओंका तिरस्कार करेंगी। द्विजातिलोग ज्यों-ज्यों यज्ञ और हवन आदि कर्म छोड़ते जायेंगे, त्यों-ही-त्यों बुद्धिमानोंको कलियुगकी बुद्धिका अनुमान करना चाहिये। उन्हींको कलियुग बाधा नहीं दे सकता। सत्ययुगमें तपस्या प्रथान है और त्रेतामें ध्यान।

सूतजी कहते हैं—विप्रवरो! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे कलियुगके स्वरूपका वर्णन किया। द्विजगण! जो लोग भगवान्के भजनमें तत्पर रहेंगे, उन्हींको कलियुग बाधा नहीं दे सकता। सत्ययुगमें तपस्या प्रथान है और त्रेतामें ध्यान।

द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे।
यतते दशभिर्वर्षेस्तेतायां हायनेन तत् ॥ ५२
द्वापरे तच्च मासेन अहोरात्रेण तत्कलौ।
ध्यायन् कृते यजन् यज्ञस्तेतायां द्वापरेऽर्चयन् ॥ ५३
यदाप्रोति तदाप्रोति कलौ संकीर्त्य केशवम्।
सप्तस्तजगदाधारं परमार्थस्वरूपिणम् ॥ ५४
घोरे कलियुगे प्राप्ते विष्णुं ध्यायन् न सीदति।
अहोऽतीव महाभाग्याः सकृद्य केशवार्चकाः ॥ ५५
घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्वकर्मवहिष्कृते।
न्यूनातिरिक्तता न स्यात्कलौ वेदोक्तकर्मणाम् ॥ ५६
हरिस्मरणमेवात्र सम्पूर्णफलदायकम्।
हरे केशव गोविन्द वासुदेव जगन्मय ॥ ५७
जनार्दन जगद्वाम पीताम्बरधराच्युत।
इतीरयन्ति ये नित्यं न हि तान् बाधते कलिः ॥ ५८
अहो हरिपरा ये तु कलौ सर्वभयंकरे।
ते सभाग्या महात्मानस्तत्संगतिरता अपि ॥ ५९
हरिनामपरा ये च हरिकीर्तनतत्पराः।
हरिपूजारता ये च ते कृतार्था न संशयः ॥ ६०
इत्येतद्वः समाख्यातं सर्वदुःखनिवारणम्।
सप्तस्तपुण्यफलदं कलौ विष्णोः प्रकीर्तनम् ॥ ६१

इति श्रीनरसिंहपुराणे कलितकाणकीर्तनं नाम चतुःपञ्चांशऽध्यायः ॥ ५४ ॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'कलियुगके लक्षणोंका वर्णन' नामक चौथवर्षी अध्याय पूरा हुआ ॥ ५४ ॥

द्वापरमें यज्ञको महान् बताया गया है और कलियुगमें एकमात्र दानको। सत्ययुगमें दस वर्षोंतक तप आदिके लिये प्रयत्न करनेसे जो फल मिलता है, वही त्रेतायुगमें एक ही वर्षके प्रयत्नसे सिद्ध होता है, द्वापरमें एक ही मासकी साधनासे सुलभ होता है और कलियुगमें केवल एक दिन-रात यज्ञ करनेसे प्राप्त हो जाता है। सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञोद्घारा यजन और द्वापरमें पूजन करनेसे, जो फल मिलता है, उसे ही कलियुगमें केवल भगवान्‌का कीर्तन करनेसे मनुष्य प्राप्त कर लेता है। घोर कलियुग प्राप्त होनेपर सप्तस्त जगत्के आधारभूत परमार्थस्वरूप भगवान् विष्णुका ध्यान करनेवाले मनुष्यको कलिसे बाधा नहीं पहुँचती। अहो! जिन्होंने एक बार भी भगवान् विष्णुका पूजन किया है, वे बड़े सौभाग्यशाली हैं ॥ ५०—५५ ॥

सम्पूर्ण कर्मोंका बहिष्कार करनेवाले कलियुगके प्राप्त होनेपर किये जानेवाले वेदोक्त कर्मोंमें न्यूनता या अधिकताका दोष नहीं होता। उसमें भगवान्‌का स्मरण ही पूर्ण फलदायक होता है। जो लोग हरे, केशव, गोविन्द, वासुदेव, जगन्मय, जनार्दन, जगद्वाम, पीताम्बरधर, अच्युत इत्यादि नामोंका उच्चारण करते रहते हैं, उन्हें कलियुग कभी बाधा नहीं पहुँचता। अहो! सबको भय देनेवाले इस कलिकालमें जो लोग भगवान् विष्णुको आराधनामें लगे रहते हैं, अथवा जो उनके आराधकोंका संग ही करते हैं, वे महात्माजन बड़े ही भाग्यशाली हैं। जो हरिनामका जप करते हैं, हरिकीर्तनमें लगे रहते हैं और सदा हरिकी पूजा ही किया करते हैं, वे मनुष्य कृतकृत्य हो गये हैं—इसमें संदेह नहीं है। इस प्रकार यह कलिका वृत्तान्त मैंने तुमसे कहा। कलियुगमें भगवान् विष्णुका नामकीर्तन सप्तस्त दुःखोंको दूर करनेवाला और सम्पूर्ण पुण्यफलोंको देनेवाला है ॥ ६६—६१ ॥

पचापनवाँ अध्याय

शुक्राचार्यको भगवान्‌की स्तुतिसे पुनः नेत्रकी प्राप्ति

राजोवाच

मार्कपडेय कथं शुकः पुरा बलिमखे गुरुः।
वापनेन स विद्वाक्षः स्तुत्वा तत्त्वाध्यवान् कथम् ॥ १

राजा बोले—मार्कपडेयजी ! पूर्वकालमें राजा बलिके यज्ञमें भगवान् वापनने जो देत्यगुरु शुक्राचार्यकी औंख छेद डाली थी, उसे उन्होंने पुनः भगवान्‌की स्तुतिद्वारा किस प्रकार प्राप्त किया ? ॥ १ ॥

मार्कण्डेय उकाच

वामनेन स विद्वाक्षो बहुतीर्थेषु भागवः।
जाह्नवीसलिले स्थित्वा देवमध्यर्थ्य वामनम्॥ २

कर्थ्यबाहुः स देवेशं शाखुचक्रगदाधरम्।
हृदि संचिन्त्य तुष्टाव नरसिंहं सनातनम्॥ ३

शुक उकाच

नमामि देवं विश्वेशं वामनं विष्णुरूपिणम्।
बलिदर्पहरं शान्तं शाश्वतं पुरुषोत्तमम्॥ ४

धीरं शूरं महादेवं शाङ्कुचक्रगदाधरम्।
विशुद्धं ज्ञानसम्पन्नं नमामि हरिमच्युतम्॥ ५

सर्वशक्तिमयं देवं सर्वगं सर्वभावनम्।
अनादिमजरं नित्यं नमामि गरुडध्वजम्॥ ६

सुरासुरर्भक्तिमद्भिः स्तुतो नारायणः सदा।
पूजितं च हृषीकेशं तं नमामि जगद्गुरुम्॥ ७

हृदि संकल्प्य यद्गूपं ध्यायन्ति यतयः सदा।
ज्योतीरुपमनीपम्यं नरसिंहं नमाम्यहम्॥ ८

न जानन्ति परं रूपं ब्रह्माद्या देवतागणाः।
यस्यावताररूपाणि समर्चन्ति नमामि तम्॥ ९

एतत्समस्तं येनादौ सृष्टं दुष्टवधात्मुनः।
त्रातं यत्र जगल्लीनं तं नमामि जनार्दनम्॥ १०

भक्तैरध्यर्थितो यस्तु नित्यं भक्तप्रियो हि यः।
तं देवममलं दिव्यं प्रणामामि जगत्पतिम्॥ ११

दुर्लभं चापि भक्तानां यः प्रयच्छति तोषितः।
तं सर्वसाक्षिणं विष्णुं प्रणामामि सनातनम्॥ १२

श्रीमार्कण्डेय उकाच

इति स्तुतो जगत्राथः पुरा शुकेण पार्थिव।
प्रादुर्बंधूव तस्याग्रे शाङ्कुचक्रगदाधरः॥ १३

उकाच शुकमेकाक्षं देवो नारायणस्तादा।
किमर्थं जाह्नवीतीरे स्तुतोऽहं तद्वीहि मे॥ १४

मार्कण्डेयजी बोले— वामनजीके द्वारा जब आँख सेदी गयी, तब भृगुनन्दन शुक्राचार्यजीने बहुत तीर्थोंमें भ्रमण किया। फिर एक जगह गङ्गाजीके जलमें खड़े हो भगवान् वामनकी पूजा की और अपनी बाँहें ऊपर उठाकर शङ्ख-चक्र-गदाधारी सनातन देवेशर भगवान् नरसिंहका मन-ही-मन ध्यान करते हुए वे उनकी स्तुति करने लगे॥ २-३॥

शुक्राचार्यजी बोले— मैं सम्पूर्ण विश्वके स्वामी और श्रीविष्णुके अवतार उन देवदेव वामनजीको नमस्कार करता हूँ, जो बलिका अभिमान चूर्ण करनेवाले, परम शान्त, सनातन पुरुषोत्तम हैं। जो धीर हैं, शूर हैं, सबसे बड़े देवता हैं, शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले हैं, उन विशुद्ध एवं ज्ञानसम्पन्न भगवान् अच्युतको मैं नमस्कार करता हूँ। जो सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक और सबको उत्पन्न करनेवाले हैं, उन जराहित, अनादिदेव भगवान् गरुडध्वजको मैं प्रणाम करता हूँ। देवता और असुर सदा ही जिन नारायणकी भक्तिपूर्वक स्तुति किया करते हैं, उन सर्वपूजित जगद्गुरु भगवान् हृषीकेशको मैं नमस्कार करता हूँ। यतिजन अपने अन्तःकरणमें भावनाद्वारा स्थापित करके जिनके स्वरूपका सदा ध्यान करते रहते हैं, उन अतुलनीय एवं ज्योतिर्मय भगवान् नृसिंहको मैं प्रणाम करता हूँ। ब्रह्म आदि देवतागण जिनके परमार्थ स्वरूपको भलीभीत नहीं जानते, अतः जिनके अवताररूपोंका ही वे सदा पूजन किया करते हैं, उन भगवान्को मैं नमस्कार करता हूँ। जिन्होंने प्रथम इस सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि की थी, फिर जिन्होंने दुष्टोंका वध करके इसकी रक्षा की है तथा जिनमें ही यह सारा जगत् लीन हो जाता है, उन भगवान् जनार्दनको मैं प्रणाम करता हूँ। भक्तजन जिनका सदा अर्चन करते हैं तथा जो भक्तोंके प्रेमी हैं, उन परम निर्मल, दिव्य कान्तिमय जगदीश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। जो प्रसन्न होनेपर अपने भक्तोंको दुर्लभ वस्तु भी प्रदान करते हैं, उन सर्वसाक्षी सनातन विष्णुभगवान्को मैं प्रणाम करता हूँ॥ ४-१२॥

श्रीमार्कण्डेयजी कहते हैं— राजन्। पूर्वकालमें शुक्राचार्यजीके द्वारा इस प्रकार स्तुति की जानेपर शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान् जगत्राथ उनके समक्ष प्रकट हो गये। उस समय भगवान् नारायणने एक आँखवाले शुक्राचार्यजीसे कहा—‘ब्रह्मन्! तुमने गङ्गातटपर किसिलिये मेरा स्तवन किया है? यह मुझसे बताओ’॥ १३-१४॥

शुक्र उकाच

देवदेव मया पूर्वपराधो महान् कृतः।
तद्विष्णवापनुच्यर्थं स्तुतवानस्मि साम्प्रतम्॥ १५

श्रीभगवानुवाच

ममापराधान्नयनं नष्टमेकं तवाधुना।
संतुष्टोऽस्मि ततः शुक्र स्तोत्रेणानेन ते मुने॥ १६

इत्युक्त्वा देवदेवेशस्तं मुनिं प्रहसन्निव।
पाञ्चजन्येन तच्चक्षुः पर्यप्तं च जनार्दनः॥ १७

स्मृष्टमात्रे तु शङ्खेन देवदेवेन शार्ङ्गिणा।
बभूव निर्मलं चक्षुः पूर्ववन्नपसत्तम्॥ १८

एव दत्त्वा मुनेशक्षुः पूजितस्तेन माधवः।
जगामादर्शनं सद्यः शुक्रोऽपि स्वाश्रमं यद्यौ॥ १९

इत्येतदुक्तं मुनिना महात्मना
प्राप्तं पुरा देववरप्रसादात्।
शुक्रेण किं ते कथयामि राजन्
पुनश्च मां पृच्छ मनोरथान्तः॥ २०

इति श्रीनरसिंहपुराणे शुक्रवरप्रदानां नाम पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः॥ ५५ ॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'शुक्राचार्यको वरप्रदान' नामक पञ्चपनवाँ अध्याय पुरा हुआ॥ ५५ ॥

छप्पनवाँ अध्याय

विष्णुमूर्तिके स्थापनकी विधि

राजोवाच

साम्प्रतं देवदेवस्य नरसिंहस्य शार्ङ्गिणः।
श्रोतुमिच्छामि सकलं प्रतिष्ठायाः परं विधिम्॥ १

श्रीमार्कण्डेयजी उकाच

प्रतिष्ठाया विधिं विष्णोदेवदेवस्य चक्रिणः।
प्रवक्ष्यामि यथाशास्त्रं शृणु भूपाल पुण्यदम्॥ २
कर्तुं प्रतिष्ठां यश्चात्र विष्णोरिच्छति पार्थिव।
स पूर्वं स्थिरनक्षत्रे भूमिशोधनमारभेत्॥ ३

शुक्राचार्यजी बोले—देवदेव! मैंने पहले (बलिके यज्ञमें) आपका बहुत बड़ा अपराध किया है; उसी दोषको दूर करनेके लिये इस समय आपका स्तवन किया है॥ १५॥

श्रीभगवान् बोले—मुने! मेरे प्रति किये गये अपराधसे ही तुम्हारा एक नेत्र नष्ट हो गया था। शुक्र! इस समय तुम्हारे इस स्तवनसे मैं तुमपर संतुष्ट हूँ॥ १६॥

यह कहकर देवदेवेश्वर जनार्दनने हँसते हुए-से अपने पाश्चायन्य शङ्खसे शुक्राचार्यके फूटे हुए नेत्रका स्पर्श किया। नृपत्रेष्ठ! शार्ङ्गधन्या देवदेव विष्णुके द्वारा शङ्खका स्पर्श कराये जाते ही शुक्राचार्यका वह नेत्र पहलेकी भौति ही निर्मल हो गया। इस प्रकार शुक्राचार्यको नेत्र देकर और उनसे पूजित होकर भगवान् लक्ष्मीपति तुरंत अन्तर्धान हो गये और शुक्राचार्य भी अपने आश्रमको छले गये। राजन्! इस प्रकार पूर्वकालमें मुनिवर महात्मा शुक्राचार्यने देवेश्वर भगवान् विष्णुकी कृपासे अपना नेत्र प्राप्त कर लिया—यह प्रसङ्ग तुम्हारे प्रश्नानुसार मैंने सुना दिया। अब तुम्हें मैं और क्या सुनाऊँ? तुम्हारे मनमें और भी यदि कुछ पूछनेकी इच्छा हो तो मुझसे प्रश्न करो॥ १७—२०॥

राजा बोले—द्वादशन्! अब मैं शार्ङ्गधनुपधारी देवदेव नरसिंहके स्थापनकी समस्त उत्तम विधिको सुनना चाहता हूँ॥ १॥

श्रीमार्कण्डेयजी बोले—भूपाल! देवदेवेश्वर चक्रपाणि भगवान् विष्णुके स्थापनकी पुण्यदायिनी विधि सुनो; मैं शास्त्रके अनुसार उसका वर्णन कर रहा हूँ। पृथिवीपते! जो भी इस लोकमें भगवान् विष्णुकी स्थापना करना चाहे, उसको चाहिये कि वह पहले स्थिर-संज्ञक* नक्षत्रोंमें भूमिशोधनका कार्य प्रारम्भ

* तीनों उत्तरा और रोहिणी—ये 'स्थिर' नक्षत्र कहलाते हैं।

खाल्वा पुरुषमात्रं तु बाहुद्वयमथापि वा ।
पूरयेच्छुद्धमृद्धिस्तु जलात्मः शक्तरात्मितैः ॥ ४

अधिष्ठानं ततो बुद्ध्वा पाषाणोष्टकमृणमयम् ।
प्रासादं कारयेत्तत्र वास्तुविद्याविदा नृप ॥ ५

चतुरस्यं सूत्रमार्गं चतुःकोणं समन्ततः ।
शिलाभित्तिकमुत्कृष्टं तदलाभेष्टकामयम् ॥ ६

तदलाभे तु मृत्कुङ्घं पूर्वद्वारं सुशोभनम् ।
जातिकाष्ठुमयैः स्तम्भैस्तल्लग्नैः फलदान्तितैः ॥ ७

उत्पलैः पद्मपत्रैश्च पातितैश्चित्रशिल्पिभिः ।
इत्थं तु कारयित्वा हि हरेवेषम् सुशोभनम् ॥ ८

पूर्वद्वारं नृपश्चेष्ट सुकपाटं सुचित्रितम् ।
अतिवृद्धातिवालैस्तु कारयेन्नाकृतिं हरेः ॥ ९

कुष्ठाद्युपहतैर्वापि अन्यैर्बा दीर्घरोगिभिः ।
विश्वकर्मोक्तमार्गेण पुराणोक्तां नृपोत्तम ॥ १०

कारयेत् प्रतिमां दिव्यां पुष्टाङ्गेन तु धीमता ।
सौम्याननां सुश्रवणां सुनासां च सुलोचनाम् ॥ ११

नाथोदृष्टिं नोर्धर्वदृष्टिं तिर्यग्दृष्टिं न कारयेत् ।
कारयेत् समदृष्टिं तु पद्मपत्रायतेक्षणाम् ॥ १२

सुभूतं सुललाटां च सुकपोलां समां शुभाम् ।
विक्षिप्तोष्टीं सुषुचिबुकां सुग्रीवां कारयेद्विधः ॥ १३

उपबाहुकरे देयं दक्षिणे चक्रमर्कवत् ।
नाभिसंलग्नदिव्यारं परितो नेमिसंयुतम् ॥ १४

वामपार्श्वेत्युपभुजे देयं शाहूं शशिप्रभम् ।
पाञ्चजन्यमिति ख्यातं दैत्यदर्पहरं शुभम् ॥ १५

करे । एक पुरुषके बराबर अर्धांत् साढ़े तीन हाथ अथवा दो हाथ नीचेतक नीचे खोदकर उसमें जलसे भीगी हुई कंकड़ और बालूसहित शुद्ध मिट्टी भर दे । राजन् ! फिर उसे ही आधार समझकर उसके ऊपर अपनी शालिके अनुसार पत्थर, ईट अथवा मिट्टीसे गृहनिर्माण-विद्वानें कुशल कारीगरोंके द्वारा मन्दिर तैयार कराये । वह मन्दिर चारों ओरसे बराबर और चौकोर हो । उसकी दीवार पत्थरकी हो तो बहुत उत्तम; पत्थर न मिलनेपर ईटोंकी हो दीवार बनवा ले । यदि इटे भी न मिल सके तो मिट्टीकी ही भीत डाला ले । मन्दिर बहुत ही सुन्दर हो और उसका दरवाजा पूर्वकी ओर होना चाहिये । उस मन्दिरमें अच्छी जातिवाले काठके खंभे लगे हों और उनमें चित्रकला जाननेवाले शिल्पियोंके द्वारा फलयुक्त वृक्ष, कुमुद तथा कमलदल चित्रित कराने चाहिये ॥ २—७३ ॥

नृपब्रेष्ट ! इस प्रकार जिसमें सुन्दर किंवाड़ लगे हों और जिसका द्वार पूर्व दिशाकी ओर हो—ऐसा बेल-बूटोंसे भलीभीति चित्रित भगवान्नका परम सुहावना मन्दिर बनवाकर बुद्धिमान् एवं हृष्टपुष्ट शरीरवाले पुरुषके द्वारा विश्वकर्माकी बतायी हुई पद्मतिकं अनुसार पुराणोक्त दिव्य प्रतिमाका निर्माण कराये । जो करीगर अत्यन्त बृद्धा या बालक अथवा कोढ़ आदि रोगोंसे दूषित या पुराना रोगी हो, उससे भगवत्प्रतिमाका निर्माण नहीं कराना चाहिये । प्रतिमाका मुख सौम्य (प्रसन्न) तथा कठन, नाक और नेत्र आदि अङ्ग सुहार होने चाहिये । उसकी दृष्टि न तो बहुत नीची हो, न बहुत ऊँची हो और न तिरछी ही हो । विद्वान् पुरुष ऐसी प्रतिमा बनवाये, जिसकी दृष्टि सम हो और जिसके नेत्र कमलदलके समान विशाल हों । भौंह, ललाट और कपोल सुन्दर हों, उसका समस्त विग्रह सुडौल और सौम्य हो । उसके दोनों ओठ लाल हों, ठोड़ी (अधरके नीचेका भाग) मनोहर तथा कण्ठ सुन्दर हो । प्रतिमाकी भुजाएँ चार होनी चाहिये—दो भुजाएँ और दो उपभुजाएँ । उनमेंसे दाहिनी उपभुजाके हाथमें सूर्यकि समान आकारवाला चक्र धारण करना चाहिये । चक्रकी नाभिके चारों ओर दिव्य ओर हों और उनके भी ऊपर सब ओरसे नेमि (हाल) लगी हो । बायीं उपभुजाके हाथमें चन्द्रमाके समान श्वेत कान्तिमय पाञ्चजन्य नामक शंख देना चाहिये, जो दैत्योंके मदको चूर्ण करनेवाला और कल्प्याणप्रद है ॥ ८—१५ ॥

हारापितवरां दिव्यां कण्ठे त्रिवलिसंयुताम्।
सुस्तनीं चारुहृदयां सुजठरां समां शुभाम्॥ १६

कटिलग्रामकरां पद्मलग्रां च दक्षिणाम्।
केयूरवाहुकां दिव्यां सूनाभिवलिभङ्गिकाम्॥ १७

सुकटीं च सुजङ्गोरुं वस्त्रमेखलभूषिताम्।
एवं तां कारयित्वा त् प्रतिमां राजसत्तम् ॥ १८

सुवर्णविस्त्रदानेन तत्कर्तृन् पूज्य सत्तम।
पूर्वपक्षे शभे काले प्रतिमां स्थापयेद्बृथः ॥ ११

प्रासादस्याग्रतः कृत्वा यागमण्डपमुत्तमम्।
चतुद्वारि चतुर्दिक्षु चतुर्भिस्तोरणीर्युतम्॥ २०

सप्तधान्याङ्कुरैर्युक्तं शङ्खभेरीनिनादितम्।
प्रतिमां क्षाल्य विद्वद्धिः पद्मिंशद्धिर्घटोदकैः ॥ २१

प्रविश्य मण्डुपे तस्मिन् ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।
तत्रापि स्नापयेत्यश्चात् पञ्चगव्यैः पथकं पथकं ॥ ३३

तथोद्यावरिणा स्नाय पुनः शीतोदकेन च ।
हरिद्राकुङ्गमाईसु चन्दनैश्चोपलेपयेत् ॥ २३

पुष्पमाल्यैरलङ्कृत्य वस्त्रैराच्छाद्य तां पुनः ।
पुण्याहं तत्र कृत्वा तु प्रशिग्भस्तां प्रोक्ष्य वारिभिः ॥ २४

स्नात्वा तां द्वाहाणीर्भक्तैः शंखभेरीस्वनैर्युतम्।
वासयेत्सप्तरात्रं त् त्रिरात्रं वा नदीजले ॥ २५

हृदे तु विमले शुद्धे तडागे वापि रक्षयेत्।
अधिवास्य जले देवमेवं पार्थिवपङ्कवं ॥ २६

तत उत्थाप्य विप्रैस्तु स्थाप्यालङ्कृत्य पूर्ववत् ।
ततो भेगीनिनादैस्त वेदघोषैश केशब्रम ॥ ३६

आनीय मण्डुपे शुद्धे पद्याकारविनिर्मिते ।

उस दिव्य भगवत्प्रतिमाके कण्ठमें सुन्दर हार पहनाया
गया हो, गलेमें त्रिवली-चिह्न हो, स्तनभाग सुन्दर,
बक्षःस्थल रुचिर और उदर मनोहर होना चाहिये।
सम्पूर्ण अङ्ग बराबर और सुन्दर हों। वह प्रतिमा अपना
बायीं हाथ कमरपर रखे हो और दाहिनेमें कमल धारण
किये हो। बाहुओंमें भुजबन्ध पहने हो और सुन्दर नाभि
तथा त्रिवलीसे सुशोभित एवं दिव्य जान पड़ती हो।
उसका कटिभाग (नितम्ब), जाँबें और पिंडलियाँ मनोहर
हों, वह कमरमें मेखला और पीतवस्त्रसे विभूषित हो।
नृपश्रेष्ठ! इस प्रकार भगवत्प्रतिमाका निर्माण कराकर
उसके बनानेवाले शिल्पियोंको सुवर्ण-दान एवं बस्त्र-
दानके द्वारा सम्मानित करके विद्वान् पुरुष पूर्व पक्षमें
शाख समयपर उस प्रतिमाकी स्थापना करे॥ १६—१९॥

मन्दिरके सामने एक उत्तम यज्ञमण्डप बनवाये। उसमें चारों ओर एक-एकके क्रमसे चार दरवाजे हों और सारा मण्डप चार तोरणों (बड़े-बड़े फाटकों) से घिरा हो। उसमें सप्तधान्यके अद्वृत उगे हों तथा शंख और धेरी आदि बाजे बजाते हों। छिद्रानोंके द्वारा छत्तीस घड़े जलसे उस प्रतिमाका अभिषेक कराकर उसके साथ बेदोंके पारगामी ब्राह्मणोंको साथमें लिये उक्त मण्डपमें प्रवेश करे और फिर पञ्चगव्योंसे पृथक्-पृथक् स्नान कराये। इसी प्रकार गर्भ जलसे नहलाकर फिर ठंडे जलसे स्नान कराये। तत्पश्चात् हल्दी और कुम्भम् आदिका तथा चन्दनोंका उसपर लेप करे, फिर फूलोंकी मालाओंसे विभूषितकर उसे बस्त्र धारण करा दे और पुण्याहयाचन करके वैदिक ऋचाओंसे उच्चारणपूर्वक जलसे प्रोक्षित कर भक्त ब्राह्मणोंद्वारा उस भगवद्विग्रहको नहलाये। तत्पश्चात् शंख, धेरी आदि बाजे बजाते हुए उसे नदीके जलमें रखकर सात या तीन दिनोंतक उसे बहाँ रहने दे। अथवा किसी निर्मल जलाशय या शुद्ध सरोवरमें ही रखकर उसकी रक्षा करे। नृपत्रैषु! इस प्रकार भगवान्‌का जलाधिकास करके ब्राह्मणोंद्वारा उनको ठठवाये और पालकी आदिमें चढ़ाकर पूर्ववर् उन्हें माला आदिसे विभूषित करे। तदनन्तर नगारोंकी ध्वनि और वैदमन्त्रोंके गम्भीर ध्वनिके साथ भगवान्‌को बहाँसे ले आये और कमलाकार धने हुए शुद्ध मण्डपमें रखे। बहाँ पुनः स्नान करके विष्णुभक्तोंद्वारा उसका शङ्खार कराये ॥ २०—२८ ॥

ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु विधिवत् घोडशर्त्तिजः ।
चतुर्भिरध्ययनं कार्यं चतुर्भिः पालनं तथा ॥ २९

चतुर्भिस्तु चतुर्दिक्षु होमः कार्यो विचक्षणः ।
पुष्पाक्षतान्नभिश्वेण दद्यादिक्षु बलीन् नृप ॥ ३०

एकेन दापयेत्तेषामिन्द्राद्याः प्रीयन्तामिति ।
प्रत्येकं सायंसंध्यायां मध्यरात्रे तथोषसि ॥ ३१

उदिते च ततो दद्यान्मातृविप्रगणाय वा ।
अपन् पुरुषसूक्तं तु एकतस्तु पुनः पुनः ॥ ३२

एकतो भनसा राजन् विष्णोर्मन्दिरमध्यगः ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा यजमानो द्विजैः सह ॥ ३३

प्रविश्य प्रतिमाद्वारं शुभलग्ने विचक्षणः ।
देवसूक्तं द्विजैः सार्थमुपस्थाप्य च तां दुष्टम् ॥ ३४

संस्थाप्य विष्णुसूक्तेन पवमानेन वा पुनः ।
प्रोक्षयेद्देवदेवेशमाचार्यः कुशवारिणा ॥ ३५

तदगे चाग्निमाधाय सम्परिस्तीर्य यत्रतः ।
जुहुयाज्ञातकमादि गायत्रा वैष्णवेन तु ॥ ३६

चतुर्भिराज्याहुतिभिरेकामेकां क्रियां प्रति ।
आचार्यस्तु स्वयं कुर्यादस्त्रैर्बन्धं च कारयेत् ॥ ३७

त्रातारमिति चैन्द्रशां तु कुर्यादाज्यप्रणुत्रकम् ।
परोदिवेति याम्यायां वारुण्यां निषसेति च ॥ ३८

या ते रुद्रेति सौम्यां तु हुवेदाज्याहुतीर्नृप ।
परोमात्रेति सूक्ताभ्यां सर्वत्राज्याहुतीर्नृप ॥ ३९

इसके बाद सोलह ऋत्तिज् ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक भोजन कराये । उनमेंसे चार ब्राह्मणोंको तो वहाँ वेद-पुराणादिका स्वाध्याय (पाठ) करना चाहिये, चार विश्रोंको उस भगवद्गिरहकी रक्षामें संलग्न रहना चाहिये तथा चार विद्वानोंको यज्ञमण्डपके भीतर चारों दिशाओंमें हवन करना चाहिये । राजन् ! फिर एक ब्राह्मणके द्वारा फूल, अक्षत और अन्नसे समस्त दिशाओंमें बलि अर्पित कराये । यह बलि इत्यादि देवताओंकी प्रसस्त्रताके लिये होती है । प्रत्येक दिशाके अधिष्ठितिको 'इन्द्रः प्रीयताम्' इत्यादि रूपसे उसके नामोच्चारणपूर्वक ही बलि दे । सायंकाल, आधी रात, उपःकाल तथा सूर्योदयके समय प्रत्येक दिव्यपालको बलि अर्पित करनी चाहिये । इसके बाद मातृकागणोंको बलि और ब्राह्मणोंको उपहार दे । राजन् ! इसके पक्षात् यजमानको चाहिये कि भगवान् विष्णुके मन्दिरमें एक और चैठकर एकाग्रचित्तसे बार-बार पुरुषसूक्तका जप करे । फिर पूरे एक दिन-रात उपवास करके शुभ लग्नमें वह बुद्धिमान् पुरुष ब्राह्मणोंको साथ ले मण्डपमें, जहाँ प्रतिमा रखी गयी हो, उस द्वारसे मण्डपके भीतर प्रवेश करे और ब्राह्मणोंके साथ देवसूक्तका पाठ करते हुए भगवत्प्रतिमाका उपस्थान करके उसे मन्दिरमें लाये और विष्णुसूक्त अथवा पवमानसूक्तका पाठ करते हुए उसे वहाँ दृढ़तापूर्वक स्थापित करे । तत्पश्चात् आचार्य कुशायुक्त जलसे उन देवदेवेश भगवान्का अभिषेक करे ॥ २९—३५ ॥

फिर भगवान्के सम्मुख अग्निस्थापन करे । अग्निके चारों ओर यत्नपूर्वक कुशास्तरण करके गायत्री और विष्णुमन्त्रोद्वारा जातकमादि संस्कारकी सिद्धिके नियम व्यवहार करें । आचार्यको चाहिये कि प्रत्येक क्रियामें चार-चार चार घीकी आहुति दे तथा अस्त्रमन्त्र (अस्त्राय फट) बोलकर दिग्बन्ध कराये । 'उ॒॒ त्रातारमिन्द्रम्०' इत्यादि मन्त्र (शु० यजु० २०। ५०)-से अग्निवेदीपर पूर्वकी ओर घीकी आहुति दे । 'परो दिव्यां०' इत्यादि मन्त्र (शु० यजु० १७। २९)-से दक्षिण दिशामें और 'निषसाद०' इत्यादि मन्त्र (शु० यजु० १०। २७)-से पश्चिममें घृतका हवन करें । हे नृप ! 'या ते रुद्र०' (शु० यजु० १६। २) — इस मन्त्रसे उत्तर दिशामें और 'परो मात्रया०' (ऋग्वेद ७। ६। ९९) इत्यादि दो सूक्तोद्वारा सम्पूर्ण दिशाओंमें घीकी आहुति दे । इस प्रकार विधिवत् हवन करके 'यदस्या०' (शु० यजु० २३। २८) इस

हुत्वा जपेच्च विधिवद्यादस्येति च स्वष्टकृत्।
ततः स दक्षिणां दद्यादुत्तिगच्छ यथाहृतः ॥ ४०
वस्त्रे द्वे कुण्डले चैव गुरवे चाङ्गुलीयकम्।
यजमानस्ततो दद्याद्विभवे सति काञ्छनम् ॥ ४१
कलशाष्ट्रसहस्रेण कलशाष्ट्रशतेन वा।
एकविंशतिना वापि स्नपनं कारयेद् ब्रुधः ॥ ४२
शङ्खदुन्दुभिनिघोषैर्दघोषैश्च मङ्गलैः।
यवब्रीहियुतैः पात्रैरुद्धैरुच्छ्रुताङ्गैः ॥ ४३
दीपयष्टिपताकाभिष्ठुत्रचामरतोरणैः ।
स्नपनं कारयित्वा तु यथाविप्रविस्तरम् ॥ ४४
तत्रापि दद्याद्विप्रेभ्यो यथाशक्त्या तु दक्षिणाम्।
एवं यः कुरुते राजन् प्रतिष्ठां देवचक्रिणः ॥ ४५
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वभूषणभूषितः।
विमानेन विचित्रेण त्रिःसप्तकुलजैर्वृतः ॥ ४६
पूजां सम्प्राप्य महतीमिन्द्रलोकादिषु क्रमात्।
वान्धवांस्तेषु संस्थाप्य विष्णुलोके महीयते ॥ ४७
तत्रैव ज्ञानमासाद्य वैष्णवं पदमाप्नुयात्।
प्रतिष्ठाविधिरयं विष्णोर्मर्यैवं ते प्रकीर्तिः ॥ ४८
पठतां शृणवतां चैव सर्वपापप्रणाशनः ॥ ४९
यदा नृसिंहं नरनाथं भूमी
संस्थाप्य विष्णुं विधिना ह्यानेन।
तदा ह्यसौ याति हरे: पदं तु
यत्र स्थितोऽयं न निवर्तते पुनः ॥ ५०

मन्त्रका जप करे और घीसे 'स्वष्टकृत्' संज्ञक होम करे। तदनन्तर प्रतिवर्जोंको उनके सम्मानके अनुकूल सादर दक्षिणा दे। इसके बाद यजमान आचार्यको दो वस्त्र, दो सुवर्णमय कुण्डल और सोनेकी अंगूठी दे तथा यदि सामर्थ्य हो तो इसके अतिरिक्त भी सुवर्णदान करे ॥ ३६—४१ ॥

फिर विद्वान् पुरुष यथासम्भव एक हजार आठ या एक सौ आठ अथवा इक्कोसि घडे जलसे भगवान्को ज्ञान कराये। उस समय शंख और दुन्दुभि आदि बाजे बजते रहें, वेदमन्त्रोंका घोष और मङ्गलपाठ होता रहे। अपनी शक्तिके अनुसार जिनपर जी आदिके अङ्गुर निकले हों, ऐसे जी और ब्रीहि (चावल)-से भरे पात्रोंहारा तथा दीप, यष्टि (छड़ी), पताका, छत्र, चैवर, तोरण आदि सामग्रियोंके साथ ज्ञान-विधि पूर्ण कराके वहाँ भी ज्ञात्योंको यथाशक्ति दक्षिणा दे। राजन्! इस प्रकार जो भगवान् विष्णुकी प्रतिष्ठा करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और मृत्युके पश्चात् अपनेसहित इक्कोसि घीढ़ीके पितरोंको साथ ले, सब प्रकारके आभूषणोंसे भूषित एवं विचित्र विमानपर आरूढ हो, क्रमशः इन्द्रादि लोकोंमें विशेष सम्मान प्राप्त करता है तथा अपने बन्धुजनोंको उन लोकोंमें रखकर स्वयं विष्णुलोकमें जाकर प्रतिष्ठित होता है। फिर वहाँ ही भगवत्तत्त्वका ज्ञान प्राप्तकर वह विष्णुस्वरूपमें लीन हो जाता है ॥ ४२—४३ ॥

राजन्! इस प्रकार तुमसे मैंने यह प्रतिष्ठा-विधि बतायी। इसका पाठ और श्रवण करनेवाले लोगोंके सब पाप दूर हो जाते हैं। नरनाथ! जब मनुष्य इस पूर्वोक्त विधिसे पृथ्वीपर भगवान् नृसिंहकी स्थापना कर लेता है, तब मृत्युके बाद वह भगवान् विष्णुके उस नित्यधामको प्राप्त होता है, जहाँ रहकर वह पुनः संसारमें नहीं लौटता ॥ ४८—५० ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे प्रतिष्ठाविधिनामि वदपञ्चाशतोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'प्रतिष्ठाविधि' नामक छप्पनका अध्याय पूरा हुआ ॥ ५६ ॥

सत्तावनवाँ अध्याय *

भक्तके लक्षण; हारीत-स्मृतिका आश्रम्भ; ब्राह्मणधर्मका वर्णन

गजोवाच

**भक्तानां लक्षणं बृहि नरसिंहस्य मे द्विज।
येषां संगतिमात्रेण विष्णुलोको न दूरतः ॥ १ ॥**

श्रीमार्कण्डेय उकाच

**विष्णुभक्ता महोत्साहा विष्णवर्चनविधी सदा।
संयता धर्मसम्पन्नाः सर्वार्थान् साध्यन्ति ते ॥ २ ॥**
**परोपकारनिरता गुरुशुश्रूषणे रताः।
वर्णाश्रमाचारधुताः सर्वेषां सुप्रियं वदा: ॥ ३ ॥**
**बेदवेदार्थतत्त्वज्ञा गतरोषा गतस्यृहाः।
शान्ताश्च सौम्यवदना नित्यं धर्मपरायणाः ॥ ४ ॥**
**हितं प्रितं च वक्तारः काले शक्त्यातिथिप्रियाः।
दध्ममायाविनिर्मुक्ताः कामक्रोधविवर्जिताः ॥ ५ ॥**
**ईदृग्विधा नरा धीराः क्षमावन्तो बहुश्रुताः।
विष्णुकीर्तनसंजातहर्षा रोमाङ्गिता जनाः ॥ ६ ॥**
**विष्णवर्चापूजने यत्तास्तत्कथायां कृतादराः।
ईदृग्विधा महात्मानो विष्णुभक्ताः प्रकीर्तिताः ॥ ७ ॥**

गजोवाच

**ये वर्णाश्रमधर्मस्थास्ते भक्ताः केशावं प्रति।
इति प्रोक्तं त्वया विद्वन् भृगुवर्यं गुरो मम ॥ ८ ॥**
**वर्णानामाश्रमाणां च धर्मं मे वक्तुमर्हसि।
यैः कृतैस्तुष्यते देवो नरसिंहः सनातनः ॥ ९ ॥**

श्रीमार्कण्डेय उकाच

**अत्र ते वर्णविष्वामि पुरावृत्तमनुत्तमम्।
मुनिभिः सह संवादं हारीतस्य महात्मनः ॥ १० ॥**
**हारीतं धर्मतत्त्वज्ञमासीनं बहुपाठकम्।
प्रणिपत्याद्युवन् सर्वे मुनयो धर्मकाङ्क्षणः ॥ ११ ॥**

* यहाँसे 'हारीत-स्मृति' का प्रारम्भ है। अधुना उपलब्ध 'लघु हारीत स्मृति' के पाठ इसके पाठसे प्राप्य, प्रिलेते हैं। कुछ-कुछ चाठनार भी उपलब्ध होते हैं।

राजा बोले—ब्रह्मन्! आप मुझसे भगवान् नृसिंहके भक्तोंका लक्षण बतलाइये, जिनका सङ्ग करनेमात्रसे विष्णुलोक दूर नहीं रह जाता ॥ १ ॥

श्रीमार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! भगवान् विष्णुके भक्त उनकी पूजा-अर्चा करनेमें महान् उत्साह रखते हैं। वे अपने मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए, धर्ममें तत्त्व रहकर सारे मनोरथोंको सिद्ध कर लेते हैं। भगवद्गत जन सदा परोपकार और गुरु-सेवामें लगे रहते हैं, सबसे मीठे वचन बोलते और अपने-अपने वर्ष तथा आश्रमके सदाचारोंका पालन करते हैं। वे वेद और वेदार्थका तत्त्व जाननेवाले होते हैं, उनमें क्रोध और कामनाओंका अभाव होता है। वे सदा शान्त रहते हैं, उनके मुखपर सौम्यभाव लक्षित होता है तथा वे निरन्तर धर्माचरणमें लगे रहते हैं। थोड़ा किंतु हितकारी वचन बोलते हैं, समयपर अपनी शक्तिके अनुसार सदा अतिथिकी सेवा करनेमें उनका प्रेम बना रहता है। वे दम्प, कपट, कहम और क्रोधसे रहित होते हैं। जो मनुष्य इन पूर्वोक्त लक्षणोंसे युक्त एवं धीर है, वहुश्रुत और क्षमावान् हैं तथा विष्णुभगवान्के नामोंका कीर्तन अथवा श्रवण करते समय हरपंसे रोमाङ्गित हो जाते हैं, इसी तरह जो विष्णुपूजनमें तत्पर और भगवत्कथामें आदर रखनेवाले हैं, ऐसे महात्मा पुरुष भगवान् विष्णुके भक्त कहे गये हैं ॥ २—७ ॥

राजा बोले—विद्वन्! भृगुवर्य! मेरे गुरुदेव! आपने अभी कहा है कि जो अपने वर्ण और आश्रमके धर्ममें लगे रहते हैं, वे भगवान् विष्णुके भक्त हैं; अतः आप कृष्ण करके वर्णों और आश्रमोंके धर्म अताइये, जिनके पालन करनेसे सनातन भगवान् नृसिंह संतुष्ट होते हैं ॥ ८—९ ॥

श्रीमार्कण्डेयजीने कहा—इस विषयमें मुनियोंके साथ महात्मा हारीत ऋषिका संवाद हुआ था; उसी प्राचीन एवं उत्तम इतिहासका आज मैं तुम्हारे समक्ष वर्णन करूँगा ॥ १० ॥

एक समयकी बात है, धर्मका तत्त्व जाननेकी इच्छावाले समस्त मुनियोंने एक जगह आसनपर आसीन, धर्म-तत्त्ववेत्ता एवं बहुपाठी महात्मा हारीत ऋषिके पास जाकर

**भगवन् सर्वधर्मज्ञं सर्वधर्मप्रवर्तकं।
बर्णानापाश्रमाणां च धर्मं प्रबूहि शाश्वतम्॥ १२
हारीत उवाच**

नारायणः पुरा देवो जगत्त्वष्टा जलोपरि।
सुखाप भेगिपर्यङ्के शयने तु श्रिया सह॥ १३

तस्य सुप्तस्य नाभीं तु दिव्यं पश्यमभूत् किल।
तन्मध्ये चाभवद्ब्रह्मा वेदवेदाङ्गभूषणः॥ १४

स चोक्तस्तेन देवेन ब्राह्मणान् मुखातोऽसुजत्।
असृजत्क्षत्रियान् ब्राह्मोर्वेश्यांस्तु ऊरुतोऽसुजत्॥ १५

शूद्रास्तु पादतः सृष्टास्तोषां चैवानुपूर्वशः।
धर्मशास्त्रं च मर्यादां प्रोवाच कमलोद्धवः॥ १६

तदृत्सर्वं प्रवक्ष्यामि शृणुत द्विजसत्तमा।
धन्वं यशस्यमायुष्यं स्वर्गमोक्षफलप्रदम्॥ १७

ब्राह्मण्यां ब्राह्मणेनैव चोत्पन्नो ब्राह्मणः स्मृतः।
तस्य धर्मं प्रवक्ष्यामि तद्योग्यं देशमेव च॥ १८

कृष्णसारो मृगो यत्र स्वभावात् प्रवर्तते।
तस्मिन् देशे वसेधर्मं कुरु ब्राह्मणपुंगव॥ १९

षट्कर्माणि च यान्यादुद्भ्राह्मणस्य मनीषिणः।
तैरेव सततं यस्तु प्रवृत्तः सुखमेधते॥ २०

अध्ययनाध्यापनं च यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चेति कर्मषट्कमिहोच्यते॥ २१

अध्यापनं च त्रिविधं धर्मस्यार्थस्य कारणम्।
शुश्रूषाकारणं चैव त्रिविधं परिकीर्तितम्॥ २२

योग्यानध्यापयेच्छिष्यान् याज्यानपि च याजयेत्।
विधिना प्रतिगृहंश्च गृहधर्मप्रसिद्धये॥ २३

वेदपेवाभ्यसेत्रित्यं शुभे देशे समाहितः।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं कर्मं कुर्यात् प्रयत्नतः॥ २४

गुरुशुश्रूषणं चैव यथान्यायमतन्द्रितः।
सायं प्रातरुपासीत विधिनाग्निं द्विजोत्तमः॥ २५

उन्हें प्रणाम किया और कहा—‘भगवन्! आप समस्त धर्मोंके जाता और प्रवर्तक हैं; अतः आप हमलोगोंसे वर्ज और आश्रमोंसे सम्बन्ध रखनेवाले सनातन धर्मका वर्णन कीजिये’॥ ११—१२॥

श्रीहारीतजी बोले—पूर्वकालमें जगत्स्तृष्टा भगवान् नारायण जलके ऊपर शेषनागकी शव्यापर श्रीलक्ष्मीजीके साथ शयन करते थे। कहते हैं, शयन-कालमें ही उन भगवान्‌की नाभिसे एक दिव्य कमल प्रकट हुआ और उस कमल-कोपमेंसे वेद-वेदाङ्गोंके ज्ञानसे विभूषित श्रीब्रह्माजी प्रकट हुए। उन ब्रह्माजीने सृष्टि के लिये भगवान् नारायणकी आज्ञा होनेपर सर्वप्रथम ब्राह्मणोंको अपने मुखसे प्रकट किया। फिर क्षत्रियोंको बाहुओंसे और क्षेत्रियोंको जाँघोंसे उत्पन्न किया। अन्तमें उन्होंने चरणोंसे शूद्रोंकी सृष्टि की। फिर कमलोद्धव ब्रह्माजीने क्रमशः उन्हों ब्राह्मणादि वर्णोंके धर्मका उपदेश करनेवाले शास्त्र और वर्णोंकी मर्यादाका वर्णन किया। द्विजवरो! ब्रह्माजीने जो कुछ उपदेश किया, वह सब में आप लोगोंसे कह रहा है; आप सुनें। वह धर्मशास्त्र धन, यश और आयुको बढ़ानेवाला तथा स्वर्ग और मोक्षरूपी फलको देनेवाला है॥ १३—१७॥

जो ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न हुई स्त्रीके गर्भ और ब्राह्मणके ही बीर्यसे उत्पन्न हुआ है, वह ‘ब्राह्मण’ कहा गया है। अब मैं ब्राह्मणके धर्म और निवास-योग्य देशको बता रहा हूँ। ब्रह्माजीने ब्राह्मणको उत्पन्न करके उनसे कहा—‘ब्राह्मणश्रेष्ठ! जिस देशमें कृष्णसार मृग स्वभावतः निवास करता हो, उसी देशमें रहकर तुम धर्मका यात्रा करो।’ मनीषियोंने जो ब्राह्मणके छः कर्म बतलाये हैं, उन्हींके अनुसार जो सदा व्यवहार करता है, वह सुखपूर्वक अभ्युदयशील होता है। अध्ययन (पढ़ना), अध्यापन (पढ़ाना), यजन (यज्ञ करना), याजन (यज्ञ कराना), दान करना और दान लेना—ये ही ब्राह्मणके छः कर्म कहे जाते हैं। इनमेंसे अध्ययन तीन प्रकारका बताया जाता है—पहला धर्मके लिये, दूसरा धनके लिये और तीसरा अपनी सेवा करनेके लिये होता है। ब्राह्मणको चाहिये कि योग्य शिष्योंको पढ़ाये, योग्य यजमानोंका यज्ञ कराये और गृहस्थधर्मकी सिद्धि (जीविका चलाने आदि)-के लिये विधिपूर्वक दूसरोंका दान भी ग्रहण करे। शुभ स्थानपर रहकर, एकाग्रचित हो, प्रतिदिन वेदका ही अध्यास करे तथा यज्ञपूर्वक नित्य, नैमित्तिक और काम्य कर्मोंका अनुष्ठान करे। श्रेष्ठ ब्राह्मणको चाहिये कि आलस्य त्यागकर उचितरूपसे गुरुजनोंकी सेवा करे और प्रतिदिन प्रातःकाल तथा सायंकाल विधिपूर्वक अग्रिकी सेवा किया करे॥ १८—२५॥

कृतस्त्रानस्तु कुर्वीत वैश्वदेवं दिने दिने ।
अतिथिं चागतं भक्त्या पूजयेच्छत्तितो गृही ॥ २६

अन्यानथागतान् दृष्ट्वा पूजयेदविरोधतः ।
स्वदारनिरतो नित्यं परदारविवर्जितः ॥ २७

सत्यवादी जितक्रोधः स्वधर्मनिरतो धर्वेत् ।
स्वकर्मणि च सम्प्राप्ते प्रमादं नैव कारयेत् ॥ २८

प्रियां हितां वदेद्वाचं परलोकाविरोधिनीम् ।
एवं धर्मः समुद्दिष्टो ब्राह्मणस्य समाप्ततः ।
धर्मभेदं तु यः कुर्यात्स याति ब्रह्मणः पदम् ॥ २९

इत्येष धर्मः कथितो मया वै
विप्रस्य विप्रा अखिलाधहारी ।
बदामि राजादिजनस्य धर्म
पृथक्पृथग्बोधत विप्रवर्याः ॥ ३०

इति श्रीनरसिंहपुराणे ब्राह्मणधर्मकथनं नाम सत्पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५७ ॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'ब्राह्मणधर्मकथन' नामक सत्पञ्चाशोऽध्याय पूरा हुआ ॥ ५७ ॥

गृहस्थ ब्राह्मण रनान आदिके बाद प्रतिदिन बलिवैश्वदेव करे और घरपर आये हुए अतिथिका अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिपूर्वक सम्मान करे । एक अतिथिके आ जानेपर यदि दूसरे भी आ जायें तो उन्हें भी देखकर विरोध न माने, उनका भी यथाशक्ति सम्मान करे । सदा अपनी ही स्त्रीमें अनुरोग रखे, दूसरेकी स्त्रीके सम्पर्कसे सदा दूर रहे । सदा सत्य बोले, क्रोध न करे, अपने धर्मका पालन करता रहे । अपने नैतिक आदि कर्मका समय प्राप्त होनेपर प्रसाद न करे । जिससे परलोक न बिगड़े—ऐसी सत्य, प्रिय और हितकारिणी वाणी बोले । इस प्रकार मैंने ब्राह्मण-धर्मका संक्षेपसे वर्णन किया । जो ब्राह्मण इस प्रकार अपने धर्मका पालन करता है, वह नित्य ब्रह्मधारा (सत्यलोक)-को प्राप्त होता है । विप्रगण ! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे यह ब्राह्मण-धर्म कहा है, यह समस्त पापोंको दूर करनेवाला है । विप्रवरो ! अब क्षत्रियादि जातियोंका पृथक्-पृथक् धर्म बताता है, आप लोग सुनें ॥ २६—३० ॥

अद्वावनवाँ अध्याय

क्षत्रियादि वर्णोंके धर्म और ब्रह्मचर्य तथा गृहस्थाश्रमके धर्मोंका वर्णन

हारीत उकाच

क्षत्रादीनां प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ।
येन येन प्रवर्तन्ते विधिना क्षत्रियादयः ॥ १

राज्यस्थः क्षत्रियश्चैव प्रजा धर्मेण पालयेत् ।
कुर्यादिव्ययनं सम्यग्यजेद्यज्ञान् यथाविधि ॥ २

दद्याहानं द्विजाग्नेभ्यो धर्मबुद्धिसमन्वितः ।
स्वदारनिरतो नित्यं परदारविवर्जितः ॥ ३

नीतिशास्त्रार्थकुशलः संधिविग्रहतत्त्ववित् ।
देवब्राह्मणभक्तश्च पितृकार्यपरस्तथा ॥ ४

धर्मेणैव जयं काङ्क्षेदधर्मं परिवर्जयेत् ।
उत्तमां गतिमाणोति क्षत्रियोऽथैवमाचरन् ॥ ५

श्रीहारीत मुनि बोले—अब मैं क्रमशः क्षत्रियादि वर्णोंके लिये विहित नियमोंका यथावत् वर्णन करूँगा, जिनके अनुसार क्षत्रियादिको अपना व्यवहार निभाना चाहिये । राजपदपर स्थित क्षत्रियको उचित है कि वह धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करे । उसे भलीभाँति वेदाध्ययन और विधिपूर्वक यज्ञ भी करने चाहिये । धर्मबुद्धिसे युक्त हो श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान दे, सदा अपनी ही स्त्रीमें अनुरक्त रहकर परस्त्रीका त्याग करे, नीतिशास्त्रका अर्थ समझनेमें निपुण हो, संधि और विग्रहका तत्त्व समझे । देवताओं और ब्राह्मणोंमें भक्ति रखे, पितृोंका पूजन—श्राद्धादि कर्म करे । धर्मपूर्वक ही विजयकी इच्छा करे, अधर्मको भलीभाँति त्याग दे । इस प्रकार आचरण करनेवाला क्षत्रिय उत्तम गतिको प्राप्त होता है ॥ १—५ ॥

गोरक्षाकृषिवाणिज्यं कुर्यद्विश्यो यथाविधि ।
दानधर्मं यथाशक्त्या गुरुशुश्रूषणं तथा ॥ ६

लोभदम्भविनिर्भुक्तः सत्यवाग्नसूयकः ।
स्वदारनिरतो दानः परदारविवर्जितः ॥ ७

धनैर्विप्रान् समचेत यज्ञकाले त्वरान्वितः ।
यज्ञाध्ययनदानानि कुर्यात्रित्यमतन्द्रितः ॥ ८

पितृकार्यं च तत्काले नरसिंहार्द्दनं तथा ।
एतद्वैश्यस्य कर्मोक्तं स्वधर्ममनुतिष्ठतः ॥ ९

एतदासेवमानस्तु स स्वर्गी स्यात्र संशयः ।
वर्णत्रयस्य शुश्रूषां कुर्याच्छूद्रः प्रयत्नतः ॥ १०

दासवद्वाह्यणानां च विशेषेण समाचरेत् ।
अयाचितं प्रदातव्यं कृषिं वृत्त्यर्थमाचरेत् ॥ ११

ग्रहाणां मासिकं कार्यं पूजनं न्यायधर्मतः ।
धारणं जीर्णवस्त्रस्य विप्रस्योच्छिष्टमार्जनम् ॥ १२

स्वदारेषु रतिं कुर्यात् परदारविवर्जितः ।
पुराणश्रवणं विप्रान्नरसिंहस्य पूजनम् ॥ १३

तथा विग्रनमस्कारं कार्यं श्रद्धासमन्वितम् ।
सत्यसम्भाषणं चैव रागद्वेषविवर्जनम् ॥ १४

इत्थं कुर्वन् सदा शूद्रो मनोवाक्कायकर्मभिः ।
स्थानमेन्द्रमवाप्नोति नष्टपापस्तु पुण्यभाक् ॥ १५

वर्णेषु धर्मा विविधा मयोक्ता
यथाक्रमं ब्राह्मणवर्यसाधिताः ।
शृणुध्यमत्राश्रमधर्ममाद्यं
मयोच्यमानं क्रमशो मुनीन्द्राः ॥ १६

हार्यत उकाच

उपनीतो माणवको वसेदूरुकुले सदा ।
गुरोः प्रियहितं कार्यं कर्मणा मनसा गिरा ॥ १७

वैश्यको चाहिये कि वह विधिपूर्वक गोरक्षा, कृषि और व्यापार करे तथा अपनी शक्तिके अनुसार दानधर्म और गुरुसेवा भी करे। लोभ और दम्भसे सर्वथा दूर रहे, सत्यवादी हो, किसीके दोष न देखे, मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर परस्त्रीका त्याग करे और अपनी ही स्त्रीमें अनुरक्त रहे। यज्ञ-कालमें शीघ्रतापूर्वक ब्राह्मणोंका धनसे सम्मान करे तथा आलस्य छोड़कर प्रतिदिन यज्ञ, अध्ययन और दान करता रहे। श्राद्ध-काल प्राप्त होनेपर पितृ-श्राद्ध अवश्य करे और नित्यप्रति भगवान् श्रीनृसिंहदेवका पूजन करे। अपने धर्मका पालन करनेवाले वैश्यके लिये यही कर्तव्य कर्म बतलाया गया है। पूर्वोक्त कर्मका पालन करनेवाला वैश्य निःसदैर स्वर्गलोकका अधिकारी होता है ॥ ६—१७ ॥

शूद्रको चाहिये कि वह यत्नपूर्वक इन तीनों वर्णोंकी सेवा करे और ब्राह्मणोंकी तो दासकी भाँति विशेषरूपसे शुश्रूषा करे। किसीसे माँगकर नहीं, अपनी ही कमाईका दान करे। जीविकाके लिये कृषि-कर्म करे। प्रत्येक मासमें न्याय और धर्मके अनुसार ग्रहोंका पूजन करे, पुराना वस्त्र धारण करे। ब्राह्मणका जूठा बर्तन मौजे। अपनी स्त्रीमें अनुराग रखे। परस्त्रियोंको दूरसे ही त्याग दे। ब्राह्मणके मुखसे पुराणकथा श्रवण करे, भगवान् नरसिंहका पूजन करे। इसी प्रकार ब्राह्मणोंको श्रद्धापूर्वक नमस्कार करे। राग-द्वेष त्याग दे और सत्यभाषण करे। इस प्रकार मन, वाणी, शरीर और कर्मसे आचरण करनेवाला शूद्र पापरहित हो पुण्यका भागी होता है और मृत्युके पश्चात् इन्द्रलोकको प्राप्त होता है ॥ १०—१५ ॥

मुनीन्द्रगण! वर्णोंके ये नाना प्रकारके धर्म मैंने आप लोगोंसे क्रमशः कहे हैं। इन्हें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने बतलाया है। अब मैं क्रमसे प्रथम ब्रह्मचर्य-आश्रमके धर्म बता रहा हूँ आप लोग सुनें ॥ १६ ॥

श्रीहारीत मुनि बोले — उपनयन-संस्कार हो जानेके बाद ब्रह्मचारी बालक सदा गुरुकुलमें निवास करे। उसको चाहिये कि मन, वाणी और कर्मसे गुरुका प्रिय और हित

ब्रह्मचर्यमधःशाश्वा तथा वह्नेरुपासनम्।
उदकुम्भं गुरोर्दद्यात्तथा चेन्धनमाहरेत्॥ १८

कुर्यादध्ययनं पूर्वं ब्रह्मचारी यथाविधि।
विधिं हित्वा प्रकुर्वाणो न स्वाध्यायफलं लभेत्॥ १९

यत्किंचित् कुरुते कर्म विधिं हित्वा निरात्पकः।
न तत्फलमवाप्नोति कुर्वाणो विधिविच्युतः॥ २०

तस्मादेवं द्रतानीह चरेत् स्वाध्यायसिद्धये।
शौचाचारमशेषं तु शिक्षयेदूरुसंनिधौ॥ २१

अजिनं दण्डकाष्टं च मेखलां चोपवीतकम्।
धारयेदप्रमत्तस्तु ब्रह्मचारी समाहितः॥ २२

सायं प्रातश्चेद्दैक्षं भोजनं संयतेन्द्रियः।
गुरोः कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुलबन्धुषु॥ २३

अलाभे त्वन्यगेहानां पूर्वपूर्वे च वर्जयेत्।
आचम्य प्रयतो नित्यमश्रीयात्मवृनुजया॥ २४

शयनात् पूर्वमुत्थाय दर्भमृहन्तशोधनम्।
वस्त्रादिकमथान्यच्च गुरवे प्रतिपादयेत्॥ २५

स्नाने कृते गुरी पश्चात् स्नानं कुर्वीत यत्रवान्।
ब्रह्मचारी द्रती नित्यं न कुर्यादन्तशोधनम्॥ २६

छत्रोपानहमध्यङ्गं गन्धपात्यानि वर्जयेत्।
नृत्यगीतकथालापं मैथुनं च विशेषतः॥ २७

वर्जयेन्मधु मांसं च रसास्वादं तथा स्त्रियः।
कामं क्रोधं च लोभं च परिवादं तथा नृणाम्॥ २८

स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च।
एकः शायीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत् छन्तित्॥ २९

स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः।
स्नात्वाकंपर्चयित्वाग्निं पुनर्मामित्युचं जपेत्॥ ३०

करे। वह ब्रह्मचर्यका पालन, भूमिपर शयन और अग्निकी उपासना करे। गुरुके लिये जलका घड़ा भरकर लाये और हवनके निमित्त समिधा ले आये। इस प्रकार सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य-आश्रममें रहकर विधिपूर्वक अध्ययन करना चाहिये। जो विधिका त्याग करके अध्ययन करता है, उसे उस अध्ययनका फल नहीं प्राप्त होता (उसकी विद्या सफल नहीं होती)। विधिकी अवहेलना करके वह जो कुछ भी कर्म करता है, विधिप्रष्ट एवं नास्तिक होनेके कारण उसे उसका फल नहीं मिलता। इसलिये गुरुकुलमें रहकर अपने अध्ययनकी सफलताके लिये उपर्युक्त व्रतोंका आचरण करना चाहिये और गुरुके निकट समस्त शौचाचारोंको सीखना चाहिये। ब्रह्मचारी सावधान और एकाग्रचित रहकर भूगचम्प, पलाशदण्ड, मेखला और उपवीत (जनेका) धारण करे। अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखकर सायंकाल और प्रातःकाल भिक्षासे मिला हुआ अब भोजन करे। गुरुके कुलमें और उनके कुरुम्बी बन्धु-बान्धवोंके घरमें भिक्षा न माँगे। दूसरेके घर न मिले तो पूर्वोक्त घरोंमेंसे भी भिक्षा ले सकता है; किंतु यथासाध्य पूर्व-पूर्व गृहोंका त्याग करे। अर्थात् पहले कहे हुए गुरुगृह या गुरुकुलका त्यागकर अन्यत्र भिक्षा ले। नित्य आचमन करके शुद्धित होकर गुरुकी आज्ञासे भोजन करे। रात्रि बीतेनपर गुरुमें पहले ही अपने आसनसे उठ जाय और गुरुके लिये कुश, मिठी, दाँतुन और वस्त्र आदि अन्य सामान एकद करके उनको दे। गुरुजीके स्नान कर लेनेपर स्वयं यत्रपूर्वक स्नान करे। ब्रह्मचारी सदा द्रत रखे और काठ आदिसे दन्तधावन न करे॥ १७—२६॥

छाता, जूता, डबटन, गन्धयुक्त इत्र आदि और फूल-माला आदिको त्याग दे। विशेषतः नाच, गान और ग्राम्य कथा-बार्ता एवं मैथुनका सर्वथा त्याग करे। मधुमांस और रसास्वाद (जिह्वाके स्वाद)-को त्याग दे। स्त्रियोंसे अलग रहे। काम, क्रोध, लोभ तथा दूसरे मनुष्योंके अपवाद (निन्दा)-का परित्याग करे। स्त्रियोंकी ओर देखने, उनका स्मर्ण करने और दूसरे जीवोंको हिंसा करने आदिसे बचकर रहें। सब जगह अकेले ही शयन करे, कभी कहीं भी बीर्यपात न करे। यदि कामभाव न होनेपर भी स्वप्नमें बीर्य-स्खलन हो जाय तो ब्रह्मचारी द्विजको चाहिये, वह स्नान करके सूर्य और अग्निकी आराधना करे तथा ‘पुनर्मायेत्विद्विद्वयम्’ इस

आस्तिकोऽहरहः संध्यां त्रिकालं संयतेन्द्रियः ।
उपासीत यथाच्यायं ब्रह्मचारिवते स्थितः ॥ ३१
अभिवाद्य गुरोः पादौ संध्याकर्मावसानतः ।
यथायोग्यं प्रकुर्वीत मातापित्रोस्तु भक्तिः ॥ ३२
एतेषु त्रिषु तुष्टेषु तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ।
तदेषां शासने तिष्ठेद्ब्रह्मचारी विमत्सरः ॥ ३३
अधीत्य चतुरो वेदान् चेदौ वेदमध्यापि वा ।
गुरवे दक्षिणां दत्त्या तदा स्वस्वेच्छया वसेत् ॥ ३४
विरक्तः प्रवजेद्विद्वान् संरक्षस्तु गृही भवेत् ।
सरागो नरकं याति प्रवजन् हि धूबं द्विजः ॥ ३५
यस्यैतानि सुशुद्धानि जिह्वोपस्थोदरं गिरः ।
संन्यसेदकृतोद्वाहो ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यवान् ॥ ३६
एवं यो विधिमास्थाय नयेत् कालमतन्द्रितः ।
तेन भूयः प्रजायेत ब्रह्मचारी दृढवतः ॥ ३७

यो ब्रह्मचारी विधिमेतमास्थित-
श्वरेत् पृथिव्यां गुरुसेवने रतः ।
सम्प्राप्य विद्यामपि दुर्लभां तां
फलं हि तस्याः सकलं हि विन्दति ॥ ३८

हारीत उवाच

गृहीतवेदाध्ययनः श्रुतिशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।
गुरोर्दत्तवरः सम्यक् समावर्तनमारभेत् ॥ ३९
असमाननामगोत्रां कन्यां भ्रातृयुतां शुभाम् ।
सर्वावियवसंयुक्तां सद्वत्तामुद्घेततः ॥ ४०

नोद्घेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् ।
वाचालामतिलोमां च न व्यङ्गां भीमदर्शनाम् ॥ ४१

ऋचाका जप करे। इश्वर और परलोकके अस्तित्वपर विश्वास करता हुआ, ब्रह्मचारियोंके लिये उचित व्रतके पालनमें तत्पर रहकर, जितेन्द्रिय हो, प्रतिदिन न्यायतः प्राप्त त्रिकालसंध्याकी उपासना करे। संध्या-कर्म समाप्त होनेपर गुरुके चरणोंमें प्रणाम करे और यदि सुयोग प्राप्त हो तो माता-पिताके चरणोंमें भी भक्तिपूर्वक प्रणाम करे। इन तीनोंके संतुष्ट होनेपर सम्पूर्ण देवता प्रसन्न रहते हैं; इसलिये ब्रह्मचारीको चाहिये कि ढाह छोड़कर इन तीनोंके शासनमें रहे। यथासम्भव चार, दो अथवा एक ही ऐदका अध्ययन पूर्ण करके गुरुको दक्षिणा दे। फिर अपने इच्छानुसार कहीं भी निवास करे। यदि वह विद्वान् ब्रह्मचारी विरक्त हो, तब तो संन्यासी हो जाय; किंतु यदि उसका विषय-भोगोंके प्रति अनुराग हो तो गृहस्थाश्रममें प्रवेश करे। द्विजो! यदि पुरुष यदि संन्यासी हो जाय तो वह निष्ठय ही नरकमें जाता है। जिसकी जिह्वा, उपस्थ (जननेन्द्रिय), उदर और वाणी सुख हों, अर्थात् जो स्वाद, काम और बुभुक्षाको जीत चुका हो और सत्यवादी या मौन रहता हो, वह पुरुष यदि ब्रह्मचर्यवान् ब्राह्मण हो तो वह विवाह न करके संन्यास से सकता है ॥ ३७—३६ ॥

इस प्रकार जो आलस्य त्यागकर विधिका पालन करते हुए ही समय-यापन करता है, वह ब्रह्मचारी अधिकाधिक दृढ़ व्रतवाला होता है। जो ब्रह्मचारी पूर्वोक्त विधिका सहारा लेकर गुरु-सेवापरायण हो पृथ्वीपर भ्रमण करता है, वह दुर्लभ विद्याको भी सीखकर उसके सम्पूर्ण फलोंको प्राप्त कर लेता है* ॥ ३७-३८ ॥

श्रीहारीत मुनि कहते हैं—पूर्वोक्त रीतिसे वेदाध्ययन समाप्तकर श्रुति तथा अन्यान्य शास्त्रोंके अर्थ एवं तत्त्वका ज्ञान रखनेवाला ब्रह्मचारी विद्वान् गुरुसे आशीर्वद प्राप्तकर विधिपूर्वक समावर्तन-संस्कार आरम्भ करे। फिर जिसके नाम और गोत्र अपनेसे पित्र हों, जिसके भाई भी हों, जो सुन्दरी एवं शुभ लक्षणोंवाली हो, जिसके शरीरके सभी अवयव अविकल हों और जिसका आचरण उत्तम हो, ऐसी कन्याके साथ विवाह करे। जिसके शरीरका रंग कपिल हो, जो अधिकाङ्गी या रेणिणी हो, बहुत बोलनेवाली और अधिक रोमवाली हो, जिसका कोई अङ्ग विकृत या

* इससे आगे 'हारीत उवाच' पुनः दिया गया है। इससे जान पढ़ता है, यह अध्याय यहाँ पूर्ण हो गया है।

नक्षत्रवृक्षनदीनाम्नि नान्तपर्वतनामिकाम्।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नि न च भीषणनामिकाम्॥ ४२

अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नि हंसवारणगामिनीम्।
तन्वोष्ठकेशादशानां मृद्गङ्गीमुद्गहेत् स्त्रियम्॥ ४३

ब्राह्मण विधिना कुर्यात् प्रशस्तेन द्विजोत्तमः।
यथायोगं तथा होवं विवाहं वर्णधर्मतः॥ ४४

उषःकाले समुत्थाय कृतशोचो द्विजोत्तमः।
कुर्यात् स्नानं ततो विद्वान्दन्तधावनपूर्वकम्॥ ४५

मुखे पर्युषिते नित्यं यतोऽपूतो भवेत्त्रः।
तस्माच्छुष्कमर्थार्द्व वा भक्षयेहन्तधावनम्॥ ४६

खदिं च कदम्बं च करञ्जं च वटं तथा।
अपामार्गं च विल्वं च अर्कश्चोदुम्बरस्तथा॥ ४७

एते प्रशस्ताः कथिता दन्तधावनकर्मणि।
दन्तधावनकाष्ठं च वक्ष्यामि तत्प्रशस्तताम्॥ ४८

सर्वे कण्टकिनः पुण्याः क्षीरिणस्तु यशस्विनः।
अष्टाहुलेन मानेन तत्प्रमाणमिहोच्यते॥ ४९

प्रादेशमात्रमर्थवा तेन दन्तान् विशोधयेत्।
प्रतिपद्मर्षष्टीषु नवम्यां चैव सत्तमाः॥ ५०

दन्तानां काष्ठसंयोगाद् दहत्यासमामं कुलम्।
अलाभे दन्तकाष्ठस्य प्रतिषिद्धे च तद्दिने॥ ५१

अपां द्वादशगणदूषैर्मुखशुद्धिर्विधीयते।
स्नात्वा मन्त्रवदाचम्य पुनराचमनं चरेत्॥ ५२

मन्त्रवान् प्रोक्ष्य चात्मानं प्रक्षिपेदुदकाञ्जलिम्।
आदित्येन सह प्रातर्मन्देहा नाम राक्षसाः॥ ५३

हीन हो और जिसकी सूत डगवनी हो, ऐसी कन्यासे विवाह न करे। जिसका नाम नक्षत्र, वृक्ष या नदीके नामफर रखा गया हो, अथवा जिसके नामके अन्तमें पर्वतवाचक शब्द हो, अथवा जो पक्षी, सौंप और दास आदि अर्थवाले नामोंसे युक्त हो, या जिसका भयंकर नाम हो, ऐसी कन्यासे भी विवाह न करे। जिसके शरीरके सभी अवयव सुडील हों, नाम कोमल और मधुर हो, जो हंस या गजराजके समान मन्द एवं लीलायुक्त गतिसे चलनेवाली हो, जिसके अधर, दौत और केश पतले हों एवं जिसका शरीर कोमल हो, ऐसी कन्यासे विवाह करे। श्रेष्ठ द्विजातिको चाहिये कि यथासम्भव सर्वोत्तम ब्राह्मणविधि से विवाह करे। इस प्रकार वर्णधर्मके अनुसार विवाह-संस्कार पूर्ण करना चाहिये ॥ ३९—४४ ॥

इसके बाद विद्वान् द्विजको चाहिये कि प्रतिदिन सूर्योदयसे पूर्व उठकर शौचादिके अनन्तर दन्तधावन करके तुरंत स्नान कर ले। प्रतिदिन रातमें सोकर उठनेके बाद मुख पर्युषित होनेके कारण मनुष्य अपवित्र रहता है, अतः शुद्धिके लिये सूखा या गोला दन्तधावन अवश्य चबाना चाहिये। दौतुनके लिये खुदिर, कदम्ब, करञ्ज, चट, अपामार्ग, विल्व, मदार और गूलर—ये वृक्ष उत्तम माने गये हैं। दन्तधावनके लिये उपयुक्त काष्ठ और उसकी उत्तमताका लक्षण बता रहा हूँ ॥ ४५—४८ ॥

जितने कटिवाले वृक्ष हैं, वे सभी पवित्र हैं। जितने दूधवाले वृक्ष हैं, वे सभी यश देनेवाले हैं। दौतुनकी लकड़ीकी लम्बाई आठ अंगूलकी बतायी जाती है। अथवा विलामात्र उसकी लम्बाई होनी चाहिये। ऐसी दौतुनसे दौतोंको स्वच्छ करना चाहिये। परंतु साधुशिरोमणियो ! प्रतिपद्म, अमावास्या, यष्टी और नवमीको काठकी दौतुन नहीं करनी चाहिये; क्योंकि उक्त सिधियोंको यदि दौतसे काठका संयोग हो जाय तो वह सात पीढ़ीतकके कुलको दग्ध कर डालता है। जिस दिन दौतुन न मिले या जिस दिन दौतुन करना निषिद्ध है, उस दिन बारह बार जलका कुल्ता करके मुखकी शुद्धि कर लेनेकी विधि है ॥ ४९—५१ ॥

दौतुनके बाद स्नान करे। फिर मन्त्रपाठपूर्वक आचमन करके पुनः आचमन करना चाहिये। मन्त्रपाठपूर्वक अपने ऊपर भी जल छिड़के और सूर्यके लिये अर्घ्यके तौरपर जलाञ्जलि भरकर उछाले। अव्यक्तजन्मा ब्रह्मजीके वरदानसे

युध्यन्ति वरदानेन ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
उदकाञ्जलिविक्षेपो गायत्र्या चाभिमन्त्रितः ॥ ५४

तान् हन्ति राक्षसान् सर्वान् मन्देहान् रविवैरिणः।
ततः प्रयाति सविता ब्राह्मणी रक्षितो दिवि ॥ ५५

मरीच्यादैर्महाभागैः सनकादैश्च योगिभिः।
तस्मान्न लहूयेत्संध्यां सायं प्रातद्विजः सदा ॥ ५६

उल्लङ्घयति यो मोहात्स याति नरकं ध्रुवम्।
सायं मन्त्रवदाचम्य प्रोक्ष्य सूर्यस्य चाञ्जलिम् ॥ ५७

दत्त्वा प्रदक्षिणं कृत्वा जलं स्पृष्टा विशुद्ध्यति।
पूर्वा संध्यां सनक्षत्रामुपक्रम्य यथाविधि ॥ ५८

गायत्रीमध्यसेत्तावद्यावदृक्षाणि पश्यति।
ततस्त्वावसर्थं प्राप्य होमं कुर्यात्स्वयं बुधः ॥ ५९

संचिन्त्य भृत्यवर्गस्य भरणार्थं विचक्षणः।
ततः शिष्यहितार्थाय स्वाध्यायं किंचिदाचरेत् ॥ ६०

इश्वरं चैव रक्षार्थमभिगच्छेद्विजोत्तमः।
कुशपुष्पेन्द्रिनादीनि गत्वा दूरात्समाहरेत् ॥ ६१

माध्याहिनीकी क्रियां कुर्याच्छुच्छु देशे समाहितः।
विधिं स्नानस्य वक्ष्यामि सपासात् पापनाशनम् ॥ ६२

स्नात्वा येन विधानेन सद्यो मुच्येत किल्बिषात्।
सुधीः स्नानार्थमादाय शुक्लां कुशतिलैः सह ॥ ६३

सुप्रनाश्च ततो गच्छेन्द्रीं शुद्धां मनोरमाम्।
नद्यां तु विद्यमानायां न स्नायादल्पवारिषु ॥ ६४

शुच्छु देशे समभ्युक्ष्य स्थापयेत्कुशमृतिकाम्।
मृतोयेन स्वकं देहमभिप्रक्षाल्य यत्रतः ॥ ६५

प्रबल हुए 'मन्देह' नामक राक्षस प्रतिदिन प्रातःकाल आकर सूर्यके साथ युद्ध करते हैं; किंतु जब गायत्रीसे अभिमन्त्रित जलाञ्जलि सूर्यदेवके सामने उछाली जाती है, तब वह उन समस्त सूर्य-वैरी मन्देह नामके राक्षसोंको मार भगाती है।* तत्पश्चात् महाभाग मरीचि आदि ब्राह्मणों और सनकादिक योगियोंद्वारा रक्षित हो, भगवान् सूर्यदेव आकाशमें आगे बढ़ते हैं। इसलिये द्विजको चाहिये कि सायं और प्रातःकालकी संध्याका कभी उल्लङ्घन न करे। जो मोहवश संध्याका उल्लङ्घन करता है, वह अवश्य ही नरकमें पड़ता है। यदि सायंकालमें मन्त्रपाठपूर्वक आचमन करके अपने ऊपर जल छिड़ककर फिर भगवान् सूर्यको जलाञ्जलि अपित की जाय और उनकी परिक्रमा करके पुनः जलका स्पर्श किया जाय तो वह द्विज शुद्ध हो जाता है। प्रातःकालकी संध्या तारोंके रहते-रहते विधिपूर्वक आरम्भ करे और जब्ततक तारोंका दर्शन हो, तबतक गायत्रीका जप करता रहे। तत्पश्चात् धरमें आकर विद्वान् पुरुषको स्वयं हवन करना चाहिये। फिर जो पृथ्वी—पालनीय कुरुम्बीजन तथा दास आदि हों, उनके भरण-पोषणके लिये विद्वान् गृहस्थ चिन्ता (आवश्यक प्रबन्ध) करे। उसके बाद शिष्योंके हितके लिये कुछ देरतक स्वाध्याय करे। उत्तम द्विजको चाहिये कि अपनी रक्षाके लिये इश्वरका सहारा ले। फिर दूर जाकर पूजाके लिये कुश, फूल और हवनके लिये समिधा आदि ले आये और पवित्र स्थानमें एकाग्रचित्तसे वैठकर मध्याह्नकालिक क्रिया (संध्योपासना आदि) करे ॥ ६२—६५ ॥

अब हम थोड़ेमें स्नानकी विधि बतला रहे हैं जो समस्त पापोंको नष्ट करनेवाली है। उस विधिसे स्नान करके मनुष्य तत्काल पापोंसे मुक्त हो जाता है। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि स्नानके लिये कुश और तिलोंकि साथ शुद्ध मिट्टी ले ले तथा प्रसन्नचित्त होकर शुद्ध और मनोहर नदीके तटपर जाय। नदीके होते हुए छोटे जलाशयोंमें स्नान न करे। वहाँ पवित्र स्थानपर उसे छिड़ककर कुश और मृतिका आदि रख दे। फिर विद्वान् पुरुष मिट्टी और जलसे

* यहीं 'मन्देह' राक्षस आलस्यके प्रतीक हैं। जिस देशमें जब रात थोककर प्रातःकाल होता है, वहाँके सौरोंको उसी समय आलस्य दबाये रहता है। 'सूर्य आत्मा जगतः' के अनुसार सूर्य सबके आत्मा है, अतः किसी भी प्राप्तीपर आलस्यका आङ्गमण सूर्यपर मन्देहका आङ्गमण है। स्नान और सूर्यार्थसे इस मन्देह पर आलस्यका निवारण सबके प्रत्यक्ष अनुभवमें आता है।

स्नानाच्छरीं संशोध्य कुर्यादाचमनं बुधः ।
शुभे जले प्रविश्याथ नमेद्वरुणमप्यतिम् ॥ ६६

हरिमेव स्परश्चित्ते निमज्जेच्य बहूदके ।
ततः स्नानं समाप्ताद्य अप आचम्य मन्त्रतः ॥ ६७

प्रोक्षयेद्वरुणं देवं तैर्मन्त्रैः पावमानिभिः ।
कुशाग्रस्थेन तोयेन प्रोक्ष्यात्मानं प्रथलतः ॥ ६८

आलभेन्मृत्तिकां गात्रे इदं विष्णुरिति त्रिधा ।
ततो नारायणं देवं संस्मरन् प्रविशेजलम् ॥ ६९

निपञ्च्यान्तर्जले सम्यक्त्रिः पठेदधर्मर्थणम् ।
स्नात्वा कुशतिलैस्तद्वेवर्षीन् पितृभिः सह ॥ ७०

तर्पयित्वा जलात्तस्मान्निष्कम्य च समाहितः ।
जलतीरं समाप्ताद्य धीते शुक्ले च वाससी ॥ ७१

परिधायोत्तरीयं च न कुर्यात्केशाधूननम् ।
न रक्तमुत्खणं वासो न नीलं तत्प्रशास्यते ॥ ७२

मलाक्तं तु दशाहीनं वर्जयेदम्बरं बुधः ।
ततः प्रक्षालयेत्पादौ मृत्तोयेन विचक्षणः ॥ ७३

त्रिः पिवेद्वीक्षितं तोयमास्यं द्विः परिमार्जयेत् ।
पादौ शिरसि चाभ्युक्षेत्रिराचम्य तु संस्पृशेत् ॥ ७४

अहुष्टेन प्रदेशिन्या नासिकां समुपस्पृशेत् ।
अहुष्टकनिष्ठिकाभ्यां नाभीं हृदि तलेन च ॥ ७५

शिरश्चाद्गुलिभिः सर्वैर्बाहुं चैव ततः स्पृशेत् ।
अनेन विधिनाऽचम्य ब्राह्मणः शुद्धपानसः ॥ ७६

दर्थं तु दर्थपाणिः स्यात् प्राद्युमुखः सुसमाहितः ।
प्राणायामांस्तु कुर्वीत यथाशास्वमतन्त्रितः ॥ ७७

अपने शरीरको यत्नपूर्वक लिप्त करके, शुद्ध स्नानके द्वारा उत्तरे धोकर पुनः आचमन करे। तदनन्तर स्वच्छ जलमें प्रवेश करके जलेश वरुणको नमस्कार करे। फिर मन-ही-मन भगवान् विष्णुका स्परण करते हुए जहाँ कुछ अधिक जल हो, वहाँ डुबको लगाये। इसके बाद स्नान समाप्तकर, मन्त्रपाठपूर्वक आचमन करके, वरुणसम्बन्धी पवायन-मन्त्रोद्घारा वरुणदेवका अधिष्ठेक करे। फिर कुशके अग्रभागपर स्थित जलसे अपना यत्नपूर्वक मार्जन करे और 'इदं विष्णुर्विचक्षमे' इस मन्त्रका पाठ करो हुए अपने शरीरके तीन भागोंमें क्रमशः मृत्तिकाका लेप करे। तत्पश्चात् भगवान् नारायणका स्परण करते हुए जलमें प्रवेश करे। जलके भीतर भली प्रकार डुबकी लगाकर तीन बार अधर्मर्थण पाठ करे। इस प्रकार स्नान करके कुश और तिलोद्घारा देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण करे। इसके बाद समाहितवित्त हो, जलसे बाहर निकल, तटपर आकर धुले हुए दो श्वेत वस्त्रोंको धारण करे। इस प्रकार धोती और उत्तरीय धारणकर अपने केशोंको न फटकारे। अल्पाधिक लाल और नील वस्त्र धारण करना भी उत्तम नहीं माना गया है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि जिस वस्त्रमें मल या दाग लगा हो, अथवा जिसमें किनारी न हो, उसका भी त्याग करे ॥ ६२—७२ ॥, ॥

इसके पश्चात् विज्ञ पुरुष मिठ्ठी और जलसे अपने चरणोंको धोये। फिर खूब देख-भालकर शुद्ध जलसे तीन बार आचमन करे। दो बार जल लेकर मुँह धोये। पैर और सिरपर जल छिड़के। फिर तीन बार आचमन करके क्रमशः अङ्गोंका स्पर्श करे। अँगूठे और तर्जनीसे नासिकाका स्पर्श करे। अँगूष्ठ और कनिष्ठिकासे नाभिका स्पर्श करे। हृदयका करतलसे स्पर्श करे। तदनन्तर समस्त अँगुलियोंसे पहले सिरका, फिर बाहुओंका स्पर्श करे। इस प्रकार आचमन करके ब्राह्मण शुद्धहृदय हो, हाथमें कुश ले, पूर्वकी ओर मुख करके एकाग्रतापूर्वक कुशासनपर बैठ जाय और आलस्यको त्यागकर शास्त्रोक्त विधिसे तीन बार प्राणायाम करे ॥ ७३—७७ ॥

जपयज्ञं ततः कुर्याद्वायत्रीं वेदमातरम्।
त्रिविधो जपयज्ञः स्यात्तस्य भेदं निवोधत ॥ ७८

वाचिकक्षु उपांशुश्च मानसस्त्रिविधः स्मृतः।
त्रयाणां जपयज्ञानां श्रेयः स्यादुत्तरोत्तरम् ॥ ७९

यदुच्चनीचस्वरितैः स्पष्टशब्दवदक्षैः।
शब्दमुच्चारयेद्वाचा जपयज्ञः स वाचिकः ॥ ८०

शनैरुच्चारयेन्मन्त्रमीषदोष्टौ प्रचालयेत्।
किंचिन्मन्त्रं स्वयं विन्द्यादुपांशुः स जपः स्मृतः ॥ ८१

धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद्वृण्ठं पदात्पदम्।
शब्दार्थचिन्तनं ध्यानं तदुक्तं मानसं जपः ॥ ८२

जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति।
प्रसत्रा विपुलान् भोगान्दद्याम्बुक्तिं च शाश्वतीम् ॥ ८३

यक्षरक्षःपिशाचाश्च ग्रहाः सूर्यादिदूषणाः।
जापिनं नोपसर्पन्ति दूरादेवापयान्ति ते ॥ ८४

ऋक्षादिकं परिज्ञाय जपयज्ञमतन्त्रितः।
जपेदहरहः स्नात्वा सावित्रीं तन्मना द्विजः ॥ ८५

सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम्।
गायत्रीं यो जपेन्नित्यं न स पापैर्हि लिप्यते ॥ ८६

अथ पुष्याद्वालिं दत्त्वा भानवे चोर्ध्वबाहुकः।
उदुत्यं च जपेन्मन्त्रं चित्रं तच्छक्षुरित्यपि ॥ ८७

प्रदक्षिणमुपावृत्य नमस्कुर्यादिवाकरम्।
स्वेन तीर्थेन देवादीनद्विः संतर्पयेदद्वृथः ॥ ८८

देवान् देवगणांश्चैव ऋषीनृषिगणांस्तथा।
पितृन् पितृगणांश्चैव नित्यं संतर्पयेदद्वृथः ॥ ८९

स्नानवस्त्रं ततः पीड्य पुनराचमनं चरेत्।
दर्भेषु दर्भपाणिः स्याद्ब्रह्मयज्ञविधानतः ॥ ९०

प्राङ्मुखो ब्रह्मयज्ञं तु कुर्याद्वृद्धिसमन्वितः।
ततोऽर्धं भानवे दद्यात्तिलपुष्पजलान्वितम् ॥ ९१

तत्पक्षात् वेदमाता गायत्रीका जप करते हुए जपयज्ञ करे। जपयज्ञ तीन प्रकारका होता है; उसका भेद बताते हैं, आप लोग सुनें। वाचिक, उपांशु और मानस—तीन प्रकारका जप कहा गया है। इन तीनों जपयज्ञोंमें उत्तरोत्तर जप श्रेष्ठ है, अर्थात् वाचिक जपकी अपेक्षा उपांशु और उसकी अपेक्षा मानस जप श्रेष्ठ है। अब इनके लक्षण बताते हैं। जप करनेवाला पुरुष आवश्यकतानुसार कैंचे, नीचे और समान स्वरोंमें बोले जानेवाले स्पष्ट शब्दयुक्त अश्रोद्धारा जो वाणीसे सुस्पष्ट शब्दोच्चारण करता है, वह 'वाचिक जप' कहलाता है। इसी प्रकार जो तनिक-सा ओटोंको हिलाकर धीरे-धीरे मन्त्रका उच्चारण करता है और मन्त्रको स्वयं ही कुछ-कुछ सुनता या समझता है, उसका वह जप 'उपांशु' कहलाता है। बुद्धिके द्वारा मन्त्राधरसमूहके प्रत्येक वर्ण, प्रत्येक पद और शब्दार्थका जो चिन्तन एवं ध्यान किया जाता है, वह 'मानस जप' कहा गया है। जपके द्वारा प्रतिदिन जिसका स्तावन किया जाता है, वह देवता प्रसन्न होता है और प्रसन्न होनेपर वह विपुल भोग तथा नित्य भोक्ष-सुखको भी देता है। यक्ष-राक्षस-पिशाच आदि और सूर्यादि देवताओंको दूषित करने-वाले अन्य (रहु-केतु आदि) ग्रह भी जप करनेवाले पुरुषके निकट नहीं जाते, दूरसे ही भाग जाते हैं ॥ ८८-८४ ॥

द्विजको चाहिये कि वह आलस्यका त्याग करके प्रतिदिन तारोंको देखकर अर्थात् तारोंके रहते-रहते स्नान करके, गायत्रीके अर्थमें मन लगा गायत्री-मन्त्रका जप करे। जो द्विज अधिक-से-अधिक एक हजार, साधारणतया एक सौ अथवा कम-से-कम दस बार प्रतिदिन गायत्रीका जप करता है, वह पापोंसे लिप्स नहीं होता ॥ ८५-८६ ॥

इसके बाद सूर्यदेवको पुष्याद्वालि अर्पित करके अपनी भुजाएं ऊपर उठाकर 'ॐ उदुत्यं जातयेदसम्...' तथा 'ॐ तच्छक्षुद्वाहितम्...' इन मन्त्रोंका जप करे। फिर प्रदक्षिणा करके सूर्यदेवको प्रणाम करे। तत्पक्षात् विद्वान् पुरुष प्रतिदिन देवतीर्थसे (उंगलियोद्धारा) देवताओंका तर्पण करे। विज पुरुषको देवताओं और उनके गणोंका, ऋषियों और उनके गणोंका तथा पितरों और पितृगणोंका प्रतिदिन तर्पण करना चाहिये। तदनन्तर स्नानके बाद उतारे हुए वस्त्रको निचोड़कर पुनः आचमन करे। फिर हाथमें कुश लेकर कुशासनपर धैठ जाय और ब्रह्मयज्ञकी विधिके अनुसार पूर्वाभिमुख हो बुद्धिपूर्वक ब्रह्मयज्ञ (वेदका स्वाध्याय) करे। तदनन्तर खड़ा होकर तिल, फूल और जलसे युक्त अर्घ्यपात्रको अपने मस्तकतक

उत्थाय मूर्धपर्यन्तं हंसः शुचिषदित्यृचा।
जले देवं नमस्कृत्य ततो गृहगतः पुनः ॥ ९२

विधिना पुरुषसूक्तेन तत्र विष्णुं समर्चयेत्।
वैश्वदेवं ततः कुर्याद्विलिकर्म यथाविधि ॥ ९३

गोदोहमात्रमतिथिं प्रतिवीक्षेत वै गृही।
अदृष्टपूर्वमतिथिमागतं प्राक् समर्चयेत् ॥ ९४

आगत्य च पुनद्वारं प्रत्युत्थानेन साधुना।
स्वागतेनाग्रयस्तुष्टा भवन्ति गृहमेधिनाम् ॥ ९५

आसनेन तु दत्तेन प्रीतो भवति देवराद्।
पादशीचेन पितरः प्रीतिमायान्ति तस्य च ॥ ९६

अन्नाद्येन च दत्तेन तृप्यतीह प्रजापतिः।
तस्मादतिथये कार्यं पूजनं गृहमेधिना ॥ ९७

भक्त्या च भक्तिमान्नित्यं विष्णुमध्यचर्यं चिन्नयेत्।
भिक्षां च भिक्षावे दद्यात्परिक्राद्ब्रह्मचारिणे ॥ ९८

आकलित्यतान्नादुद्धृत्य सर्वव्यञ्जनसंयुतम्।
दद्याच्य मनसा नित्यं भिक्षां भिक्षोः प्रयत्नतः ॥ ९९

अकृते वैश्वदेवे तु भिक्षी भिक्षार्थमागते।
अवश्यमेव दातव्यं स्वर्गसोपानकारकम् ॥ १००

ठद्धृत्य वैश्वदेवान्नं भिक्षां दत्त्वा विसर्जयेत्।
वैश्वदेवाकृतं दोषं शक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम् ॥ १०१

सुवासिनीः कुमारीश्च भोजयित्वा ऽनुरानपि।
बालवृद्धांस्ततः शेषं स्वयं भुज्ञीत वै गृही ॥ १०२

प्राङ्मुखोद्दमुखो वापि मौनी च मितभाषणः।
अन्नं पूर्वं नमस्कृत्य प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ १०३

पञ्च प्राणाहुतीः कुर्यात्समन्वेण पृथक् पृथक्।
ततः स्वादुकरं चान्नं भुज्ञीत सुसमाहितः ॥ १०४

कैंचे उठा 'हंसः शुचिषत्'... इस ऋचाका पाठ काले हुए सूर्यदेवके लिये अर्ध्य दे। फिर जलमें स्थित बरुणदेवको नमस्कार कर पुनः घरपर आ जाय और वहाँ पुरुषसूक्तमें भगवान् विष्णुका विधिवत् पूजन करे। तदनन्तर विधिपूर्वक बलिवैश्वदेव कर्म करे ॥ १७—१३ ॥

इसके बाद जितनी देरमें गौ दुही जाती है, उतनी देरतक द्वारपर अतिथिके आनेको प्रतीक्षा करे। यदि कई अतिथि आ जायें तो उनमेंसे जिसे पहले कभी न देखा हो, उसका सम्मान सबसे पहले करना चाहिये। द्वारपर आकर अतिथिकी खड़े होकर भलीभौति अगवानी करनेसे गृहस्थके ऊपर दक्षिण, गार्हपत्य और आहवनीय—तीनों अग्नि प्रसन्न होते हैं; आसन देनेसे देवराज इन्द्रको प्रसन्नता होती है, अतिथिके पैर धोनेसे उस गृहस्थके पितृगण तृप्त होते हैं, अब आदि भोज्य पदार्थ अर्पण करनेसे प्रजापति प्रसन्न होते हैं। इसलिये गृहस्थ पुरुषको चाहिये कि वह अतिथिका पूजन करे ॥ १४—१७ ॥

इसके पश्चात् भक्तिमान् पुरुष प्रतिदिन भगवान् विष्णुको भक्तिपूर्वक पूजा करके उनका चिन्नन करे। फिर संन्यासी, विरक्त एवं ब्रह्मचारीको भिक्षा दे। सब प्रकारसे तैयार किये हुए अन्नमेंसे समस्त व्यञ्जनोंसे युक्त कुछ अन्न निकालकर प्रतिदिन यत्नपूर्वक भिक्षु (संन्यासी)-को देना चाहिये। बलिवैश्वदेव करनेके पहले भी यदि भिक्षु भिक्षाके लिये आ जाय तो उसे अवश्य भिक्षा देनी चाहिये; क्योंकि यह दान स्वर्गमें आनेके लिये सीढ़ीका काम है। विश्वेदेवसम्बन्धी अन्नमेंसे लेकर भिक्षुको भिक्षा देकर उसे विदा करे। वैश्वदेव कर्म न करनेके दोषको वह भिक्षु दूर कर सकता है। फिर सुवासिनी (सुहागिन) और कुमारी कन्याओं तथा रोगी व्यक्तियोंको और बालकों एवं बृद्धोंको पहले भोजन कराके उनसे बचे हुए अन्नको गृहस्थ पुरुष स्वयं भोजन करे ॥ १८—१०२ ॥

भोजन करते समय पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके बैठे और मौन रहे अथवा कम बोले। भोजनसे पहले प्रसन्नचित्तसे अन्नको नमस्कार करके पृथक्-पृथक् पाँच प्राणवायुओंके नाम-मन्त्रसे अर्थात् 'ॐ प्राणाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा, ॐ व्यानाय स्वाहा, ॐ उद्दानाय स्वाहा, ॐ सपानाय स्वाहा'—इस प्रकार उच्चारण करते हुए पाँच बार प्राणाग्निहोत्र करे। इसके बाद एकाग्रचित्त होकर उस स्वादिष्ट अन्नको स्वयं भोजन करे। भोजनके

आचम्य देवतामिष्टां संस्मरेदुदरं स्पृशन्।
इतिहासपुराणाभ्यां कंचित्कालं नयेद्युधः ॥ १०५

ततः संध्यामुपासीत बहिर्गत्वा विधानतः ।
कृतहोमश्च भुज्ञीत रात्रावतिश्चिमर्चयेत् ॥ १०६

सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम् ।
नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः ॥ १०७

शिष्यानध्यापयेत्तद्वदनध्यायं विवर्जयेत् ।
स्मृत्युक्तान् सकलान् पूर्वपुराणोक्तानपि द्विजः ॥ १०८

महानवम्यां द्वादश्यां भरण्यामपि चैव हि ।
तथाक्षव्यतुतीयायां शिष्यान्नाध्यापयेद्युधः ॥ १०९

माघमासे तु सप्तम्यां रथ्यामध्ययनं त्यजेत् ।
अध्यापनमथाभ्यन्य स्नानकाले विवर्जयेत् ॥ ११०

दानं च विधिना देयं गृहस्थेन हितैषिणा ।
हिरण्यदानं गोदानं भूमिदानं विशेषतः ॥ १११

एतानि यः प्रयच्छेत श्रोत्रियेभ्यो द्विजोत्तमः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥ ११२

मङ्गलाचारयुक्तश्च शुचिः श्रद्धापरो गृही ।
आद्यं च श्रद्धया कुर्यात्स याति ब्रह्मणः पदम् ॥ ११३

जातावुत्कर्षमायाति नरसिंहप्रसादतः ।
स तस्मान्मुक्तिमाप्रोति ब्रह्मणा सह सत्तमाः ॥ ११४

एवं हि विप्राः कथितो मया चः
समासतः शाश्वतधर्मराशिः ।
सप्त्यगगृहस्थस्य सतो हि धर्म
कुर्वन् प्रयत्नाद्विरमेति मुक्तः ॥ ११५

बाद मुँह-हाथ खो, आचमन (कुलला) करके, अपने उदरका स्पर्श करते हुए इष्टदेवका स्मरण करे। फिर विद्वान् पुरुष इतिहास-पुराणोंके अध्ययनमें कुछ समय अतीत करे। तदनन्तर सायंकाल आनेपर बाहर (नदी या जलाशयके तटपर) जाकर विधिपूर्वक संध्योपासन करे। पुनः रात्रिकालमें हवन करके अतिथि-सत्कारके पश्चात् भोजन करे। द्विजातियोंके लिये प्रातः और सायं—दो ही समय भोजन करना वेदविहित है; इसके बीचमें भोजन नहीं करना चाहिये। जैसे अग्निहोत्र प्रातः और सायंकालमें किया जाता है, वैसे ही दो ही समय भोजनकी भी विधि है ॥ १०३—१०७ ॥

इसके अतिरिक्त विद्वान् द्विजको चाहिये कि वह प्रतिदिन शिष्योंको पढ़ाये, परंतु अध्ययनके लिये वर्जित समयका त्याग करे। स्मृतिमें बताये हुए तथा पहलेके पुराणोंमें वर्णित सम्पूर्ण अनध्याय-कालको त्याग दे। महानवमी (आक्षिनी शुक्ला नवमी) और द्वादशी तिथि, भरणी नक्षत्र और अक्षयतृतीयामें विद्वान् पुरुष शिष्योंको न पढ़ाये। माघ मासकी सहमीको अध्ययन न करे, सङ्कपर चलते समय और उबटन लगाकर स्नान करते समय भी अध्ययनका त्याग करे ॥ १०८—११० ॥

अपना हित चाहनेवाले गृहस्थको चाहिये कि विधिपूर्वक दान करे। विशेषतः सुवर्णदान, गोदान और भूमिदान करे। जो द्विजत्रेषु सुवर्ण आदि पूर्वोक्त वस्तुऐं श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको दानमें देता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। जो गृहस्थ शुभाचरणोंसे युक्त, पवित्र और श्रद्धालु रहकर श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। वह भगवान् नरसिंहकी कृपासे जातिमें उत्कर्ष प्राप्त करता है और सत्तमोऽब्रह्माजीके साथ ही वह मुक्त हो जाता है। विप्रगण! इस प्रकार मैंने आप लोगोंसे यह सनातन धर्मसमूहका संक्षेपसे वर्णन किया। जो पुरुष सद्गृहस्थके उक्त धर्मका भलीभौति प्रयत्नपूर्वक पालन करता है, वह मुक्त होकर भगवान् श्रीहरिको प्राप्त करता है ॥ १११—११५ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे गृहस्थपर्याये नामाहपञ्चाशतोऽध्यायः ॥ ५८ ॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'गृहस्थपर्य' नामक अद्वावनवी अध्याय पूरा हुआ ॥ ५८ ॥

उनसठवाँ अध्याय

वानप्रस्थ-धर्म

हारीत उक्तच

अतः परं प्रवक्ष्यामि वानप्रस्थस्य लक्षणम्।
धर्ममयम् महाभागा: कक्ष्यमानं निबोधतः॥ १

गृहस्थः पुत्रपौत्रादीन् दृष्टा पलितमात्मनः।
स्वभाव्या तनये स्थाप्य स्वशिष्यैः प्रविशेद्वनम्॥ २

जटाकलापचीराणि नखगात्ररुहाणि वा।
धारयस्तु यादग्री वैतानविधिना स्थितः॥ ३

भृतपर्णीर्दत्सम्भूतैर्नीवाराद्यैरतन्द्रितः।
केदमूलफलैर्वापि कुर्यान्नित्यक्रियां वृथः॥ ४

व्रिकालं स्त्रानयुक्तस्तु कुर्यात्तीव्रं तपः सदा।
पक्षे गते वा अशनीयान्मासान्ते वा पराक्रृत्॥ ५

चतुःकालोऽपि चाशनीयात्कालोऽप्युत तथाष्टुमे।
षष्ठाहृकाले हृथवा अथवा वायुभक्षकः॥ ६

घर्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो धारावर्धासु वै नयेत्।
हैमन्तिके जले स्थित्वा नयेत्कालं तपश्चारन्॥ ७

एवं स्वकर्मभोगेन कृत्वा शुद्धिमध्यात्मनः।
अग्निं चात्मनि वै कृत्वा छजेद्वाथोत्तरां दिशम्॥ ८

आदेहपाताद्वनगो मौनमास्थाय तापसः।
स्मरन्नतीन्द्रियं छह्य छह्यलोके महीयते॥ ९

तपो हि यः सेवति काननस्थो
वसेन्यहत्सत्त्वसमाधियुक्तः।

षिमुक्तपापो हि मनःप्रशान्तः
प्रथाति विष्णोः सदनं द्विजेन्द्रः॥ १०

श्रीहारीत मुनि बोले—महाभागगण ! इसके बार मैं वानप्रस्थका लक्षण और श्रेष्ठ धर्म बताऊँगा; आप सोग मेरे द्वारा बताये जानेवाले डस धर्मको सुनें॥ १॥

गृहस्थ पुरुष जब यह देख से कि मेरे पुत्र-पौत्र हो गये हैं तथा बाल भी पक गये हैं, तब वह अपनी भार्याको पुत्रोंकी देख-रेखामें सौंपकर स्वयं अपने शिष्योंके साथ बनमें प्रवेश करे। जटा, धीर (बल्कल) बस्त, नख, लोम आदि धारण किये हुए ही बजोक्त विधिसे अग्रिमें हवन करे। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि पत्तोंवाले साग आदिसे या भरतीसे स्वयं उत्पन्न हुए नीवार आदिसे अथवा कंद-मूल-फल आदिसे प्रतिदिन आहारक्रियाका निवाह करे। प्रातः, मध्याह्न और सायं—तीनों कालोंमें ज्ञान करके सदा कठोर तपस्या करे। 'पराक' आदि व्रतोंका पालन करता हुआ वानप्रस्थ पुरुष एक पक्ष या एक मासके बाद भोजन करे अथवा दिन-रातके चौथे या आठवें भागमें एक बार भोजन करे। अथवा छठे दिन कुछ भोजन करे या वायु पीकर ही रहे॥ २—६॥

ग्रीष्म-कालमें पञ्चाग्निके मध्य बैठे, वर्षाकालमें धारावृष्टि होनेपर बाहर आकाशके ही नीचे समय ब्रह्मत करे और हेमन्त-ऋतुमें तप करते हुए वह जलमें छह रहकर समय बिताये। इस प्रकार कर्मभोगद्वारा आत्मशुद्धि करके, अग्निको भावनाद्वारा अन्तःकरणमें स्थापितकर उत्तरदिशाको चला जाय। वह तपस्वी देहपात होनेतक वनमें मौन रहकर इन्द्रियातीत ऋह्यका स्मरण करता हुआ देह त्यागकर ऋह्यलोकमें पूजित होता है। जो द्विजश्रेष्ठ वनवासी (वानप्रस्थ) होकर महान् सत्त्वगुण और समाधिसे युक्त हो तपका अनुष्ठान करता है, वह पापरहित और प्रशान्तचित्त होकर विष्णुधामको प्राप्त होता है॥ ७—१०॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे वानप्रस्थधर्मो नाम एकोनशहितमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'वानप्रस्थधर्म' नामक उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५१ ॥

साठवाँ अध्याय

चतिथर्थ

हार्योत्तराव

अत ऊर्ध्वं प्रवद्यामि यतिथर्थमनुज्ञम्। श्रद्धया यदनुश्राय यतिर्मुच्येत् बन्धनात्॥ १
एवं बनाश्रमे तिष्ठुस्तपसा दग्धकिलिषः। चतुर्थमाश्रमं गच्छेत् संन्यस्य विधिना ह्रिजः॥ २
दिव्यं ऋषिभ्यो देवेभ्यः स्वपितृभ्यश्च यत्ततः। दत्त्वा श्राद्धमृषिभ्यश्च मनुजेभ्यस्तथाऽऽत्मने॥ ३
इष्टे वैश्वानरीं कृत्वा प्राजापत्यमथापि वा। अर्णन स्वात्मनि संस्थाप्य मन्त्रवत्प्रवर्जेत् पुनः॥ ४
ततः प्रभृति पुत्रादौ सुखलोभादि वर्जयेत्। दद्याच्च भूमावुदकं सर्वभूताभयेकरम्॥ ५
त्रिदण्डं वैणवं सौम्यं सत्वचं समर्पयेत्। वेष्टितं कृष्णागोवालरम्भा च चतुरङ्गुलम्॥ ६
ग्रन्थिभिर्वा त्रिभिर्युक्तं जलपूतं च धारयेत्। गृहीयादक्षिणे हस्ते मन्त्रेणीव तु मन्त्रवित्॥ ७
कौपीनाच्छादनं वासः कुथां शीतनिवारिणीम्। पादुके चापि गृहीयात्कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम्॥ ८
एतानि तस्य लिङ्गानि यतेः प्रोक्तानि धर्मतः। संगृहा कृतसंन्यासो गत्वा तीर्थमनुज्ञम्॥ ९
स्नात्वा ह्याचाच्य विधिवज्जलयुक्तांशुकेन वै। वारिणा तर्पयित्वा तु मन्त्रवद्धास्करं नमेत्॥ १०
आसीनः प्राइमुखो मौनी प्राणायामत्रयं चरेत्। गायत्रीं च यथाशक्ति जप्त्वा ध्यायेत्परं पदम्॥ ११
स्थित्यर्थमात्मनो नित्यं भिक्षाटनमथाचरेत्। सायाह्नकाले विप्राणां गृहाणि विचरेण्टतिः॥ १२

श्रीहारीत मुनि कहते हैं—इसके बाद अब मैं संन्यासियोंका सर्वोत्तम धर्म बताऊँगा, जिसका ब्रह्मपूर्वक अनुष्ठान करके संन्यासी भववन्धनसे मुक्त हो जाता है। ह्रिजको चाहिये कि पूर्वोक्त रीतिसे वानप्रस्थ-आश्रममें रहते हुए तपस्याद्वारा पापोंको भस्म करके, विधिपूर्वक संन्यास ले चौथे आश्रममें प्रवेश करे। पहले यत्पूर्वक देवताओं, ऋषियों और अपने पितरोंके लिये दिव्य श्राद्ध-सामग्रीका दान करे; इसी प्रकार ऋषियों, मनुष्यों तथा अपने लिये भी श्राद्धीय वस्तुका दान करे। फिर वैश्वानर अथवा प्राजापत्य याग करके, मन्त्रपाठपूर्वक अपने अन्तःकरणमें अग्निस्थापन करके संन्यासी हो, वहाँसे चला जाय। उस दिनसे पुत्र आदिके प्रति आसक्तिको और सुख-लोभ आदिको त्याग दे। पृथ्वीपर समस्त प्राणियोंको अभय देनेके निमित्त जलकी अज्ञालि दे। वेणु (बाँस)-का बना हुआ त्रिदण्ड धारण करे, जो सुन्दर और त्वचायुक्त हो, उसके पोर बराबर हों, काली गौंके बालोंकी रस्सीसे वह चार अंगुलतक लपेटा गया हो। अथवा वह दण्ड तीन गौंठोंसे युक्त हो, उसे जलसे पवित्र करके धारण करे। मन्त्रवेत्ता पुरुषको चाहिये कि वह मन्त्रपाठपूर्वक ही उस दण्डको दायें हाथमें ग्रहण करे ॥ १—७ ॥

कौपीन (लौगोटी), चादर, जाहा दूर करनेवाली एक गुदड़ी तथा छड़ाऊँ—इन्हीं वस्तुओंको अपने पास रखे, अन्य वस्तुओंका संग्रह न करे। संन्यासीके ये ही चिह्न बताये गये हैं। इन वस्तुओंका धर्मतः संग्रह करके संन्यासी पुरुष उत्तम तीर्थमें जा, स्नान करके विधिवत् आचमन करे। स्नानके बाद भीगे वस्त्रके जलसे सूखदेवका मन्त्रपाठपूर्वक तर्पण करके उन्हें प्रणाम करे। फिर पूर्वाभिमुख बैठकर, मौन हो, तीन प्राणायाम—पूरक, कुष्ठक और रेचक करे तथा यथाशक्ति गायत्रीका जप करके परस्त्रहका ध्यान करे। शरीरकी स्थिति (रक्षा)-के लिये प्रतिदिन भिक्षाटन करे। यतिको चाहिये कि संध्याके समय ब्राह्मणोंके घरोंपर भिक्षाके लिये भ्रमण करे ॥ ८—१२ ॥

स्वादर्थी यावतात्रेन तावद्वैक्षं समाचरेत्।
ततो निवृत्य तत्पात्रमभ्युक्ष्याचम्य संयमी ॥ १३

सूर्यादिदैवतेभ्यो हि दत्त्वात्रं प्रोक्ष्य वारिणा।
भुज्ञीत पर्णपुटके पात्रे वा वाग्यतो यतिः ॥ १४

बटकाश्वत्थपत्रेषु कुम्भीतिन्दुकपत्रयोः।
कोविदारकरञ्जेषु न भुज्ञीत कदाचन ॥ १५

भुक्त्वाऽऽचम्य निरुद्धासुरुपतिष्ठेत भास्करम्।
जपथ्यानेतिहासैस्तु दिनशेषं नयेद्यतिः ॥ १६

पलाशाः सर्वं उच्यन्ते यतयः कांस्यभोजिनः।
कांस्यस्येव तु यत्पात्रं गृहस्थस्य तथैव च।
कांस्यभोजी यतिः सर्वं प्राप्युयालिकलिङ्घं पुनः।
भुक्तपात्रे यतिनित्यं भक्षयेन्मन्त्रपूर्वकम्।
न दुष्येन्तस्य तत्पात्रं यज्ञेषु चमसा इव।
कृतसंध्यस्ततो रात्रिं नयेदेवगृहादिषु।
हत्पुण्डरीकनिलये ध्यायन्नारायणं हरिम्।
तत्पदं समवाप्नोति यत्प्राप्य न निवर्तते ॥ १७

इति श्रीनरसिंहपुराणे यतिधर्मो नाम पाद्यितम्भोऽध्यायः ॥ ६० ॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणे 'यतिधर्मका वर्णन' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६० ॥

जिसने अन्नकी उसे उस समय आवश्यकता हो, उतनी ही भिक्षा मारी। फिर लौटकर उस भिक्षापात्रम् जलके छोटे देकर संयमी यति स्वयं भी आचमन करे। इसके बाद उस अन्नपर भी जलके छोटे देकर, उसे सूर्य आदि देवताओंको निवेदन कर, पत्तेके दोने या पतलमें रखकर, वह संन्यासी पुरुष मौनभावसे भोजन करे। वट, पीपल, जलकुम्भी और तिन्दुकके पत्तोंपर तथा कोविदार और करंजके पत्तोंपर भी कभी भोजन न करे। भोजन समाप्त करके मुँह-हाथ धो, आचमन करके, प्राणवायुको रोक, सूर्यदेवको प्रणाम करे। नैतिक नियमोंके बाद जितना दिन शेष रहे, उसे संन्यासी पुरुष जप, ध्यान और इतिहास-पाठ आदिके द्वारा व्यतीत करे। कौसेके पात्रमें भोजन करनेवाले सभी यति 'पलाश' कहलाते हैं। यदि संन्यासी कौसेका पात्र रखे तो वह गृहस्थके ही समान है; क्योंकि गृहस्थका भी तो वैसा ही पात्र होता है। कौसेके पात्रमें भोजन करनेवाला यति समस्त पापोंका भागी होता है। यति जिस काष्ठ या मिट्टी आदिके पात्रमें एक बार भोजन कर चुका है, उसे धोकर पुनः उसमें मन्त्रपाठपूर्वक भोजन कर सकता है; उसका वह पात्र यज्ञ-पात्रोंके समान कभी दूषित नहीं होता। इसके बाद यथासमय संध्याकालिक नियमोंका पालन करके देवमन्दिर आदिमें रात्रि व्यतीत करे और अपने हृदय-कमलके आसनपर भगवान् नारायणका ध्यान करे। यों करनेसे वह यति उस परमपदको प्राप्त होता है, जहाँ जाकर पुनः लौटना नहीं पड़ता ॥ १३—१७ ॥

इकसठवाँ अध्याय

योगसार

हारीत उवाच

वर्णानामाश्रमाणां च कथितं धर्मलक्षणम्।
यतः स्वर्गापवर्गी तु प्राप्नुयुस्ते द्विजादयः ॥ १
योगशास्त्रस्य वक्ष्यामि संक्षेपात्सारमुत्तमम्।
यस्याभ्यासबलाद्यान्ति मोक्षं चेह मुमुक्षवः ॥ २ ॥

श्रीहारीत मुनि कहते हैं—मुनियो! मैंने चारों बर्णों और चारों आश्रमोंके धर्मका स्वरूप बतलाया, जिसके पालनसे उपर्युक्त आह्यादि वर्णके लोग स्वर्ग और मोक्ष भी प्राप्त कर सकते हैं। अब मैं संक्षेपमें योगशास्त्रका उत्तम सारांश वर्णन करूँगा, जिसके अध्याससे मुमुक्षु पुरुष इसी जन्ममें मोक्षको प्राप्त हो जाते हैं ॥ १-२ ॥

योगाभ्यासरतस्येह नश्येयुः पातकानि च।
तस्माद्योगपरो भूत्वा ध्यायेऽनित्यं क्रियान्तरे॥ ३

प्राणायामेन वचनं प्रत्याहारेण चेन्द्रियम्।
धारणाभिवृशीकृत्य पुनर्दुर्धर्षणं मनः॥ ४

एकं कारणमानन्दबोधं च तपनामयम्।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ध्यायेजगदाधारमच्युतम्॥ ५

आत्मानमरविन्दस्थं तपचामीकरप्रभम्।
रहस्येकान्तमासीत ध्यायेदात्महृदि स्थितम्॥ ६

यः सर्वप्राणचिन्तज्ञो यः सर्वेषां हृदि स्थितः।
यश्च सर्वजनैङ्गेयः सोऽहमस्मीति चिन्तयेत्॥ ७

आत्मलाभसुखं यावत्तावद्व्यानमुदाहृतम्।
श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म तत्तदूर्ध्वं समाचरेत्॥ ८

यथाश्चा रथहीनाश्च रथाश्चाशैर्विना यथा।
एवं तपश्च विद्या च उभावपि तपस्त्विनः॥ ९

यथाचं मधुसंयुक्तं मधु चान्नेन संयुतम्।
एवं तपश्च विद्या च संयुक्ते भेषजं महत्॥ १०

द्वाभ्यामेव हि पक्षाभ्यां यथा वै पक्षिणां गतिः।
तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते द्व्याश्च शाश्वतम्॥ ११

विद्यातपोभ्यां सम्पन्नो द्वाहाणो योगतत्परः।
देहद्वन्द्वं विहायाशु मुक्तो भवति बन्धनात्॥ १२

न देवयानमागेण यावत्प्राप्तं परं पदम्।
न तावदेहलिङ्गस्य विनाशो विद्यते क्लिच्छित्॥ १३

पया वः कथितः सर्वो खण्ठश्रामविभागशः।
संक्षेपेण द्विजश्वेष्टा धर्मस्तेषां सनातनः॥ १४

मार्कपण्डेयजी उवाच

श्रुत्वैवमृषयो धर्मं स्वर्गमोक्षफलप्रदम्।
प्रणम्य तपृष्ठिं जगमुमुदितास्ते स्वमालयम्॥ १५

योगाभ्यासपरायण पुरुषके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, अतः कर्तव्य कर्मसे अवकाश मिलनेपर प्रतिदिन योगनिष्ठ होकर ध्यान करना चाहिये। पहले प्राणायामके द्वारा वाणीको, प्रत्याहारसे इन्द्रियोंको और धारणाके द्वारा दुर्धर्ष मनको वशमें करे। तत्पक्षात् जो सबके एकमात्र कारण, ज्ञानानन्दस्वरूप, अनामय और सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म तत्त्व हैं, उन जगदाधार अच्युतका ध्यान करे। एकान्त स्थानमें अकेले बैठकर अपने हृदयमें कमलके आसनपर विराजमान, तपाये हुए सुवर्णके समान कानितमान् अपने आत्मस्वरूप भगवान्का चिन्तन करे। जो सबके प्राणों और चित्तकी चेष्टाओंको जानता है, सभीके हृदयमें विराजमान है तथा समस्त प्राणियोंद्वारा जाननेयोग्य है—वह परमात्मा मैं ही हूँ ऐसी भावना करे। जबतक आत्मसाक्षात्कारजन्य सुखकी प्रतीति हो, तभीतक ध्यान करना आवश्यक बताया गया है। उसके उपरान्त श्रीत और स्मार्त कर्मोंका आचरण सुचारूपसे करे॥ ३—८॥

जैसे रथके बिना घोड़े और घोड़ोंके बिना रथ उपयोगी नहीं हो सकते, उसी प्रकार तपस्त्रीके तप और विद्याकी सिद्धि भी एक-दूसरेके आश्रित हैं। जिस प्रकार अन्न मधु (चीनी आदि)-से युक्त होनेपर मीठा होता है और मधु भी अन्नके साथ ही सुख्खा द्वारा प्रतीत होता है, उसी प्रकार तप और विद्या—दोनों साथ रहकर ही भवरोगके महान् औषध होते हैं। जिस प्रकार पक्षी दोनों पंखोंसे ही उड़ सकते हैं, उसी प्रकार ज्ञान और कर्म—दोनोंसे ही सनातन द्व्याकी प्राप्ति हो सकती है। विद्या और तपसे सम्पन्न योगतत्पर द्वाहाण दैहिक दुर्द्वारोंको शोष्ण ही त्यागकर भववन्धनसे मुक्त हो जाता है। जबतक देवयानमार्गसे जाकर जीवको परमपदकी प्राप्ति नहीं होती, तबतक लिङ्गशरीरका विनाश कभी हो नहीं सकता। द्विजवरो! इस प्रकार वर्णों और आश्रमोंके विभागपूर्वक मैंने उन आश्रमोंके सम्पूर्ण सनातन धर्मका संक्षेपसे वर्णन कर दिया॥ ९—१४॥

मार्कपण्डेयजी कहते हैं—इस प्रकार हारीत मुनिके मुखसे स्वर्ग और मोक्षस्वरूप फलको देनेवाले धर्मका वर्णन सुनकर वे झुणिगण उन मुनीश्वरको प्रणाम कर प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने स्थानको छले गये।

धर्मशास्त्रमिदं यस्तु हारीतमुखनिस्सृतम्।
श्रुत्वा च कुरुते धर्मं स याति परमां गतिम्॥ १६
मुखजस्य तु यत्कर्म कर्म यद्वाहुजस्य तु।
करुजस्य तु यत्कर्म पादजस्य तथा नृप॥ १७
स्वं स्वं कर्म प्रकुर्वाणा विप्राद्या यान्ति सद्गतिम्।
अन्यथा वर्तमानो हि सद्यः पतति यात्यधः॥ १८
यस्य येऽभिहिता धर्माः स तु तैस्तैः प्रतिष्ठितः।
तस्मात्त्वधर्मं कुर्वीत नित्यपेवमनापदि॥ १९
चतुर्वर्णाश्रु राजेन्द्र चत्वारश्चापि चाश्रमाः।
स्वधर्मं येऽनुतिष्ठन्ति ते यान्ति परमां गतिम्॥ २०
स्वधर्मेण यथा नृणां नरसिंहः प्रतुष्यति।
वर्णधर्मानुसारेण नरसिंहं तथार्चयेत्॥ २१
ठत्पञ्चवैराग्यबलेन योगाद्
छ्यायेत् परं ब्रह्म सदा क्रियावान्।
सत्यात्मकं चित्सुखरूपमाद्यं
विहाय देहं पदमेति विष्णोः॥ २२

जो भी हारीत मुनिके मुखसे निर्गत इस धर्मशास्त्रका श्रवण करके इसके अनुसार आचरण करता है वह परमगतिको प्राप्त होता है। नरेश्वर। आह्यण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके जो-जो कर्म बताये गये हैं, उन-उन अपने-अपने वर्णोचित कर्मोंका पालन करनेवाले आह्यण आदि सद्गतिको प्राप्त होते हैं; इसके विपरीत आचरण करनेवाला पुरुष तत्काल नीचे गिर जाता है। जिसके लिये जो धर्म बताये गये हैं, वह पुरुष उन्हीं धर्मोंसे प्रतिष्ठित होता है। इसलिये आपत्तिकालके अतिरिक्त सदा ही अपने धर्मका पालन करना चाहिये। राजेन्द्र! चार ही वर्ण और चार ही आश्रम हैं। जो लोग अपने वर्ण एवं आश्रमके उचित धर्मका पूर्णतया पालन करते हैं, वे परम गतिको प्राप्त होते हैं। भगवान् नरसिंह जिस प्रकार स्वधर्मका आचरण करनेसे मनुष्यपर प्रसन्न होते हैं, वैसे दूसरे प्रकारसे नहीं; इसलिये वर्णधर्मके अनुसार भगवान् नरसिंहका पूजन करना चाहिये। जो पुरुष स्वकर्ममें तत्पर रहकर उत्पन्न हुए वैराग्यके बलसे योगाध्यासपूर्वक सदा सच्चिदानन्दस्वरूप अनादि ब्रह्मका ध्यान करता है, वह देह त्यागकर साक्षात् श्रीविष्णुपदको प्राप्त होता है॥ १५—२२॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे योगाध्यायो नामकप्रतिष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'योगाध्याय' नामक इकात्सर्वां अध्याय पूरा हुआ ॥ ६१ ॥

बासठवाँ अध्याय

श्रीविष्णुपूजनके वैदिक मन्त्र और स्थान

श्रीमार्कण्डेय उवाच
वर्णानामाश्रमाणां च कथितं लक्षणं तत्वं।
भूयः कथय राजेन्द्र शुश्रूषा तत्वं का नृप॥ १
सहस्रानीक उवाच

स्नात्वा वेश्मनि देवेशमर्चयेदच्युतं त्विति।
त्वयोक्तं पम विप्रेन्द्र तत्कथं पूजनं भवेत्॥ २
यैर्मन्त्रैरच्यते विष्णुर्येषु स्थानेषु वै मुने।
तानि स्थानानि तात्मन्त्रांस्वमाचक्षव महामुने॥ ३

श्रीमार्कण्डेयजी कहते हैं— राजन्! मैंने तुम्हें वर्णों और आश्रमोंका स्वरूप बताया। राजेन्द्र! अब कहो, तुम्हारे मनमें क्या सुननेकी इच्छा है॥ १॥

सहस्रानीक बोले— विप्रेन्द्र! आपने बताया कि प्रतिदिन स्नान करके अपने घरमें भगवान् अच्युतका पूजन करना चाहिये। अतः वह पूजन किस प्रकार होना चाहिये? महामुने! जिन मन्त्रोंद्वारा और जिन आधारोंमें भगवान् विष्णुकी पूजा होती है, वे आधार और वे मन्त्र आप मुझे बताइये॥ २-३॥

श्रीविष्णुपूजनके वैदिक मन्त्र और स्थान

अर्चनं सम्प्रवक्ष्यामि विष्णोरभिततेजसः ।
यत्कृत्वा मुनयः सर्वे परं निर्वाणमाण्युयः ॥ ४

अग्नी क्रियावतां देवो हृदि देवो मनीषिणाम् ।
प्रतिमास्वत्पूज्ञीनां योगिनां हृदये हरिः ॥ ५

अतोऽग्नौ हृदये सूर्ये स्थणिङ्गले प्रतिमासु च ।
एतेषु च हरेः सम्यगर्चनं मुनिभिः स्मृतम् ॥ ६

तस्य सर्वमयत्वाच्च स्थणिङ्गले प्रतिमासु च ।
आनुषुभस्य सूक्तस्य विष्णुस्तस्य च देवता ॥ ७

पुरुषो यो जगद्वीजं ऋषिनारायणः स्मृतः ।
दद्यात्पुरुषसूक्तेन यः पुष्ट्याण्यथ एव च ॥ ८

अर्चितं स्याजगत्सर्वं तेन वै सच्चाचरम् ।
आद्याऽऽवाहयेदेवमृचा तु पुरुषोत्तमम् ॥ ९

द्वितीययाऽऽसनं दद्यात्पाद्यं दद्यात्तृतीयया ।
चतुर्थ्याच्छ्र्वः प्रदातव्यः पञ्चम्याऽऽचमनीयकम् ॥ १०

षष्ठ्या स्नानं प्रकुर्वीत सप्तम्या वस्त्रमेव च ।
यज्ञोपवीतमष्टम्या नवम्या गन्धमेव च ॥ ११

दशम्या पुष्पदानं स्यादेकादश्या च धूपकम् ।
द्वादश्या च तथा दीपं त्रयोदश्याचर्चनं तथा ॥ १२

चतुर्दश्या स्तुतिं कृत्वा पञ्चादश्या प्रदक्षिणम् ।
षोडश्योद्वासनं कुर्याच्छेषकमाणि पूर्ववत् ॥ १३

स्नानं वस्त्रं च नैवेद्यं दद्यादाचमनीयकम् ।
पण्मासात्सिद्धिमाप्रोति देवदेवं समर्चयन् ॥ १४

संवत्सरेण तेनैव सायुज्यमधिगच्छति ।
हविषाग्नौ जले पुष्ट्याच्छ्र्वानेन हृदये हरिम् ॥ १५

श्रीमार्कण्डेयजीने कहा — अच्छा, मैं अभिततेजस्वी भगवान् विष्णुके पूजनकी विधि बता रहा हूँ, जिसके अनुसार पूजन करके सभी मुनिगण परम निर्बाण (मोक्ष) पदको प्राप्त हुए हैं। अग्रिमें हवन करनेवालेके लिये भगवान् का वास अग्रिमें है। ज्ञानियों और योगियोंके लिये अपने-अपने हृदयमें ही भगवान् की स्थिति है तथा जो थोड़ी बुद्धिवाले हैं, उनके लिये प्रतिमामें भगवान् का निवास है। इसलिये अग्रि, सूर्य, हृदय, स्थणिङ्गल (वेदी) और प्रतिमा—इन सभी आधारोंमें भगवान् का विधिपूर्वक पूजन मुनियोंद्वारा बताया गया है। भगवान् सर्वमय हैं, अतः स्थणिङ्गल और प्रतिमाओंमें भी भगवत्पूजन उत्तम है ॥ ४—६ ॥, ॥

अब पूजनका मन्त्र बताते हैं। शुक्ल यजुर्वेदीय रुद्राष्टाध्यायीमें जो पुरुषसूक्त है, उसका उच्चारण करते हुए भगवान् का पूजन करना चाहिये। पुरुषसूक्तका अनुष्ठृण्ड है, जगत्के कारणभूत परम पुरुष भगवान् विष्णु देवता हैं, नारायण ऋषि हैं और भगवत्पूजनमें उसका विनियोग है। जो पुरुषसूक्तसे भगवान् को फूल और जल अर्पण करता है, उसके द्वारा सम्पूर्ण चराचर जगत् पूजित हो जाता है। पुरुषसूक्तकी पहली ऋचासे भगवान् पुरुषोत्तमका आवाहन करना चाहिये। दूसरी ऋचासे आसन और तीसरीसे पाद्य अर्पण करे। चौथी ऋचासे अर्घ्य और पाँचवींसे आचमनीय निवेदित करे। छठी ऋचासे स्नान कराये और सातवींसे वस्त्र अर्पण करे। आठवींसे यज्ञोपवीत और नवमी ऋचासे गन्ध निवेदन करे। दसवींसे फूल चढ़ाये और ग्यारहवीं ऋचासे धूप दे। बारहवींसे दीप और तेरहवीं ऋचासे नैवेद्य, फल, दक्षिणा आदि अन्य पूजन-सामग्री निवेदित करे। चौदहवीं ऋचासे स्तुति करके पंद्रहवींसे प्रदक्षिणा करे। अन्तमें सोलहवीं ऋचासे विसर्जन करे। पूजनके बाद शोष कर्म पहले बताये अनुसार ही पूर्ण करे। भगवान् के लिये स्नान, वस्त्र, नैवेद्य और आचमनीय आदि निवेदन करे। इस प्रकार देवदेव परमात्माका पूजन करनेवाला पुरुष छः महीनेमें सिद्धि प्राप्त कर लेता है। इसी क्रमसे यदि एक वर्षतक पूजन करे तो वह भक्त सायुज्य मोक्षका अधिकारी हो जाता है ॥ ७—१४ ॥, ॥

विद्वान् पुरुष अग्निमें आहुतिके द्वारा, जलमें पुष्पके

अर्चन्ति सूरयो नित्यं जपेन रविमण्डले।
आदित्यमण्डले दिव्यं देवदेवमनामयम्।
शङ्खचक्रगदापाणिं ध्यात्वा विष्णुमुपासते ॥ १६

ध्येयः सदा सवितुमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः।
केयूरवान्मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः ॥ १७

एतत्यठन् केवलमेव सूक्तं
दिने दिने भावितविष्णुबुद्धिः।
स सर्वपापं प्रविहाय वैष्णवं
पदं प्रथात्यच्युततुष्टिकृन्नरः ॥ १८

पत्रेषु पुष्पेषु फलेषु तोये-
चक्रीतलभ्येषु सदैव सत्सु।
भक्त्यैकलभ्ये पुरुषे पुराणे
मुक्त्यै किमर्थं क्रियते न यतः ॥ १९

इत्येवमुक्तः पुरुषस्य विष्णो-
रचाविधिस्तेऽद्य मया नृपेन्द्र।
अनेन नित्यं कुरु विष्णुपूजां
प्राप्तुं तदिष्टं यदि वैष्णवं पदम् ॥ २०

इति श्रीनरसिंहपुराणे विष्णोरचाविधिनाम् हिष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'भगवान् विष्णुको पूजा-विधि' नामक बास्तविक अध्याय पूरा हुआ ॥ ६३ ॥

द्वारा, हृदयमें ध्यानद्वारा और सूर्यमण्डलमें जपके द्वारा भगवान् विष्णुका पूजन करते हैं। वे भक्तजन सूर्यमण्डलमें दिव्य, अनामय, देवदेव शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए उनकी उपासना करते हैं। जो केशूर, मकराकृतिकुण्डल, किरीट हार आदि आभूषणोंसे भूषित हो, हाथमें शङ्ख-चक्र धारण किये कमलासनपर विराजमान हैं तथा जिनके शरीरकी कान्ति सुखणीके समान देवीप्यमान हैं, सूर्यमण्डलके मध्यमें विराजमान उन भगवान् नारायणका सदा ध्यान करे। जो प्रतिदिन बुद्धिमें भगवान् विष्णुकी भावना करके केवल इस 'ध्येयः सदा'.....' इत्यादि सूक्तका पाठमात्र ही कर लेता है, वह भगवान् विष्णुको संतुष्ट करनेवाला पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुधामको पहुंच जाता है। विना मूल्यके ही मिलनेवाले पूजनोपचार—पत्र, पुष्प, फल और जलके सदा रहते हुए तथा एकमात्र भक्तिसे ही सुलभ होनेवाले भगवान् पुराण-पुरुषके होते हुए मनुष्यद्वारा मुक्तिके लिये प्रथल क्यों नहीं किया जाता? अर्थात् उक्त सुलभ उपचारोंसे भगवान्का पूजन करके लोग मोक्ष पानेके लिये यह क्यों नहीं करते? ॥ १५—१९ ॥

नृपवर! इस प्रकार यह परमपुरुष भगवान् विष्णुकी पूजा-विधि आज मैंने तुम्हें बतायी है। यदि तुम्हें वैष्णव-पद प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो इस विधिके द्वारा सदा भगवान् विष्णुकी पूजा करो ॥ २० ॥

तिरसठवाँ अध्याय

अष्टाक्षर-मन्त्रके प्रभावसे इन्द्रका स्त्रीयोनिसे उद्धार

सहस्रानीक उकाच

सत्यमुक्तं त्वया ब्रह्मन् वैदिकः परमो विधिः।
विष्णोदेवातिदेवस्य पूजनं प्रति मेऽधुना ॥ १
अनेन विधिना ब्रह्मन् पूज्यते पथुसूदनः
वेदज्ञैरेव नान्यैस्तु तस्मात्सर्वहितं बद ॥ २

सहस्रानीक ओले—ब्रह्मन्! इस समय आपने देवदेवेशर भगवान् विष्णुके पूजनकी यह उत्तम वैदिक विधि बतायी, वह बिलकुल ठीक है; परंतु ब्रह्मन्! इस विधिसे तो केवल वेदज्ञ पुरुष ही मधुसूदनकी पूजा कर सकते हैं, दूसरे लोग नहीं; इसलिये आप ऐसी कोई विधि बताइये, जो सबके लिये उपयोगी हो ॥ १-२ ॥

श्रीमार्कण्डेय उक्ताच

अष्टाक्षरेण देवेशं नरसिंहमनामयम्।
गन्धपुष्पादिभिर्नित्यमर्चयेदच्युतं नरः ॥ ३
राजन्नाष्टाक्षरो मन्त्रः सर्वपापहरः परः।
समस्तयज्ञफलदः सर्वशान्तिकरः शुभः ॥ ४

ॐ नमो नारायणाय ।

गन्धपुष्पादिसकलमनेनैव निवेदयेत्।
अनेनाभ्यर्थितो देवः प्रीतो भवति तत्क्षणात् ॥ ५
किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः किं तस्य बहुभिर्वर्तैः ।
ॐ नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥ ६
इमं मन्त्रं जपेद्यस्तु शुचिर्भूत्वा समाहितः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमापूर्यात् ॥ ७
सर्वतीर्थफलं हेतत् सर्वतीर्थवां नृप।
हेरर्घ्ननमव्ययं सर्वयज्ञफलं नृप ॥ ८
तस्मात्कुरु नृपश्रेष्ठ प्रतिमादिषु चार्चनम्।
दानानि विप्रमुखेभ्यः प्रयच्छ विधिना नृप।
एवं कृते नृपश्रेष्ठ नरसिंहप्रसादतः।
प्राप्नोति वैष्णवं तेजो यत्काङ्क्षन्ति मुमुक्षवः ॥ ९
पुरा पुरंदरो राजन् स्त्रीत्वं प्राप्नोऽप्यधर्मतः।
तृणविन्दुमुनेः शापान्मुक्तो हाषाक्षराजपात् ॥ १०

सहस्रानीक उक्ताच

एतत्कथय भूदेव देवेन्द्रस्याधपोचनम्।
कोऽप्यधर्मः कथं स्त्रीत्वं प्राप्नो मे वद कारणम् ॥ ११

श्रीमार्कण्डेय उक्ताच

राजेन्द्र महदाख्यानं शृणु कौतूहलान्वितम्।
विष्णुभक्तिप्रजननं शृणवतां पठतामिदम् ॥ १२
पुरा पुरंदरस्यैव देवराज्यं प्रकुर्वतः।
वैराग्यस्यापि जननं सम्भूतं बाह्यवस्तुषु ॥ १३
इन्द्रसदाभूद्विषमस्वभावो
राज्येषु भोगेष्वपि सोऽप्यचिन्तयत्।
धूवं विरागीकृतमानसानां
स्वर्गस्य राज्यं न च किंचिदेव ॥ १४

श्रीमार्कण्डेयजी बोले—मनुष्यको चाहिये कि वह अष्टाक्षर मन्त्रसे निरामय देवेशर भगवान् नरसिंहका गन्ध-पुष्प आदि उपचारोंहारा प्रतिदिन पूजन करे। राजन्! यह अष्टाक्षर मन्त्र समस्त पापोंको हर लेनेवाला, समस्त यज्ञोंका फल देनेवाला, सब प्रकारकी शान्ति प्रदान करनेवाला एवं परम शुभ है। मन्त्र यों हैं—‘ॐ नमो नारायणाय’। इसी मन्त्रसे गन्ध आदि समस्त सामग्रियोंको अप्रिंत करे। इस मन्त्रसे पूजा करनेपर भगवान् विष्णु तत्काल प्रसन्न होते हैं। मनुष्यके लिये अन्य बहुत-से मन्त्रों और द्रूतोंकी क्या आवश्यकता है। केवल ‘ॐ नमो नारायणाय’—यह मन्त्र ही समस्त मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है। जो स्नानादिसे पवित्र होकर एकाग्रचिन्तसे इस मन्त्रका जप करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके सायुज्यको प्राप्त होता है ॥ ३—७ ॥

नरेश्वर! शान्ताभावसे भगवान् विष्णुका पूजन करना ही सब तीर्थों और यज्ञोंका फल है तथा सम्पूर्ण तीर्थोंसे बढ़कर पवित्र है। अतः नरेश्वर! तुम प्रतिमा आदिमें विधिपूर्वक भगवान्का पूजन करो और श्रेष्ठ ज्ञात्योंको दान दो। नृपश्रेष्ठ! यों करनेसे भक्त पुरुष उस तेजोमय वैष्णवधार्मको प्राप्त होते हैं, जिसकी मुमुक्षुलोग सदा अभिलाषा किया करते हैं। राजन्! पूर्वकालमें इन्द्र धर्मके विपरीत आचरण करके तृणविन्दु मुनिके शापसे स्त्री-योनिको प्राप्त हो गये थे; परंतु इस अष्टाक्षर मन्त्रका जप करनेसे वे पुनः उस योनिसे मुक्त हो गये ॥ ८—१० ॥

सहस्रानीक बोले—भूमिदेव! देवराज इन्द्रको जो पाप एवं शापसे छुटकारा मिला, उस प्रसङ्गका वर्णन कीजिये। उन्होंने कौन-सा अधर्म किया था और किस कारण स्त्रीयोनिको प्राप्त हुए—वह सब भी बताइये ॥ ११ ॥

श्रीमार्कण्डेयजीने कहा—राजेन्द्र! सुनो, यह उपाख्यान बहुत बड़ा तथा कौतूहलसे भरा हुआ है। जो लोग इसे सुनते और पढ़ते हैं उनके हृदयमें यह आख्यान विष्णुभक्ति उत्पन्न करता है ॥ १२ ॥

पूर्वकालकी बात है, एक समय देवलोकका राज्य भोगते हुए इन्द्रके लिये उनका वह राज्य ही बाह्य वस्तुओंमें वैराग्यका कारण बन गया। उस समय इन्द्रका स्वभाव राज्य-कार्यों और भोगोंके प्रति विषम (वैराग्यपूर्ण) हो गया। वे सोचने लगे—‘यह निश्चित है कि विरक्त हृदयवाले

राज्यस्य सारं विषयेषु भोगो
भोगस्य चान्ते न च किंचिदस्ति ।

विमृश्य चैतन्मुनयोऽप्यजस्तं
मोक्षाधिकारं परिचिन्तयन्ति ॥ १५

सदैव भोगाय तपःप्रवृत्ति-
भोगावसाने हि तपो विनष्टम् ।

मैत्र्यादिसंयोगपराह्मुखानां
विमुक्तिभाजां न तपो न भोगः ॥ १६

विमृश्य चैतत् स सुराधिनाथो
विमानमारुद्धा सकिङ्गिणीकम् ।

नूनं हराराधनकारणेन
कैलासमध्येति विमुक्तिकामः ॥ १७

स एकदा मानसमागतः सन्
संबीक्ष्य तां यक्षपतेश्च कान्ताम् ।

समर्चयन्ती गिरिजांग्नियुग्मं
घ्वजामिवानङ्ग्नमहारथस्य ॥ १८

प्रथानजाम्बूनदशुद्धवणा
कणान्तसंलग्नमनोजनेत्राम् ।

सुसूक्ष्मवस्थान्तरदृश्यगात्रां
नीहारमध्यादिव चन्द्रलेखाम् ॥ १९

तां वीक्ष्य वीक्षणसहस्रभरेण कामं
कामाङ्गमोहितमतिर्न यदी तदानीम् ।

दूराध्वणं स्वगृहमेत्य सुसंचितार्थ-
स्तस्थी तदा सुरपतिर्विषयाभिलाषी ॥ २०

पूर्वं वरं स्यात् सुकुलेऽपि जन्म
ततो हि सर्वाङ्गशरीररूपम् ।

ततो धनं दुर्लभमेव पक्षा-
द्वनाधिपत्यं सुकृतेन लभ्यम् ॥ २१

स्वर्गाधिपत्यं च मया प्रलब्धं
तथापि भोगाय न चास्ति भाग्यम् ।

यः स्वं परित्यज्य विमुक्तिकाम-
स्तिष्ठामि मे दुर्मतिरस्ति वित्ते ॥ २२

पुरुषोंकी दृष्टिमें स्वर्गका राज्य कुछ भी महत्व नहीं रखता। राज्यका सार है—विषयोंका भोग तथा भोगके अन्तमें कुछ भी नहीं रह जाता। यही सोचकर मुनिगण सदा ही मोक्षाधिकारके विषयमें ही विचार करते हैं। लोगोंकी सदा भोगके लिये ही तपमें प्रवृत्ति हुआ करती है और भोगके अन्तमें तप नष्ट हो जाता है। परंतु जो तोग मैत्री आदिके द्वारा विषय-सम्पर्कसे विमुख हो गये हैं, उन मोक्षभागी पुरुषोंको न तपकी आवश्यकता होती है न योगकी।’ इन सब वातोंका विचार करके देवराज इन्द्र शुद्धधण्टिकाओंकी ध्वनिसे युक्त विमानपर आळड़ हो भगवान् शंकरकी आराधनाके लिये कैलासपर्वतपर चले आये। उस समय उनके मनमें एकमात्र मोक्षकी कामना रह गयी थी ॥ १३—१७ ॥

कैलासपर रहते समय इन्द्र एक दिन घूमते हुए मानससरोवरके तटपर आये। वहाँ उन्होंने पार्वतीजीके युगलचरणारविन्दोंका पूजन करती हुई यक्षराज कुबेरकी प्राणवल्लभा चित्रसेनाको देखा। जो कामदेवके महान् रथकी घ्वजा-सी जान पड़ती थी। उत्तम ‘जाम्बूनद’ नामक सुवर्णके समान उसके अङ्गोंकी दिव्य कान्ति थी। आँखें बड़ी-बड़ी और मनोहर थीं, जो कानके पासतक पहुँच गयी थीं। महीन साढ़ीके भीतरसे उसके मनोहर अङ्ग इस प्रकार झलक रहे थे, मानो कुहासेके भीतरसे चन्द्रलेखा दृष्टिगोचर हो रही हो। अपने हवार नेत्रोंसे उस देवीको इच्छानुसार निहारते ही इन्द्रका हृदय कामसे मोहित हो गया। उस समय वे दूरके रासेपर स्थित अपने आश्रमपर नहीं गये और सम्पूर्ण मनोरथोंको मनमें लिये देवराज इन्द्र विषयाभिलाषी हो खड़े हो गये। वे सोचने लगे—‘पहले तो उत्तम कुलमें जन्म पा जाना ही बहुत बड़ी बात है, उसके बाद सर्वाङ्ग-सौन्दर्य और उसपर भी धन तो सर्वथा ही दुर्लभ है। इन सबके बाद धनाधिप (कुबेर) होना तो पुण्यसे ही सम्भव है। मैंने इन सबसे बड़े स्वर्गके आधिपत्यको प्राप्त किया है, फिर भी मेरे भाग्यमें भोग भोगना नहीं बदा है। मेरे चित्तमें ऐसी दुर्बुद्धि आ गयी है कि मैं स्वर्गका सुखभोग छोड़कर यहाँ मुक्तिकी इच्छासे आ पड़ा हूँ।

मोक्षोऽमुना यद्यपि मोहनीयो
मोक्षेऽपि किं कारणमस्ति राज्ये ।

क्षेत्रं सुपङ्कं परिहत्य द्वारे
किं नाम चारणयकृष्णं करोति ॥ २३

संसारदुःखोपहता नरा चे
कर्तुं समर्था न च किंचिदेव ।

अकर्मिणो भाग्यविवर्जिताश्च
वाञ्छन्ति ते मोक्षपथं विमूढाः ॥ २४

एतद्विषय बहुधा मतिमान् प्रवीरो
रूपेण मोहितमना धनदाङ्गनायाः ।

सर्वाधिग्राकुलमतिः परिमुक्तधैर्यः
सस्मार मारममराधिपचक्रबत्ती ॥ २५

समागतोऽस्मी परिमन्दमन्दं
कामोऽतिकामाकुलचित्तवृत्तिः ।

पुरा महेशोन कृताङ्गनाशो
धीर्याल्लयं गच्छति को विशङ्कः ॥ २६

आदिश्यतां नाथ यदस्ति कार्यं
को नाम ते सम्प्रति शत्रुभूतः ।

शीघ्रं समादेशय मा विलम्बं
तस्यापदं सम्प्रति भो दिशामि ॥ २७

श्रुत्वा तदा तस्य वचोऽभिरामं
मनोगतं तत्परमं तुतोष ।

निष्पत्रमर्थं सहसैव मत्वा
जगाद वाक्यं स विहस्य वीरः ॥ २८

रुद्रोऽपि येनार्थशरीरमात्र-
श्वकेऽप्यनङ्गत्वमुपागतेन ।

सोहुं समर्थोऽथ परोऽपि लोके
को नाम ते मार शाराभिधातम् ॥ २९

एकाग्रचित्ता गिरिजाचैनेऽपि
या मोहयत्येव ममात्र चित्तम् ।

एतामनङ्गायतलोचनाख्यां
मदङ्गसङ्करसां विधेहि ॥ ३०

स एवमुक्तः सुरवल्लभेन
स्वकार्यभावाधिकगौरवेण ।

संधाय ब्राणं कुसुमायुधोऽपि
सस्मार मारः परिमोहनं सुधीः ॥ ३१

मोक्ष-सुख तो इस राज्य-भोगद्वारा मोह लिया जा सकता है, परंतु क्या मोक्ष भी राज्य-प्राप्तिका कारण हो सकता है ? भला, अपने द्वारपर पके अन्नसे युक्त खेतको छोड़कर कोई जंगलमें खेती करने क्यों जायगा ? जो सांसारिक दुःखसे मारे-मारे फिरते हैं और कुछ भी करनेकी शक्ति नहीं रखते, वे ही अकर्मण्य, भाग्यहीन एवं मूढ़जन मोक्षमार्गकी इच्छा करते हैं' ॥ २८—२४ ॥

इन सब बातोंपर बारंबार विचार करके देवेशरोंके चक्रवर्ती सम्भाद बुद्धिमान् वीरवर इन्द्र कुबेरपली चित्रसेनाके रूपपर मोहित हो गये। समस्त मानसिक वेदनाओंसे व्याकुल हो, धैर्य खोकर वे कामदेवका स्मरण करने लगे। इन्द्रके स्मरण करनेपर अत्यन्त कामनाओंसे व्याप्त चित्तवृत्तिवाला कामदेव बहुत धीर-धीर ढरता हुआ वहाँ आया; क्योंकि वहाँ पूर्वकालमें शंकरजीने उसके शरीरको जलाकर भस्म कर दिया था। क्यों न हो, प्राणसंकटके स्थानपर धीरतापूर्वक और निर्भय होकर कौन जा सकता है ? कामदेवने आकर कहा—'नाथ ! मुझसे जो कार्य लेना हो, आज्ञा कीजिये; बताइये तो सही, इस समय कौन आपका शत्रु बना हुआ है ? शीघ्र बताइये, विलम्ब न कीजिये; मैं अभी उसे आपत्तिमें डालता हूँ' ॥ २५—२७ ॥

उस समय कामदेवके उस मनोभिराम वचनको सुनकर मन-ही-मन उसपर विचार करके इन्द्र बहुत संतुष्ट हुए। अपने मनोरथको सहसा सिद्ध होते जान वीरवर इन्द्रने हँसकर कहा—'कामदेव ! अनङ्ग बन जानेपर भी तुमने जब शंकरजीको भी आधे शरीरका बना दिया, तब संसारमें दूसरा कौन तुम्हारे उस शराधातको सह सकता है ? अनङ्ग ! जो गिरिजापूजनमें एकाग्रचित्त होनेपर भी मेरे मनको निष्ठ्य ही मोहे लेती है, उस विशाल नदीनोंवाली सुन्दरीको तुम एकमात्र मेरे अङ्ग-सङ्गकी सरस भावनासे युक्त कर दो' ॥ २८—३० ॥

अपने कार्यको अधिक महत्व देनेवाले सुराज इन्द्रके यों कहनेपर उत्तम बुद्धिवाले कामदेवने भी अपने पुण्यमय धनुषपर बाण रखकर मोहन-मन्त्रका स्मरण किया।

सम्मोहिता पुष्पशरेण बाला
 कामेन कामं मदविह्वलाङ्गी ।
 विहाय पूजां हसते सुरेशं
 कः कामकोदण्डरवं सहेत ॥ ३२
 विलोलनेत्रे अयि कासि बाले
 सुराधिपो बाक्यमिदं जगाद् ।
 सम्मोहयन्तीव मनांसि पुंसां
 कस्येह कान्ता बद पुण्यभाजः ॥ ३३
 उक्तापि बाला मदविह्वलाङ्गी
 रोमाङ्गसंस्वेदसकम्पगात्रा ।
 कृताकुला कामशिलीमुखेन
 सगद्रुदं बाक्यमुवाच मन्दम् ॥ ३४
 कान्ता धनेशस्य च यक्षकन्या
 प्राप्ता च गौरीचरणार्चनाय ।
 प्रब्रूहि कार्यं च तवास्ति नाथ
 कस्त्वं बदेस्तिष्ठसि कामरूपः ॥ ३५
 इति उक्ताच
 सा त्वं समागच्छ भजस्व मां चिरा-
 मदङ्गसङ्गोत्सुकतां द्वजाश् ।
 त्वया विना जीवितमप्यनल्यं
 स्वर्गस्य राज्यं मम निष्फलं स्यात् ॥ ३६
 उक्ता च सैवं मधुरं च तेन
 कंदर्पसंतापितचारुदेहा ।
 विमानमारुह्या चलतपताकं
 सुरेशकण्ठश्चरणं चकार ॥ ३७
 जगाय शीघ्रं स हि नाकनाथः
 साकं तया मन्दरकन्दरासु ।
 अदृष्टदेवासुरसंचरासु
 विचित्ररत्नाङ्कुरभासुरासु ॥ ३८
 रेमे तया साकमुदारवीर्य-
 क्षित्रं सुरश्चर्यगतादरोऽपि ।
 स्वर्यं च यस्या लघुपुष्पशश्यां
 चकार चातुर्यनिधिः सकामः ॥ ३९
 जातः कृतार्थोऽमरवृन्दनाथः
 सकामभोगेषु सदा विदग्धः ।
 मोक्षाधिकं ख्रेहरसातिमृष्टं
 पराङ्गनालिङ्गनसङ्गसौख्यम् ॥ ४०

तब कामदेवहारा पुष्पवाणसे मोहित की हुई वह बाला अपने सम्पूर्ण अङ्गमें मदके उद्रेकसे विह्वल हो गयी और पूजा छोड़ इन्द्रकी ओर देखकर मुस्काने लगी। भला, कामदेवके धनुषकी टंकार कौन सह सकता है ॥ ३१—३२ ॥

इन्द्र उसको अपनी ओर निहारते देखकर यह बदल बोले—‘चलुल नेत्रोंवाली बाले ! तुम कौन हो, जो पुरुषोंके मनको इस प्रकार मोहे लेती हो ? बताओ तो, तुम किस पुण्यात्माको पत्नी हो ?’ इन्द्रके इस प्रकार पूछनेपर उसके अङ्ग मदसे विह्वल हो उठे। शरीरमें रोमाङ्ग, स्वेद और कम्प होने लगे। वह कामवाणसे व्याकुल हो गदगद-कण्ठसे धीरे-धीरे इस प्रकार बोली—‘नाथ ! मैं धनाधिष्ठानकुबेरकी पत्नी एक यक्षकन्या हूँ। पार्वतीजीके चरणोंकी पूजा करनेके लिये यहाँ आयी थी। आप अपना कार्य बताइये; आप कौन है ? जो साक्षात् कामदेवके समान रूप धारण किये यहाँ खड़े हैं ?’ ॥ ३३—३५ ॥

इन्द्र बोले—प्रिये ! मैं स्वर्गका राजा इन्द्र हूँ। तुम मैं पास आओ और मुझे अपनाओ तथा चिरकालतक मैं अङ्ग-सङ्गके लिये शीघ्र ही उत्सुकता धारण करो। देखो, तुम्हारे विना मेरा यह जीवन और स्वर्गका विशाल गत्य भी अवृद्धि हो जायगा ॥ ३६ ॥

इन्द्रने मधुर वाणीमें जब इस प्रकार कहा, तब उसका सुन्दर शरीर कामवेदनासे पीड़ित होने लगा और वह फहराती हुई पताकाओंसे सुशोभित विमानपर आरूढ हो देवराजके कण्ठसे लग गयी। तब स्वर्गके राजा इन्द्र शीघ्र ही उसके साथ मन्दराचलकी उन कन्दराओंमें चले गए, जहाँका मार्ग देवता और असुर—दोनोंकी ही दृष्टिमें नहीं आया था और जो विचित्र रूपोंकी प्रभासे प्रकाशित थीं। आश्चर्य है कि देवताओंके रूप्यके प्रति आदर न रखते हुए भी वे उदासपराक्रमी इन्द्र उस सुन्दरी यक्ष-बालाके साथ वहाँ रमण करने लगे तथा कामके वशीभूत हो परम चतुर इन्द्रने अपने हाथों चित्रसेनाके लिये शीघ्रतापूर्वक छोटी-सी पुष्पशश्या तैयार की। कामोपभोगमें परम चतुर देवराज इन्द्र चित्रसेनाके समागमसे कृतार्थताका अनुभव करने लगे। खोहरससे अत्यन्त मधुर प्रतीत होनेवाला वह परस्तीके आलिङ्गन और समागमका सुख उन्हें मोक्षसे भी बढ़कर जान पड़ा ॥ ३७—४० ॥

अथागता यक्षपते: समीपं
नार्योऽनुवर्ज्यैव च चित्रसेनाम्।

सप्तम्भमाः सप्तमस्त्रिन्नगात्राः
सगद्ददं प्रोचुरसाहसज्जाः ॥ ४१

नूनं समाकर्णय यक्षनाथ
विमानमारोप्य जगाम कश्चित्।

संवीक्ष्माणः ककुभोऽपि कान्तां
विगृहा वेगादिह सोऽपि तस्करः ॥ ४२

बचो निशम्प्याथ धनाधिनाथो
विषोपमं जातमधीनिभाननः।

जगाद भूयो न च किञ्चिदेव
बभूव वै वृक्ष इवाग्निदग्धः ॥ ४३

विज्ञापिताथो वरकन्यकाभि-
र्यश्चित्रसेनासहचारिणीभिः ।

मोहापनोदाय मति दधानः
स कण्ठकुञ्जोऽपि समाजगाम ॥ ४४

श्रुत्वाऽऽगतं वीक्ष्य स राजराज
उन्मीलिताक्षो बचनं जगाद्।

विनिःश्चसन् गाढसकम्प्यगात्रः
स्वस्थं मनोऽच्याशु विधाय दीनः ॥ ४५

तद्यौवनं यद्युवतीविनोदो
धनं तु चैतत्स्वजनोपयोगि।

तज्जीवितं यत्क्रियते सुधर्म-
स्तदाधिपत्यं यदि नष्टविग्रहम् ॥ ४६

धिङ्मे धनं जीवितमत्यनल्पं
राज्यं बृहत्सप्तति गुह्यकानाम्।

विशामि चाग्नि न च वेद कश्चित्
पराभवोऽस्तीति च को मृतानाम् ॥ ४७

पाश्च स्थितस्यापि च जीवतो मे
गता तडां गिरिजार्चनाय।

हता च केनापि वयं न विद्यो
ध्रुवं न तस्यास्ति भयं च मृत्योः ॥ ४८

जगाद वाक्यं स च कण्ठकुञ्जो
मोहापनोदाय विभोः स मन्त्री।

आकण्ठतां नाथ न चास्ति योग्यः
कान्तावियोगे निजदेहधातः ॥ ४९

इधर, इन्द्र जब चित्रसेनाको लेकर मन्दराचलपर चले आये, तब उसकी सङ्खिनी स्त्रियाँ उसे साथ लिये बिना ही यक्षराज कुबेरके समीप वेगपूर्वक आयीं। वे दुस्साहससे अनभिज्ञ थीं, अतः बबराहटके कारण उनके सारे शरीरमें व्यथा हो रही थी। वे गद्दद कण्ठसे बोलीं—‘यक्षपते! निष्ठय ही आप हमारी यह बात सुनें—आपकी भार्या चित्रसेनाको किसी अज्ञात पुरुषने पकड़कर विमानपर बिटा लिया और चारों ओर सशङ्कदृष्टिसे देखता हुआ वह चौर घड़े वेगसे कहीं चला गया है’ ॥ ४१-४२ ॥

विषके समान दुस्सह प्रतीत होनेवाली इस बातको सुननेसे धनाधिप कुबेरका मुँह काला पड़ गया। वे अग्रिसे जले हुए वृक्षके समान हो गये। उस समय उनके मुखसे कोई बात नहीं निकली। इसी समय चित्रसेनाकी सहचरी श्रेष्ठ यक्ष-कन्याओंसे यह समाचार जानकर कुबेरका मन्त्री कण्ठकुञ्ज भी अपने स्वामीका मोह दूर करनेके विचारसे वहाँ आया। उसका आगमन सुन राजराज कुबेरने अर्खें खोलकर उसकी ओर देखा और लंबी साँस खींचते हुए अपने चित्तको यथासम्पव शीघ्र संभालकर वे दीनभावसे बोले। उस समय उनका शरीर अत्यन्त कम्पित हो रहा था ॥ ४३-४५ ॥

वे कहने लगे—‘वही यौवन सफल है, जिससे युवतीका मनोरुक्ति हो सके; धन भी वही सार्थक है, जो आत्मीय जनोंके उपयोगमें आ सके। जीवन वह सफल है, जिससे सद्गम किया जाय और प्रभुत्व वही सार्थक है, जिसमें युद्ध और कलहके मूल नष्ट हो गये हों। इस समय मेरे इस विपुल धनको, गुद्धकोंके इस विशाल राज्यको और मेरे इस जीवनको भी धिक्कार है! अभीतक मेरे इस अपमानको कोई नहीं जानता; अतः इसी समय अग्रिमें जल मरेंगा। पीछे यदि इस समाचारको लौग जान भी लें तो क्या? मृत पुरुषोंका क्या अपमान होगा? हा! वह मानससरोवरके तटपर गिरिजा-पूजनके लिये गयी थी। यहाँ निकट ही था और जीवित भी रहा; तो भी किसीने उसे हर लिया। हम नहीं जानते वह कौन है। मैं समझता हूँ अवश्य ही उस दुष्टको मृत्युका भय नहीं है’ ॥ ४६-४८ ॥

स्वामीकी यह बात सुनकर उनका मोह दूर करनेके लिये कुबेरके उस मन्त्री कण्ठकुञ्जने यह बचन कहा—‘नाथ! सुनिये, स्वीके वियोगमें शरीर-त्याग करना आपके लिये उचित नहीं है।

एका पुरा रामवधूर्हता च
निशाचरेणापि मृतो न सोऽपि।
अनेकशः सन्ति तवात्र नार्यः
को नाम चित्ते क्रियते विषादः ॥ ५०
विमुच्य शोकं कुरु विक्रमे मति
धैर्यं समालम्बय यक्षराज।
भृशं न जल्पन्ति रुदन्ति साधवः
पराभवं बाह्यकृतं सहन्ते ॥ ५१
कृतं हि कार्यं गुरु दर्शयन्ति
सहायवान् वित्तप कातरोऽसि किम्।
सहायकार्यं कुरुते हि सम्प्रति
स्वयं हि यस्यावरजो विभीषणः ॥ ५२

ग्रन्थ उक्ताच

विभीषणो मे प्रतिपक्षभूतो
दायादभावं न विमुच्छतीति।
धूबं प्रसन्ना न भवन्ति दुर्जनाः
कृतोपकारा हरिवज्रनिष्ठुराः ॥ ५३
न चोपकारैर्न गुणैर्न सौहृदैः
प्रसादमायाति मनो हि गोत्रिणः।
उवाच वाक्यं स च कण्ठकुञ्जो
युक्तं त्वयोक्तं च धनाधिनाथ ॥ ५४
परस्परं घन्ति च ते विरुद्धा-
स्तथापि लोके न पराभवोऽस्ति।
पराभवं नान्यकृतं सहन्ते
नोष्टां जलं ज्वालयते तृणानि ॥ ५५
तस्मात्समागच्छ धनाधिनाथ
पार्श्वं च खेगेन विभीषणस्य।
स्ववाहुवीर्यार्जितवित्तभोगिनां
स्ववन्धुवर्गेषु हि को विरोधः ॥ ५६
इत्युक्तः स तदा तेन कण्ठकुञ्जेन मन्त्रिणा।
विभीषणस्य सामीक्ष्यं जगामाशु विचारयन् ॥ ५७
ततो लङ्घाधिपः श्रुत्वा बान्धवं पूर्वजं तदा।
प्राप्तं प्रत्याजगामाशु विनयेन समन्वितः ॥ ५८
ततो विभीषणो दृष्ट्वा तदा दीनं च बान्धवम्।
संतसमानसो भूप जगादेदं वचो महत् ॥ ५९

पूर्वकालमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको एकमात्र फली सीताके भी निशाचर रावणने हर लिया था, परंतु श्रीरामचन्द्रजीने प्राण नहीं त्यागा। आपके यहाँ तो अनेक स्थिर्याँ हैं, किं आप मनमें यह कैसा विषाद ला रहे हैं? यक्षराज! शोक त्यागकर पराक्रममें मन लगाइये; धैर्य धारण कीजिये। साधु पुरुष बहुत चातें नहीं बनाते और न धैठकर रोते ही हैं; वे दूसरोंके हारा परोक्षमें किये हुए अपने अपमानको उस समय चुपचाप सह लेते हैं। विहफ्ते! महापुरुष समय आनेपर महान् कार्य कर दिखाते हैं। आपके तो अनेक सहायक हैं, आप क्यों कातर हो रहे हैं? इस समय तो आपके छोटे भाई विभीषण स्वयं ही आपकी सहायता कर रहे हैं ॥ ४९—५२ ॥

कुबेर खोले—विभीषण तो मेरे विपक्षी ही बने हुए हैं, वे अब भी मेरे साथ कोटुमिक विरोधका त्याग नहीं करते। यह निश्चित बात है कि दुर्जन पुरुष उपकार करनेपर भी प्रसन्न नहीं होते, वे इन्द्रके वज्रके सदृश कठोर होते हैं। सगोत्रका मन उपकारोंसे, गुणोंसे अथवा मैत्रीसे भी प्रायः प्रसन्न नहीं होता ॥ ५३ ॥

यह सुनकर कण्ठकुञ्जने कहा—'धनाधिनाथ! आपने ठीक कहा है। विरोध होनेपर सगोत्र पुरुष अवश्य ही परस्पर चात-प्रतिधात करते हैं, तथापि लोकमें उनका पराभव नहीं देखा जाता; क्योंकि कुदुम्बीजन दूसरोंके हारा किये हुए अपने बन्धुजनके अपमानको नहीं सह सकते। जिस प्रकार सूर्यकी किरणोंसे तत्त्व हुआ जल अपने भौतरके तुणोंको नहीं जलाता, उसी प्रकार दूसरोंसे अपमानित कुदुम्बी जन अपने पार्श्ववती बन्धुओंको नहीं सताते। इसलिये धनाधिप! आप बहुत शीघ्र विभीषणके पास चलिये। जो लोग अपने बाहुबलसे उपार्जित धनका उपभोग करते हैं, उन्हें भाई-बन्धुओंके साथ क्या विरोध हो सकता है' ॥ ५४—५६ ॥

अपने मन्त्री कण्ठकुञ्जके इस प्रकार कहनेपर कुबेर मन-ही-मन उसपर विचार करते हुए शीघ्र ही विभीषणके पास गये। सङ्क्रापति विभीषणने जब अपने ज्येष्ठ भ्राताका आगमन सुना, तब उन्होंने बड़ी विनयके साथ उनकी अगवानी की। राजन्! फिर विभीषणने अपने भाईको जब दीनदशायें देखा, तब उन्होंने मन-ही-मन दुःखों होकर उनसे यह महत्त्वपूर्ण बात कही ॥ ५७—५९ ॥

विभीषण उकाच

कथं दीनोऽसि यक्षेश किं कष्टं तव चेतसि ।
निवेदयाधुनास्माकं निश्चयान्मार्जयामि तत् ॥ ६०
तदैकानं सपासाद्य कथयामास वेदनाम् ।

अनद उकाच

गृहीता किं स्वयं याता निहता केनचिद्द्विषा ॥ ६१
भ्रातः कान्तां न पश्यामि चित्रसेनां मनोरमाम् ।
एतद्वन्धो महत्कष्टं मम नारीसमुद्द्रवम् ॥ ६२
ग्राणान् वै घातयिष्यामि अनासाद्य च वल्लभाम् ।

विभीषण उकाच

आनयिष्यामि ते कान्तां यत्र तत्र स्थितां विभो ॥ ६३
कः समर्थोऽधुनास्माकं हर्तुं नाथ तृणस्य च ।
ततो विभीषणस्तत्र नाडीजङ्घां निशाचरीम् ॥ ६४
भृशं संजल्ययामास नानामायागरीयसीम् ।
अनदस्य च या कान्ता चित्रसेनाभिधानतः ॥ ६५
सा च केन हृता लोके मानसे सरसि स्थिता ।
तां च जानीहि संबोध्य देवराजादिवेशमसु ॥ ६६
ततो निशाचरी भूप कृत्वा मायामयं वपुः ।
जगाम त्रिदिवं शीघ्रं देवराजादिवेशमसु ॥ ६७
यथा दृष्ट्या क्षणं दृष्टो मोहं यास्यति चोपलः ।
यस्याः समं धुवं रूपं विद्यते न चराचरे ॥ ६८
एतस्मिन्नेव काले च देवराजोऽपि भूपते ।
सम्प्रासो मन्दराच्छीघ्रं प्रेरितश्चित्रसेनया ॥ ६९
ग्रहीतुं दिव्यपुष्पाणि नन्दनप्रभवाणि च ।
तत्र पश्यन् स तां तन्वीं निजस्थाने समागताम् ॥ ७०
अतीवरूपसप्तत्रां गीतगानपरायणाम् ।
तां बीक्ष्य देवराजोऽपि स कामवशागोऽभवत् ॥ ७१
ततः सम्प्रेरयामास देववैद्यौ सुराधिपः ।
तस्याः पाश्च समानेतुं धुवं चान्तःपुरे तदा ॥ ७२
देववैद्यौ तदाऽऽगत्य जल्पतक्षायतः स्थितौ ।
आगच्छु भव तन्वङ्गि देवराजसमीपगा ॥ ७३

विभीषण बोले—'यक्षराज ! आप दीन क्यों हो रहे हैं ? आपके मनमें क्या कष्ट है ? इस समय आप उस कष्टको मुझे बताइये । मैं निश्चय ही उसका मार्जन करूँगा' तब कुबेरने एकान्तमें जाकर विभीषणसे अपनी मनोवेदना बतलायी ॥ ६० ॥

कुबेर बोले—'भाई ! कुछ दिनोंसे मैं अपनी मनोरमा भार्या चित्रसेनाको नहीं देख रहा हूँ । न जाने उसे किसीने पकड़ लिया या वह स्वयं किसीके साथ चली गयी अथवा किसी शत्रुने उसे मार डाला । बन्धो ! मुझे अपनी स्त्रीके विशेषका महान् कष्ट हो रहा है । यदि वह प्राणवल्लभा न मिली तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगा ॥ ६१—६२ ॥

विभीषण बोले—'प्रभो ! आपकी भार्या जहाँ-कहीं भी होगी, मैं उसे ला दूँगा । नाथ ! इस समय संसारमें किसकी सामर्थ्य है जो हमारा तृण भी चुरा सके ।' यह कहकर विभीषणने नाना प्रकारकी मायाके ज्ञानमें बढ़ी-चढ़ी 'नाडीजङ्घा' नामकी निशाचरीसे बहुत कुछ कहा और बताया—“‘कुबेरकी जो ‘चित्रसेना’ नामकी पत्नी है, वह एक दिन जब मानससरोवरके तटपर थी, तभी वहाँसे किसीने उसे हर लिया । तुम इन्द्र आदि लोकपालोंके भवनोंमें देखकर उसका पता लगाओ’” ॥ ६३—६६ ॥

भूप ! तब वह निशाचरी मायामय शरीर धारणकर इन्द्रादि देवताओंके भवनोंमें खोज करनेके लिये शीघ्र ही स्वर्गलोकमें गयी । उस निशाचरीने ऐसा सुन्दर रूप बनाया था, जिसकी एक ही दृष्टि पड़नेसे पत्थर भी मोहित हो सकता था । अवश्य ही उस समय वैसा मोहन रूप चराचर जगत्में कहीं नहीं था । भूपते ! इसी समय देवराज इन्द्र भी चित्रसेनाके भेजनेसे उत्तावलीके साथ नन्दनवनके दिव्य पुष्प लेनेके लिये मन्दराचलसे स्वर्गलोकमें आये थे । वहाँ अपने स्थानपर आयी हुई उस अल्पन्त रूपवती रमणीको जो मधुर गान गा रही थी, देख देवराज भी कामके वशीभूत हो गये । तब देवेन्द्रने उसे जैसे भी हो, अपने अन्तःपुरमें बुला लानेके लिये देववैद्य अश्विनीकुमारोंको उसके पास भेजा । दोनों अश्विनीकुमार उसके सामने जाकर छढ़े हुए और कहने लगे—“कृशाङ्गि ! आओ, देवराज इन्द्रके निकट चलो ।”

इत्युक्त्वा सा तदा तात्पां जगाद् मधुराक्षरम् ।

नाडीजङ्घोवाच

देवराजः स्वयं यन्मे पाश्च चात्रागमिष्यति ॥ ७४

तस्य याच्यं च कर्तव्यं नान्यथा सर्वथा मया ।

तौ तदा वासवं गत्वा उचतुर्वचनं शुभम् ॥ ७५

वासव उवाच

समादेशय तन्वङ्गि किं कर्तव्यं मयाधुना ।

सर्वदा दासभूतस्ते याचसे तददात्यहम् ॥ ७६

तन्वङ्गुवाच

याचितं यदि मे नाथ दात्यसीति न संशयः ।

ततोऽहं वशगा देव भविष्यामि न संशयः ॥ ७७

अद्य त्वं दर्शयास्माकं सर्वः कान्तापरिग्रहः ।

मम रूपसमा रामा कान्ता ते चास्ति वा न वा ॥ ७८

तथा चोक्ते च वचने स भूयो वासवोऽवदत् ।

दर्शयिष्यामि सर्वं ते देवि कान्तापरिग्रहम् ॥ ७९

स सर्वं दर्शयामास वासवोऽन्तःपुरं तदा ।

ततो जगाद् भूयः सा किञ्चिदगृहं मय सिथतम् ॥ ८०

विमुच्यैकां च युवतीं सर्वं ते दर्शितं मया ।

इन्द्र उवाच

सा रामा मन्दरे चास्ति अविज्ञाता सुरासुरैः ॥ ८१

तां च ते दर्शयिष्यामि नाख्येयं कर्त्यचित्त्वया ।

ततः स देवराजोऽपि तथा सार्थं च भूपते ॥ ८२

गच्छन्नेवाम्बरे भूप मन्दरं प्रति भूथरम् ।

तस्य वै गच्छमानस्य विमानेनाक्वर्चसा ॥ ८३

दर्शनं नारदस्यापि तस्य जातं तदाम्बरे ।

तं चीक्ष्य नारदं वीरो लज्जमानोऽपि वासवः ॥ ८४

नपस्कृत्य जगादोच्चैः क्व यास्यसि महामुने ।

ततः कृताशीः स मुनिरवदत्रिदिवेश्वरम् ॥ ८५

गच्छामि मानसे स्नातुं देवराज सुखी भव ।

नाडीजङ्घेऽस्ति कुशलं राक्षसानां महात्मनाम् ॥ ८६

उन दोनोंके हारा यों कही जानेपर उस सुन्दरीने मधुर वाणीमें उत्तर दिया ॥ ६७—७३ ॥

नाडीजङ्घा बोली—यदि देवराज इन्द्र स्वयं ही मेरे पास आयेंगे तो मैं उनकी बात मान सकती हूँ; अन्यथा बिलकुल नहीं ॥ ७४ ॥

तब अश्विनीकुमारोंने इन्द्रके पास जाकर उसका शुभ संदेश कहा ॥ ७५ ॥

तब इन्द्र स्वयं आकर बोले—कृशाङ्गि ! आज्ञा दो, मैं इस समय तुम्हारा कौन-सा कार्य करूँ ? मैं सदाके लिये तुम्हारा दास हो गया हूँ; तुम जो कुछ माँगोगी, वह सब दूँगा ॥ ७६ ॥

कृशाङ्गीने कहा—नाथ ! यदि आप मेरी माँगी हुई वस्तु अवश्य दे देंगे, तो निःसंदेह मैं आपकी वशवत्तिनी हो जाऊँगी। आज आप अपनी समस्त भार्याओंको मुझे दिखाइये; देखें, आपको कोई भी स्वी मेरे रूपके सदृश है या नहीं ? ॥ ७७—७८ ॥

उसके यों कहनेपर इन्द्रने पुनः कहा—“देवि ! चलो, मैं तुम्हें अपनी समस्त भार्याओंको दिखाऊँगा।” यह कहकर इन्द्रने उसी समय उसे अपना सारा अन्तःपुर दिखाया। तब उस सुन्दरीने पुनः कहा—‘अभी मुझसे कुछ छिपाया गया है। केवल एक युवतीको छोड़कर और सब कुछ आपने दिखा दिया’ ॥ ७९—८० ॥

इन्द्रने कहा—“वह रमणी मन्दराचलपर है। देवता और अमूर—किसीको भी उसका पता नहीं है। मैं उसे भी तुम्हें दिखा दूँगा, परंतु यह रहस्य किसीपर प्रकट न करना।” भूपाल ! यह कहकर देवराज इन्द्र उसके साथ आकाशमार्गसे मन्दराचलकी ओर चले। जिस समय वे सूर्यके समान कान्तिमान् विमानसे चले जा रहे थे, उसी समय उन्हें आकाशमें देवर्षि नारदका दर्शन हुआ। नारदजीको देखकर वीरवर इन्द्र यद्यपि लज्जित हुए, तथापि उन्हें नमस्कार करके पूछा—‘महामुने ! आप कहाँ जायेंगे ?’ ॥ ८१—८४ ॥

तब मुनिवर नारदजीने आशीर्वाद देते हुए स्वर्गाधिपति इन्द्रसे कहा—‘देवराज ! आप सुखी हों, मैं इस समय मानससरोवरपर ज्ञान करने जा रहा हूँ।’ [फिर उन्होंने नाडीजङ्घाको पहचानकर कहा—] ‘नाडीजङ्घे ! कहो तो महात्मा राक्षसोंका कुशल तो है न ?

विभीषणोऽपि ते भ्राता सुखी तिष्ठति सर्वदा ।
एवमुक्ता च मुनिना सा कृष्णवदनाभवत् ॥ ८७
विस्मितो देवराजोऽपि छलितो दुष्टयानया ।
नारदोऽपि गतः स्वातुं कैलासे मानसं सरः ॥ ८८
इन्द्रस्तां हनुकामोऽपि आगच्छन्मन्दराचलम् ।
यत्राश्रमोऽस्ति वै नूनं तृणविन्दोर्महात्मनः ॥ ८९
क्षणं विश्रम्य तत्रैव धृत्वा केशेषु राक्षसीम् ।
हनुमिच्छति देवेशो नाडीजह्नां निशाचरीम् ॥ ९०
तावत्तत्र समायातस्तृणविन्दुर्निजाश्रमात् ।
धृता क्रन्दति सा राजन्निन्द्रेणापि निशाचरी ॥ ९१
मा मां रक्षति पुण्यात्मा हन्यमानां च साम्प्रतम् ।
तदाऽऽगत्य मुनिश्वेष्टस्तृणविन्दुर्महातपाः ॥ ९२
जगाद पुरतः स्थित्वा मुझेमां महिलां बने ।
जल्पत्येवं मुनी तस्मिन् प्रहेन्द्रेण निशाचरी ॥ ९३
बन्द्रेण निहता भूयः कोपयुक्तेन चेतसा ।
स चुकोप मुनिश्वेष्टः प्रेक्षमाणो मुहुर्मुहुः ॥ ९४
यदेषा युवती दुष्ट निहता मे तपोबने ।
ततस्त्वं मम शापेन निश्चयात् स्त्री भविष्यसि ॥ ९५

इन्द्र उवाच

एषा नाथ महादुष्टा राक्षसी निहता मया ।
अहं स्वामी सुराणां च शापं मा देहि मे ऽधुना ॥ ९६

मुनिस्वाच

नूनं तपोबनेऽस्माकं दुष्टास्तिष्ठन्ति साधवः ।
ममात्र तपसो भावान्न निष्ठन्ति परस्परम् ॥ ९७
इत्युक्तो हि तदा चेन्द्रः प्राप्तः स्त्रीत्वं न संशयः ।
जगाम त्रिदिवं भूय हतशक्तिपराक्रमः ॥ ९८
नासीनो हि भवत्येव सर्वदा देवसंसदि ।
देवा दुःखं समापन्ना दृष्टा स्त्रीत्वं गतं हरिम् ॥ ९९

तुम्हारे भाई विभीषण तो सुखपूर्वक हैं न ?' नारदजीकी यह बात सुनते ही उसका मुख भवसे काला पड़ गया । देवराज इन्द्र भी बहुत आश्वर्यमें पड़े और मन-ही-मन कहने लगे—'इस दुष्टाने मुझे छल लिया ।' नारदजी भी वहाँसे कैलास पर्वतके निकट मानससरोवरमें स्नान करनेके लिये चले गये । तब इन्द्र भी उस राक्षसीका वध करनेके लिये मन्दराचलपर जहाँ महात्मा तृणविन्दुका आश्रम था, आये और वहाँ थोड़ी देरतक विश्राम करके वे उस नाडीजह्ना राक्षसीके केश पकड़कर उसे मारना ही चाहते थे कि इतनेमें महात्मा तृणविन्दु अपने आश्रमसे निकलकर वहाँ आ गये ॥ ८५—९०%, ॥

राजन् ! इधर इन्द्रके द्वारा पकड़ी जानेपर वह राक्षसी भी करुण विलाप करने लगी—'हा ! मैं मारी जा रही हूँ, इस समय कोई भी पुण्यात्मा पुरुष मुझ दोनाको नहीं बचा रहा है' ॥ ९१%, ॥

उसी समय महातपस्वी तृणविन्दु मुनि वहाँ आ पहुँचे और इन्द्रके सामने छाड़े हो बोले—'हमारे तपोबनमें इस महिलाको न मारो, छोड़ दो' ॥ ९२%, ॥

भूप ! तृणविन्दु मुनि यों कह ही रहे थे कि महेन्द्रने कुछ हीकर बज्रसे उस राक्षसीको मार ही तो डाला । तब वे मुनिवर इन्द्रकी ओर बार-बार देखते हुए बहुत ही कुपित हुए और बोले—'रे दुष्ट ! तूने मेरे तपोबनमें इस युवतीका वध किया है, इसलिये तू मेरे शापसे निश्चय ही स्त्री हो जायगा' ॥ ९३—९५ ॥

इन्द्र बोले—नाथ ! मैं देवताओंका स्वामी इन्द्र हूँ और यह स्त्री महादुष्टा राक्षसी थी; इसलिये मैंने इसका वध किया है। आप इस समय मुझे शाप न दें ॥ ९६ ॥

मुनि बोले—अवश्य ही मेरे तपोबनमें भी दुष्ट और साधु पुरुष भी रहते हैं, परंतु वे मेरी तपस्याके प्रभावसे परस्पर किसीका वध नहीं करते। (तूने मेरे तपोबनकी मर्यादा भङ्ग की है, अतः तू शापके ही योग्य है।) ॥ ९७ ॥

भूप ! मुनिके यों कहनेपर इन्द्र निःसंहित स्त्रीयोनिको प्राप्त हो गये और पछलम तथा शक्ति खोकर स्वर्गको लौट आये। उन्होंने सदा ही लज्जा और दुःखसे छिन रहनेके कारण देवताओंकी सभामें बैठना ही थोड़ा दिया। इधर देवता भी इन्द्रको स्त्रीके रूपमें परिवर्तित हुआ देखकर बहुत दुःखी

ततो देवगणः सर्वे वासवेन समन्विताः ।
जग्मुश्च ब्रह्मसदनं तथा दीना शची तदा ॥ १००
ब्रह्मा भग्नसमाधिश्च तावत् तत्रैव संस्थिताः ।
देवा क्लुश्च ते सर्वे वासवेन समन्विताः ॥ १०१
तृणविन्दोर्मुनेः शापाद्यातः स्त्रीत्वं सुराधिपः ।
स मुनिः कोपवान् ब्रह्मत्रैव गच्छत्यनुग्रहम् ॥ १०२

पितामह उक्ताच

न मुनेरपराधः स्यात्तृणविन्दोर्महात्मनः ।
स्वकर्मणोपयातोऽसौं स्त्रीत्वं स्त्रीवधकारणात् ॥ १०३
चकार दुर्नियं देवा देवराजोऽपि दुर्मदः ।
जहार चित्रसेनां च सुगुमां धनदाङ्गनाम् ॥ १०४
तथा जघान युवतीं तृणविन्दोस्तपोवने ।
तेन कर्मविषाकेन स्त्रीभावं वासवो गतः ॥ १०५

देवा उक्तुः

यदसौं कृतवाङ्शाभ्योर्दुर्नियं नाथ दुर्मतिः ।
तत्सर्वं साधयिष्यामो वयं शच्या समन्विताः ॥ १०६
कान्ता धनाधिनाथस्य गूढा तिष्ठति या विभो ।
तां च तस्मै प्रदास्यामः सर्वे कृत्वा परां मतिम् ॥ १०७
ब्रयोदश्यां चतुर्दश्यां देवराजः शचीयुतः ।
नन्दने चार्चनं कर्ता सर्वदा यक्षरक्षसाम् ॥ १०८
ततः शची तदा गूढं चित्रसेनां विगृह्य च ।
मुमोच यक्षभवनं प्रियकष्टानुवर्जितीम् ॥ १०९
एतस्मिन्नतरे दूतोऽकाले लङ्घां समागतः ।
धनेशं कथयामास चित्रसेनासमागमम् ॥ ११०
शच्या साकं समायाता तव कान्ता धनाधिप ।
सखीं स्वामतुलां प्राप्य चरितार्थं बभूव सा ॥ १११
धनेशोऽपि कृतार्थोऽभूजगाम निजवेशमनि ।

देवा उक्तुः

सर्वमेतत्कृतं ब्रह्मन् प्रसादात्ते न संशयः ॥ ११२

हुए । तत्पश्चात् सभी देवता और दीना शची इन्द्रको साथ लेकर ब्रह्माजीके धामको गये । जबतक ब्रह्माजी समाधिते विरत हुए, तबतक वे सभी वहाँ ठहरे रहे और इन्द्रके साथ ही सब देवता ब्रह्माजीसे बोले ॥ ९८—१०१ ॥

'ब्रह्मन्! मुरराज इन्द्र तृणविन्दु मुनिके शापसे स्त्रीयोनिको प्राप्त हो गये हैं; वे मुनि बड़े क्रोधी हैं, किसी प्रकार अनुग्रह नहीं करते' ॥ १०२ ॥

ब्रह्माजी बोले—इसमें उन महात्मा तृणविन्दु मुनिका कोई अपराध नहीं है । इन्द्र स्त्रीवधरूपी अपने ही कर्मसे स्त्रीभावको प्राप्त हुए हैं । देवताओं! देवराज इन्द्रने भी मदमत्त होकर बड़ा ही अन्याय किया है, जो कुबेरकी पत्नी चित्रसेनाका गुप्तरूपसे अपहरण कर लिया । यही नहीं, इन्होंने तृणविन्दुके तपोवनमें एक युवतीका वध किया है, अतः अपने इस निष्ठ्य कर्मके परिणामस्वरूप ही ये इन्द्र स्त्रीभावको प्राप्त हुए हैं ॥ १०३—१०५ ॥

देवगण बोले—नाथ इन्होंने दुर्बुद्धिसे प्रेरित होकर जो शंकरप्रिय कुबेरका अपमान किया है, उसके लिये हम सब लोग शचीके साथ कुबेरको प्रसन्न करनेका यज्ञ करेंगे । विभो! कुबेरको पत्नी चित्रसेना मन्दराचलपर गुप्तरूपसे रहती है, हम सभी लोग सम्मति करके उसे कुबेरको अर्पित कर देंगे । देवराज इन्द्र भी प्रति ब्रयोदशी और चतुर्दशीको नन्दनवनमें शचीको साथ लेकर यज्ञ और राक्षसोंकी पूजा करेंगे ॥ १०६—१०८ ॥

तत्पश्चात् शची अपने प्रियतमको कष्टमें डालनेवाली चित्रसेनाको गुप्तरूपसे ले जाकर यक्षराज कुबेरके भवनमें छोड़ आयी । इसी समय कुबेरका दूत असमयमें ही लङ्घामें पहुँचा और कुबेरसे चित्रसेनाके लौट आनेका समाचार सुनाया—'हे धनाधिप! आपकी प्रिय पत्नी चित्रसेना शचीके साथ घर लौट आयी है । वह शची-जैसी अनुपम सखीको पाकर कृतार्थ हो चुकी है ।' तब कुबेर भी कृतकृत्य होकर अपने घरको लौट आये । इसके बाद देवगण पुनः ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माजीसे प्रार्थना करने लगे ॥ १०९—१११ ॥

देवगण बोले—ब्रह्मन्! आपकी कृपासे यह सारा काम तो हो गया—इसमें संदेह नहीं।

पतिहीना यथा नारी नाथहीनं यथा बलम् ।
गोकुलं कृष्णहीनं तु तथेन्द्रेणामरावती ॥ ११३
जपः क्रिया तपो दानं ज्ञानं तीर्थं च चै प्रभो ।
वासवस्य समाख्याहि यतः स्त्रीत्वादिमुच्यते ॥ ११४

ब्रह्मोक्तव्य

निहन्तु न मुनेः शायं समर्थोऽहं न शङ्करः ।
तीर्थं चान्यन्न पश्यामि मुक्त्वैकं विष्णुपूजनम् ॥ ११५
अष्टाक्षरेण मन्त्रेण पूजनं च तथा जपम् ।
करोतु विधिवच्छक्रः स्त्रीत्वाद्येन च मुच्यते ॥ ११६
एकाग्रमनसा शक्र स्वात्वा अद्वासमन्वितः ।
ॐ नमो नारायणायेति जप त्वमात्मशुद्धये ॥ ११७
लक्षद्वये कृते जाप्ये स्त्रीभावान्मुच्यसे हरे ।
इति श्रुत्वा तथाकार्षीद्वृग्योक्तं वचनं हरिः ।
स्त्रीभावाच्य विनिर्मुक्तस्तदा विष्णोः प्रसादतः ॥ ११८

मार्कण्डेय उक्ताच

इति ते कथितं सर्वं विष्णुपाहात्म्यमुत्तमम् ।
मया भृगुनियुक्तेन कुरु सर्वमतन्त्रितः ॥ ११९
शृणवन्ति ये विष्णुकथामकल्पया
बीर्यं हि विष्णोऽखिलकारणस्य ।
ते मुक्तपापाः परदारगामिनो
विशान्ति विष्णोः परमं पदं धूवम् ॥ १२०

सूत उक्ताच

इति सम्बोधितस्तेन मार्कण्डेयेन पार्थिवः ।
नरसिंहं समाराध्य प्राप्तवान् वैष्णवं पदम् ॥ १२१
एतते कथितं सर्वं भरद्वाजं मुने मया ।
सहस्रानीकचरितं किमन्यत् कथयामि ते ॥ १२२
कथामिमां यस्तु शृणोति मानवः
पुरातनीं सर्वविमुक्तिदां च ।
सम्प्राप्य स ज्ञानमतीव निर्मलं
तेनैव विष्णुं प्रतिपद्यते जनः ॥ १२३

इति श्रीनरसिंहयुग्मे सहस्रानीकचरितेऽष्टाक्षरमन्तकथनं नाम विष्णुत्तमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहयुग्मके अन्तर्गत सहस्रानीक-चरित्रके अन्तर्गत 'अष्टाक्षर-मन्त्रकी महिमाका कथन' नामक

तिरसठकां अध्याय पूरा हुआ ॥ ६३ ॥

परंतु अब जैसे पतिके विना नारी, सेनापतिके विना सेना और श्रीकृष्णके विना द्रव्यकी शोभा नहीं होती, उसी प्रकार इन्द्रके विना अमरावती सुशोभित नहीं होती। प्रभो! अब इन्द्रके लिये कोई जप, क्रिया, तप, दान, ज्ञान और तीर्थ-सेवन आदि उपाय बताइये, जिससे स्त्रीभावसे इनका उद्धार हो सके ॥ ११२—११४ ॥

ब्रह्माजी बोले—उस मुनिके शापको अन्यथा करनेमें न तो मैं समर्थ हूँ और न भगवान् शङ्कर ही। इसके लिये एकमात्र भगवान् विष्णुके पूजनको छोड़कर दूसरा कोई उपाय भी सफल नहीं दीख पड़ता। बस, इन्द्र अष्टाक्षर-मन्त्रके द्वारा भगवान् विष्णुका विधिपूर्वक पूजन करें और उस मन्त्रका जप करते रहें; इससे वे स्त्रीभावसे मुक्त हो सकते हैं। इन्द्र! आप करके, अद्वायुक्त हो, आत्मशुद्धि-के लिये एकाग्रचित्तसे 'ॐ नमो नारायणाय'—इस मन्त्रका जप करो। देवेन्द्र! इस मन्त्रका दो लाख जप हो जानेपर तुम स्त्री-योनिसे मुक्त हो सकते हो। यह सुनकर इन्द्रने ब्रह्माजीकी आज्ञाका यथावत् पालन किया, तब वे भगवान् विष्णुकी कृपासे स्त्रीभावसे छुटकारा पाये ॥ ११५—११८ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—गजन्! इस प्रकार मैंने भृगुजीकी आज्ञासे तुम्हारे समक्ष परम उत्तम भगवान् विष्णुके माहात्म्यको पूर्णरूपसे सुना दिया। अब तुम आलस्य त्यागकर भगवान् विष्णुकी आराधना करो। जो लोग अखिल जगतके कारणभूत भगवान् विष्णुके परक्रमसे सम्बन्ध रखनेवाली उनकी कथाको सुनते हैं, वे यदि परस्त्रीगामी रहे हों तो भी पापहीन एवं कल्पयरहित होकर निश्चय ही भगवान् विष्णुके परमपदको प्राप्त करते हैं ॥ ११९—१२० ॥

सूतजी कहते हैं—मुनिवर मार्कण्डेयजीके द्वारा इस तरह सम्यक् प्रकारसे उपदिष्ट होकर राजा सहस्रानीक भगवान् नृसिंहकी आराधना करके विष्णुके अविनाशी पदको प्राप्त हो गये। भरद्वाज मुने! इस प्रकार मैंने आपको यह सम्पूर्ण सहस्रानीक-चरित्र सुनाया; इसके बाद आपसे और क्या कहूँ? ॥ १२१—१२२ ॥

जो मानव सब प्रकारसे मोक्ष देनेवाली इस प्राचीन कथाका श्रवण करता है, वह अत्यन्त निर्मल ज्ञान प्राप्त करके उसीके द्वारा भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेता है ॥ १२३ ॥

चौंसठवाँ अध्याय

भगवद्गजनकी श्रेष्ठता और भक्त पुण्डरीकका उपाख्यान

श्रीभरहाज उकाच

**सत्यं केचित्प्रशंसन्ति तपः शौचं तथापरे ।
सांख्यं केचित्प्रशंसन्ति योगमन्ये प्रचक्षते ॥ १**

**ज्ञानं केचित्प्रशंसन्ति समलोष्टाशमकाङ्क्षनाः ।
क्षमां केचित्प्रशंसन्ति तथैव च दयार्जवम् ॥ २**

**केचिद्वानं प्रशंसन्ति केचिदाहुः परं शुभम् ।
सम्यग्ज्ञानं परं केचित्केचिद्वैराग्यमुत्तमम् ॥ ३**

**अग्रिष्ठोमादिकर्मणि तथा केचित्परं विदुः ।
आत्मध्यानं परं केचित्सांख्यतत्त्वार्थवेदिनः ॥ ४**

**धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्णामिह केवलम् ।
उपायः पदभेदेन बहुधैवं प्रचक्षयते ॥ ५**

**एवं चावस्थिते लोके कृत्याकृत्यविधी नराः ।
ब्यामोहमेव गच्छन्ति विमुक्ताः पापकर्मभिः ॥ ६**

**यदेतेषु परं कृत्यमनुष्टुयं महात्मभिः ।
बकुमहसि सर्वज्ञ मम सर्वार्थसाधकम् ॥ ७**

सूत उकाच

**श्रूयतामिदमत्यन्तं गूढं संसारमोचनम् ।
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ ८**

**पुण्डरीकस्य संवादं देवर्घेनारिदस्य च ।
ज्ञाहाणः श्रुतसम्प्रब्रः पुण्डरीको महामतिः ॥ ९**

**आश्रमे प्रथमे तिष्ठन् गुरुणां वशागः सदा ।
जितेन्द्रियो जितक्रोधः संघोपासनधिष्ठितः ॥ १०**

**वेदवेदाङ्गनिपुणः शास्त्रेषु च विचक्षणः ।
समिद्धिः साधुयत्वेन सायं प्रातहुताशनम् ॥ ११**

श्रीभरहाजजी बोले— सूतजी! कुछ लोग 'सत्य' को ही पुरुषार्थका साधक बताकर उसकी प्रशंसा करते हैं, दूसरे लोग 'तपस्या' और 'पवित्रता' को उत्तम बताते हैं। कुछ लोग 'सांख्य' और कुछ लोग 'योग' की प्रशंसा करते हैं। देख, पत्थर और सोनेको समान समझनेवाले कुछ अन्य लोग 'ज्ञान' को ही पुरुषार्थ-साधनके लिये उत्तम मानते हैं। कुछ लोग 'क्षमा' की प्रशंसा करते हैं तो कुछ लोग 'दया' और 'सरलता' की। कुछ लोग ऐसे हैं, जो 'दान' को उत्तम बताते हैं, कुछ लोग और ही किसी उपायको शुभ कहते हैं। दूसरे लोग 'सम्यग्ज्ञान' को उत्तम मानते हैं और अन्य जन 'वैराग्य' को श्रेष्ठ बताते हैं। कुछ यात्रिक लोग 'अग्रिष्ठोम' आदि यज्ञोंको ही सबसे बढ़कर मानते हैं। सांख्यतत्त्वका मर्म जाननेवाले कुछ लोग 'आत्माके ध्यान' को श्रेष्ठ मानते हैं। इस प्रकार यहाँ धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों पुरुषार्थोंका उपाय ही नाम-भेदसे नाना प्रकारका बताया जाता है। ऐसी स्थितिमें जगत्में पापकर्मसे विमुक्त पुरुष भी कर्तव्याकर्तव्यके विषयमें कुछ निश्चय न हो सकनेके कारण मोहमें ही पड़े रहते हैं। सर्वज्ञ! इन उपर्युक्त 'सत्य' आदि उपायोंमें जो सबसे उत्तम उपाय हो और महात्माओंद्वारा अवश्यकर्तव्य हो, सब मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले उस उपायका आप हमसे वर्णन करें ॥ १—७ ॥

सूतजी कहते हैं— संसार-बन्धनसे मुक्त करनेवाले इस अत्यन्त गूढ उपायको लोग सुनें। इस विषयमें महात्माजन देवर्घि नारद और भक्तवर पुण्डरीकके संवादस्मृत इस प्राचीन इतिहासका वर्णन किया करते हैं ॥ ८५ ॥

महामति पुण्डरीकजी एक विद्वान् ज्ञाहाण थे। वे सदा गुरुजनोंके वशमें रहते हुए ज्ञाहार्थ आश्रमके नियमोंका पालन करते थे। उन्होंने अपनी इन्द्रियों और ब्रोषको जीत लिया था तथा वे नियमानुसार संघोपासन किया करते थे। वेद और वेदाङ्गोंमें वे निष्पात थे तथा अन्य शास्त्रोंके भी पण्डित थे। वे प्रतिदिन समिधा एकजगत् सायं और प्रातःकाल अत्यन्त यज्ञपूर्वक अग्निकी उपासना

व्यात्वा यज्ञपतिं विष्णुं सम्यगाराधयन् विभुम्।
तपःस्वाध्यायनिरतः साक्षाद्व्रहसुतो यथा ॥ १२
उदकेन्धनपुष्ट्यार्थेरसकृत्पर्यन् गुरुन्।
मातापितृभ्यां शुश्रूषुर्भिक्षाहारी जनप्रियः ॥ १३
लहूविद्यामधीयानः प्राणायामपरायणः।
तस्य सर्वार्थभूतस्य संसारेऽत्यन्तनिःस्मृहा ॥ १४
बुद्धिरासीन्महाराज संसारार्णवतारणी।
पितरं मातरं चैव भातृनथं पितामहान् ॥ १५
पितृव्यान्मातुलांश्चैव सखीन् सम्बन्धिवान्धवान्।
परित्यज्य महोदारस्तुणानीव यथासुखम् ॥ १६
विचचारं महीमेतां शाकमूलफलाशानः।
अनित्यं यौवनं रूपमायुष्यं द्रव्यसंचयम् ॥ १७
इति संचिन्नयानेन त्रैलोक्यं लोष्टवत् स्मृतम्।
पुराणोदितमार्गेण सर्वतीर्थानि वै मुने ॥ १८
गमिष्यामि यथाकालमिति निश्चितमानसः।
गङ्गां च यमुनां चैव गोमतीमध्यं गण्डकीम् ॥ १९
शतद्रूं च पयोष्णीं च सरयूं च सरस्वतीम्।
प्रयागं नर्मदां चैव महानद्यो नदानपि ॥ २०
गयां च विन्ध्यतीर्थानि हिमवत् प्रभवाणि च।
अन्यानि च महातेजास्तीर्थानि स महाव्रतः ॥ २१
संचचारं महाबाहुर्थाकालं यथाविधि।
कदाचित् प्राप्तवान् वीरः शालग्रामं तपोधनः ॥ २२
पुण्डरीको महाभागः पुण्यकर्मवशानुगः।
आसेव्यमानमृषिभिस्तत्त्वविद्धिस्तपोधनैः ॥ २३
मुनीनामाश्रमं रथं पुराणेषु च विश्रुतम्।
भूषितं चक्रनद्या च चक्राङ्कितशिलातलम् ॥ २४
रथं विवितं विस्तीर्णं सदा चित्तप्रसादकम्।
केचिच्चक्राङ्कितास्तस्मिन् प्राणिनः पुण्यदर्शनाः ॥ २५
विचरन्ति यथाकामं पुण्यतीर्थप्रसङ्गिनः।
तस्मिन् क्षेत्रे महापुण्ये शालग्रामे महामतिः ॥ २६

किन्या करते थे। साक्षात् ब्रह्मपुत्र नारदजीके समान वे सर्वव्यापी यज्ञपति भगवान् विष्णुकी विधिपूर्वक आराधना करते हुए उनका ध्यान किया करते थे और सदा तपस्या तथा स्वाध्यायमें ही लगे रहते थे। जल, इधन और फूल आदि आवश्यक सामान लाकर वे सदा ही गुरुजनोंको संतुष्ट रखते और उनकी अपने माता-पिताके समान शुश्रूषा किन्या करते थे। पिता मर्णकर भौजन करते थे और अपने सद्ब्रह्मवहसरैके कारण लोगोंके परम प्रिय ही गये थे। वे सदा लहूविद्याका अध्ययन और प्राणायामका अध्यास करते रहते थे। महाग्रन्। समस्त पदार्थोंको वे अपना स्वरूप ही समझते थे; अतः संसारके विषयोंमें उनकी बुद्धि अत्यन्त निःस्मृह ही भवसागरसे पार उत्तरनेवाली हो गयी थी ॥ १—१४ ॥

भरद्वाजजी! उनका वैगुण्य यहाँतक बढ़ गया कि वे महान् उदार पुण्डरीकजी पिता, माता, भाई, पितामह, चाचा, मामा, मित्र, सम्बन्धी तथा बान्धवजनोंको तृष्णके समान त्यागकर, शाक और मूल-फलादिका आहार करते हुए इस पृथ्वीपर आनन्दपूर्वक विचारने लगे। उन्होंने यौवन, रूप, आयु और धन-संग्रहकी अनित्यताका विचार करके समस्त त्रिपुरवनको मिट्टीके ढेलेके समान तुच्छ समझ लिया था और अपने मनमें यह निष्ठय करके कि 'मैं पुण्डरीक भार्गसे यथासमय सभी तीर्थोंकी यात्रा करौंगा', वे महाबाहु, महातेजस्वी और महाव्रती पुण्डरीकजी गङ्गा, यमुना, गोमती, गण्डकी, शतद्रू, पयोष्णी, सरयू और सरस्वतीके तटपर, प्रयागमें, नर्मदा आदि महानदियों तथा नदोंके तटपर, गयामें तथा विन्ध्याचल और हिमालयके तीर्थोंमें एवं इनके अतिरिक्त अन्यान्य तीर्थोंमें भी यथासमय विधिपूर्वक भ्रमण करते रहे। इसी तरह घूमते हुए, पुण्यकर्मोंके अधीन हो वे तपस्वी यीर महापाण पुण्डरीक शालग्रामक्षेत्रमें जा पहुँचे ॥ १५—२२ ॥

वह तीर्थ तत्त्वज्ञानी तपस्वी ऋषियोंद्वारा सेवित था। वहाँ मुनियोंके सुरम्य आश्रम थे, जो पुराणोंमें प्रसिद्ध हैं। वह तीर्थ चक्रनदीसे भूषित है और वहाँकि शिलाङ्कण्ड भगवान्‌के चक्रसे चिह्नित है। वह तीर्थ जितना ही सुरम्य था, उतना ही एकान्त। उसका विस्तार बड़ा था और वहाँ चित्त स्वतः प्रसन्न रहता था। वहाँपर कुछ चक्रसे चिह्नित प्राणी रहते थे, जिनका दर्शन बहुत ही पावन था। वहाँ पुण्यतीर्थके यात्री यथेष्ट विचरते रहते थे। उस महापवित्र शालग्रामक्षेत्रमें महामति पुण्डरीकजी प्रसन्नचित्त हो तीर्थ-सेवन करने लगे।

पुण्डरीकः प्रसन्नात्मा तीर्थानि समसेवत ।
 स्नात्वा देवहृदे तीर्थे सरस्वत्यां च सुद्धतः ॥ २७
 जातिस्मर्या चक्रकुण्डे चक्रनद्यामृतेष्वपि ।
 तथान्यान्यपि तीर्थानि तस्मिन्नेव चचार सः ॥ २८
 ततः क्षेत्रप्रभावेण तीर्थानां चैव तेजसा ।
 मनः प्रसादमगमतस्य तस्मिन्महात्मनः ॥ २९
 सोऽपि तीर्थे विशुद्धात्मा ध्यानयोगपरायणः ।
 तत्रैव सिद्धिमाकाङ्क्षन् समाराध्य जगत्पतिम् ॥ ३०
 शास्त्रोक्तेन विधानेन भक्त्या परमया युतः ।
 उवास चिरमेकाकी निर्दृढः संयतेन्द्रियः ॥ ३१
 शाकमूलफलाहारः संतुष्टः समदर्शनः ।
 यमैश्च नियमैश्चैव तथा चासनबन्धनैः ॥ ३२
 प्राणायामैः सुतीश्चैश्च प्रत्याहारैश्च संततैः ।
 धारणाभिस्तथा ध्यानैः समाधिभिरतन्द्रितः ॥ ३३
 योगाभ्यासं तदा सम्यक् चक्रे विगतकल्पषः ।
 आराध्य देवदेवेशं तद्रतेनान्तरात्मना ॥ ३४
 पुण्डरीको महाभागः पुरुषार्थविशारदः ।
 प्रसादं परमाकाङ्क्षन् विष्णोस्तद्रत्मानसः ॥ ३५
 तस्य तस्मिन्निवसतः शालग्रामे महात्मनः ।
 पुण्डरीकस्य राजेन्द्र कालोऽगच्छमहोस्ततः ॥ ३६
 मुने कदाचित्तं देशं नारदः परमार्थवित् ।
 जगाम सुमहातेजाः साक्षादादित्यसंनिधिः ॥ ३७
 तं प्रसूकामो देवर्थिः पुण्डरीकं तपोनिधिम् ।
 विष्णुभक्तिपरीतात्मा वैष्णवानां हिते रतः ॥ ३८
 स दद्वा नारदं प्राप्तं सर्वतेजःप्रभान्वितम् ।
 महापतिं महाप्राज्ञं सर्वागमविशारदम् ॥ ३९
 प्राञ्छलिः प्रणतो भूत्वा प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
 अर्घं दस्त्वा यथायोग्यं प्रणाममकरोत् ततः ॥ ४०
 कोऽयमत्यद्वुताकारस्तेजस्वी हृदयेष्वधृक् ।
 आतोद्यहस्तः सुमुखो जटामण्डलभूषणः ॥ ४१
 विवस्वानथं वा वह्निरिन्द्रो वरुण एव वा ।
 इति संचिन्तयन् विप्रः पप्रच्छ परमद्युतिः ॥ ४२

वे नियमपूर्वक वहाँ देवहृद तीर्थमें, पूर्वजन्मकी सृति दिलानेवाली सरस्वतीके जलमें, चक्र-कुण्डमें और चक्र-नदी (नारायणी)-के जलमें भी स्नान करके उसी क्षेत्रके अन्तर्गत अन्यान्य तीर्थोंमें भ्रमण करते रहते थे ॥ २३—२८ ॥

तदनन्तर उस क्षेत्रके प्रभावसे और वहाँके तीर्थोंके तेजसे उन महात्माका चित्त वहाँ बहुत ही शुद्ध एवं प्रसन्न हो गया । इस प्रकार शुद्धचित्त एवं ध्यानयोगमें तत्पर हो, वहाँ ही सिद्धिकी इच्छासे परमभक्तिसुरक्षा हो, वे शास्त्रोक्त विधिसे जगत्पति भगवान् विष्णुकी आराधना करने लगे । अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके निर्दृढ़ रहते हुए उन्होंने अकेले ही बहुत दिनोंतक वहाँ निवास किया । वे शाक और मूल-फलादिका आहार करते और सदा संतुष्ट रहते थे । उनकी सर्वत्र समान दृष्टि थी । वे यम, नियम, आसन-बन्ध, तीव्र प्राणायाम, निरन्तर प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधिके द्वारा नियालस्यभावसे भलीभीति योगभ्यास करते रहे । इस प्रकार समस्त पुरुषार्थोंके ज्ञाता निष्पाप महामना पुण्डरीकवीने देवदेवेश भगवान् विष्णुमें चित्त लगाकर उनकी आराधना की और उन्होंमें मन लगाये हुए वे उनके परम अनुग्रहकी आकाङ्क्षासे भजन करने लगे ॥ २९—३५ ॥

राजेन्द्र ! महात्मा पुण्डरीकको उस शालग्रामक्षेत्रमें निवास करते बहुत समय बीत गया । तब एक दिन साक्षात् सूर्यके समान महातेजस्वी, वैष्णवहितकारी, परमार्थवेत्ता एवं विष्णुभक्तिपरायण देवर्थि नारदजी तपोनिधि पुण्डरीक मुनिको देखनेकी इच्छासे उक्त क्षेत्रमें गये । समस्त आगमोंके ज्ञाता, महाबुद्धिमान्, महाप्रज्ञ, पूर्णज्ञस्वी एवं प्रभापुञ्जसे उपलक्षित नारदजीको वहाँ आशा देख पुण्डरीकके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने विनीतभावसे हाथ जोड़कर उन्हें अर्घ्य निवेदन किया, फिर यथोचितरूपसे उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया । तत्पश्चात् परम कान्तिमन् विप्रवर पुण्डरीकजी मन-ही-मन यह सोचने लगे कि 'ये अद्भुत दिव्य शरीरवाले, मनोरमवेषधारी, रेतस्य महापुरुष कौन हैं ? अहो ! इनका मुख्यमण्डल कितना प्रसन्न है ! इनके मस्तकपर जटा-चूट मुश्शोभित हो रहा है । इन्होंने हाथमें बीणा ले रखी है । इस रूपमें वे साक्षात् सूर्य हो तो नहीं हैं ? अथवा अग्निदेव, इन्द्र और चरुणमेंसे तो कोई नहीं है ?' यों सोचते हुए किसी निश्चयपर न पहुँचनेके कारण उन्होंने पूछा ॥ ३६—४२ ॥

पुण्डरीक उकाच

को भवानिह सम्प्राप्तः कुतो वा परमद्युते ।
त्वद्दर्शनं ह्यपुण्यानां प्रायेण भुवि दुर्लभम् ॥ ४३

नारद उकाच

नारदोऽहमनुप्राप्तस्त्वद्दर्शनकुतूहलात् ।
पुण्डरीक हरेभक्तस्त्वादृशः सततं द्विज ॥ ४४

स्मृतः सम्भाषितो वापि पूजितो वा द्विजोत्तम ।
पुनाति भगवद्दक्षाण्डालोऽपि यदुच्छया ॥ ४५

दासोऽहं वासुदेवस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ।
इत्युक्तो नारदेनासी भक्तिपर्याकुलात्मना ॥ ४६

प्रोवाच मधुरं विप्रस्तद्दर्शनसुविस्मितः ।

पुण्डरीक उकाच

धन्योऽहं देहिनामद्य सुपूज्योऽहं सुरैरपि ॥ ४७

कृतार्थाः पितरो मेऽद्य सम्प्राप्तं जन्मनः फलम् ।
अनुगृहीष्व देवर्षे त्वद्दक्षस्य विशेषतः ॥ ४८

किं किं करोम्यह विद्वन् भाष्यमाणः स्वकर्मभिः ।
कर्तव्यं परमं गुह्यमुपदेष्टुं त्वर्महसि ॥ ४९

त्वं गतिः सर्वलोकानां वैष्णवानां विशेषतः ।

नारद उकाच

अनेकानीह शास्त्राणि कर्माणि च तथा द्विज ॥ ५०

धर्ममार्गाङ्क्ष्य ब्रह्मस्तथैव प्राणिनः स्मृताः ।
बैलक्षण्यं च जगतस्तस्मादेव द्विजोत्तम ॥ ५१

पुण्डरीकजी बोले—परम कान्तिमान् दिव्य पुरुष !
आप कौन हैं और कहाँसे पधारे हैं ? इस पृथ्वीपर
जिन्होंने कभी पुण्य नहीं किया है, ऐसे लोगोंके लिये
आपका दर्शन प्रायः दुर्लभ ही है ॥ ४३ ॥

नारदजी बोले—पुण्डरीक ! मैं नारद हूँ। तुम्हारे
दर्शनकी उत्कृष्टतासे ही यहाँ आया हूँ। तुम-जैसा
निरन्तर भगवद्गीतायण पुरुष दुर्लभ है। द्विजोत्तम !
भगवद्गीता पुरुष यदि जातिका चण्डाल हो तो भी
वह स्मरणमात्रसे, वार्तालापसे अथवा सम्मानित होकर,
अथवा स्वेच्छासे ही लोगोंको पवित्र कर देता है;
फिर तुम्हारे-जैसे भक्त ब्राह्मणके सत्सङ्गकी पावनताके
विषयमें तो कहना ही क्या है। द्विज ! मैं शार्ङ्गधनुष
धारण करनेवाले देवदेव भगवान् वासुदेवका दास
हूँ ॥ ४४-४५ ॥

नारदजीके इस प्रकार अपना परिचय देनेपर उनके
दर्शनसे अत्यन्त विस्मित हुए विप्रवर पुण्डरीकजी प्रेम-
भक्तिसे विहङ्गचित्त होकर मधुर वाणीमें बोले ॥ ४६ ॥

पुण्डरीकजीने कहा—आज मैं समस्त देहधारियोंमें
धन्य हूँ, देवताओंद्वारा भी सम्माननीय हूँ। आज मेरे
पितर कृतार्थ हो गये। मेरा जन्म सफल हो गया। देवर्षे !
मैं आपका भक्त हूँ; आप मुझपर अब विशेषरूपसे
अनुग्रह करें। विद्वन् ! मैं अपने पूर्वजन्मकृत कर्मोंसे
प्रेरित हो संसारमें भटक रहा हूँ। बताइये, इससे
छुटकारा पानेके लिये मैं क्या-क्या करूँ ? मेरे लिये
जो परम कर्तव्य हो, वह गोपनीय हो तो भी आप
मुझे उसका उपदेश कीजिये। मुने ! यों तो आप समस्त
लोकोंको ही सहारा देनेवाले हैं, परंतु वैष्णवोंके लिये
तो आप विशेषरूपसे शरणदाता हैं ॥ ४७-४९ ॥

नारदजी बोले—द्विज ! इस जगत्में अनेक शास्त्र
और अनेक प्रकारके कर्म हैं। इसी तरह यहाँ अनेकों
प्राणी हैं और उनके लिये धर्मके मार्ग भी बहुत हैं।
द्विजोत्तम ! इसीसे इस जगत्में विचित्रता दिखायी
देती है ॥ ५०-५१ ॥

अव्यक्ताज्ञायते सर्वं सर्वात्मकमिदं जगत्।
इत्येवं प्राहुरपरे तत्रैव लयमेव च ॥ ५२

आत्मानो ब्रह्मः प्रोक्ता नित्याः सर्वगतास्तथा।
अन्यैर्मतिमतां श्रेष्ठ तत्त्वालोकनतत्परैः ॥ ५३

एवमाद्यनुसंचिन्त्य यथामति यथाश्रुतम्।
बदनित ऋषयः सर्वे नानामतविशारदाः ॥ ५४

शृणुष्वावहितो ब्रह्मन् कथयामि तवानघ।
परमार्थमिदं गुह्यं धोरसंसारमोचनम् ॥ ५५

अनागतमतीतं च विप्रकृष्टमतीव यत्।
न गृह्णाति नृणां दृष्टिर्वर्तमानार्थनिष्ठिता ॥ ५६

शृणुष्वावहितं तात कथयामि तवानघ।
यत्प्रोक्तं ब्रह्मणा पूर्वं पृच्छतो मम सुव्रत ॥ ५७

कदाचिद्ब्रह्मलोकस्य पद्मयोनिं पितामहम्।
प्रणिपत्य यथान्यायं पृष्ठवानहमव्ययम् ॥ ५८

नारद उक्ताच

किं तज्ज्ञानं परं देव कश्च योगः परस्तथा।
एतम्ये तत्त्वतः सर्वं त्वमाचक्ष्व पितामह ॥ ५९

ब्रह्मयोगाच

यः परः प्रकृतेः प्रोक्तः पुरुषः पञ्चविंशकः।
स एव सर्वभूतानां नर इत्यभिधीयते ॥ ६०

नाराज्ञातानि तत्त्वानि नाराणीति ततो विदुः।
तान्येव चायनं तत्स्य तेन नारायणः स्मृतः ॥ ६१

नारायणाजगत्सर्वं सर्गकाले प्रजायते।
तस्मिन्नेव पुनस्तत्त्वं प्रलये सम्प्रत्यीयते ॥ ६२

नारायणः परं ब्रह्म तत्त्वं नारायणः परम्।
नारायणः परं ज्योतिरात्मा नारायणः परः ॥ ६३

कुछ लोगोंका मत है कि यह सम्पूर्ण जगत् सर्वथा अव्यक्तसे उत्पन्न होता है और समय आनेपर उसीमें लीन भी हो जाता है। बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ! कुछ अन्य तत्त्वदर्शी पुरुष आत्माको अनेक, नित्य एवं सर्वत्र व्यापक मानते हैं। अनधि! ब्रह्मन्! इन सब बातोंपर विचार करके नाना मतोंका ज्ञान रखनेवाले समस्त ऋषिगण अपनी बुद्धि और विद्याके अनुसार विस सिद्धान्तका प्रतिपादन करते हैं, उसे सावधान होकर सुनो; वह सब में तुमसे बतलाता है। यह ब्रह्मवा जानेवाला गोप्य परमार्थतत्त्व इस घोरतर संसारसे मुक्ति दिलानेवाला है। मनुष्योंकी दृष्टि प्रायः वर्तमान विषयोंको ही निष्ठितरूपसे ग्रहण करती है; वह सुदूरवर्ती भूत और भविष्यको नहीं ग्रहण कर सकती। उत्तम ब्रह्मके पालक एवं पापशून्य तात पुण्डरीक! इस विषयमें श्रीब्रह्माजीने पहले मेरे प्रश्न करनेपर मुझसे जो कुछ कहा था, वह सब में तुम्हें बता रहा है; तुम ध्यान देकर सुनो। एक समयकी बात है, ब्रह्मलोकमें विराजमान अविनाशी कमलयोनि ब्रह्माजीको प्रणाम करके मैंने उनसे यथोचित-रूपसे प्रश्न किया ॥ ५२—५८ ॥

नारदजी बोले—देव! लोकपितामह! सबसे उत्तम ज्ञान और सबसे उत्कृष्ट योग कौन-सा है? इस विषयमें सारी बातें आप मुझे ठीक-ठीक बतायें ॥ ५९ ॥

ब्रह्माजी बोले—जो तो ऐस विकारोंके कारणभूत चौबीसवें तत्त्व प्रकृतिसे भिन्न पचोसवाँ तत्त्व है, वही सम्पूर्ण प्राणिशरीरोंमें 'नर' (पुरुष या आत्मा) कहलाता है। सम्पूर्ण तत्त्व नरसे उत्पन्न हैं, इसलिये 'नार' कहलाते हैं। ये नार जिनके अयन (आश्रय) हैं, अर्थात् जो इनमें व्यापक हैं, वे भगवान् 'नारायण' कहे जाते हैं। सृष्टिकालमें सम्पूर्ण जगत् भगवान् नारायणसे ही प्रकट होता है और प्रलयके समय फिर उन्हींमें लीन हो जाता है। नारायण ही परब्रह्म हैं, नारायण ही परम तत्त्व हैं, नारायण ही

परादपि परश्चासौ तस्मान्नातिपरं मुने ।
यच्च किंचिज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ॥ ६४

अन्तर्बहिंशु तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ।
एवं विदित्वा तं देवाः साकारं व्याहरन्मुहुः ॥ ६५

नमो नारायणायेति ध्यात्वा चानन्यमानसाः ।
किं तस्य दानैः किं तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वैः ॥ ६६

यो नित्यं ध्यायते देवं नारायणमनन्यधीः ।
एतन्ज्ञानं वरं नातो योगश्चैव परस्तथा ॥ ६७

परस्परविरुद्धार्थैः किमन्यैः शास्त्रविस्तौरैः ।
बहुयोऽपि यथा मार्गा विशन्त्येकं महत्पुरम् ॥ ६८

तथा ज्ञानानि सर्वाणि प्रविशन्ति तमीश्वरम् ।
स हि सर्वगतो देवः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ॥ ६९

जगदादिरनाद्यन्तः स्वयम्भूर्भूतभावनः ।
विष्णुर्विभुरचिन्त्यात्मा नित्यः सदसदात्मकः ॥ ७०

वासुदेवो जगद्वासः पुराणः कविरव्ययः ।
यस्मात्प्राप्तं स्थितिं कृत्वा त्रैलोक्यं सच्चराचरम् ॥ ७१

तस्मात् स भगवान्देवो विष्णुरित्यभिधीयते ।
यस्माद्वा सर्वभूतानां तत्त्वाद्यानां युगक्षये ॥ ७२

तस्मिन्निवासः संसर्गे वासुदेवस्ततस्तु सः ।
तमाहुः पुरुषं केचित्केचिदीश्वरमव्ययम् ॥ ७३

विज्ञानमात्रं केचिच्च केचिद्द्वयं परं तथा ।
केचित्कालमनाद्यन्तं केचिजीवं सनातनम् ॥ ७४

केचिच्च परमात्मानं केचिच्चैवमनामयम् ।
केचित्क्षेत्रज्ञमित्याहुः केचित्प्रविंशकं तथा ॥ ७५

अद्वृष्टप्रात्रं केचिच्च केचित्पद्मरजोपमम् ।
एते चान्ये च मुनिभिः संज्ञाभेदाः पृथग्विधाः ॥ ७६

परमज्योति और नारायण ही परम आत्मा हैं। मुने। वे भगवान् नारायण परस्पे भी पर हैं। उनसे बढ़कर या उनसे भिन्न कुछ भी नहीं है। इस जगत्में जो कुछ देखा या सुना जाता है, सबको बाहर और भीतरसे व्याप्त करके भगवान् नारायण स्थित हैं। इस प्रकार उन्हें साकार वस्तुओंमें व्यापक जानकर ही देवताओंने बार-बार उनको 'साकार' कहा है तथा 'ॐ नमो नारायणाय'—इस मन्त्रका ध्यान (मानसिक जप) करते हुए अनन्यभावसे उनमें मन लगाया है। जो अनन्यचित्त हो सदा भगवान् नारायणका ध्यान करता है, उसको दान, तीर्थसेवन, तपस्या और यज्ञोंसे क्या काम है? भगवान् नारायणका ध्यान ही सर्वोत्तम ज्ञान है तथा इससे बढ़कर दूसरा कोई योग भी नहीं है। परस्परविरुद्ध अर्थको व्यक्त करनेवाले दूसरे-दूसरे शास्त्रोंके विस्तारसे क्या लाभ? जिस प्रकार एक ही बड़े नगरमें बहुत-से मार्गोंका प्रवेश होता है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न शास्त्रोंके सम्पूर्ण ज्ञान उन परमेश्वर नारायणमें प्रवेश करते हैं ॥ ६०—६८ ॥

वे भगवान् विष्णु अव्यक्तरूपसे सर्वत्र व्याप्त हैं, सूक्ष्म तत्त्व हैं, सदा रहनेवाले सनातन पुरुष हैं, सम्पूर्ण जगत्के आदिकारण हैं; परंतु उनका न तो आदि है न अन्त ही। स्वयं वे किसी दूसरेसे उत्पन्न नहीं हैं, अतएव 'स्वयम्भू' हैं, किन्तु इन सम्पूर्ण भूतप्राणियोंको स्वयं ही प्रकट करते हैं। वे विष्णु, अचिन्त्य, नित्य और कार्य-कारणस्वरूप हैं। सम्पूर्ण जगत्का उनमें ही निवास है, इसलिये वे 'वासुदेव' कहे गये हैं। वे पुराणपुरुष, त्रिकालदर्शी और अविकली हैं। यह सम्पूर्ण चराचरमय त्रिभुवन उन्हीं भगवान्के द्वारा व्याप्त होनेसे स्थित है, इसलिये वे 'विष्णु' कहलाते हैं। अथवा युगका क्षय होनेपर महत्तत्व आदि समस्त भूतोंका उन्हीं सृष्टिके आश्रयभूत परमात्मामें निवास होता है, इसलिये वे 'वासुदेव' कहे गये हैं। कुछ लोग उनको पुरुष (आत्मा) कहते हैं और कुछ लोग अविनाशी ईश्वर बताते हैं। कुछ अन्य लोग उन्हें केवल 'विज्ञानस्वरूप' मानते हैं, कितने ही उन्हें परब्रह्म कहते हैं। कुछ विचारक उन्हें आदि-अन्तराहित 'काल' कहते हैं और कुछ मनुष्य उनको 'सनातन जीव' मानते हैं। कुछ लोग 'परमात्मा' कहते हैं, कुछ उन्हें एक 'निरामय तत्त्व' मानते हैं, कुछ विद्वान् उन्हें 'क्षेत्रज्ञ' कहते हैं और कुछ उन्हें तेर्वें विकारोंके कारण चौबीसवें तत्त्व प्रकृति और पचीसवें तत्त्वरूप पुरुषसे भिन्न 'छब्बीसवाँ तत्त्व' (पुरुषोत्तम) मानते हैं। कुछ लोग आत्माको औंगूठेके बराबर बताते हैं और कुछ विद्वान् कमल-पुष्पकी धूलिके एक

शास्त्रेषु कथिता विष्णोलोकव्यामोहकारकः ।
एकं यदि भवेच्छास्त्रं ज्ञानं निसंशयं भवेत् ॥ ७७

बहुत्वादिह शास्त्राणां ज्ञानतत्त्वं सुदुर्लभम् ।
आलोङ्ग सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ॥ ७८

इदमेकं सुनिष्ठ्यत्र ध्येयो नारायणः सदा ।
त्यक्त्वा व्यामोहकान् सर्वान् तस्माच्छास्त्रार्थविस्तरान् ॥ ७९

अनन्यचेता ध्यायस्व नारायणमतन्द्रितः ।
एवं ज्ञात्वा तु सततं देवदेवं तपव्ययम् ॥ ८०

क्षिप्रं यास्यसि तत्रैव सायुज्यं नात्र संशयः ।
श्रुत्वेदं ब्रह्मणा प्रोक्तं ज्ञानयोगं सुदुर्लभम् ॥ ८१

ततोऽहमासं विप्रेन्द्र नारायणपरायणः ।
नमो नारायणायेति ये विदुर्भृष्ट शाश्वतम् ॥ ८२

अन्तकाले जपन्तस्ते यान्ति विष्णोः परं पदम् ।
तस्माच्चारायणस्तात् परमात्मा सनातनः ॥ ८३

अनन्यमनसा नित्यं ध्येयस्तत्त्वविचिन्तकैः ।
नारायणो जगद्व्यापी परमात्मा सनातनः ॥ ८४

जगतां सृष्टिसंहारपरिपालनतत्परः ।
अव्याप्तपठनाच्चैव निदिव्यासनतत्परैः ॥ ८५

आराध्यः सर्वथा ब्रह्मन् पुरुषेण हितैविणा ।
निःस्युहा नित्यसंतुष्टा ज्ञानिनः संयतेन्द्रियाः ॥ ८६

निर्भमा निरहंकारा रागद्वेषविवर्जिताः ।
अपश्चपतिताः शान्ताः सर्वसंकल्पवर्जिताः ॥ ८७

ध्यानयोगपरा ब्रह्मन् ते पश्यन्ति जगत्पतिम् ।
त्यक्तब्रया महात्मानो वासुदेवं हरिं गुरुम् ॥ ८८

कीर्तयन्ति जगत्राद्यं ते पश्यन्ति जगत्पतिम् ।
तस्मात्त्वमपि विप्रेन्द्र नारायणपरो भव ॥ ८९

कणके बगवर 'अणु' मानते हैं। ऊपर भगवान् विष्णुके जिन नामोंका उल्लेख किया गया है, ये तथा अन्य भी बहुत-से भिन्न-भिन्न नाम मुनियोंद्वारा शास्त्रोंमें कहे गये हैं, जो साधारण लोगोंमें भेद-भ्रमका उत्पादन कर उन्हें मोहमें डालनेवाले हैं। यदि एक ही शास्त्र होता तो सबको संदेहरहित निष्ठ्यात्मक ज्ञान होता। किंतु यहाँ तो बहुतेरे शास्त्र हैं और सबका अलग-अलग सिद्धान्त है; अतः ज्ञानका तत्त्व बड़ा ही दुर्ज्ञ हो गया है। परंतु मैंने सम्पूर्ण शास्त्रोंका मथन करके विचार किया तो एक यही बात सब सिद्धान्तोंके साररूपसे ज्ञात हुई कि सदा 'भगवान् नारायणका ध्यान करना चाहिये।' इसलिये मोहमें डालनेवाले सम्पूर्ण शास्त्र-विस्तारोंका त्याग करके एकचित्त होकर उत्साहपूर्वक भगवान् नारायणका ध्यान करो। इस प्रकार सतत चिन्तनके द्वारा उन अविनाशी देवदेव नारायणका तत्त्व जानकर तुम शीघ्र ही उनमें सायुज्य-मुक्ति प्राप्त कर लोगे, इसमें संदेह नहीं है ॥ ८९—८० ॥

विप्रेन्द्र! इस प्रकार ब्रह्माजीके कहे हुए इस परम दुर्लभ ज्ञानयोगको सुनकर मैं तभीसे भगवान् नारायणकी परिचयमें लग गया। जो लोग 'अ॒ नमो नारायणाय'— इस सनातन ब्रह्मस्वरूप मन्त्रको जानते हैं, वे अन्तकालमें इसका जप करते हुए विष्णुके परमधार्मको प्राप्त कर लेते हैं। अतः तात! तत्त्व-विचार करनेवाले पुरुषोंको सदा ही सनातन परमात्मा नारायणका अनन्यचित्तसे ध्यान करना चाहिये। भगवान् नारायण जगद्व्यापी सनातन परमेश्वर हैं। ये भिन्न-भिन्न रूपसे सम्पूर्ण लोकोंके सृष्टि, पालन तथा संहार-कार्यमें लगे रहते हैं। इनके नाम, गुण एवं लीलाओंका व्रतण और कीर्तन करते हुए उनके ध्यानमें संलग्न ही उनकी आराधना करनी चाहिये। ब्रह्मन्! अपना हित चाहनेवाले पुरुषके लिये सर्वथा भगवान् नारायणकी आराधना ही कर्तव्य है। विप्रवर! जो लोग निःस्युह, नित्य-संतुष्ट, ज्ञानी, जिरोन्द्रिय और ममता-अहंता, राग-द्वेष आदि विकारोंसे रहित हैं तथा जो पक्षपातशून्य, शान्त एवं सब प्रकारके संकल्पोंसे वर्जित हैं, वे भगवान्के ध्यानयोगमें तत्पर हो उन जगदीश्वरका साक्षात्कार कर लेते हैं। जो महात्मा त्रिभुवनसे नाता तोड़कर जगदगुरु जगन्नाथ भगवान् वासुदेवका कीर्तन करते हैं, वे उन जगत्पतिका दर्शन पा जाते हैं। इसलिये विप्रवर! तुम भी भगवान् नारायणकी समाराधनामें तत्पर हो जाओ ॥ ८१—८२ ॥

तदन्यः को महोदारः प्रार्थितं दातुमीश्वरः ।
हेलया कीर्तिंतो यो वै स्वं पदं दिशति द्विजः ॥ १०
अपि कार्यस्त्वया चैव जपः स्वाध्याय एव च ।
तत्मेवोद्दिश्य देवेशं कुरु नित्यमतन्त्रितः ॥ ११
किं तत्र बहुभिर्मन्त्रैः किं तत्र बहुभिर्वर्तते ।
नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥ १२
चीरवासा जटाधारी त्रिदण्डी मुण्ड एव वा ।
भूषितो वा द्विजश्रेष्ठ न लिङ्गं धर्मकारणम् ॥ १३
ये नृशंसा दुरात्मानः पापाचाररताः सदा ।
तेऽपि यान्ति परं स्थानं नरा नारायणाश्रयाः ॥ १४
जन्मान्तरसहस्रेषु यस्य स्याद्बुद्धिरीदूशी ।
दासोऽहं वासुदेवस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥ १५
प्रयाति विष्णुसालोक्यं पुरुषो नात्र संशयः ।
किं पुनस्तद्वत्प्राणः पुरुषः संयतेन्द्रियः ॥ १६

सूत उवाच

इत्युक्त्वा देवदेवर्षिस्तत्रैवान्तरधीयत ।
परोपकारनिरतस्त्रैलोक्यस्यैकभूषणः ॥ १७
पुण्डरीकोऽपि धर्मात्मा नारायणपरायणः ।
नमोऽस्तु केशवायेति पुनः पुनरुदीरयन् ॥ १८
प्रसीदस्व महायोगिनिदमुच्चार्यं सर्वदा ।
हत्पुण्डरीके गोविन्दं प्रतिष्ठाप्य जनार्दनम् ॥ १९
तपःसिद्धिकरेऽरण्ये शालग्रामे तपोधनः ।
उवास चिरमेकाकी पुरुषार्थविचक्षणः ॥ २००
स्वज्ञेऽपि केशवादन्यन्नं पश्यति महातपाः ।
निद्रापि तस्य नैवासीत्पुरुषार्थविरोधिनी ॥ २०१
तपसा ऋद्धाचर्येण शौचेन च विशेषतः ।
जन्मजन्मान्तरारुद्धसंस्कारेण च स द्विजः ॥ २०२
प्रसादादेवदेवस्य सर्वलोकैकसाक्षिणः ।
अवाप परमां सिद्धिं वैष्णवीं चीतकल्पयः ॥ २०३

द्विज ! जो अवहेलनापूर्वक नाम लेनेपर भी भक्तको अपना परमधाम दे देते हैं, उन भगवान् नारायणके सिवा दूसरा कौन ऐसा महान् उदार है, जो मौगी हुई बस्तुको देनेमें समर्थ हो ? तुम्हें जप अथवा स्वाध्याय—जो कुछ भी करना हो, उसे उन देवेशर भगवान् नारायणके उद्देश्यसे ही सदा आलस्य त्यागकर करते रहो । बहुत-से मन्त्र और व्रतोंसे क्या काम ? 'ॐ नमो नारायणाय'—यह मन्त्र ही सब मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है । द्विजश्रेष्ठ ! कोई चीर वस्त्र पहननेवाला, जटा धारण करनेवाला, त्रिदण्डी, सदा माथा मुँडाये रहनेवाला अथवा तरह-तरहके उपकरणोंसे विभूषित ही क्यों न हो, उसके ये बाह्य चिह्न धर्मकि कारण नहीं हो सकते; किंतु जो मनुष्य भगवान् नारायणकी शरणमें जा चुके हैं, वे पहले निर्दधी, दुष्ट और सदा पापरत रहे हों तो भी भगवान्के परमधामको पधारते हैं । हजारों जन्मोंमें भी जिसकी ऐसी बुद्धि हो जाय कि 'मैं देवदेव, शार्ङ्गधनुषधारी भगवान् वासुदेवका दास हूँ', वह मनुष्य निःसंदेह भगवान् विष्णुके सालोक्यको प्राप्त होता है; फिर जो पुरुष जितेन्द्रिय होकर सदा भगवान्में ही अपने प्राणोंको लगाये रहता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है ॥ १०—१६ ॥

सूतजी कहते हैं—सदा दूसरोंके ही उपकारमें लगे रहनेवाले त्रिभुवनभूषण देवर्षि नारदजी उपर्युक्त बतें बताकर बहींपर अन्तर्धान हो गये । अब धर्मात्मा पुण्डरीक भी एकमात्र भगवान् नारायणके भजनमें तत्पर हो बार-बार इस प्रकार उच्चारण करने लगे—'भगवान् केशवको नमस्कार है; हे महायोगिन् ! आप मुझपर प्रसन्न हों।' निरन्तर यों कहते हुए पुरुषार्थ-साधनमें कुशल वे तपस्वी पुण्डरीकजी अपने हृदय-कमलके आसनपर जनार्दन भगवान् गोविन्दको स्थापितकर तपस्याकी सिद्धि करनेवाले उस 'शालग्राम' नामक तपोवनमें बहुत कालतक अकेले ही रहे । महातपस्वी पुण्डरीक स्वप्रमें भी भगवान् केशवके सिवा दूसरा कुछ नहीं देखते थे । उनकी नींद भी उन्हें पुरुषार्थ-साधनमें बाधा नहीं देती थी । उन पापरहित द्विजवर पुण्डरीकने तपस्या, ऋद्धाचर्य तथा विशेषतः शौचाचारके पालनसे और जन्म-जन्मान्तरोंकी साधनासे सुदृढ़ हुए भगवद्भक्तिसाधक संस्कारसे सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र साक्षी देवदेव भगवान् विष्णुकी कृपाद्वारा परम उत्तम वैष्णवी सिद्धि प्राप्त कर ली । उनके निकट

सिंहव्याघ्रास्तथान्येऽपि भृगा: प्राणिविहिसकाः ।
विरोधं सहजं हित्या समेतास्तस्य संनिधी ।
निवसन्ति द्विजश्रेष्ठ प्रशान्तेन्द्रियवृत्तयः ॥ १०४

ततः कदाचिद्गवान् पुण्डरीकस्य धीमतः ।
प्रादुरासीज्ञगत्राथः पुण्डरीकायतेक्षणः ॥ १०५

शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासाः स्त्रगुज्ज्वलः ।
श्रीवत्सवक्ष्मा: श्रीवासः कौस्तुभेन विभूषितः ॥ १०६

आरुह्य गरुडं श्रीमानञ्जनाचलसंनिभः ।
मेरुशृङ्गमिद्वारुदः कालमेघस्तडिह्युतिः ॥ १०७

राजतेनातपत्रेण मुक्तादामविलम्बिना ।
विराज्ञमानो देवेशश्वामरव्यजनादिभिः ॥ १०८

तं दृष्ट्वा देवदेवेशं पुण्डरीकः कृताञ्जलिः ।
यपात शिरसा भूमौ साष्वसावनतो द्विजः ॥ १०९

पिबन्निव हृषीकेशां नयनाभ्यां समाकुलः ।
जगाम महतीं तुमि पुण्डरीकस्तदानघः ॥ ११०

तमेवालोकयन् वीरक्षिरप्रार्थितदर्शनः ।
ततस्तमाह भगवान् पद्मनाभस्त्रिविक्रमः ॥ १११

प्रीतोऽस्मि वत्स भद्रं ते पुण्डरीक महामते ।
वरं वृणीष्व दास्यामि यत्ते मनसि वर्तते ॥ ११२

सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु चचन् देवदेवेन भाषितम् ।
इदं विज्ञापयामास पुण्डरीको महामतिः ॥ ११३

सिंह, व्याघ्र तथा दूसरे-दूसरे हिंसक जीव आपसके स्वाभाविक वैर-विरोधको त्याग एक साथ मिलकर रहते थे। द्विजवर भरद्वाजजी! उनके समीप उन हिंसक जन्माओंकी इन्द्रियवृत्तियाँ अत्यन्त शान्त रहती थीं ॥ १७—१०४ ॥

तत्पश्चात् एक दिन चुदिमान् पुण्डरीकजीके समक्ष जगदीश्वर भगवान् नारायण प्रकट हुए। उनके नेत्र कमल-दलके समान विशाल थे। उनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा सुशोभित थीं। उन्होंने पीताम्बर धारण कर रखा था। दिव्य पुर्णोंकी माला उनकी शोभा बढ़ा रही थी। उनके वक्षः स्थलमें श्रीवत्स-चिह्न और लक्ष्मीका निवास था। वे कौस्तुभमणिसे विभूषित थे। कञ्जलगिरिके समान श्यामवर्ण एवं पीताम्बरधारी भगवान् विष्णु सुनहली कानितवाले गरुडपर आरूढ़ हो इस प्रकार सुशोभित होते थे, मानो मेरुगिरिके शिखरपर विजलीकी कानितसे युक्त श्याममेघ शोभा पा रहा हो। भगवान्के ऊपर रजतमय क्षेत्र छत्र तना था, जिसमें मौतियोंकी झालीं लगी थीं। उस समय उस छत्रसे तथा चैवर-च्यवन आदिसे उन देवेशरकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ १०५—१०८ ॥

उन देवदेवेश्वर भगवान् नारायणका प्रत्यक्ष दर्शन पाकर पुण्डरीकने दोनों हाथ जोड़ लिये। आदरमिश्वित भवसे उनका मस्तक झुक गया। उन्होंने धरतीपर माथा टेक दिया—साष्टाङ्ग प्रणाम किया। वे बिछुल होकर उन भगवान् हृषीकेशकी ओर औंखें फाढ़-फाढ़कर इस प्रकार देखने लगे, मानो उन्हें पी जायेंगे। जिनके दर्शनके लिये वे चिरकालसे प्रार्थना कर रहे थे, उन भगवान्को आज सामने पाकर उन्हींकी ओर निर्निमेष नयनोंसे देखते हुए पापरहित धीरचित्त पुण्डरीकजीको आज बड़ी ही तृप्ति हुई। तब तीन पर्णोंसे त्रिलोकीको नाप लेनेवाले भगवन् पद्मनाभने पुण्डरीकसे कहा— ॥ १०९—१११ ॥

'वत्स पुण्डरीक! तुम्हारा कल्याण हो। महामते! मैं तुमपर अहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा हो, उसीको वरके रूपमें मौग लो; उसे मैं अवश्य दूँगा' ॥ ११२ ॥

सूतजी कहते हैं—देवदेव नारायणके कहे हुए इस चचनको सुनकर महामति पुण्डरीकने उनसे यों निवेदन किया ॥ ११३ ॥

पुण्डरीक उवाच

क्वाहपत्यन्तदुर्दिदः क्व चात्महितवीक्षणम् ।
यद्दितं मम देवेश तदाज्ञापय माधव ॥ ११४
एवमुक्तोऽथ भगवान् सुप्रीतः पुनरब्दवीत् ।
पुण्डरीकं महाभागं कृताञ्जलिमुपस्थितम् ॥ ११५

श्रीभगवानुवाच

आगच्छ कुशलं तेऽस्तु मयैव सह सुन्नत ।
मद्रूपधारी नित्यात्मा ममैव पार्षदो भव ॥ ११६

सूत उवाच

एवमुक्तवति प्रीत्या श्रीधरे भक्तवत्सले ।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्टवृष्टिः पपात च ॥ ११७
देवाः सेन्द्रास्तथा सिद्धाः साधु साधित्यथाबुवन् ।
जगुश्च सिद्धगन्धर्वाः किंनराश्च विशेषतः ॥ ११८
अथैनं समुपादाय वासुदेवो जगत्पतिः ।
जगाम गरुडारूढः सर्वदेवनमस्कृतः ॥ ११९
तस्मात्त्वमपि विप्रेन्द्र विष्णुभक्तिसमन्वितः ।
तच्चित्तस्तद्रूपप्राणस्तद्वक्तानां हिते रतः ॥ १२०
अर्चयित्वा यथायोगं भजस्व पुरुषोत्तमम् ।
शृणुष्व तत्कथा: पुण्याः सर्वपापप्रणाशिनीः ॥ १२१
येनोपायेन विप्रेन्द्र विष्णुः सर्वेश्वरेश्वरः ।
प्रीतो भवति विश्वात्मा तत्कुरुष्व सुविस्तरम् ॥ १२२
अश्वमेधसहस्रेण वाजपेयशतैरपि ।
नानुवन्ति गतिं पुण्यां नारायणपराङ्मुखाः ॥ १२३
अजरमपरमेकं श्वेयमाद्यन्तशून्यं
संगुणविगुणमाद्यं स्थूलमत्यन्तसूक्ष्मम् ।
निरुपमपुपमेयं योगिनां ज्ञानगम्यं
त्रिभुवनगुरुमीशं त्वा प्रपञ्चोऽस्मि विष्णो ॥ १२४

इति श्रीनरसिंहपुराणे पुण्डरीकनारदसंवादे वतुः पश्चित्पात्राद्यायः ॥ ६४ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'पुण्डरीक-नारद-संवाद' विषयक चौसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६४ ॥

पुण्डरीक बोले— देवेश! कहाँ मुझ-जैसा अत्यन्त दुर्दिदि पुरुष और कहाँ अपने वास्तविक हितको देखनेका कार्य? अतः माधव! मेरे लिये जो हितकर हो, उसके लिये आप ही कृपापूर्वक आज्ञा करें ॥ ११४ ॥

उनके यों कहनेपर भगवान् बहुत ही प्रसन्न हुए और अपने सामने हाथ जोड़े खड़े हुए महाभाग पुण्डरीकसे बोले ॥ ११५ ॥

श्रीभगवान् ने कहा— सुन्नत! तुम्हारा कर्त्याण हो; तुम मेरे साथ ही आ जाओ और मेरे ही समान रूप धारणकर मेरे नित्य-पार्षद हो जाओ ॥ ११६ ॥

सूतजी कहते हैं— भक्तवत्सल भगवान् श्रीधरके प्रेमपूर्वक यों कहनेपर देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और वहाँ आकाशसे फूलोंकी बर्षा होने लगी। उस समय इन्द्र आदि सभी देवता और सिद्धगण 'यह बहुत अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ'—इस प्रकार कहकर साधुवाद देने लगे। सिद्ध, गन्धर्व और किंनराज विशेषरूपसे यशोगान करने लगे। इधर सर्वदेववन्दित जगदीश्वर भगवान् वासुदेव पुण्डरीकको साथ ले, गरुडपर आरूढ़ हो, वैकुण्ठधामको चले गये। इसलिये विप्रवर भरद्वाज! आप भी विष्णुभक्तिसे युक्त हो, अपने मन और प्राणोंको भगवान् में ही लगाकर उनके भक्तोंके हित-साधनमें तत्पर रहिये और यथाशक्ति भगवान् का पूजन करते हुए उन पुरुषोत्तमका भजन कीजिये। समस्त पापोंको नष्ट करनेवाली भगवान् की कथाएँ सदा सुनते रहिये। विप्रवर! अधिक क्या कहें, सर्वेश्वरेश्वर विश्वात्मा भगवान् विष्णु जिस उपायसे प्रसन्न हों, उसीको आप विस्तारपूर्वक करें। भगवान् नारायणसे विमुख हुए पुरुष हजारों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय करनेसे भी पावन गतिको नहीं प्राप्त कर सकते ॥ ११७—१२३ ॥

(भगवान् से इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये) 'भगवान् विष्णो! आप अजर, अमर, अद्वितीय, सबके ध्यान करनेयोग्य, आदि-अन्तसे रहित, संगुण-निर्गुण, स्थूल-सूक्ष्म और अनुपम होकर भी उपमेय हैं। योगियोंको ज्ञानके द्वारा आपके स्वरूपका अनुभव होता है तथा आप इस त्रिभुवनके गुरु और परमेश्वर हैं; अतः मैं आपकी शरणमें आया हूँ' ॥ १२४ ॥

पैंसठवाँ अध्याय

भगवत्सम्बन्धी तीर्थ और उन तीर्थोंसे सम्बन्ध रखनेवाले भगवान्‌के नाम

भरद्वाज उवाच

त्वत्तो हि श्रोतुमिच्छामि गुह्यक्षेत्राणि वै हरेः ।
नामानि च सुगुह्यानि वद पापहराणि च ॥ १

सूत उवाच

मन्दरस्थं हरि देवं ब्रह्मा पृच्छति केशवम् ।
भगवन्तं देवदेवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ २

ब्रह्मोवाच

केषु केषु च क्षेत्रेषु द्रष्टव्योऽसि मया हरे ।
भक्तैरन्यैः सुरश्रेष्ठ मुक्तिकार्मविशेषतः ॥ ३

यानि ते गुह्यनामानि क्षेत्राणि च जगत्पते ।
तान्यहं श्रोतुमिच्छामि त्वतः पद्यायतेक्षण ॥ ४

किं जपन् सुगतिं याति नरो नित्यमतन्द्रितः ।
त्वद्वक्तानां हितार्थाय तन्मे वद सुरेश्वर ॥ ५

श्रीभगवानुवाच

शृणुष्वावहितो ब्रह्मन् गुह्यनामानि मेऽधुना ।
क्षेत्राणि चैव गुह्यानि तत्र चक्ष्यामि तत्त्वतः ॥ ६

कोकामुखे तु बाराहं मन्दरे मधुसूदनम् ।
अनन्तं कपिलद्वीपे प्रभासे रविनन्दनम् ॥ ७

माल्योदयाने वैकुण्ठं महेन्द्रे तु नृपात्मजम् ।
ऋषभे तु महाविष्णुं द्वारकायां तु भूपतिम् ॥ ८

पाण्डुसहे तु देवेशं वसुरूहे जगत्पतिम् ।
बल्लीवटे महायोगं चित्रकूटे नराधिपम् ॥ ९

भरद्वाजजी बोले—सूतजी ! अब मैं आपसे भगवान् विष्णुके गुप्त तीर्थोंका और उन तीर्थोंसे सम्बन्ध रखनेवाले भगवान्‌के गुप्त नामोंका वर्णन सुनना चाहता हूँ; कृपया आप उन पापनाशक नामोंका मेरे समक्ष वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

सूतजी बोले—एक समय मन्दराचलपर विष्णुमान शंख-चक्र-गदाधारी देवदेव भगवान् विष्णुसे श्रीब्रह्माजीने पूछा ॥ २ ॥

ब्रह्माजी बोले—सुरेश्वर ! हरे ! मुझे तथा मुक्ति चाहनेवाले अन्यान्य भक्तोंको किन-किन क्षेत्रोंमें जाकर आपका विशेषरूपसे दर्शन करना चाहिये । जगत्पते ! कमललौचन ! आपके जो-जो गुप्त तीर्थ और नाम हैं, उन्हें मैं आपके ही मुखसे सुनना चाहता हूँ । सुरेश्वर ! मनुष्य आत्मस्य त्यागकर प्रतिदिन किसका जप करनेसे सहातिको प्राप्त हो सकता है ? अपने भक्तोंका हित-साधन करनेके लिये यह बात आप हमें बताइये ॥ ३—५ ॥

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्मन् ! तुम सावधान होकर सुनो ; मेरे जो गुप्त नाम और क्षेत्र हैं, उन्हें मैं ठीक-ठीक बता रहा हूँ ॥ ६ ॥

कोकामुख-क्षेत्रमें मेरे बाराहस्वरूपका, मन्दराचलपर मधुसूदनका, कपिलद्वीपमें अनन्तका, प्रभासक्षेत्रमें सूर्यनन्दनका, माल्योदयानतीर्थमें भगवान् वैकुण्ठका, महेन्द्रपर्वतपर राजकुमारका, ऋषभतीर्थमें महाविष्णुका, द्वारकामें भूपाल श्रीकृष्णका, पाण्डुसहा पर्वतपर देवेशका, वसुरूढतीर्थमें जगत्पतिका, बल्लीवटमें महायोगका, चित्रकूटमें राजा

निमिषे पीतवासं च गवां निष्कमणे हरिम्।
शालग्रामे तपोवासमचिन्त्यं गन्धमादने ॥ १०
कुञ्जागारे हृषीकेशं गन्धद्वारे पयोधरम्।
गरुडध्वजं तु सकले गोविन्दं नाम सायके ॥ ११
बृन्दावने तु गोपालं मथुरायां स्वयम्भुवम्।
केदारे माधवं विद्याद्वाराणस्यां तु केशवम् ॥ १२
पुष्करे पुष्कराक्षं तु धृष्टद्वाम्ने जयध्वजम्।
तृणविन्दुवने वीरमशोकं सिन्धुसागरे ॥ १३
कसेरटे महावाहुममृतं तैजसे वने।
विश्वासयूपे विश्वेशं नरसिंहं महावने ॥ १४
हलाङ्गरे रिपुहरं देवशालां त्रिविक्रमम्।
पुरुषोत्तमं दशपुरे कुञ्जके वामनं विदुः ॥ १५
विद्याधरं वितस्तायां वाराहे धरणीधरम्।
देवदारुवने गुह्यं कावेर्या नागशायिनम् ॥ १६
प्रयागे योगमूर्ति च पयोष्ययां च सुदर्शनम्।
कुमारतीर्थे कौमारं लोहिते हयशीर्थकम् ॥ १७
उज्जयिन्यां त्रिविक्रमं लिङ्गकूटे चतुर्भुजम्।
हरिहरं तु भद्रायां दृष्टा पापात् प्रमुच्यते ॥ १८
विश्वरूपं कुरुक्षेत्रे परिकुण्डे हलायुधम्।
लोकनाथयोध्यायां कुण्डने श्वरम् ॥ १९
भाण्डारे वासुदेवं तु चक्रतीर्थे सुदर्शनम्।
आळ्ये विष्णुपदं विद्याच्छूकरे शूकरं विदुः ॥ २०
ब्रह्मेशं मानसे तीर्थे दण्डके श्यामलं विदुः।
त्रिकूटे नागमोक्षं च मेरुपृष्ठे च भास्करम् ॥ २१
विरजं पुष्पभद्रायां बालं केरलके विदुः।
यशस्करं विपाशायां माहिष्मत्यां हुताशनम् ॥ २२
क्षीराञ्ची पद्मनाभं तु विमले तु सनातनम्।
शिवनद्यां शिवकरं गयायां च गदाधरम् ॥ २३

रामका, नैमित्तिकारण्यमें पीताम्बरका, गौओंके विचरनेके स्थान द्वंजमें हरिका, शालग्रामतीर्थमें तपोवासका, गन्धमादन पर्वतपर अचिन्त्य परमेश्वरका, कुञ्जागारमें हृषीकेशका, गन्धद्वारमें पयोधरका, सकलतीर्थमें गरुडध्वजका, सायकमें गोविन्दका, बृन्दावनमें गोपालका, मथुरामें स्वयम्भू भगवान्‌का, केदारतीर्थमें माधवका, वाराणसी (काशी)-में केशवका, पुष्करतीर्थमें पुष्कराक्षका, धृष्टद्वाम्न-क्षेत्रमें जयध्वजका, तृणविन्दु घनमें खीरका, सिन्धुसागरमें अशोकका, कसेरटमें महावाहुका, तैजस घनमें भगवान् अमृतका, विश्वासयूप (या विशाखयूप)-क्षेत्रमें विश्वेशका, महावनमें नरसिंहका, हलाङ्गरमें रिपुहरका, देवशालामें भगवान् त्रिविक्रमका, दशपुरमें पुरुषोत्तमका, कुञ्जकतीर्थमें वामनका, वितस्तामें विद्याधरका, वाराह-तीर्थमें धरणीधरका, देवदारुवनमें गुहाका, कावेरीतटपर नागशायीका, प्रयागमें योगमूर्तिका, पयोष्णीतटपर सुदर्शनका, कुमारतीर्थमें कौमारका, लोहितमें हयग्रीवका, उज्जयिनीमें त्रिविक्रमका, लिङ्गकूटपर चतुर्भुजका और भद्राके तटपर भगवान् हरिहरका दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ७—१८ ॥

इसी प्रकार कुरुक्षेत्रमें विश्वरूपका, मणिकुण्डमें हलायुधका, अयोध्यामें लोकनाथका, कुण्डनपुरमें कुण्डनेश्वरका, भाण्डारमें वासुदेवका, चक्रतीर्थमें सुदर्शनका, आळ्यतीर्थमें विष्णुपदका, शूकरक्षेत्रमें भगवान् शूकरका, मानसतीर्थमें ब्रह्मेशका, दण्डकतीर्थमें श्यामलका, त्रिकूटपर्वतपर नागमोक्षका, मेरुके शिखरपर भास्करका, पुष्पभद्राके तटपर विरजका, केरलतीर्थमें बालरूप भगवान्‌का, विपाशाके तटपर भगवान् यशस्करका, माहिष्मतीपुरीमें हुताशनका, क्षीरसागरमें भगवान् पद्मनाभका, विमलतीर्थमें सनातनका, शिवनदीके तटपर भगवान् शिवका, गयामें गदाधरका

सर्वत्र परमात्मानं यः पश्यति स मुच्यते।
आष्टष्टिश्च नामानि कथितानि मया तव ॥ २४

क्षेत्राणि चैव गुह्यानि कथितानि विशेषतः।
एतानि यम नामानि रहस्यानि प्रजापते ॥ २५

यः पठेत् प्रातरुत्थाय शृणुयाद्वापि नित्यशः।
गवां शतसहस्रस्य दत्तस्य फलमाप्नुयात् ॥ २६
दिने दिने शुचिभूत्वा नामान्येतानि यः पठेत्।
दुःख्यनं न भवेत् तस्य मत्प्रसादात्र संशयः ॥ २७

आष्टष्टिस्तु नामानि त्रिकालं यः पठेत्तरः।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो मम लोके स मोदते ॥ २८

द्रष्टव्यानि यथाशक्त्या क्षेत्राप्येतानि मानवैः।
वैष्णवैस्तु विशेषेण तेषां मुक्तिं ददाम्यहम् ॥ २९

सूत उक्तव्य

हरि समध्यर्थं तदग्रसंस्थितो
हरि स्मरन् विष्णुदिने विशेषतः।
इमं स्तवं यः पठते स मानवः
प्राप्नोति विष्णोरमृतात्मकं पदम् ॥ ३०

इति श्रीनरसिंहपुराणे आदि धर्मार्थमोक्षदायिनि विष्णुवत्त्वभौत्यायः ॥ ६५ ॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'आदि धर्मार्थमोक्षदायक विष्णुवत्त्वभूतोत्र' विषयक वैसठर्वा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६५ ॥

छाल्ठठवाँ अध्याय

अन्यान्य तीर्थो तथा सह्याद्रि और आमलक ग्रामके तीर्थोंका माहात्म्य

सूत उक्तव्य

उक्तः पुण्यः स्तवो श्राव्यन् हरेरेभिश्च नामभिः।
पुनरन्वानि नामानि यानि तानि निवोध मे ॥ १

गङ्गा तु प्रथमं पुण्या यमुना गोमती पुनः।
सरयूः सरस्वती च चन्द्रभागा चर्मण्वती ॥ २
कुरुक्षेत्रं गया चैव पुष्कराणि तथार्द्वदम्।
नर्मदा च महापुण्या तीर्थान्येतानि चोत्तरे ॥ ३

और सर्वत्र ही परमात्माका जो दर्शन करता है, वह मुक्त हो जाता है ॥ १९—२३ ॥

ब्रह्माजी ! ये अड़सठ नाम हमने तुम्हें बताये तथा विशेषतः गुप्त तीर्थोंका भी वर्णन किया । प्रजापते ! जो पुरुष प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर मेरे इन गुह्यनामोंका पाठ या ऋषण करेगा, वह नित्य एक लाख गोदानका फल पायेगा । नित्यप्रति पवित्र होकर जो इन नामोंका पाठ करता है, उसको मेरी कृपासे कभी दुःखजनका दर्शन नहीं होता, इसमें संदेह नहीं है । जो पुरुष इन अड़सठ नामोंका प्रतिदिन तीनों काल, अर्थात् प्रातः, मध्याह्न और सायंकालमें पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर मेरे लोकमें आनन्द भोगता है । सभी मनुष्यों और विशेषतः वैष्णवोंको चाहिये कि यथाशक्ति पूर्वोक्त तीर्थोंका दर्शन करें । जो लोग ऐसा करते हैं, उन्हें मैं मुक्ति देता हूँ ॥ २४—२९ ॥

सूतजी कहते हैं—जो पुरुष सदा और विशेषतः हरिवासर (एकादशी या द्वादशीको) भगवान् विष्णुकी पूजा करके उनके सामने खड़ा हो भगवत्स्मरणपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह विष्णुके अमृतपदको प्राप्त कर सकता है ॥ ३० ॥

सूतजी कहते हैं—भगवान् विष्णु पुनः बोले—
ब्रह्मान् । उपर्युक्त अड़सठ नामोंसे भगवान् विष्णुकी पावन स्तुतिका वर्णन किया गया । अब जो दूसरे-दूसरे पावन तीर्थ और नाम हैं, उनका वर्णन मुझसे सुनिये ॥ १ ॥

सर्वप्रथम गङ्गा पवित्र है; फिर यमुना, गोमती, सरयू, सरस्वती, चन्द्रभागा और चर्मण्वती—ये नदियाँ पावन हैं। इसी प्रकार कुरुक्षेत्र, गया, तीनों पुष्कर और अर्द्धद्वे-क्षेत्र तथा परम पावन नर्मदा नदी—ये उत्तरमें परम पावन तीर्थ हैं।

तापी पयोष्णी पुण्ये द्वे तत्सङ्गात्तीर्थमुत्तमम् ।
तथा ब्रह्मगिरेश्वापि मेखलाभिः समन्विताः ॥ ४

विरजं च तथा तीर्थं सर्वपापक्षयंकरम् ।
गोदावरी महापुण्या सर्वत्र चतुरानन् ॥ ५

तुङ्गभद्रा महापुण्या यत्राहं कमलोद्धव ।
हरेण सार्थं प्रीत्या तु वसामि मुनिपूजितः ॥ ६

दक्षिणगङ्गा कृष्णा तु कावेरी च विशेषतः ।
सह्यो त्वामलकग्रामे स्थितोऽहं कमलोद्धव ॥ ७

देवदेवस्य नाशा तु त्वया ब्रह्मन् सदार्थितः ।
तत्र तीर्थान्यनेकानि सर्वपापहराणि वै ॥
येषु स्नात्वा च पीत्वा च पापान्मुच्यति मानवः ॥ ८

सूत उक्ताच

इत्येवं कथयित्वा तु तीर्थानि मधुसूदनः ।
ब्रह्मणे गतवान् ब्रह्मन् ब्रह्मापि स्वपुरं गतः ॥ ९

भरद्वाज उक्ताच

तस्मिन्नामलकग्रामे पुण्यतीर्थानि यानि वै ।
तानि मे बद धर्मज्ञ विस्तरेण यथार्थतः ॥ १०

क्षेत्रोत्पत्तिं च माहात्म्यं यात्रापर्वं च यत्र तत् ।
तत्रासौ देवदेवेशः पूज्यते ब्रह्मणा स्वयम् ॥ ११

सूत उक्ताच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि पुण्यं पापप्रणाशनम् ।
सह्यामलकतीर्थस्य उत्पत्त्यादि महामुने ॥ १२

पुरा सह्यवनोद्देशे तरुरामलको महान् ।
आसीद्ब्रह्मन् महोग्रोऽयं नामायं चोच्यते बुधैः ॥ १३

फलानि तस्य वृक्षस्य महान्ति सुरसानि च ।
दर्शनीयानि दिव्यानि दुर्लभानि महामुने ॥ १४

तापी, पयोष्णी—ये दो पावन नदियाँ हैं। इनके संगमसे एक बहुत उत्तम तीर्थ हो गया है तथा ब्रह्मगिरिकी मेखलाओंसे मिले हुए भी बहुत-से उत्तम तीर्थ हैं। विरज-तीर्थ भी समस्त पापोंको क्षीण करनेवाला है तथा चतुरानन ! गोदावरी नदी सर्वत्र परमपावन है। कमलोद्धव ! तुङ्गभद्रा नदी भी अत्यन्त पवित्र करनेवाली है, जिसके तटपर मैं मुनियोंद्वारा पूजित हो भगवान् शङ्करके साथ स्वयं निवास करता हूँ। दक्षिण गङ्गा, कृष्णा और विशेषतः कावेरी—ये पुण्य नदियाँ हैं। इनके अतिरिक्त, कमलोद्धव ! मैं सह्यपर्वतपर आमलक ग्राममें स्वयं निवास करता हूँ। वहाँ 'देवदेव' नामसे प्रसिद्ध मेरे श्रीविग्रहका तुम स्वयं ही सदा पूजन करते हो। वहाँ समस्त पापोंको हर लेनेवाले अनेक तीर्थ हैं, जिनमें स्नान और आचमन करके मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है ॥ २—८ ॥

सूतजी कहते हैं—भरद्वाज। ब्रह्माओंसे इन तीर्थोंका वर्णन करके भगवान् मधुसूदन अपने धामको चले गये और ब्रह्मा भी ब्रह्मलोक सिधारे ॥ ९ ॥

भरद्वाजजी बोले—धर्मज्ञ ! उस आमलक ग्राममें जो-जो पुण्यतीर्थ हैं, उनका आप विस्तारके साथ यथार्थ-रूपमें वर्णन करें। जहाँ देवदेवेशर भगवान् विष्णु स्वयं ब्रह्माजीके द्वारा पूजित होते हैं, उस क्षेत्रकी उत्पत्ति-कथा, माहात्म्य और यात्रापर्वका विस्तृत विवरण प्रस्तुत कीजिये ॥ १०—११ ॥

सूतजी कहते हैं—विप्र ! महामुने ! सह्यपर्वतपर स्थित 'आमलक' तीर्थकि आविर्भाव आदिकी पवित्र एवं पापनाशक कथा मैं आपसे कह रहा हूँ सुनें ॥ १२ ॥

ब्रह्मन् ! पूर्वकालमें सह्यपर्वतके बनमें एक बहुत बड़ा आँखलेका वृक्ष था। उसे बुद्धिमान् लोगोंने 'महोग्र' नाम दे रखा था। महामुने ! उस वृक्षके फल बड़े रसीले, दर्शनीय, दिव्य एवं दुर्लभ होते थे।

परेषां ब्राह्मणानां तु परेण ब्रह्मणा पुरा।
स दृष्टस्तु महावृक्षो महाफलसमन्वितः ॥ १५

किमेतदिति विप्रेन्द्र ध्यानदृष्टिपरोऽभवत्।
ध्यानेन दृष्टवांस्तत्र पुनरामलकं तरुम् ॥ १६

तस्योपरि तु देवेशं शङ्खचक्रगदाधरम्।
उत्थाय च पुनः पश्येत्प्रतिमामेव केवलाम् ॥ १७

तत्पादं भूतले देवः प्रविवेश महातरुः।
ततस्त्वाराधयामास देवदेवेशमव्ययम् ॥ १८

गन्धपुष्पादिभिर्नित्यं ब्रह्मा लोकपितामहः।
द्वादशभिः सप्तभिस्तु संख्याभिः पूजितो हरिः ॥ १९

तस्मिन् क्षेत्रे मुनिश्चेष्ट माहात्म्यं तस्य को वदेत्।
श्रीसह्यामलकग्रामे देवदेवेशमव्ययम् ॥ २०

आराध्य तीर्थे सम्प्राप्ता द्वादशा प्रति चतुर्मुखम्।
तस्य पादतले तीर्थं निस्सृतं पक्षिमामुखम् ॥ २१

तच्चक्रतीर्थमभवत्पुण्यं पापप्रणाशनम्।
चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २२

बहुवर्षसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते।
शङ्खतीर्थे नरः स्नात्वा वाजपेयफलं लभेत् ॥ २३

पौषे मासे तु पुष्याके तद्यात्रादिवसं मुने।
ब्रह्मणः कुण्डिका पूर्वं गङ्गातोयप्रपूरिता ॥ २४

तस्याद्री पतिता ब्रह्मस्तत्र तीर्थेऽशुभं हरेत्।
नामा तत्कुण्डिकातीर्थं शिलागृहसमन्वितम् ॥ २५

तत्तीर्थं मनुजः स्नात्वा तदानीं सिद्धिमान्यात्।
त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा यस्तत्र स्नाति मानवः ॥ २६

सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते।
कुण्डिकातीर्थादुत्तरे पिण्डस्थानाच्च दक्षिणे ॥ २७

समस्त उत्तम ब्राह्मणोंमें उत्कृष्ट श्रीब्रह्माजीने पूर्वकालमें
महान् फलोंसे मुक्त उस महावृक्षको देखा था। विप्रेन्द्र!
उसे देखकर, यह कथा है—यह जाननेके लिये ब्रह्माजी
ध्यानमग्न हो गये। उन्होंने ध्यानमें उस स्थानपर महान्
आँखलेके वृक्षको देखा और उसके कूपर शङ्ख, चक्र
एवं गदा धारण करनेवाले देवेशर भगवान् विष्णुको
विराजमान देखा। फिर उन्होंने जब ध्यानसे निवृत्त हो
खड़े होकर दृष्टिपात किया, तब वहाँ वृक्षके स्थानमें
केवल भगवान् विष्णुकी एक प्रतिमा दिखायी दी।
उसका आधारभूत यह दिव्य महावृक्ष भूतलमें धैर्य
गया। तब लोकपितामह भगवान् ब्रह्माजी गन्ध-पुष्प
आदिसे नित्य ही उन अविनाशी देवदेवेशरकी आराधना
करने लगे। उस समय उनके द्वारा बारह और सात बार
भगवान्को पूजा सम्पन्न हुई ॥ १३—१९ ॥

मुनिश्चेष्ट! उस आमलकक्षेत्रमें विराजमान भगवान्के
माहात्म्यका कौन धर्णन कर सकता है। श्रीसह्यपर्वतस्थ
आमलक ग्राममें इस प्रकार अविनाशी देवेशर भगवान्की
आराधना करनेके पश्चात् ब्रह्माजीको वहाँ बारह तीर्थं
और प्राप्त हुए। भगवान्के चरणके नीचे पक्षिमाभिमुख
एक तीर्थ प्रकट हुआ। यह 'चक्रतीर्थ' के नामसे विख्यात
हुआ। वह पावन तीर्थ पापोंको नष्ट करनेवाला है।
मनुष्य चक्रतीर्थमें स्नान करके सब पापोंसे मुक्त हो
जाता है और हजारों वर्षीयक ब्रह्मलोकमें पूजित होता
है। इसके बाद 'शङ्खतीर्थ' है। उसमें स्नान करनेसे
मनुष्यको वाजपेय यज्ञका फल मिलता है। मुने! पौष
मासमें जब सूर्य पुष्प नक्षत्रपर स्थित हों, उसी समय
वहाँकी यात्रा का पर्य है। पूर्वकालमें एक समय सह्यपर्वतपर
गङ्गाजलसे भरा हुआ ब्रह्माजीका कमण्डल, गिर पड़ा
था, तबसे वह स्थान 'कुण्डिका' तीर्थके नामसे विख्यात
हुआ। वह तीर्थ सारे अशुभोंको हर लेता है। वहाँ एक
शिलामय गृह भी है। उस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य
तत्काल सिद्धि प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य उस तीर्थमें
तीन राततक उपवास करके स्नान करता है, वह सब
पापोंसे सर्वधा मुक्त हो ब्रह्मलोकमें पूजित होता है।
कुण्डिका-तीर्थसे उत्तर और 'पिण्डस्थान' नामक तीर्थसे

ऋणमोचनतीर्थ हि तीर्थानां गुह्यमुत्तमम्।
त्रिरात्रमुषितो यस्तु तत्र स्नानं समाचरेत्॥ २८

ऋणस्त्रभिरसौ ब्रह्मन् मुच्यते नात्र संशयः।
श्राद्धं कृत्वा पितृभ्यश्च पिण्डस्थानेषु यो नरः॥ २९

पितृनुदिश्य विधिवत्यणडविर्बापयिष्यति।
सुतुमाः पितरो यान्ति पितृलोकं न संशयः॥ ३०

पञ्चरात्रोषितस्नायी तीर्थे वै पापमोचने।
सर्वपापक्षयं प्राप्य विष्णुलोके स मोदते॥ ३१

तत्रैव महतीं धारां शिरसा यस्तु धारयेत्।
सर्वक्रतुफलं प्राप्य नाकपृष्ठे महीयते॥ ३२

धनुःपाते महातीर्थे भक्त्या यः स्नानमाचरेत्।
आयुर्भौगफलं प्राप्य स्वर्गलोके महीयते॥ ३३

शरविन्दी नरः स्नात्वा शतक्रतुपुरं ब्रजेत्।
वाराहतीर्थे विप्रेन्द्र सहो यः स्नानमाचरेत्॥ ३४

अहोरात्रोषितो भूत्वा विष्णुलोके महीयते।
आकाशगङ्गानाम्ना च सहाये तीर्थमुत्तमम्॥ ३५

शिलातलात्ततो ब्रह्मनिर्गता श्वेतमुत्तिका।
तस्यां भक्त्या तु यः स्नाति नरो द्विजवरोत्तम॥ ३६

सर्वक्रतुफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते।
ब्रह्मप्रमलसहाद्रेयद्यन्तोयविनिर्गमः॥ ३७

तत्र तीर्थं विजानीहि स्नात्वा पापात्प्रमुच्यते।
सहाद्रिं गतवान्नित्यं स्नात्वा पापात्प्रमुच्यते॥ ३८

एतेषु तीर्थेषु नरो द्विजेन्द्र
पुण्येषु सहाद्रिसमुद्घवेषु।
दत्त्वा सुपुण्याणि हरि स भक्त्या
विहाय पापं प्रविशेत्स विष्णुम्॥ ३९

दक्षिण 'ऋणमोचन' नामक तीर्थ है, जो सब तीर्थोंमें उत्तम और गुह्य है। ब्रह्मन्! वहाँ तीन राततक निवास करके जो स्नान करता है, वह निस्तंदेह तीनों ऋणोंसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य पिण्डस्थानमें श्राद्ध करके वहाँ पितरोंके उद्देश्यसे विधिपूर्वक पिण्डदान करेगा, उसके पितर पूर्ण तृप्त होकर अवश्य ही पितृलोकको प्राप्त होंगे ॥ २०—३० ॥

इसके बाद 'पाप-मोचन' तीर्थ है। उस तीर्थमें पाँच राततक निवास करते हुए जो नित्य स्नान करता है, वह अपने सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करके विष्णुलोकमें आनन्दका भागी होता है। वहाँ एक बहुत बड़ी धारा बहती है। उसके जलको जो अपने सिरपर धारण करता है, वह समस्त यज्ञोंके फलको प्राप्त करके स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है ॥ ३१—३२ ॥

इसके बाद 'धनुःपात' नामक एक महान् तीर्थ है। उसमें जो भक्तिपूर्वक स्नान करता है, वह पूर्ण आयुका भोग करके अन्तमें स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। 'शरविन्दु' तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य मृत्युके बाद इन्द्रपुरीमें जाता है तथा जो सहायपर्वतपर 'वाराहतीर्थ'में स्नान करता और वहाँ एक दिन-यत निवास करता है, वह विष्णुलोकमें पूजित होता है। इसके बाद सहायके शिखरपर 'आकाशगङ्गा' नामक एक उत्तम तीर्थ है। वहाँकी शिलाओंके नीचेसे सफेद मिट्टी निकलती है। विश्रवर! उसमें जो भक्तिपूर्वक स्नान करता है, वह सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्तकर विष्णुलोकमें पूजित होता है ॥ ३३—३६ ॥

ब्रह्मन्! उस निर्मल सहायगिरिसे जहाँ-जहाँ जलके झरने गिरते हैं, वहाँ-वहाँ सब जगह तीर्थं समझना चाहिये। उसमें स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो नित्य ही सहायपर्वतकी यात्रा करके वहाँ स्नान करता है, वह निष्पाप हो जाता है। द्विजेन्द्र! जो मनुष्य सहायपर्वतके इन पावन तीर्थोंमें स्नान करके भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुको पुण्य चढ़ाता है, वह पापोंसे रहित हो भगवान् विष्णुमें ही लीन हो जाता

सकृतीर्थाद्रितोयेषु गङ्गायां तु पुनः पुनः।
सर्वतीर्थमयी गङ्गा सर्वदेवमयो हरिः॥४०

सर्वशास्त्रमयी गीता सर्वधर्मो दयापरः।
एवं ते कथितं विष्र क्षेत्रमाहात्म्यमुत्तमम्॥४१

श्रीसह्यामलकग्रामे तीर्थे स्नात्वा फलानि च।
तीर्थानामपि यत्तीर्थं तत्तीर्थं द्विजसत्तम।
देवदेवस्य पादस्य तलाद्विवि विनिस्तुतम्॥४२

अम्भोद्युगं तुरगमेधसहस्रतुल्यं
तच्चक्रतीर्थमिति वेदविदो चदन्ति।
स्नानाच्च तत्र मनुजा न पुनर्भवन्ति
पादौ प्रणाम्य शिरसा मधुसूदनस्य॥४३

गङ्गाप्रयागगमनैमिषपुष्कराणि
पुण्याद्युतानि कुरुजाङ्गलयामुनानि।
कालेन तीर्थसलिलानि पुननिति पापात्
पादोदकं भगवतस्तु पुनाति सद्याः॥४४

इति श्रीनरसिंहपुराणे तीर्थप्रकाशानां वट्प्रतितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'तीर्थप्रकाश' विषयक छात्रवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६६ ॥

है। अन्य सभी तीर्थोंके पर्वतोंसे बहनेवाले जलमें यथासम्पव एक बार स्नान कर लेना चाहिये, परंतु गङ्गामें बार-बार स्नान करें; क्योंकि गङ्गामें सम्पूर्ण तीर्थ हैं, भगवान् विष्णुमें सभी देवता वर्तमान हैं, गीता सर्वशास्त्रमयी है और सभी धर्मोंमें जीवदया श्रेष्ठ है॥ ३७—४० ॥

विष्र! इस प्रकार मैंने आपसे इस क्षेत्रके उत्तम माहात्म्यका वर्णन किया। साथ ही सह्य और आमलक ग्रामके तीर्थोंमें स्नान करनेके फल भी बताये। द्विजश्रेष्ठ! वही उत्तम तीर्थ है, जो तीर्थोंका भी तीर्थ हो। यह आमलकग्राम तीर्थ देवदेव भगवान् विष्णुके चरण-तलसे प्रकट हुआ है, अतः यह सर्वोत्तम तीर्थ है। यहाँपर जो जल है, उसमें स्नान करना हजार अश्वमेध यज्ञ करनेके बराबर है। उसीको वेदवेता पुरुष 'चक्रतीर्थ' कहते हैं। वहाँ स्नान करके भगवान् मधुसूदनके चरणोंमें मस्तक झुकानेसे मनुष्यका इस संसारमें पुनर्जन्म नहीं होता। गङ्गा, प्रयाग, नैमिथारण्य, पुष्कर, कुरुजाङ्गलप्रदेश और यमुना-तटवर्ती तीर्थ—ये सभी पुण्यतीर्थ हैं। इन तीर्थोंके जलमें स्नान करनेपर वे कुछ समयके बाद पवित्र करते हैं; किंतु भगवान् विष्णुका चरणोदकरूप यह 'चक्रतीर्थ' तत्काल पवित्र कर देता है॥ ४१—४४ ॥

सङ्क्षिप्तवाँ अध्याय

मानसतीर्थ, छत तथा नरसिंहपुराणका माहात्म्य

सूत उक्तव

तीर्थानि कथितान्येवं भीमानि द्विजसत्तम।
मानसानि हि तीर्थानि फलदानि विशेषतः॥ १

सूतजी कहते हैं—द्विजश्रेष्ठ! इस प्रकार अबतक मैंने भूतलके प्रसिद्ध तीर्थोंका वर्णन किया; किंतु इन तीर्थोंकी अपेक्षा मानसतीर्थ विशेष फल देनेवाले हैं।

मनोनिर्मलता तीर्थं रागादिभिरनाकुला ।
सत्यं तीर्थं दद्या तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ॥ २

गुरुशुश्रूषणं तीर्थं मातृशुश्रूषणं तथा ।
स्वर्धर्माचरणं तीर्थं तीर्थमग्रेरुपासनम् ॥ ३

एतानि पुण्यतीर्थानि व्रतानि शृणु मेऽधुना ।
एकभुक्तं तथा नक्तमुपवासं च चै मुने ॥ ४

पूर्णमास्याममावास्यामेकभुक्तं समाचरेत् ।
तत्रैकभुक्तं कुर्वाणः पुण्यां गतिमवाप्नुयात् ॥ ५

चतुर्थ्या तु चतुर्दश्यां सप्तम्यां नक्तमाचरेत् ।
अष्टम्यां तु ब्रयोदश्यां स प्राज्ञोत्यभिवाच्छितम् ॥ ६

उपवासो मुनिश्रेष्ठ एकादश्यां विधीयते ।
नरसिंहं समध्यचर्च्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ७

हस्तयुक्तेऽर्कदिवसे सौरनक्तं समाचरेत् ।
स्नात्वार्कमध्ये विष्णुं च व्यात्वा रोगात्प्रमुच्यते ॥ ८

आत्मनो द्विगुणां छायां यदा संतिष्ठुते रविः ।
सौरनक्तं विजानीयात्र नक्तं निशि भोजनम् ॥ ९

गुरुबारे ब्रयोदश्यामपराह्ने जले ततः ।
तर्पयित्वा पितॄन्देवानृषीशं तिलतन्दुलैः ॥ १०

नरसिंहं समध्यचर्च्यं यः करोत्युपवासकम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥ ११

यदागस्त्योदये प्राप्ते तदा सप्तसु रात्रिषु ।
अच्यु दद्यात् समध्यचर्च्यं अगस्त्याय महामुने ॥ १२

वास्तवमें राग-द्वेषादिसे रहित मनकी स्वच्छता ही उत्तम तीर्थ है। सत्य, दद्या, इन्द्रियनिग्रह, गुरुसेवा, माता-पिताकी सेवा, स्वर्धर्मपालन और अग्निकी उपासना—ये परम उत्तम तीर्थ हैं। यह तो पावन तीर्थोंका वर्णन हुआ, अब व्रतोंका वर्णन सुनिये ॥ १—३ ॥

मुने ! दिन-रातमें एक बार भोजन करके रहना और विशेषतः रातमें भोजन न करना—यह व्रत है। पूर्णिमा और अमावास्याको एक ही बार भोजन करके रहना चाहिये। इन तिथियोंमें एक बार भोजन करके रहनेवाला मनुष्य पावन गतिको प्राप्त करता है। जो चतुर्थी, चतुर्दशी, सप्तमी, अष्टमी और ब्रयोदशीको रातमें उपवास करता है, उसे मनोवाञ्छित वस्तुकी प्राप्ति होती है ॥ ४—६ ॥

मुनिश्रेष्ठ ! एकादशीको दिन-रात उपवास करनेका विधान है। उस दिन भगवान् विष्णुका पूजन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। यदि हस्त नक्तप्रसे युक्त रविवार हो तो उस दिन रात्रिमें उपवास करके सौरनक्त-व्रतका पालन करना चाहिये। उस दिन स्नानके पश्चात् सूर्यमण्डलमें भगवान् विष्णुका ध्यान करके मनुष्य रोगमुक्त हो जाता है। जब सूर्य अपनी दुगुनी छायामें स्थित हो, उस दिन सौर नक्तव्रतका समय है। उस समयसे लेकर रात्रक भोजन न करे ॥ ७—९ ॥

जो पुरुष यह स्पतिवारको ब्रयोदशी तिथि होनेपर अपराह्नकालमें जलमें स्नान करके तिल और तण्डुलोंटारा देवता, ऋषि एवं पितरोंका तर्पण करता है तथा भगवान् नरसिंहका पूजन करके उपवास करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है ॥ १०—११ ॥

महामुने ! जब अगस्त्य तारेका उदय हो, उस समयसे लगातार सात रात्रियोंतक अगस्त्य-मुनिको पूजा करके उन्हें अर्घ्य देना चाहिये।

शङ्खे तोयं विनिक्षिष्य सितपुष्पाक्षतैर्युतम्।
मन्त्रेणानेन वै दद्याच्छतपुष्पादिनार्चिते ॥ १३

काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव।
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते ॥ १४

आतापी भक्षितो येन वातापी च महासुरः।
समुद्रः शोषितो येन सोऽगस्त्यः प्रीयतां मम ॥ १५

एवं तु दद्याद्यो सर्वमगस्त्ये वै दिशं प्रति।
सर्वपापविनिर्मुक्तस्तमस्तरति दुस्तरम् ॥ १६

एवं ते कथितं सर्वं भरद्वाज महामुने।
पुराणं नारसिंहं च मुनीनां संनिधी मया ॥ १७

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव सर्वमेव प्रकीर्तितम् ॥ १८

ब्रह्मणैव पुरा प्रोक्तं मरीच्यादिषु वै मुने।
तेभ्यश्च भृगुणा प्रोक्तं मार्कण्डेयाय चै ततः ॥ १९

मार्कण्डेयेन वै प्रोक्तं राजो नागकुलस्य ह।
प्रसादान्नरसिंहस्य प्राप्तं व्यासेन धीमता ॥ २०

तत्प्रसादान्वया प्राप्तं सर्वपापप्रणाशनम्।
पुराणं नरसिंहस्य मया च कथितं तत्र ॥ २१

मुनीनां संनिधीं पुण्यं स्वस्ति तेऽस्तु द्वजाम्यहम्।
यः श्रुणोति शुचिर्भूत्वा पुराणं होतदुत्तमम् ॥ २२

मादे मासि प्रयागे तु स स्नानफलमान्यात्।
यो भक्त्या श्रावयेद्दक्षान्नित्यं नरहरेरिदम् ॥ २३

सर्वतीर्थफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते।
श्रुत्वैवं स्नातकैः सार्थं भरद्वाजो महापतिः ॥ २४

सूतमध्यर्च्यं तत्रैव स्थितवान् मुनयो गताः।

शङ्खमें शेष पुण्य और अक्षतसहित जल रखकर शेष पुण्य आदिसे पूजित हुए अगस्त्यजीके प्रति निमाहृत मन्त्र-वाक्य पढ़कर अर्घ्य निवेदन करे—‘अग्नि और वायु देवतासे प्रकट हुए अगस्त्यजी। काश पुण्यके समान उज्ज्वल वर्णवाले कुम्भज मुने! मित्र और वरुणके पुत्र भगवान् कुम्भयोने! आपको नमस्कार है। जिन्होने महान् असुर आतापी और वातापीको भक्षण कर लिया और समुद्रको भी सोख डाला, वे अगस्त्यजी मुझपर प्रसन्न हों।’ इस प्रकार कहकर जो पुण्य अगस्त्यकी दिशा (दक्षिण)-के प्रति अर्घ्य अर्पण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो, दुस्तर भौहान्वकारसे पार हो जाता है ॥ १२—१६ ॥

महामुने! भरद्वाजजी! इस प्रकार मैंने मुनियोंके निकट यह पूरा ‘नरसिंहपुराण’ आपको सुनाया। इसमें मैंने सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—सभीका वर्णन किया है। मुने! इस पुराणको सर्वप्रथम ब्रह्मजीने मरीचि आदि मुनियोंके प्रति कहा था। उन मुनियोंमेंसे भृगुजीने मार्कण्डेयजीके प्रति इसे कहा और मार्कण्डेयजीने नागकुलोत्पन्न राजा सहस्रानीकको इसका श्रवण कराया। फिर भगवान् नरसिंहकी कृपासे इस पुराणको बुद्धिमान् श्रीव्यासजीने प्राप्त किया। उनकी अनुकम्पासे मैंने इस सर्वपापनाशक पवित्र पुराणका ज्ञान प्राप्त किया और इस समय मैंने यह नरसिंहपुराण इन मुनियोंके निकट आपसे कहा। अब आपका कल्याण हो, मैं जा रहा हूँ॥ १७—२१ ॥

जो मनुष्य पवित्र होकर इस उत्तम पुराणका श्रवण करता है, वह माघ मासमें प्रयागतीर्थमें स्नान करनेका फल प्राप्त करता है। जो मनुष्य इस नरसिंहपुराणको भगवान्‌के भक्तोंके प्रति नित्य सुनाता है, वह सम्पूर्ण तीर्थोंके सेवनका फल प्राप्त करके विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है ॥ २२—२३ ॥

इस प्रकार स्नातकोंके साथ इस पुराणको सुन महामति भरद्वाजजीने सूतजीका पूजन-सत्कार किया और स्वयं वहाँ रह गये। अन्य सब मुनि अपने-अपने स्थानको छले गये ॥ २४ ॥

सर्वपापहरं पुण्यं पुराणं नृसिंहात्मकम्॥ २५

पठतां शृणवतां नृणां नरसिंहः प्रसीदति।
प्रसन्ने देवदेवेशो सर्वपापक्षयो भवेत्॥ २६

प्रक्षीणपापबन्धास्ते मुक्तिं यान्ति नरा इति॥ २७

यह नरसिंहपुराण समस्त पापोंको हर लेनेवाला और पुण्यमय है। जो इसको पढ़ते और सुनते हैं, उन मनुष्योंपर भगवान् नरसिंह प्रसन्न होते हैं। देवदेवेशर नरसिंहके प्रसन्न होनेपर सम्पूर्ण पापोंका नाश हो जाता है और जिनके पाप-बन्धन सर्वथा नष्ट हो गये हैं, वे मानव मोक्षको प्राप्त होते हैं॥ २५—२७॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे मानसतीर्थवतं नाम सप्तश्लोकमोऽध्यायः॥ ६७॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'मानसतीर्थ-वत' नामक सप्तश्लोकों अध्याय पुरा हुआ॥ ६७॥

अङ्गसठवाँ अध्याय

नरसिंहपुराणके पठन और अवणका फल

सूत उचाच

इत्येतत् सर्वमाख्यातं पुराणं नारसिंहकम्।
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वदुःखनिवारणम्॥ १

समस्तपुण्यफलदं सर्वयज्ञफलप्रदम्।
ये पठन्त्यपि शृणवन्ति श्लोकं श्लोकार्धमेव वा॥ २

न तेषां पापबन्धस्तु कदाचिदपि जायते।
विष्ववर्धितमिदं पुण्यं पुराणं सर्वकामदम्॥ ३

भक्त्या च वदतामेतच्छृणवतां च फलं शृणु।
शतजन्मार्जितैः पापैः सद्य एव विमोचिताः॥ ४

सहस्रकुलसंयुक्ताः प्रयान्ति परमं पदम्।
किं तीर्थैर्गोप्रदानैर्वा तपोभिर्वा किमध्वरैः॥ ५

अहन्यहनि गोविन्दं तत्परत्वेन शृणवताम्।
यः पठेत्प्रातरुत्थाय यदस्य श्लोकविंशतिम्॥ ६

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार मैंने यह सम्पूर्ण नरसिंहपुराण कह सुनाया। यह सब पापोंको हरनेवाला और सम्पूर्ण दुःखोंको दूर करनेवाला है। समस्त पुण्यों तथा सभी यज्ञोंका फल देनेवाला है। जो लोग इसके एक श्लोक या आधे श्लोकका श्रवण अथवा पाठ करते हैं, उन्हें कभी भी पापोंसे बन्धन नहीं प्राप्त होता। भगवान् विष्णुको अर्पण किया हुआ यह पाचन पुराण समस्त कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला है। भरद्वाजजी! जो लोग भक्तिपूर्वक इस पुराणका पाठ अथवा श्रवण करते हैं, उनको प्राप्त होनेवाले फलका वर्णन सुनिये। वे सी जन्मोंके पापसे तत्काल ही मुक्त हो जाते हैं तथा अपनी सहस्र पीड़ियोंके साथ ही भरमपदको प्राप्त होते हैं। जो प्रतिदिन एकाग्रचित्तसे गोविन्दगुणगान सुनते रहते हैं, उनको अनेक बार तीर्थ-सेवन, गोदान, तपस्या और यज्ञानुष्ठान करनेसे क्या लेना है। जो प्रतिदिन सबेरे उठकर इस पुराणके श्रीस श्लोकोंका पाठ करता है,

ज्योतिष्टोमफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते ।
एतत्पवित्रं पूज्यं च न वाच्यमकृतात्पनाम् ॥ ७

द्विजानां विष्णुभक्तानां श्राव्यमेतत्र संशयः ।
एतत्पुराणश्रवणमिहामुत्र सुखप्रदम् ॥ ८

बदतां शृणुवतां सद्यः सर्वपापप्रणाशनम् ।
बहुनात्र किमुक्तेन भूयो भूयो मुनीश्वराः ॥ ९

अद्वयाश्रद्धया वापि श्रोतव्यमिदमुत्तमम् ।
भारद्वाजमुखाः सर्वे कृतकृत्या द्विजोत्तमाः ॥ १०

सूतं हृष्टाः प्रपूज्याथ सर्वे स्वस्वाश्रमं यद्युः ॥ ११

वह ज्योतिष्टोम यज्ञका फल प्राप्तकर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है ॥ १—६ ॥

यह पुराण परम पवित्र और आदरणीय है। इसे अजितेन्द्रिय पुरुषोंको तो कभी नहीं सुनाना चाहिये, परंतु विष्णुभक्त द्विजोंको निस्संदेह इसका श्रवण करना चाहिये। इस पुराणका श्रवण इस लोक और परलोकमें भी सुख देनेवाला है। यह वक्ताओं और श्रोताओंके पापको तत्काल नष्ट कर देता है। मुनीश्वरगण! इस विषयमें बहुत कहनेकी क्या आवश्यकता है। श्रद्धासे हो या अश्रद्धासे, इस उत्तम पुराणका श्रवण करना ही चाहिये। इस पुराणको सुनकर भरद्वाज आदि द्विजश्रेष्ठगण कृतार्थ हो गये। उन्होंने हर्षपूर्वक सूतबीका समादर किया। फिर सब लोग अपने-अपने आश्रमको छले गये ॥ ७—११ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे सूतभरद्वाजादिसंवादे सर्वदुःखोपहरं श्रीनरसिंहपुराणस्य माहात्म्यं समाप्तम् ॥ ६८ ॥

इस प्रकार सूत- भरद्वाजादि- संवादरूप श्रीनरसिंहपुराणमें इसके 'सर्वदुःखहारी माहात्म्यकावणी' नामक अड्डसंघर्षका अध्याय पूरा हुआ ॥ ६८ ॥